गुरुकुल पत्रिका

Vol. 5 Jan. 1998-Feb. 1999

गुरुकुल-पत्रिका

मासिक शोध-पत्रिका

Monthly Research Magazine

Vol. 50
JAN-98 FEB 99

सम्पादक

डॉ0 भारतभूषण विद्यालंकार

उपसम्पादक

डॉ0 दिनेशचन्द्र शास्त्री

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-249404

गुरुकुल-पत्रिका

शोध-पत्रिका

Monthly Research Magazine

सम्पादक

डॉ० भारतभूषण विद्यालंकार
वेदाचार्य, एम.ए., पी-एच.डी.
प्रोफेसर - वेद विभाग

एवं

निदेशक

श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान

उपसम्पादक

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री 'धर्ममार्तण्ड'
वरिष्ठ प्रवक्ता, वेद विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार - 249404

जनवरी - मई 1998	वर्ष 50वां	पौ० शु० तृतीया संवत् 2054 से ज्ये० शु० षष्ठी 2055

सम्पादक मण्डल

मुख्य संरक्षक	:	डॉ0 धर्मपाल कुलपति
संरक्षक	:	प्रो0 वेदप्रकाश शास्त्री आचार्य एवं उपकुलपति
परामर्शदाता	:	प्रो0 विष्णुदत्त राकेश हिन्दी विभाग
सम्पादक	:	डॉ0 भारतभूषण विद्यालंकार प्रो0 – वेद विभाग
उपसम्पादक	:	डॉ0 दिनेशचन्द्र शास्त्री 'धर्ममार्तण्ड' वरिष्ठ प्रवक्ता, वेद विभाग
व्यवसाय प्रबन्धक	:	डॉ0 जगदीश विद्यालंकार पुस्तकालयाध्यक्ष
प्रबन्धक	:	श्री हंसराज जोशी
प्रकाशक	:	प्रो0 श्याम नारायण सिंह कुलसचिव गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार – 249404
मूल्य	:	25 रुपये (वार्षिक)

मुद्रक : किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रेस, निकट गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, कनखल फोन : 415975

विषय–सूचि

1.	श्रुति – सुधा	—		1
2.	सम्पादकीय	—		2 – 3
3.	स्मृतियों के वातायन से : डॉ0 प्रशान्त कुमार	—	डॉ0 ओमप्रकाश सिंघल	4 – 7
4.	प्राचीन भारत में विषकन्या – प्रयोग	—	राजेश शुक्ल	8 – 15
5.	आचार्य सायण और उनकी वेदभाष्य शैली	—	डॉ0 दिनेशचन्द्र शास्त्री	16 – 18
6.	गुरु जम्भेश्वर महाराज का आचार – दर्शन	—	डॉ0 किशनाराम बिश्नोई	19 – 28
7.	श्री गणेश जी का वास्तविक स्वरूप	—	सुखवीर दत्त मिश्र	29 – 53
8.	मौद्गल्यकृत अथर्वभाष्य की समीक्षा	—	डॉ0 दिनेशचन्द्र शास्त्री	54 – 70
9.	THE TEN GURUS AND VEDIC DHARMA (HINDUISM)	—	INDER DEV KHOSLA	71 – 78
10.	VANPRASTH AWARENESS	—	YASHWANT MUNI	79 – 81
11.	MICROBIOLOGICAL ASPECTS OF KRISHNAL	—	Mrs. SHALINI	82 – 84
12.	ADULT EDUCATION : Its Need in India	—	Dr. SATENDRA	85 – 88
13.	INCIDENCE OF POVERTY IN INDIA - ITS ESTIMATION AND RELATED DATA GAPS*	—	A.C. KULSHRESHTHA	89 – 96
14.	पुस्तक – समीक्षा	—		97 – 100

श्रुति—सुधा

ईशावास्यमिदँ सर्वम् ।। यजु० ४०.१

यह सब कुछ ईश्वर से आच्छादित है।

By one supreme Ruler is this universe pervaded.

०००

तस्मिन्निदँसं च विचैति सर्वम् ।। यजु० ३२.८

उस परमात्मा में ही यह सम्पूर्ण विश्व लय होता है और उत्पन्न होता है।

In Him rests the whole and from Him it issues.

०००

स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ।। यजु० ३२.८

वह व्यापक परमेश्वर सब प्रजा में ओत प्रोत है।

That all pervading spirit is interwoven in all his subjects.

०००

तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।। यजु० ३१.१९

उसके सहारे ही सारे भुवन खड़े हैं।

In Him have all the worlds their rest.

०००

तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।। अ० ९-१०-१९

उस ब्रह्म से ही चारों दिशायें जीवन लेती हैं।

Through Him live the four quarters.

०००

प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।। यजु० ३२-४

वह परमेश्वर सर्वतोमुख होकर सर्वत्र वर्त्तमान है।

With His faces in all directions He is facing every one.

०००

मेहता रामचन्द्र शास्त्री प्रणीत
'वैदिक सूक्तिः' के पृष्ठ ७-९ से उद्धृत

सम्पादकीय

पोखरण के धमाके ने विश्व में एक तीव्र गतिविधि उत्पन्न कर दी है। इससे सारे यूरोप में एक अचम्भा-सा महसूस किया गया कि प्रौद्योगिकी में पिछड़े ६५ करोड़ दरिद्र क्या विश्व को अंगूठा दिखाते हुए अपनी सुरक्षा के प्रति सजग होकर अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं। वे बुद्ध व गांधी के देश तथा उपनिषदों के तत्व ज्ञान की ध्वजा फहराने वालों से इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उनका पुराना विचार था कि भारत दार्शनिकों का देश है वहां चिन्तन की पूर्ण स्वतंत्रता रही है, ऐसा विदेशों में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता।

वे भूल गए थे वैदिक ऋषियों का राष्ट्रीय संदेश। जिसमें ब्राह्मणत्व के बाद क्षत्रियत्व को वरीयता प्रदान की गई। अपनी सेनाओं के मनोबल को बढ़ाते हुए एक नागरिक कहता है "आरे शत्रुं कृणुहि सर्ववीरम्" शत्रुओं को अपने राष्ट्र की सीमाओं से दूर भगा दो "प्रणुद मे सपत्नान्.... अधस्पदं कृणुष्व" अपने शत्रुओं को दूर भगा दो, उन्हें पैरों से दबा कर रखो। "उत् तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह" उठो ! और अपने ध्वज फहराते हुए प्रसन्नता पूर्वक आगे बढ़ो। शत्रु पर विजय व अपना मनोबल ऊँचा रखने के लिए बहुत अच्छे व प्रहारकारी आयुधों की आवश्यकता होती है "अग्र वज्रस्तर्पयताम्" इस वज्र के द्वारा हम राष्ट्रघातियों को दूर कर दें। इन आयुधों के नाम काल, स्थान पर परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहे हैं। कहीं वह आग वर्षक बाण है तो कहीं तोप का बम। सबकी मूलभूत भावना एक ही रही है।

वेद का ऋषि सामान्य आयुधों की ही बात नहीं करता, वह तो अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, जलों के माध्यम से भी शत्रुओं का नाश करने की बात करता है। देश के व्याघ्र नर पुंगव मृगरूप शत्रुओं पर टूट पड़ें। वे किसी भी दिशा से आने वाले प्रहारों को नष्ट करने में समर्थ हों। ये आक्रमण धरती से, अन्तरिक्ष या द्युलोक से भी हों तो उन्हें और उन स्थानों पर स्थित शत्रु मानवों को भी नष्ट कर देने के स्पष्ट आदेश हैं "ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः" जिससे देश के नागरिक अपराज़ित मनोवृत्ति वाले बने रहें, वे किसी भी पीड़ा से रहित हों। क्षत रहित हों "अजीतोऽहतो अक्षतो ऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्"। इसीलिए सेना के वीरों को देश शब्द से सम्बोधित किया गया है। ये दिव्य गुणयुक्त सेनाएं शत्रुओं को घर्षित करती हुई निरन्तर आगे बढ़ती रहें "देवसेनानामभिभंजतीनाम्"।

उपरोक्त उद्धरणों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य हजारों-लाखों वर्षों की गौरवशाली परम्परा और इस देश की महान् संस्कृति की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालना है। दासता की एक लम्बी कालावधि में गिरे हुए मनोबल, रोगी शरीरों, भूख व अज्ञानता के गर्त में पड़ी एक जाति, एक राष्ट्र अचानक ही धूल झाड़कर खड़ा हो गया। उसका दृष्टिकोण, बदल गया। उसने एक शक्तिशाली राष्ट्र की भांति व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। ९५ करोड़ दरिद्रों का देश अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्धों की उपेक्षा करने लगा।

इस घटना के बाद विश्व का हमें देखने का दृष्टिकोण बदल गया है। परन्तु कुछ दिवान्ध इस घटना पर छाती पीटने लगे। राष्ट्रव्यापी जन भावना इससे प्रबल हुई है। बम का नाम मात्र जानने वाले भी सिर ऊँचा करके चलने लगे, यह राष्ट्रीय भावना इससे बलवती ही हुई है। राष्ट्र को चाहिए कि इस प्रकार के शक्तिवर्धन में सतत संलग्न रहे। यही शक्ति पूजा है और यही शक्ति पूजा का उद्देश्य। हमारी शक्ति आत्मसुरक्षा के लिए है। हमारी ताकत पर-पीड़न के लिए नहीं है। तभी सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की बात हम कर सकेंगे। हमारा सदा उद्देश्य रहा है।

"अभयं मित्रादभयममित्राद् अभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।।"

भारतभूषण विद्यालंकार

स्मृतियों के वातायन से : डॉ० प्रशांत कुमार

प्रो० (डॉ०) ओमप्रकाश सिंहल
पूर्व अतिथि आचार्य तथा सां०शै०वि०, पेइचिङ.
विश्वविद्यालय चीन लोक गणराज्य

पिछले ढाई पौने तीन वर्षों से चीन में रहते हुए यों तो अपने देश के तीज-त्योहार खान-पान, बोली-बानी और मौसम ने बार बार मातृभूमि की याद दिलाई है, किंतु इन सबसे ज्यादा याद आई है उन संगी साथियों की जिनके उलाहने, ताने-तिश्ने मुझे अपने गिरेबान में झाँकने और अपनी गलतियों को सुधारने का मौका देते थे, जिनसे मैं अपने दुःख की सब बातें कह कर मन का बोझ हल्का कर लेता था, जिनके साथ रहकर जिंदगी जीने का नया अर्थ पाता था, जिनके प्यार भरे बोल मेरे भीतर आत्मबल का ऐसा संचार करते थे कि दुर्द्धर्ष संघर्ष के क्षणों में भी मजबूत पैरों से आगे बढ़ पाता था। संघर्ष-पथ पर अनवरत चलते रहने की प्रेरणा देने वाले आत्मीय मित्रों में अन्यतम थे भाई प्रशांत कुमार।

भाई प्रशांत कुमार मेरे समवयस्क थे। मेरी और उनकी आयु में दो मास से भी कम का अन्तर था। उनका जन्म २१ सितंबर, १९३७ को हुआ था और मेरी वास्तविक जन्मतिथि २६ जुलाई, १९३७ है। लेकिन इसके बावजूद उन्होंने मुझे हमेशा बड़े भाई का सा आदर दिया।

प्रशांत जी से मेरा पहला परिचय कब हुआ इसकी मुझे कतई याद नहीं है। हाँ, इतनी स्मृति अवश्य है कि सन् १९६२ की सर्दियों में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के आर्य भाषा पुस्तकालय में शोध कार्य के दौरान हफ्तों तक दिन भर साथ बैठ कर काम करने, खाने-पीने और बतियाने का जो सिलसिला एक बार शुरु हुआ वह चीन आने से पहले तक न केवल बना रहा अपितु निरंतर सुदृढ़ होता रहा। आपसी संवाद का यह रिश्ता चीन आने के बाद भी पत्रों के माध्यम से अटूट बना रहा। सच तो यह है कि ६ दिसम्बर, सन् १९९३ ई० को जब मैं पेइचिङ. स्थित भारतीय दूतावास में अपनी डाक लेने गया था तब मन में यह आस भी संजोए बैठा था कि इस बार की डाक में उनका पत्र अवश्य होगा। पत्र न पा कर मन अनजाने नाना प्रकार की शंकाओं में डूबने-उतराने लगा था। इसका कारण यह था कि वे नियमित रूप से पत्र लिखने और पत्रों का तुरंत उत्तर देने में विश्वास करते थे। वे मानते थे कि किसी के पत्र का उत्तर देना ठीक वैसा ही है जैसा कि दरवाजे पर दी जा रही दस्तक सुन कर दरवाजा न खोलना। और ये पत्र मात्र औपचारिक न होते थे। वे होते थे आत्म-रस से लबालब भरे हुए। उन्हें पढ़ कर ऐसा लगता था मानो वे सामने बैठे हुए बात कर रहे हों। हाँ, तो मैं अपने मन को आश्वस्त करने का प्रयत्न कर रहा था कि प्रशांत जी के पत्र न आने का कोई विशेष कारण नहीं है और मन था कि उद्वेगपूर्ण होता जा रहा था।

सहसा मेरी निगाह २ दिसम्बर के दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित उस समाचार पर चली गई जिसमें मारीशस में हो रहे विश्व हिन्दी सम्मेलन में भाग लेने के लिए जाते समय हवाई अड्डे पर उनके प्राण पखेरु उड़ जाने की सूचना छपी थी। मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। मैंने वह समाचार दो-तीन बार पढ़ा। फिर मेरा सिर चकराने लगा। मैं वहाँ रखी कुर्सी पर बैठ गया। स्वागत कक्ष में बैठा सुरक्षा कर्मचारी मेरी हालत देखकर घबरा गया। उसने मेरा कंधा झकझोरते हुए पूछा- क्या बात है ? घर पर सब ठीक है न ? फिर पानी का गिलास सामने रख दिया। मेरे मुँह से एक भी शब्द न निकला। भारी मन से उठा, टैक्सी ली और अपने घर वापिस आ गया। इसके बाद भी कितने ही दिनों तक मैं अपने मन को व्यवस्थित न कर सका। मेरे मानस-पटल पर अतीत के अनेक घटना-प्रसंग अलगनी पर टंगे मनोरम रंगीन वस्त्रों जैसे दिखते रहे।

पत्नी ने अपने पिछले ही पत्र में लिखा था कि भाई प्रशांत जी ने पत्र लिख कर न केवल कुशलक्षेम पूछी है अपितु यह भी लिखा है कि किसी भी प्रकार की सहायता की अपेक्षा हो तो उन्हें निःसंकोच लिखूँ या फोन करूँ। मेरे कहे या लिखे बिना प्रशांत जी का पत्नी को यह पत्र लिखना मेरे प्रति उनकी प्रगाढ़ प्रीति का ही सूचक नहीं था अपितु अपने आत्मीयों के प्रति उनके सहज प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति भी रेखांकित करता था। मैंने उन्हें सदैव दूसरों के लिए इसी प्रकार चिंतित और उनकी समस्याओं के निदान के लिए प्रयत्नशील होते देखा था।

कोई व्यक्ति किसी के साथ कितनी आत्मीयता रखता है इसकी परख उस समय होती है जब उसे दो स्थितियों में से किसी एक का चयन करना पड़ता है। प्रशांत जी का कार्यक्षेत्र बड़ा विस्तृत था। उनकी नानाविध सामाजिक-राजनीतिक प्रतिबद्धताएं थीं। अतएव उनके जीवन में ऐसे निर्णय लेने के अवसर प्रायः आते रहते थे। लेकिन उनके मन में इस संबंध में किसी प्रकार की दुविधा नहीं थी। अपने आत्मीयजनों के कार्यक्रमों में सम्मिलित होने को उन्होंने सदैव प्राथमिकता दी। मुझे स्मरण है कि मेरे चीन-प्रवास से पूर्व भाई जयप्रकाश भारती ने २८ सितंबर, सन् १९९२ ई० की शाम को जिस मिलन-गोष्ठी का आयोजन किया था उसी दिन और उसी समय डॉ० गौरी शंकर राजहंस के लाओस में राजदूत नियुक्त किए जाने के उपलक्ष्य में एक अभिनन्दन समारोह आयोजित था। भाई प्रशांत कुमार को उसमें भी सम्मिलित होना था। लेकिन उन्होंने मिलन-गोष्ठी में शामिल होने को प्राथमिकता दी। उस समारोह में वे बाद में ही गए। उनके इस प्रकार के आत्मीय व्यवहार के कारण ही उनके पास कंधे से कंधा मिला कर काम करने वाले मित्रों की एक अच्छी खासी मंडली थी।

प्रशांत जी कर्मठ एवम् प्रबुद्ध सामाजिक राजनीतिक कार्यकर्त्ता होने के साथ साथ साहित्य स्त्रष्टा भी थे। सच तो यह है कि साहित्यिक कार्यक्रमों में शामिल होने पर उन्हें

आत्मिक सुख प्राप्त होता था। यही कारण था कि सामाजिक-राजनीतिक कार्यक्रमों की भीड़-भाड़ में से वे साहित्यिक कार्यक्रमों के लिए हमेशा समय निकाल लेते थे। २१ दिसंबर, १९९१ की बात है। मैंने उस दिन "हिन्दी बाल साहित्य : परम्परा और प्रयोग" विषय पर पूरे दिन की गोष्ठी का आयोजन किया था। उस दिन मौसम खराब था। गोष्ठी शुरु होने से थोड़ी देर पहले बूंदा-बांदी भी हो गई थी। यों इस गोष्ठी में स्व० श्री अक्षयकुमार जैन, देवेन्द्र सत्यार्थी, जयप्रकाश भारती, दिविक रमेश, रवीन्द्र दरगन आदि अनेक साहित्यकार आए थे किन्तु मित्रों के चेहरे जरा कम दिखाई दिए। लेकिन प्रशांत जी एक आवश्यक राजनीतिक बैठक के बावजूद शामिल हुए। पहले सत्र की समाप्ति के बाद उन्होंने मुझे एक कोने में ले जा कर पूछा- "आपकी गोष्ठी कब तक चलेगी" ? मेरे यह बताने पर कि शाम के पाँच बजे तक तो जरूर ही चलेगी उन्होंने कहा- "इस समय मुझे अपनी पार्टी की एक जरूरी बैठक में जाना है, किन्तु वहाँ से फुरसत पाते ही फिर आऊंगा।" मैंने सोचा कि अब वे क्या आएंगे, मेरे कुछेक मित्रों का भी यही विचार था, किंतु दो घंटे बाद उन्हें बीच पाकर हम सब मित्रों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

प्रशांत जी की आत्मीयता तथा साहित्यानुरागी मन की एक और घटना है। २९, ३०, ३१ दिसम्बर, १९८८ को लखनऊ में भारतीय हिन्दी परिषद् का वार्षिक अधिवेशन था। मैं सन् १९५९ से भारतीय हिन्दी परिषद् के अधिवेशनों में लगभग नियमित रूप से भाग लेता रहा हूँ। कई अधिवेशनों में तो मैं और प्रशांत जी एक साथ शामिल हुए थे। लेकिन लखनऊ अधिवेशन में शामिल होने और उसमें पढ़े जाने वाले अपने निबंध की टंकित प्रति भेज देने के बावजूद मेरा मन वहाँ जाने को नहीं कर रहा था। उन दिनों मैं कतिपय पारिवारिक समस्याओं से कुछ उस प्रकार जूझ रहा था कि वहाँ जाने की इच्छा निःशेष हो चुकी थी। मुझे घर से बाहर निकलना असंभव सा लग रहा था। भाई रविन्द्र दरगन के माध्यम से प्रशांत जी को ज्यों ही मेरे न जाने की बात मालुम हुई कि उन्होंने तत्क्षण अधिवेशन में साथ चलने का आग्रह करने के साथ-साथ मेरे लिए टिकट भी खरीद ली। जिस दिन प्रस्थान करना था उस दिन मुझे साथ लेते हुए गए। लखनऊ में वे अपनी ससुराल में ठहरे और मेरे ठहरने की व्यवस्था भी वहीं की। अधिवेशनों में लोग प्रायः नगर-भ्रमण के लिए निकल जाते हैं जिसके फलस्वरूप साहित्य-गोष्ठियों में उपस्थिति काफी कम रहती है। लेकिन प्रशांत जी सभी गोष्ठियों में उपस्थित रहे। स्वयं निबंध पाठ करने के अतिरिक्त साहित्यिक परिचर्चाओं में सक्रिय भागेदारी निभाई।

यों तो प्रशांत जी सभी कार्य मनोयोगपूर्वक करते थे, किन्तु उनका मन साहित्य-सृजन में ही रमता था। वैदिक साहित्य, धर्म और संस्कृति, भारतीय काव्यशास्त्र, शिक्षा और समाज तथा तुलनात्मक भाषा-विज्ञान उनके लेखन के कतिपय उल्लेखनीय आयाम हैं। "वैदिक साहित्य में नारी (१९६४) "राज्य व्यवस्था : वैदिक साहित्य के आधार पर"

(१९७५), "वैदिक समाज व्यवस्था" (१९७८), "धर्म का स्वरूप" (१९८१), "रसाभास" (१९७१), भारतीय काव्यशास्त्र का विश्वकोश (अप्रकाशित), शिक्षा व भाषा नीति (१९८२), "शिक्षा की वर्तमान समस्याएं", "मुलतानी और हिन्दी का तुलनात्मक व्याकरण" आदि उनकी कतिपय उल्लेखनीय रचनाएं हैं। उनके लेखन का मूल लक्ष्य अतीत के आलोक में वर्तमान समस्याओं का हल ढूंढ़ना था। वे परिवर्तन के विरोधी नहीं थे, किन्तु इतना अवश्य मानते थे कि जिस शिक्षा व्यवस्था ने आर्य भट्ट, वराहमिहीर जैसे विश्वविश्रुत वैज्ञानिकों, पाणिनी जैसे वैयाकरणों, बाल्मीकि और कालिदास जैसे साहित्यकारों को जन्म दिया वह सर्वथा अनुपादेय नहीं हो सकती। आवश्यकता केवल यह है कि उसमें समकालीन अपेक्षाओं के अनुरूप संशोधन-परिशोधन कर युग सापेक्ष बनाया जाए।

यद्यपि प्रशांति जी ने अपने लेखन को पर्याप्त समय दिया था किन्तु फिर भी उन्हें अपने से यह शिकायत रहती थी कि विभिन्न दिशाओं में बिखर जाने के कारण वे समुचित लेखन नहीं कर पाते। इस बात का जिक्र उन्होंने मुझसे अनेक बार किया था। चीन में मिले उनके पत्रों में भी यह दर्द कई बार व्यक्त हुआ था।

प्रशांत जी मृदुभाषी व्यक्ति थे। उनके स्वभाव में तेजी नहीं थी। मैंने उन्हें कभी क्रुद्ध होते नहीं देखा। यदि कोई उनके विरुद्ध अनुचित बात भी कह देता था तब भी वे उत्तेजित नहीं होते थे। अपने ऊपर लगाए गए आक्षेपों या आरापों का शालीनता एवम् दृढ़तापूर्वक ऐसा उत्तर देते थे कि आरोपकर्ता निरुत्तर हो जाता था। उनका यह अनुकरणीय गुण मैं प्रयत्न करने पर भी अपने जीवन में नहीं ला सका।

पिछले तीन वर्षो से मुझे प्रशांत जी की याद प्रायः आती रही है। वे कई बार सपनों में भी दिखे हैं, पर सपना सच नहीं होता। कड़ुवा सच यही है कि मैंने अपना गाढ़े का साथी सदा सर्वदा के लिये खो दिया है।

प्राचीन भारत में विषकन्या–प्रयोग

राजेश शुक्ल
मगध विश्वविद्यालय-पटना

नारी विधाता की सृष्टि का एक अनुपम उपहार है। सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान समय तक के इतिहास के विशाल कलेवर पर नारी के विविध चित्र बड़ी उत्कृष्टता के साथ अंकित हैं। जीवन का ओर राष्ट्र का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें पुरुष के समान नारी का योगदान न हो। परिवार, समाज, राष्ट्र और समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, सभी में नारी-जाति की अपनी विशिष्ट भूमिका रही है। इन भूमिकाओं में इतनी विभिन्नता और विचित्रता है कि उसको पढ़कर या स्मरणकर हम विस्मित हो उठते हैं।

वैदिक-कालीन नारी जहाँ अपनी ममता, वात्सल्य, करुणा आदि गुणों से अभिमंडित है, मानव की प्रेरिका है, जनक की सभा में अनेक विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करने वाली गार्गी के रुप में ब्रह्मवादिनी है, सती अनुसूया के रुप में पातिव्रत्य धर्म की पराकाष्ठा है, वहाँ युद्ध-भूमि में अपने वीर पति दशरथ के साथ युद्ध करने वाली और रथ का पहियां टूट जाने पर अपने हाथ का सहारा देकर रथ को गतिशील रखने वाली कैकेयी के रुप में भी नारी का दिव्य रुप दिखाई देता है।

एक ओर तो नारी का यह अलौकिक रूप और दूसरी ओर उसी नारी का एक ऐसा भयावह रूप, जिसके स्मरण मात्र से मानव भयभीत हो जाता है। हमारे प्राचीन सहित्य में और इतिहास के पन्नों में नारी के एक विचित्र स्वरूप का वर्णन किया गया है, जिसे ''विषकन्या'' के नाम से जाना जाता है। आज भले ही हम इसपर विश्वास न करें किन्तु यह इतिहास और साहित्य का सत्य है कि अत्यंत दूरगामी योजना के अंतर्गत शत्रु–पक्ष को प्रबल हानि पहुँचाने के उद्देश्य से विषकन्याओं का निर्माण किया जाता था और समय आने पर उसका प्रयोग भी किया जाता था। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ सुश्रुतसंहिता में विषकन्या की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि वह ''विषकन्या'' है जिसको ग्रहों के कारण वैधव्य-योग होता है। उपदंश आदि योनि रोगों से पीड़ित स्त्री भी ''विषकन्या'' कही जा सकती है।[1] वर्तमान समय में लाखों–करोड़ों लोगों के प्राणों का हरण करने वाला एड्स रोग जिसको है वह विषकन्या और पुरुष विषपुरुष कहा जा सकता है क्योंकि ऐसी स्त्री अथवा ऐसे पुरुष के संपर्क से प्राणहरण की पूरी–पूरी संभावना रहती है। सुश्रुतकार ने यह भी कहा है कि दूषित मनवाले व्यक्ति निपुण राजा को विषों से मार देते हैं अथवा कभी सौभाग्य की इच्छा से स्त्रियाँ नाना प्रकार के योगों को देती है अथवा विषकन्या के उपयोग से मनुष्य तुरन्त प्राण खो बैठता है। इसलिए वैद्य को चाहिए कि वह निरंतर राजा की विष से रक्षा

करे।[2] आयुर्वेद के अष्टाग-सग्रह नामक ग्रंथ में विषकन्या की चर्चा है। वहां कहा गया है कि राजा लोग शत्रु को मारने के लिए कई दिन तक विष का अभ्यास कराकर विषकन्या तैयार करते हैं। राजा को चाहिए कि वह उस प्रकार की कन्याओं से बचता रहे। शत्रु पर आक्रमण करने वाले राजा को चाहिए कि वह बिना जानी हुई और बिना परीक्षा की हुई किसी कन्या से स्पर्श तक न करें क्योंकि चतुर लोग अनेक प्रकार के प्रयोग करके राजा को छलते हैं। उसी में एक प्रयोग विषकन्या वाला है। ऐसी कन्या को छूने से, श्वासोच्छ्व से मनुष्य मर जाता है।[3] अष्टांग-संग्रह में विषकन्या की परीक्षा विधि भी बताई गई है। उसके मस्तक, केश और हाथ से स्पर्श होते ही पुष्प और पत्र कुम्हला जाते हैं। उसकी शय्या में खटमल मर जाते हैं, उसके कपड़े में जुएं मर जाती हैं इसके स्नान किए हुए जल में मक्खियां आदि जीव मर जाते हैं।[4] संस्कृत के विद्वानों ने यह कहा है कि "हन्ति स्पृशन्ती स्वेदेने, गम्याना च मैथुने। पक्वधृतादि च फलं प्रशांतयति मेहनम्।" अर्थात् विषकन्या के चुंबन, सम्भोग या किसी प्रकार के सान्निध्य से भी विष का प्रभाव दूसरे पुरुष में आ जाता है।

आयुर्वेद का ही एक अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ है चरक संहिता, जिसके रचियता महर्षि चरक थे। चिकित्सा-शास्त्र का ग्रन्थ होते हुए भी राज्यकर्म के सम्बन्ध में निर्देश देते हुए महर्षि कहते हैं कि राजा को शत्रुओं से मिले हुए अपने ही पुरुषों व शत्रुओं से तथा विशेष सौभाग्य संपदा की कामना करने वाली स्त्रियों से भी विष का भय रहता है। भृत्य लोग आहार-विहार के द्रव्यों में विष मिलाकर दे देते हैं, इसलिए सेवकों की परीक्षा कर उन्हें सावधानी पूर्वक रखना चाहिए।[5]

राजनीति-निपुण लोग इस तथ्य को भलीभाँति जानते थे कि नारी पुरुष का सबसे बड़ा आकर्षण है। सुन्दर स्त्री को देखकर सामान्य जन की बात तो दूर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों का मन भी विकृत हो डोलने लगता है। विश्वप्रसिद्ध महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तल नाम का नाटक इसका ज्वलन्त उदाहरण है, जिसमें घोर तपस्यारत विश्वामित्र ऋषि मेनका नामक अप्सरा के अनुपम सौंदर्य को देखकर विचलित हो गये थे और परिणामंस्वरुप शकुन्तला का जन्म हुआ। मानव की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए विजय को ही सर्वोपरि मानने वाले राजनीति-निष्णात जनों ने नारी के रूप-लावण्य को विषकन्या के रूप में प्रयोग किया। विषकन्याओं के निर्माण के लिए किसी सुंदर कन्या को उसके जन्म के कुछ ही समय पश्चात् बहुत अच्छा धन देकर उसके माता-पिता से खरीद लिया जाता था। प्रारम्भ से ही थोड़ी-थोड़ी मात्रा में विष देकर उस कन्या को विष भक्षण का अभ्यस्त बनाया जाता था। इस प्रक्रिया के मुगलकालीन प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल फज़ल ने लिखा है-हिंदू राजा अपने शत्रुओं का मुकाबला हर स्तर पर

करते थे। विषकन्याओं द्वारा विपक्ष का विनाश भी उन उपायों में एक था। छह माह की दुधमुही सुन्दर बालिकाओं को बहुत थोड़ी मात्रा में धतूरे का विष दिया जाता था। शनैः शनैः यह मात्रा बढ़ाई जाती थी और जब इसे पचाने की क्षमता विकसित हो जाती तो उन्हें इससे तीव्र जहर दिया जाता था। दस वर्ष की आयु में ही उन बालिकाओं पर संखिया जैसे विष का प्रयोग किया जाता था। तेरह-चौदह वर्ष की आयु में उन्हें विषैले सर्पदंश का आदी बनाया जाता था। सर्पदशों में पारंगत होगर विषयुक्त होना श्रृंखला की अंतिम कड़ी हुआ करती थी। विष कन्या के सृजन की इस प्रक्रिया के समानान्तर ही उन्हें नृत्य-संगीत गायन, सौदर्य-परिधान के अतिरिक्त देश परिवर्तन की कला में भी प्रवीणता प्राप्त करनी होती थी। अतः विषकन्याओं को प्रत्येक दृष्टि से दक्ष बनाना एक लम्बी किन्तु परिष्कृत वैज्ञानिक योजना के तहत होता था। मुगल इतिहासकार का यह कथन कल्पना पर अधारित नहीं है। महान् इतिहासकार कर्नल टाड ने भी अपने अमूल्य ग्रंथ- **एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान** में इन बातों की पुष्टि की है।

प्राचीन ग्रंथ समरांगण सूत्रधार में भी विषकन्याओं की चर्चा है। वे कहते हैं कि विषकन्या के स्पर्शमात्र से ताजा फल मुरझा जाते हैं। दमकते स्वर्णाभूषणों की आभा उसके शरीर के हलके स्पर्श से नष्ट हो जाती है। इसलिए प्राचीन काल में राजा रजतपात्रों का प्रयोग करते थे क्योंकि विषैले भोज्य-पदार्थों से चाँदी के पात्रों का रंग परिवर्तन हो जाता था।

महाभारत काल से आज तक के पाँच हजार वर्षों के अंतराल में विषकन्याओं के प्रयोग के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। महाभारत महाकाव्य का एक प्रसिद्ध पात्र है पूतना। श्रीकृष्ण का चरित्र जानने वाले सभी पाठक पूतना के नाम से सुपरिचित हैं। मथुरा-नरेश कंस के आदेशानुसार राक्षसी पूतना ने दिव्य-रमणी का रूप धारण कर, गोकुल में पहुँचकर, नन्हें बालक कृष्ण को विषदग्ध स्तनपान कराकर मारने का असफल प्रयत्न किया था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने बड़ा सुन्दर रूप बनाया था। उसकी चोटियों में बेल के फूल गूथे हुए थे, वह सुंदर वस्त्र पहने हुए थी, जब उसके कर्णफूल हिलते थे तब उनकी चमक से मुख की आरे लटकी हुई अलकें और भी शोभायमान हो जाती थी। उसके नितंब और कुच-कलश ऊँचे-ऊँचे थे और कमर पतली थी। वह अपनी मधुर मुस्कान और कटाक्षपूर्ण चितवन से ब्रजवासियों का चित्त चुरा रही थी।[६] महाभारत काल में ही शत्रु को पराजित करने के लिए छल-कपटपूर्वक विष देने का प्रसंग आता है। दुर्योधन और भीम की शत्रुता जन्म सिद्ध थी। भीम को मारने के लिए दुर्योधन ने षड्यंत्रो का कुचक्र रचा। इसी षड्यंत्र की श्रृंखला में दुर्योधन ने जलक्रीड़ा के बहाने से भीम को नगर से बाहर बुला लिया और विषमिश्रित लड्डू खिला दिया भीमसेन मूर्च्छित हो गये, तब दुर्योधन ने भीम को लता

की रस्सियों से बांधकर गंगा में डाल दिया।[७]

भारतीय राजनीतिशास्त्र में आचार्य कौटिल्य का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उनका ''कौटिल्य अर्थशास्त्र'' नामक ग्रंथ राजनीति का अद्भुत महाकाव्य है। महानन्द के विशाल साम्राज्य को समाप्त कर चन्द्रगुप्त मौर्य को राज सिंहासन पर बैठाना और नन्दों के अत्यन्त विश्वसनीय और नीतिनिपुण महामंत्री राक्षस को अपनी राजनीति की चालों से अपने वश में कर लेना चाणक्य की नीतिमत्ता का परिचायक है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में विष प्रयोग की बात कही है। चाणक्य कहते हैं कि शत्रु को पराजित करने के लिए गुप्तचर शत्रु के दुर्ग में पहुँचकर उसके सेना शिविर में मद्य-विक्रेता का वेश धारण करके कोई गुप्तचर किसी प्राणदण्ड की सजा पाये हुए व्यक्ति को अपना पुत्र प्रचारित करके उसके आक्रमण करने पर विष प्रयोग करके उसको मार डाले। उसके बाद मृत व्यक्ति की आत्मा को तृप्त करने के लिए मादकता उत्पन्न करने वाली एवं विषमिश्रित मदिरा से भरे सैकड़ों घड़े सेना शिविर में प्रदान करें। उनका विश्वास पाने के लिए पहले उन्हें विषरहित मदिरा पिलाए और बाद में विष मिश्रित मदिरापान कराकर मार डाले। कौटिल्य अर्थशास्त्र में ही चाणक्य ने राजाओं को सावधान करते हुए कहा है कि जब भी राजा अपनी महारानी से मिलना चाहें तब वह विश्वस्त वृद्धा परिचारिका के साथ ही अन्तःपुर में जायें। अकेले कभी न जाये। जैसे पटरानी के घर में छिपे हुए वीरसेन ने अपने भ्राता राजा भद्रसेन को मार डाला था, अपनी माता की शय्या के नीचे छिपकर बैठे राजपुत्र ने राज कारुश की हत्या कर दी थी, धान के लावा में मधु के बहाने विष मिलाकर रानी ने ही काशीराज को मार डाला था। इसी प्रकार विष में बुझे नूपुर द्वारा वैरन्त्य, करधनी की मणि से सौवीर, विषैले दर्पण के स्पर्श से जालूख एवं अपने जूड़े में अस्त्र छिपाकर रानी द्वारा राजा विधुरथ मारा गया था।[८] अतः इन बातों को ध्यान में रखकर राजा एकाकी कभी भी इन स्थानों में न जाये। इसी प्रकार गुप्तचरों का वध करने के लिए भी ऐसे ही प्रयोग किये जाते थे।[९] चाणक्य कहते हैं - नट-नर्तक आदि पुरुषों को धन का लालच देकर राजा अपने वश में कर लें तब अनेक भाषायें बोलने वाली तथा उनके प्रकार के वेष बनाने वाली उनकी स्त्रियों को शत्रु के गुप्तचरों का वध करने अथवा उनको विषय-वासनाओं में फँसाने के लिए नियुक्त कर दें।[१०]

चाणक्य और चन्द्रगुप्त के जीवन-चरित्र तथा चाणक्य के राजनैतिक कौशल को प्रकट करने वाला संस्कृत का सुप्रसिद्ध नाटक है मुद्रराक्षस। इस नाटक के द्वितीय अध्याय में चाणक्य द्वारा चतुरतापूर्वक चन्द्रगुप्त को मारने के लिए शत्रु के द्वारा भेजी गई विषकन्या का प्रयोग पर्वतक के ऊपर करने का रोचक वर्णन है। चाणक्य अपने राज्य में इस प्रकार का प्रचार करा देते हैं कि पर्वतक की हत्या में उनकी कोई रुचि नहीं है और बड़े ही गुप्त रूप से विषकन्या का प्रयोग करके उसका वध करा देते हैं। तब राक्षस बड़ी दर्द भरी अभिव्यक्ति करता है- "मैंने चन्द्रगुप्त के वध के लिए जो विषमयी कन्या भेजी थी उससे

दुर्भाग्य पूर्वक पर्वतक मारा गया। मैंने शस्त्र और विष का प्रयोग करने के लिए जिन गुप्तचरों की नियुक्ति की थी, वे सारे गुप्तचर उन्हीं शस्त्रों से और विष से मारे गये।[11] जिस प्रकार चाणक्य ने विषकन्या के द्वारा पर्वतक का वध किया था, उसी प्रकार दुर्गादास नाटक में बताया गया है कि औरंगजेब ने जयसिंह के पुत्र को विषैली पोषाक पहनाकर ही मार डाला। राजपूतों के इतिहास में भी कुछ ऐसी रोमांचकारी घटनाऐं हुईं जिन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है। अप्रतिम रूप लावण्य की स्वामिनी गानोर की रानी जब एक युद्ध में पराजित होने लगी तो शत्रु का दूत सेनापति खान का विवाह का प्रस्ताव लेकर पहुँचा। दरअसल, सेनापति रानी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया था। रानी ने समय की नाजुकता को पहचान सेनापति के प्रस्ताव को स्वीकार कर दो घंटे का समय मांगा और सेनापति के पास आभूषण-वस्त्रादि भेजे। उन्हें पहनकर प्रसन्नता में झूमता हुआ सेनापति रानी के पास पहुँचा। लेकिन जहाँ एक ओर वह रानी के सौन्दर्य को निहार रहा था वहीं दूसरी ओर उसका सम्पूर्ण शरीर भीषण गर्मी में झुलस रहा था। उसकी इस बेचैनी को देखकर रानी कहती है- "पंखा करने, जल छिड़कने और दूसरे सैकड़ों उपाय करने से भी कुछ न होगा। सेनापति अब तेरा अंतिम समय आ गया है। रानी के मौन होते ही सेनापति की दशा और भयानक हो उठी क्योंकि जिन वस्त्रों व आभूषणों को पहनकर वह महल में आया था उनमें विष का प्रयोग इस प्रकार किया गया था कि उनके पहनने के कुछ देर बाद शरीर से एक साथ आग प्रज्जवलित हो उठी और वह अचेत होकर गिर पड़ा। जिस समय उसके प्राण निकल रहे थे रानी तेजी से अपने महल की छत पर चढ़ गई और बहती हुई नदी में छलांग लगाकर अपने प्राण दे दिए।

मेवाड़ के इतिहास में ही कृष्णाकुमारी का प्रसंग इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उदयपुर के सिसोदिया वंश के राजा की पुत्री कृष्णा अपने सौन्दर्य के कारण सबके आकर्षण का केन्द्र थी। उसके विवाह को लेकर मेवाड़ के राजा जगत सिंह और मारवाड़ के एक राजा मानसिंह के मध्य भयानक वैमनस्य उत्पन्न हो गया। राणा स्वयं को विकट परिस्थिति में जानकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गए और उन्होंने एक भयानक निर्णय लिया, अपनी पुत्री को विष देने का, जिससे की न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। राजकुमारी कृष्णा को विष देने का कार्य एक दासी को सौंपा गया। दासी ने राजकुमारी को विष के दो प्याले दिए जिन्हें उसने बिना किसी हिचकिचाहट के गले के नीचे उतार दिया किन्तु उसकी जीवनलीला समाप्त नहीं हुई। तब तीसरा विष का प्याला अफीम के साथ कुसुम्बे को मिलाकर दिया गया। जानते हुए भी कि यह मेरे जीवन का पूर्ण विराम सिद्ध होगा, राजकुमारी ने प्रसन्नता के साथ उसको पी लिया और जीवन लीला समाप्त कर दी। इस प्रकार अपने देश को बहुत बड़े संकट से बचा लिया। एक स्त्री के द्वारा राजकुमारी को विष देने का यह प्रसंग अत्यन्त हृदयस्पर्शी है।

विश्वविजय की कामना से भारत पर आक्रमण करने वाले सिकंदर के जीवन-चरित्र

में भी इसी प्रकार की एक विषकन्या का प्रसंग उल्लेखनीय है। रानी गुणवती को जब यह लगने लगा कि सिकंदर के कारण उनके साम्राज्य की सुरक्षा संकट में है तो उसने एक विष कन्या का निर्माण किया। जब सिकंदर ने रानी गुणवती के राज्य पर युद्ध करने के लिए शिविर लगाया तो उस विषकन्या को गुप्त रूप से सिकंदर के शिविर में प्रविष्ट करा दिया गया। उस रूपवती को देखकर सिकंदर कामातुर हो उठा और उसे आलिंगनबद्ध करने की चेष्टा कर ही रहा था कि उसके गुरु अरस्तू ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। उसी समय दो दासों को बुलाकर उस युवती का चुंबन लेने का आदेश दिया। चुंबल लेते ही दोनों तड़प-तड़प कर मर गये। सिकंदर गुरु के समक्ष नतमस्तक हो गया और कन्या का सिर कटवाकर जलती आग में फेंकवा दिया।[१२]

इस प्रकार की अनेक घटनाएं इतिहास के विशाल उदर में समाई हुयी हैं जो इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि प्राचीन काल से अब तक नारी जाति का राजनीति में विभिन्न प्रकार से प्रयोग किया जाता रहा है। यह तो सर्वविदित है कि विपरीत लिंग के प्रति स्त्री अथवा पुरुष में स्वाभाविक आकर्षण होता है। मानव की इस दुर्बलता का लाभ राजनीतिज्ञों ने पूर्ण रूप से उठाया है अपने हितों को साधने के लिए और शत्रुओं के हितों को नष्ट करने के लिए नारी के सौन्दर्य का पूरा-पूरा उपयोग किया गया है। हमारे देश के प्राचीन धार्मिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं चिकित्सा-शास्त्रीय ग्रन्थों के अध्ययन से यह प्रमाणित हो जाता है कि कहीं नारी को वास्तव में विषकन्या बनाकर शत्रु-पक्ष के राजा से आलिंगनबद्ध कराकर उसका नाश किया गया, तो कहीं नारी के विषैले मन के द्वारा। और उसकी श्रृंगारिक कराकर उसका नाश किया गया, तो कहीं नारी के विषैले मन के द्वारा। और उसकी श्रृंगारिक चेष्टाओं के द्वारा प्रतिपक्ष को आकृष्ट करके उसको ऐसे वश में कर लिया कि वह अपनी रक्षा और गोपनीयता को विस्मृत कर नष्ट हो गया। कूटनीतिज्ञों ने नारी के शरीर का पूरा-पूरा प्रयोग किया है। मनुष्य को समाप्त करने के लिए विष एक सबसे भयानक साधन है विष के संबंध में आयुर्वेद के ग्रन्थों में विस्तृत चर्चा है। विष के लक्षण, उसका प्रभाव, उसको दूर करने के साधन इत्यादि के विषय में भारतीय विद्वानों ने बहुत लिखा है। ऐसे भयानक पदार्थ को नारी के शरीर में डालकर उससे शत्रु को नष्ट करना एक भयावह राजनीतिक षड्यंत्र है।

वर्तमान युग में भी नारी देह का पूरा-पूरा प्रयोग किया जाता है। नारी में अत्यधिक अनुरक्ति, वेश्यागमन, विषय-वासना आदि से जहां बड़े-बड़े एड्स जैसे रोग फैल रहे हैं, वहां बड़े-बड़े राजाओं का पतन भी इससे होता है। अनेक शासनाध्यक्षों को इस बुराई के कारण अपने सिंहासन त्यागने पड़ते हैं। कुछ ही वर्ष पूर्व ब्रिटेन की क्रीस्टीन कीलर तथा भारत की सुन्दरी पामेला बोर्डस की अनेक राजनीतिज्ञों के साथ शारीरिक संबंधों की चर्चा ने विश्व के राजनैतिक मंच पर सनसनी पैदा कर दी थी। ब्रिटेन के शासक एडवर्ड अष्टम्

द्वारा सिम्पसन नामक महिला के जाल में फँसकर राजसिंहासन को ठुकरा देना इसी प्रकार का एक उदाहरण है। आस्ट्रेलिया की एक महिला गुप्तचर बेंडी हालैण्ड ने विदेशी राजनयिकों नौकरशाहों एवं व्यापारियों से अपने संबंधों को स्वयं स्वीकार किया था। फ्रांस की अद्‌भुत सुंदरी माताहारी को किस प्रकार मोहरा बनाकर राजनैतिक हितों को साधा गया वह तो जगविदित है। भारत की सुरक्षा को गहरा आघात पहँचाने वाले और मुम्बई में विनाशलीला का ताण्डव-नृत्य कराने वाले दाउद इब्राहीम के साथ सिने-जगत् की प्रसिद्ध तारिकाओं के संबंधों ने हलचल मचा दी थी।

युद्धों के समय शत्रु-पक्ष के गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए सुन्दर युवतियों को गुप्तचर बनाकर भेजना और सेना के उच्चाधिकारियों के साथ क्लबों में नाचते हुए मदिरा और सौन्दर्य के नशे में उनको डुबोकर देश के सुरक्षा-विषयक दस्तावेजों को प्राप्त करना एक परम्परा-सी हो गयी है।

भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी के जीवन को समाप्त करने के लिए तमिल उग्रवादी संगठन लिट्टे ने जिस "धनु" नामक महिला को मानव बम के रूप में प्रयुक्त किया था क्या वह किसी विषकन्या से कम है ? पंजाब के मुख्यमंत्री बेअंत सिंह को मारने के लिए भी इसी प्रकार के मानव बम की व्यवस्था की गयी थी। इस प्रकार राजनीति में कुछ भी बुरा नहीं है, विजय पाने के लिए कोई भी उपाय किया जा सकता है, इस सिद्धान्त पर विश्वास रखने वाले कूटनीतिज्ञों ने प्राचीन काल से अब तक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विष, विषकन्या, और नारी देह का भरपूर प्रयोग किया है और आगे इसी प्रकार से होता रहेगा।

पाद टिप्पणी

१. बृहत्-जातकालंकार, भुवन दीप अ० १९

२. विषैर्निहन्युर्निपुणं नृपतिं दुष्टचेतसः।
स्त्रियो वा विविधान् योगान् कदाचित्सुभगेच्छया।।
विषकन्योपायोदा क्षणाज्जसादसून्नरः।
तस्मादेधेन सततं विषाद्रक्ष्यो नराधिपः।। सुश्रुतसंहिता, कल्पस्थानम् १,११५,६११

३. न च कन्याममविदितां संस्पृशेदपरीक्षिताम्।
विविधान्कुर्वते योगान् कुशलाः खलु मानवाः।
आजन्म विष संयोगात्कन्या विषमयी कृता।
स्पर्शोच्छ्वासादिभिर्हन्ति तस्यास्त्वेत्परीक्षणम्।। अष्टांग-संग्रह, सूत्रस्थानम्, अ०८

४. तन्मस्तकस्य सस्पर्शान्म्लायेते पुष्पपल्लवौ।
शय्यायां मत्कुणैर्वस्त्रे यूकाभिः स्नानवारिणा।। अष्टांग-संग्रह, सूत्रस्थानम्, अ० ८

५. रिपुयुक्तेभ्यो नृभ्यः स्त्रीभ्योऽथवा भयं नृपतेः।
आहार विहार गतं तस्मात्प्रेष्यान् परीक्षेत।।
चरक संहिता, चिकित्सास्थानम्, अ० २३

६. श्रीमद्भागवतमहापुराणम्, द्वितीय खण्ड, दशम स्कन्ध (पूवार्ध) ६,११५,६११

७. शीतं वासं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः।
निश्चेष्टः पाण्डवो राजन्सुष्वाप मृतकल्पवत्।। महाभारत, आदि पर्व, ११९/३३

८. स्कन्धावारे वास्य शौण्डिकव्यञ्जनः पुत्रमभित्यक्तं स्थापयित्वा अवस्कंदकाले रसेन प्रवासयित्वा नैषेचनिकम् इति मदनरसयुक्तान् मद्यकुम्भामतशः प्रयच्छेत्। शुद्धं वा मद्यं माद्यं वा मद्यं दद्यादेकमहेः, उत्तरं रससिद्धं प्रयच्छेत्। शंद्धं वा मद्यं दण्डमुख्येभ्यः प्रदाय मदकाले रससिद्धं प्रयच्छेत्।

कौटिलीयं-अर्थशास्त्रम्, आबलीयस, १२,४,१११६६,१६७,११

९. अन्तगृर्हगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत्। न कांचिदभिगच्छेत्। देवगृहे लीनो हि भ्रातः भद्रसेनं जघान। मातुः शय्यान्तर्गतश्च पुत्रः कारुशम्। लाजान्मधुनेति विषेण पर्यस्य देवी काशिराजम्। विषदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं मेखलामणिना सौवीरं जालूखमादर्शेन वेण्या गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विदूरथं जघान। तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत्।

१०. संज्ञाभाषान्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु।
चारधातप्रमादार्थ प्रयोज्या बन्धुवाहनाः।। कौटिल्य अर्थशास्त्र, अ० २०

११. कन्या तस्य बधाय या विषमयी गूढं प्रयुक्ता मया देवात्पर्वतकस्तया स निहतो यस्तस्य राज्यार्धहृत्। ये शस्त्रेषु रसेषु च प्रणिहितास्तैरेव ते घातिता...............।
मुद्राराक्षस अ० २

१२. गेस्टा रोमानोरम् ११वीं कहानी।

आचार्य सायण और उनकी वेदभाष्य शैली

-डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री

माधव, स्कन्दस्वामी, उव्वट और महीधर आदि भाष्यकारों के भाष्य के अतिरिक्त प्राचीन भाष्यों में आचार्य सायण का भाष्य उपलब्ध होता है। इसकी उपयोगिता एवं महत्व पर A.A. Macdonell ने अपने प्रसिद्ध **'A History of Skt. Literature'** नामक ग्रन्थ में लिखा है- **"The interpretations of these hymns was therefore at the out set farred by almost insurmountable difficulties. Fortunately, however, a voluminious commentry on the Rigveda which explains or para-phrases every would of its hymns, was found to existance. This was the work of great Vedic-Scholar Sayana, who lived in the latter half of the fourteenth century A.D. at vijayanagara,........."**

चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सायण आचार्य द्वारा किया गया यह भाष्य पाण्डित्य के एक महान् प्रयत्न का द्योतक है। यद्यपि विस्तार में जाने पर इसमें कई असंगतियां दीखती हैं तो भी सामान्य रूप में यह संगत है। यह एक सुव्यवस्थित योजना के आधार पर सरल तरीके से एक ऐसी शैली में रचा गया है जो स्पष्ट होने के साथ-साथ संक्षिप्त भी है। समूह रूप से सायणाचार्य सदा कर्मकाण्डविधि में ही व्यस्त रहते हैं और निरन्तर वेद के आशय को बलपूर्वक कर्मकाण्ड के संकुचित सांचे में ढालकर वैसा ही रूप देने का प्रयत्न करते हैं। परिणामतः सायणाचार्य द्वारा वैदिक विचारों एवं भावनाओं का एक ऐसा प्रतिनिधित्व हुआ है जो इतना संकुचित एवं दारिद्र्योपहत है कि यदि उसे स्वीकार कर लिया जाय तो वह वेद के सम्बन्ध में प्राचीन आदरभाव को, उसकी प्राथमिकता को, तथा उसकी दिव्य ख्याति को कुछ अबुद्धिगम्य कर देता है।

इस भाष्य में कर्मकाण्ड के अतिरिक्त अन्य तत्व (पहलु) अपेक्षाकृत गौण रूप लिये हुये हैं। सम्भवतः सायणाचार्य के भाष्य करने के समय प्राचीनकाल से चले आ रहे अनेकों तत्व और परम्पराएं विद्यमान थीं, इनमें से कुछ को उन्होंने नियमित स्वीकृति देकर कायम रखा, और कुछ को अस्वीकार कर दिया।

१. **प्रथम तत्व वेदों की प्राचीन, आध्यात्मिक, दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं का अवशेष है।** उपनिषदें इसकी मुख्य सहायक हैं। सायण भी कुछ अंश तक इन्हें स्वीकार करते हैं, परन्तु मात्रा की दृष्टि से अपेक्षाकृत ये इतनी कम हैं कि इसका स्थान सायणभाष्य में अपवादात्मक ही प्रतीत होता है। कहीं कहीं प्रसंगवश सायणाचार्य आध्यात्मिक अर्थो का चलते-चलते स्पर्श कर जाते हैं या उन्हें स्वीकृति दे देते हैं। जैसे 'वृत्र' की उस प्राचीन व्याख्या का सायणाचार्य ने उल्लेख किया है (पर उसे स्वीकार करने के लिए नहीं) जिसमें

'वृत्र' वह आच्छादक तत्व है जो मनुष्य के पास पहुँचने से उसकी कामना एवं अभीप्सा की वस्तुओं को रोके रखता है। इस व्याख्या का उल्लेख करते हुए भी प्रधान रूप से सायणाचार्य के लिए तो वृत्र या तो केवल काम शत्रु है, या भौतिक मेघ रूपी असुर है, जो जलों को रोके रखता है, और जिसका वर्षा करने के लिए इन्द्र को भेदन करना पड़ता है।

२. दूसरा तत्व है **गाथात्मक**। देवताओं के केवल मात्र बाह्य स्वरूप को स्पर्श करती हुई गाथाएं दी गई हैं। परन्तु उनके उस अन्तर्निहित आशय को, जो कि समस्त गाथाओं के औचित्य को सिद्ध करने वाला है, और जिसका आविर्भाव ब्राहण आदि ग्रन्थों में सम्भवत: विषय को रोचक तथा सरल बनाने के लिये किया गया है, छोड़ दिया गया है। और यों जिसके लिये प्रयत्न था उस मूल आशय को छोड़कर प्रयत्न को ही आशय के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

३. **आख्यानात्मक अथवा ऐतिहासिक**। इसमें प्राचीन राजाओं अथवा ऋषियों की कहानियां हैं। जो वेद के अस्पष्ट वर्णनों का स्पष्टीकरण करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में दी गई हैं या उत्तरकालीन परम्परा के द्वारा आई हैं। विद्वानों के अनुसार यह तत्व सातवीं आठवीं शताब्दी ई०पू० से भी पहले से चला आता है। इसका उस समय (७वीं, ८वीं ई० पू०) इतना प्राधान्य रहा कि ऐतिहासिक अर्थ करने वालों का एक स्वतंत्र सम्प्रदाय ही बन गया। इसकी सम्पुष्टि यास्काचार्य प्रणीत निरुक्त में अनेक बार आये "इति ऐतिहासिका:", तथा स्कन्दस्वामी द्वारा किए गये ऋग्वेद १-१-६ के भाष्य में आये "एवं ह्यैतिहासिका: स्मरन्ति" इत्यादि वाक्यांशों से होती है। ऐतिहासिक अर्थों का खण्डन यास्काचार्य जैसे प्रामाणिक पण्डित ने प्राय: सभी स्थलों पर किया है। सायणाचार्य का बर्ताव भी इस तत्व के साथ कुछ हिचकिचाहट से पूर्ण है। बहुधा वे उन्हें मन्त्रों की उचित व्याख्या के रूप में ले लेते हैं। कभी-कभी वे विकल्प के रूप में एक दूसरा अर्थ भी देते हैं, जिसके साथ उनकी अपनी अधिक बौद्धिक सहानुभूति प्रतीत होती है। परन्तु उन दोनों में से किसे प्रामाणिक माना जाये इस निर्णय में वे दोलायमान हैं। पूर्वमीमांसाकार जैमिनि वेद के शब्दों को नित्य मानते हैं, और इसी प्रमाण के आधार पर सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेद भाष्य के उपोद्घात प्रकरण में स्पष्ट रूप से ऐतिहासिकता का खण्डन किया है। वेदमन्त्रों में प्रतीत होने वाले नामों को वे व्यक्तिविशेष का वाचक न मानकर सामान्य वाचक मानते हैं। इस प्रसंग में सायणाचार्य पूर्वोत्तर पक्ष पूर्वक जैमिनि को उद्धृत करते हैं- "बबर: प्रावाहणिरकामयत" इत्यादीनां बबरादीनामर्थानां दर्शनात् तुत: पूर्वमसत्त्वात् पौरुषेयो वेद इति। तस्योत्तरमेकं सूत्रितम् परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम्' (जै०सू० १-१-३१) इति। तस्यायमर्थ:। यत्काठकादि समाख्यानं तत्प्रवचन निमित्तम्। यत्तु परं बबराद्यनित्यदर्शनं तच्छब्द सामान्यमात्रम्। न तु तत्र अनित्यो बबराख्य: कश्चित्पुरुषो विवक्षित:। किन्तु बबर इति शब्दानुकृति:। तथा सति बबरेति शब्दं कुर्वन् वायुरभिधीयते।"

इस उद्धरण को अपने उपोद्धात में लिखकर सायणाचार्य ने यह दर्शाया है कि वेदों में अनित्य इतिहास नहीं है। परन्तु अपने भाष्य में उन्होंने यत्र-तत्र अनित्य ऐतिहासिक अर्थ भी कर दिये हैं। इस प्रकार अपने ही बनाए हुए सिद्धान्त पर सायणाचार्य सर्वत्र स्थित न रह सके।

४. इन सब तत्वों के होते हुए भी, जो तत्व व्यापक रूप से सारे भाष्य पर छाया हुआ है वह है कर्मकाण्ड का विचार। सम्पूर्ण भाष्य का यही स्थिर स्वर है, जिसमें अन्य सब पहलु अपने आपको खो देते हैं। आधुनिक युग के प्रसिद्ध विचारक श्री अरविन्द के शब्दों में हम कह सकते हैं- "वेद के सब सम्भव अर्थों में से इस निम्नतर अर्थ के साथ ही वेद को अन्तिम तौर पर और प्रामाणिकतया बांध देना, यह है जो कि सायण के भाष्य का सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हुआ। कर्मकाण्ड परक व्याख्या की प्रधानता ने पहले ही भारतवर्ष को अपने सर्वश्रेष्ठ धर्मशास्त्र (वेद) के सजीव उपभोग से और उपनिषदों के समस्त आशय को बताने वाले सच्चे मूल सूत्र से वञ्चित कर रखा था। सायण के भाष्य ने पुरानी मिथ्या ध ारणाओं पर प्रामाणिकता की मोहर लगा दी.......... और इसके दिये हुए निर्देश उस समय जब कि एक दूसरी सभ्यता ने वेदों को ढूंढ़कर निकाला और इसका अध्ययन प्रारम्भ किया, युरोपियन विद्वानों के मन में नई-नई गलतियों के कारण बने।"

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार-२४९ ४०४ (उ०प्र०)

गुरु जम्भेश्वर महाराज का आचार-दर्शन

डा० किशनाराम विश्नोई
गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार

जम्भावाणी गुरु जम्भेश्वर महाराज के मुख से उच्चरित 'सबदों' का सामूहिक नाम है। जम्भवाणी में सिद्धान्त से ज्यादा आदर्श को अपनाया गया है तथा चिंतन की अपेक्षा व्यावहारिकता को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। इसलिए चिंतन और सिद्धान्त पक्ष की अपेक्षा आदर्श और व्यवहार को जम्भवाणी का मुख्य आधार माना है। आदर्श और व्यवहार को जम्भवाणी का मुख्य आधार माना है। आदर्श और व्यवहार का समन्वय करके एक ऐसी जीवन पद्धति का विकास किया गया है जिसमें मनुष्य अपना आन्तरिक विकास करते हुए अपना स्वरूप ज्ञान प्राप्ति में संलग्न कर सके। स्वस्थ जीवन प्रक्रिया के लिए जीवन सत्य का ज्ञान और उसे प्राप्त करने का सफल प्रयास आवश्यक है। सत्य को वे जीवन के विविध पक्षों में अपनाने की प्रेरणा देते हैं। दूसरे शब्दों में सत्य को वे अनावृत रूप से देखना और दिखाना चाहते हैं। इसलिए धर्म के नाम पर फैले सभी प्रकार के आडम्बरों और रूढ़ियों का जमकर विरोध किया है। आडम्बर और लोक-प्रदर्शन सत्य के वास्तविक स्वरूप को आवृत कर देते हैं। इसलिए गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी वाणी में बाह्य आडम्बर का विरोध किया है :-

> "थे कांन चिरावौ चिरघट पहरौ, पाखण्ड पोह न कोई
> जटा वधारौ जीव सिंधारौ, आयसां ! इहा पाखंड जोग न होई।"१

गुरु जम्भेश्वर जी ने कान चिराना, कथा पहनना, सिर पर जटा बढ़ाना एवं जीव हत्या करने वाले लोगों पर गहरा प्रहार किया है। ऐसे कार्य करने वाले योगी न होकर मात्र पाखंडी है। अधिकांश लोग ऐसे बाह्य प्रदर्शनों एवं लोक प्रदर्शनों में उलझ कर रह जाते हैं इनको आन्तरिक सूक्ष्म तत्व का कोई ज्ञान नहीं है भीतरी सत्य इनका विलुप्त हो जाता है अर्थात् भीतरी सत्य को पहचानने की क्षमता इनमें नहीं है।

यह आन्तरिक सत्य क्या है ? जिसको मनुष्य विस्मृत कर देता है। यह वह परमसत्य है जिसमें जीव का ब्रह्म के साथ तादात्म्य निर्धारित किया जाता है किन्तु माया के बंधन में पड़कर अपना वास्तविक स्वरूप भूल गया है। विषयों का सांसारिक आकर्षण मनुष्य में इतना प्रबल हो गया है कि इनसे बच पाना अत्यन्त दुष्कर है। सामान्यतः मनुष्य सांसारिक विषय वासनाओं में अपने को संलिप्त करके उनके पीछे दौड़ता रहता है। किन्तु सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे-जैसे विषय-वासनाओं का आकर्षण बढ़ता जाता है तब मनुष्य अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाता है।

1. **शब्दवाणी जन्भसागर, पृ0 109**

गुरु जम्भेश्वरजी ने संशयग्रस्त और भ्रम में पड़े हुए लोगों को चेतावनी देते हुए कहा है कि-

"भरमी भूला बाद बिवाद।
अचार बिचार न जाणत स्वद।।"१

दिग्भ्रान्त मनुष्य जीवन की वास्तविकताओं से अनभिज्ञ रह जाता है। वास्तविक ज्ञान से अपरिचित रहने पर मनुष्य पतन की ओर अग्रसर हो जाता है, पतनशील मनुष्य इस संसार-सागर में अनेक प्रकार के कष्ट भोगता है इनमें सबसे प्रमुख है- काम, निंदा, स्तुति, सम्मान की आकांक्षा, जाति, कुल, वर्ग, रूप, यौवन इत्यादि का मनुष्य को अभिमान रहता है। ये सभी माया से उत्पन्न विकृतियां हैं। ये सभी मिलकर मनुष्य का वास्तविक सत्य ज्ञान नष्ट कर देते हैं। ऐसे लोग जीवन की वास्तविकता से अनभिज्ञ रह जाते हैं। माया के बंधन में पड़े हुए जीवन निंदा, स्तुति, मान-अभिमान में असत्य होकर जीव के ज्ञान को विनष्ट कर दिया है इस माया ने अनेक प्रकार से संसार को भ्रम में डाल दिया और सत्य को छिपा लिया है। गुरु जम्भेश्वर की भांति कबीर भी माया-मोह से ग्रस्त जीव को चेतावनी देते हुए कहते हैं:-

"निंदा अस्तुति, मान-अभिमाना, इन झूठे जीव हत्या विग्याना।
बहुं विधि करि संसार भुलावा, झूठे दोजगि सांच लुकावा।
माया मोह धन जोबना, इनि बँधे सब कोई।
झूठे झूठे बिचाचिया, अलख लखे नहीं कोई।"२

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में मोह और ममता युक्त जीव को समझाते हुए गुरु नानक कहते हैं कि हे जीव तुम-

"मूड़े रामु जपहु गुण सारि।
हउमै ममता मोहणी सभ मुठी अहंकारि।।

मुई परीति पिआरु गइआ मुआ वैरू विरोधु।
धंधा थका हउ मुई ममता माइआ क्रोध।।३

अपने व्यक्तित्व में गुणों का विकास कर और अवगुणों को समाप्त करके ईश्वर का नाम-स्मरण कर। यह सम्पूर्ण संसार मोह, ममता और अहंकार से युक्त है इन विकृत तृष्णाओं को त्यागकर मन पर संयम रख, इन्द्रियों को वश में कर काम, क्रोध, लोभ, मोह और माया से दूर रहकर अपने चित्त को स्थिर कर, स्थिर चित्त ही शुद्ध और निर्मल है

1. शब्दवाणी जम्भसागर, पृ0 86
2. कबीर ग्रन्थावली, सम्पादक, पृ0 91
3. श्री गुरुग्रन्थ साहिब, अनु. डॉ0 मनमोहन सहगल, पृ0 90 सिरीरागु मंहला 1

जिसमें जीवन की सत्यानुभूति निहित है। इसलिए इन मनोविकार ग्रस्त विकृतियों से अलग होकर चित्त को स्थिर कर ले। क्योंकि चित्त का शुद्धिकरण जीवन की सत्यानुरूप प्रवृत्तियों को ग्रहण कर लेता है इसलिए इस क्षणभंगुर जीवन में मनुष्य को रूप, रंग, वर्ग, जाति, मत, सम्प्रदाय, कुल, मान-सम्मान की प्रतिष्ठा के अभिमान से बचाना चाहिये क्योंकि इसमें किसी भी वस्तु का स्थायित्व नहीं है। समयानुरूप सभी लोगों को इस जीवन से अलग होना निश्चित है। इस मायावी जगत् में कोई भी चिरस्थायित्व नहीं रहेगा। इसी प्रसंग में गुरु जम्भेश्वर महाराज कहते हैं कि-

"ओ३म् कवण न हूवां क्रवण न होयसी
किण न सहग दुःख भारु
कवण न गइया कवण न जासी
कवण रह्या संसारु

अनेक अनेक चलंता दीठा
कलि का मागस कौन विचारुं।।

जो चित होता सो चित नहीं।
भल खोटा संसारु।
किसकी माई किसका माई।
किसका पख पखारुं।
भूली दुनिया मर मर जावै।
न चीन्हो करतारूं।।"१

गुरु जम्भेश्वर जी की मान्यतानुसार इस भौतिक जगत में कोई भी चिरस्थायी और शाश्वत नहीं रहेगा, यहाँ पर कई-कई ऋषि-महर्षि चले गये और जो भविष्य में होंगे वे भी चले जायेंगे, किन्तु कलियुग के मनुष्य की बात ही क्या है ? वह तो किसी भी समय इस संसार से चला जायेगा, यहां पर माता-पिता, भाई-बहन, परिवार आदि भी चिरस्थायी नहीं रहेंगे, भ्रमित दुनिया आवागमन के चक्कर में फंसी हुई है तथा जीवन-मृत्यु के चक्कर में बंधा हुआ मनुष्य ईश्वर को पहचान नहीं सकता। यह जीवन गहिला, बावरा और दीवाना होकर अमृतादि को तजकर विषपान में लगा रहता है विषय-वासना व आसक्ति आदि में दतचित रहता है-

जीव गहिला जीव बांवला, जीव दिवाना होइ।
दादू अमृत छांड़ि करि-विष पीवै सब कोई।।२

---

1. **शब्दवाणी जन्भसागर, पृ0 94-95**
2. **दादूवाणी, पृ0 243/125**

भौतिक धन-सम्पत्ति के मद में डूबे हुए लोगों को समझाते हुए गुरु जम्भेश्वरजी कहते हैं यह शरीर रूपी पींजरा अत्यन्त पुराना पड़ गया है इस नाशवान शरीर को पाकर अभिमान नहीं करना-

"काचै पिडे किसी बडाई
भोलै भूल अयांणो।"१

चाहिये। मृत्यु के आगे किसी का भी वश नहीं चलता है। इस जगत् से देव और दानवों को जाना पड़ा था।

"म्हां देखंता दव दाणु
सुर नर खीना।
बीच गया बेराणो।।
कुंभकरण महरावण होता।
अबली जोध अयाणों।।"२

कुंभकरण और महिरावण इत्यादि पराक्रमी यौद्धा भी इस संसार से चले गये, सामान्य मनुष्य की तो बात ही क्या है।

कोट लंका गढ विषमा होता।
कांयदा बस गया रावण राणो।।
नौग्रह रावण पाए बन्ध्या।
तिस बीह सुर नर शंकर भयाणो।।
ले जम कालें अति बुधवंतो।
सीता काज लुंभाणो।।
भरमी बादी अति अहंकारी।
करता गरब गुमानो।।
तेऊ तो जम काले खीणां।
थीर न लाधो थाणो।।३

लंकापति रावण अद्वितीय, बलवान् और अनेक विद्याओं में पारंगत यौद्धा था काल के आगे उसका भी वश नहीं चला था। रावण वाद-विवादी अत्यधिक अहंकारी और लोभी व्यक्ति था मृत्युरूपी काल ने उसको भी विनष्ट कर दिया। इस प्रकार गुरु जम्भेश्वरजी ऐतिहासिक चरित्रों द्वारा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि यह संसार नाशवान् और क्षणभंगुर

---

1. शब्दवाणी जन्भसागर, पृ0 187
2. शब्दवाणी जन्भसागर, पृ0 188
3. शब्दवाणी जन्भसागर, पृ0 188

है इसमें किसी का भी अस्तित्व अखण्ड नहीं रहेगी। इसलिए विषय भोगों में और विकृत प्रवृत्तियों से इसे बचाकर रखना है तभी मानव जीवन की सच्ची सार्थकता है। इस मानव जीवन को व्यर्थ में नष्ट नहीं करना है। इसकी उपयोगिता परमतत्व के साक्षात्कार कने में है। जो व्यक्ति विष्णु का आश्रय ग्रहण करता है उसे विषयों का आकर्षण अपने बंधन में नहीं बांधता है।

गुरु जम्भेश्वरजी इन विषय-भोगों से पृथक रहने के लिए एक सहज साधना पर चलने का सदुपदेश देते हैं। अत: सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सहज साधना क्या है ? इसका विषय क्या है ? साधना करने में सबसे बड़ी बाधा कौन सी है ? इस बाधा पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है ? "सत्य की शोध में निरन्तर दत्तचित्त रहना या सत्यसिद्धि की अवस्था में तल्लीन रहना "साधना" है सत्य से तथ्य की खोज करना, जानकारी प्राप्त करना और अंततोगत्वा उसे प्राप्त करना साधना का विषय है। अत: साध्य की प्राप्ति तक के किये गये सारे प्रयत्न, लक्ष्य को प्राप्त करने तक किये गये सारें प्रयास और अपने गन्तव्य को प्राप्त करने तक की गयी सारी कोशिशें साधना के ही अन्तर्गत आती हैं।" १ इस प्रकार सरल शब्दों में यह कह सकते हैं कि मनुष्य मात्र के सम्पूर्ण प्रयास व प्रयत्न जो उसे अपने निर्दिष्ट गंतव्य की प्राप्ति करने में सहायक होते हैं, वे साधना के अन्तर्गत आते हैं।

प्राणिमात्र की स्वरुचि भिन्न-भिन्न होती है इसलिए उनकी साधनाएं भी अनेक प्रकार की होती हैं। फिर भी ये साधनाएं अपने आप में पूर्ण होती हैं। अतएव किसी एक साधना को या साधना के प्रकार को ही सर्वथा सर्वोत्तम या सर्वश्रेष्ठ मान बैठना, साधना की व्यापकता की अवहेलना करना है इसी के परिणाम स्वरूप समाज में विभिन्न सम्प्रदाय आपसी संघर्ष और वैमनस्य में उलझकर समाज और राष्ट्र को नुकसान पहुँचाते हैं। तथा परस्पर समाज में विघटन की भावना उत्पन्न होती है।

गुरु जम्भेश्वर जी सहज साधना पर विजय प्राप्त करने से पहले मन को सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। परमार्थ साधना में मन पर संयम रखना अत्यावश्यक है, यह मन स्वभावत: चंचल और विषयों के प्रति आकर्षित होना इसका स्वभाव है। यह मन ही इन्द्रियों विषयों की ओर प्रेरित करता है अत: सहज साधना की प्राप्ति से पहले मन को नियंत्रित करना अनिवार्य है। यह मन ही बंधन और मुक्ति का कारण है। "कबीर ने भी आत्मा की मुक्ति के लिए मन पर नियंत्रण आवश्यक माना है।" २ मन पर पूर्ण

1. **संतकवि दादू, डॉ0 कृष्णवल्लभ दवे, पृ0 113, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र0सं.1983**
2. **कबीर की प्रगतिशील चेतना, डॉ0 जगदीश्वर प्रसाद पृ0 116**

नियंत्रण प्राप्त कर लेने वालों को सांसारिक उद्वेग अपनी ओर आकृष्ट नहीं करते। इसलिए गुरु जम्भेश्वरजी ने मन पर नियंत्रण करने वालों को पृथ्वी पर सबसे ज्यादा शूरवीर राजा माना है।

"है कोई आछै मही मंडल शूरा।
मन राय सूं झूझ रचायले।।१
काया पत नगरी मन पत राजा।
पञ्च आत्मा परवारूं।।२

इन शरीर रूपी नगरी का मनरूपी रावण राजा है इस मनरूपी राजा से युद्ध करके फिर विजय प्राप्त कर लेता है। वह इस पृथ्वी का सबसे श्रेष्ठ शूरवीर योद्धा हो सकता है। मन को नियंत्रित करने पर इन्द्रियां स्वत: ही नियंत्रित हो जाती हैं। सहज साधना का यह प्राथमिक विषय है। सहज साधना का प्राथमिक सोपान प्राप्त हो जाने के उपरान्त द्वितीय सोपान में द्विविधा वृत्ति को त्यागने का उपदेश गुरु जम्भेश्वरजी ने अपनी वाणी में उद्घाटन किया है-

"ओ३म् दोय मन दोय दिल सिंवि न कंथा।
दोय मन दोय दिल पुली न पंथा।।
दोय मन दोय दिल कहीं न कथा।
दोय मन दोय दिल सुणी न कथा।
दोय मन दोय पंथ दुहेला।
दोय मन दोय दिल गुरु न चेला।।
दोय मन दोय दिल बंधी न बेला।
दोय मन दोय दिल रब्ब दुहेला।।
दोय मन दोय दिल सूई न धागा।
दोय मन दोय दिल भिड़े न भागा।।
दोय मन दोय दिल भेव न भेऊ।
दोय मन दोय दिल टेव न टेऊँ।
दोय मन दोय दिल केल न केला।
दोय मंन दोय दिल सुरग न मेला।।"३

द्विविधा की स्थिति में परस्पर किसी सिद्धान्त, आदर्श या व्यवहार या चिंतन का

1. शब्दवाणी जन्भसावार, पृ० 239
2. शब्दवाणी जन्भसागर, पृ० 239
3. शब्दवाणी जन्भसागर, पृ० 111-113

आपसी तारतम्य या सामंजस्य नहीं बैठता है। द्विविधा वृत्ति में मन पर कठोर संयम या संकल्प नहीं रखा जा सकता। इन्द्रियों को नियंत्रित नहीं किया जाता, आचरण को सहजता को परिवर्तन नहीं किया जा सकता, जब तक आचरण सहजता में परिवर्तन नहीं होगा तो इन्द्रियां नियंत्रित नहीं हो सकती। आचरण में ही सहजता को अपना कर इन्द्रियों को स्वस्थ दिशाओं में अग्रसर किया जा सकता है। किसी भी असाधारणता या असामान्यता को त्यागना ही सहजता है। कबीर की दृष्टि में जो इन्द्रियों को सहजता में ही नियंत्रित कर लेता है। वही सहज को पहचानता है।

"सहज सहज सबकौ कहै सहज न चीन्हे कोय।
पांचू रखै परसती, सहज कही नै सोच।"१

सहजता में ही शील, संयम और संतोष को प्राप्त कर लेना व्यक्ति की उच्चादर्शता है।

सहजै सहजै सब गए, सुत बित कामिणि काम।
एकमेव हे मिलि रह्या, दासि कबीरा राम।२

गुरु जम्भेश्वरजी ने आचार पक्ष में कर्म का महत्वपूर्ण माना है, केवल सिद्धान्त की बातें करना नहीं। सिद्धान्त का व्यावहारिक जगत में तभी उपयोग है जब उसको व्यावहारिक रूप में परिवर्तन किया जाय। जो बातें मुंह से कहे उसको करके दिखाना तभी सिद्धान्त का महत्व है। जिनकी कथनी और करनी में तादात्म्य नहीं है। वे कभी भी व्यावहारिक नहीं हो सकते।

गुरु जम्भेश्वर अपने कर्ममय सिद्धान्त में कथनी और करणी के विभेद को स्वीकार नहीं करते हैं। जो कुछ भी कहा जाय उसे किया जाय।३ इस प्रकार व्यक्ति मात्र के लिए यह आवश्यक है कि वह जो कुछ कहे उसे व्यवहार या आचरण में भी लाये। क्योंकि केवल कहने मात्र से किसी काम में सिद्धि या सफलता कदापि नहीं मिल सकती और न ही किसी वस्तु की प्राप्ति होता है। कर्म के आगे पुस्तकीम ज्ञान की कोई महत्ता नहीं है। मनुष्य को प्रत्येक क्षण कर्म करते रहना चाहिये। अपनी आजीविका के लिए निरन्तर कार्य करते हृदय से विष्णु का नाम जपो।

"हिरदै नांव विसन को जपौ हाथे करो टबाई।"

कर्म के संबंध में गुरु जम्भेश्वरजी ने सत्य आचरण और सत्संगति पर विशेष बल दिया है यदि हृदय की सच्चाई है तो परमात्मा के निकट पहुंच कर अपने कर्मो का हिसाब देने में

1. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ0 87
2. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ0 133
3. पहलु किरिया आप कुमाइयै, तो अवरां नै फुरमाइयै। ज0वा0 28

कोई समस्या नहीं होगी। गुरु जम्भेश्वरजी ने असत्य आचरण करने वाले काजी, पंडित, मुल्ला, पीर, दिगम्बर, नाथ आदि लोगों पर गहरा प्रहार किया है।२ तथा उनको सत्य आचरण चलने की प्रेरणा दी है। सत्य आचरण से यहां यह तात्पर्य है कि जिस आचरण से परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है वही सत्याचरण है। धार्मिक आडम्बरों और रुढ़िवादी विचारों से अलग रहकर सत्य का आचरण करना चाहिये। सहज साधना में सत्संग का भी विशेष महत्व है। सत्संग सत्य आचरण के समान साधना का सरलतम सोपान है सच्चे यौगिकों या साधकाकें की संगति से ही व्यक्ति, के अवगुण स्वत: ही नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य के स्वभाव पर संगति का विशेष प्रभाव पड़ता है मनुष्य जैसी संगति में बैठता है वैसी ही उनका स्वभाव बनता है। अत: दुष्टों की संगति से बचना चाहिये, दुष्टों की संगति मनुष्य का पतन कर देती है। इसलिए हमेशा साधु पुरुषों की संगति करनी चाहिये एवं प्रभु का साक्षात्कार करना चाहिये। सिद्ध एवं साधुओं के साथ रहने वाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है-

"सिध साधक को एक मतो,
जिन जीवन मुक्त दृढ़ायों।"१

गुरु जम्भेश्वर ने अपनी सहज जीवन पद्धति में कर्ममय जीवन की साधना के साथ-साथ ईश्वर में पूर्ण विश्वास बनाये रखने की प्रेरणा दी है। व्यावहारिक जीवन में गुरु जम्भेश्वरजी ने मनुष्य को मधुर बाणी बोलने संतोष से रहने, शील का पालन, नैतिकता, हक और न्याय की आजीविका प्राप्त करने, यदि आपके पास थोड़ी सी वस्तु हो तो मांगे जाने पर थोड़ी सी अवश्य देनी चाहिये।

"थोड़ै मांहि थोड़े सै दीजै
होतै नांहि न कीजै।" २

गुरु महाराज की मान्यतानुसार पास में वस्तु के होते हुए मांगे जाने पर उसे देने से इन्कार नहीं करना चाहिये। दूसरे से मधुर संबंध स्थापित करने के लिए मधुर बाणी बोलनी चाहिये। कठोर या कटु वाणी पारस्परिक आपसी द्वेष उत्पन्न कर देती है। और संघर्ष तथा वैमनस्य की भावना बढ़ा देती है। इस प्रसंग के संदर्भ में कबीर ने अपने मत को उद्धृत करते हुए कहा है कि-

"ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
अपना तन शीतल करै, औरन को सुख होय।।"३

1. शब्दवाणी जन्भसागर, पृ0 241
2. जन्भवाणी सबद सं0 54
3. कबीर ग्रन्थावली, पृ0 238

बाणी ऐसी बोलनी चाहिये जिससे स्वय को भी सतुश्टि होवे तथा हृदय भी शीतल होवे एवं दूसरों को भी सुख देने वाली हो।

गुरु जम्भेश्वरजी ने अपनी वाणी में मनुष्य को न्यांय और हक आजीविका चलाने की शिक्षा दी है। अन्याय से कमाया गया धन दीर्घकाल तक नहीं रह सकता है। न्याय से प्राप्त किये गये धन में से ही दान देना चाहिये। दान भी ऐसे व्यक्ति को देना चाहिये जो उसका सही उपयोग कर सके। कुपात्र व्यक्तिं को कभी भी दान नहीं देना तथा सुपात्र और शुभ कर्म करने वालों को ही दान देना चाहिये।

"ओ३म् कुपात्र कूं दान जु दीयो।
जाणै रैण अंधेरी चोर जु लीयो।।
चोर जु लेकर भाखर चढ़ियो।
कह जिवड़ा तै कने दीयों।।
दान सुपाते बीज सुखेते।
अमृत फूल फलीजै।।१

कुपात्र मनुष्य को दान देना चोर का धन देने के समान है। गुरुमुखी भाव से अर्थात् निष्काम भाव से दिया गया दान अमृत के समान है जिसकी चहुमुखी वृद्धि होती है। ऐतिहासिक दृष्टांतों द्वारा गुरु जम्भेश्वर महाराज ने यह सिद्ध कर दिया था कि राजा कर्ण ने मनमुखी (सकामभाव) भाव से दान दिया था और विदुर ने गुरुमुखी भाव (निष्कामभाव) से दान दिया था राजा कर्ण को तो तंपिस मृत्यु लोक में आना पड़ा था और विदुर को स्वर्ग प्राप्ति हुई थी।

"मन मुख दान जु दीन्हों करणै।
आवागवण जु आइये।।
गुरुमुख दान जु दीन्हों बिदरै।
सुर की रागा रागाइये।।"२

दान तो कर्ण और विदुर दोनों ने दिया था परन्तु दान देने का लक्ष्य पृथक्-पृथक् था इसलिए गुरुमुखी भाव से दिया दान अमृत के समान सार्थक साबित हुआ। तथा मनमुखी भाव से दिया गया दान निरर्थक साबित हो गया। इस प्रकार गुरु जम्भेश्वर महाराज की आचार पद्धति विभिन्न आयामों को प्राप्त करती हुई मनुष्य को सहज जीवन पद्धति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। उनकी दृष्टि में मानव इस आचार पद्धति का अनुशरण

1. **शब्दवाणी जन्भसागर, पृ० 135**
2. **शब्दवाणी जन्भसागर, पृ० 88**

करके मुक्ति का मार्ग प्राप्त करता है। वह विषय-वासनाओं के जाल में न उलझकर भक्ति रस का आनन्द प्राप्त करना उनका मुख्य लक्ष्य है। वह ईश्वर की शरणागति को स्वीकार करता है। ईश्वर के चरणों का आश्रय मनुष्य को सभी प्रकार के कष्टों से मुक्ति दिला सकता है।

गुरु जम्भेश्वरजी की आचार पद्धति विषय वासनाओं पर नियंत्रण करने के लिए मन पर विजय प्राप्त करने का मूलमंत्र सिखाती है। अहंकार मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। यही मनुष्य को ईश्वर से विमुख कराता है। गुरु जम्भेश्वर जी ने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से बचने के लिए कहा है। सहजावसी, मध्यम मार्ग का आवलम्बन और सद्वृत्तियों का विकास गुरु जम्भेश्वर के आचार पक्ष की प्रमुख विशेषताएं हैं। इसलिए उन्होंने मानवीय सद्वृत्तियों के लिए सत्संगति को आवश्यक माना है। ईश्वर प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य मानते हुए पलायनवादी प्रवृत्तियों को प्रश्रय नहीं दिया है। गृहस्थ जीवन में धर्म-नियमों का पालन करते हुए भी मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है।

श्री गणेश जी का वास्तविक स्वरूप[1]

सुखबीर दत्त मिश्र शास्त्री
२१३-मकइलपुरी, रुड़की २४९४०७

हमारी भारतीय परम्परा में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ अथवा किसी भी प्रकार के कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व, यहाँ तक कि जीव के माता के गर्भ में आने के पूर्व से लेकर के मृत्युपर्यन्त अथवा मृत्यु के पश्चात् भी होने वाले सभी कार्यों के प्रारम्भ में प्रातः स्मरणीय श्री गणेश जी का सर्वप्रथम स्मरण एवं पूजन किया जाता है। किन्तु उस पूजन में गणेश जी को एक मिट्टी की डली पर डोरी, कलावा लपेट कर बना लिया जाता है अथवा मिट्टी की बनी हुई मूर्ति को अथवा कागज पर बने गणेश जी के चित्र को रख लिया जाता है। फिर उसी को गणेश जी मानकर उनका पूजन करते हैं। किन्तु क्या यही गणेश जी का वास्तविक स्वरूप है ? यह तो गणेश जी का वास्तविक स्वरूप नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में यह निर्धारण करना परम आवश्यक हो जाता है कि गणेश जी का वास्तविक स्वरूप क्या है। किसी भी प्रकार के कार्य की सफलता के लिये पूजन के प्रारम्भ में श्रोत्रिय विद्वान् निम्नलिखित वैदिक मन्त्र का सस्वर उच्चारण करते हैं:-

गणानां त्वा गणपति हवामहे = गणानां गणपतिं त्वां हवामहे।
प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे = प्रियाणां प्रियपतिं त्वां हवामहे।
निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे = निधीनां निधिपतिं त्वां हवामहे।

अर्थात भिन्न २ गणों के जो गणपति हैं आप उन गणपतियों के गणों के समूह के गणपति हैं।

हम अपने इस शुभकार्य में सर्व प्रथम आपका सम्मान के साथ आवाहन करते हैं। (अर्थात् जिस प्रकार सेना में भिन्न-२ प्रकार के वर्ग, गण अथवा कोर होते हैं किन्तु उन सबका एक मात्र अधिकारी जनरल (**General**) होता है उसी प्रकार गणेश जी सभी के स्वामी हैं।

हे गणेश जी ! इस संसार में हमारे जो सबसे अधिक प्रिय हैं, आप हमारा निरन्तर उपकार करने तथा शत्रुओं से रक्षा करने, हमारे सम्मान एवं समृद्धि की रक्षा करने के कारण उनसे भी अधिक प्रिय हैं। हम अपने इस शुभ कार्य में सर्वप्रथम आपका सम्मान के साथ आवाहन करते हैं।

हे गणेश जी ! इस संसार में जो सबसे बड़े निधि धन के कोष हैं आप उन निधियों के जो स्वामी हैं उन स्वामियों के भी स्वामी हैं अर्थात् शत्रुओं से उनकी रक्षा करने के कारण

१. लेखक के साथ सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। (सम्पादक)

उनके स्वामी हैं। हम अपने इस शुभ कार्य में सर्वप्रथम आपका सम्मान के साथ आवाहन करते हैं।

किन्तु आज के युग में तो गणेश जी के पूजन में इस श्लोक का उच्चारण होता है:-

गजाननं भूतगणादिसेवितम्, कपित्थ जम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकम्, नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम्।।

इसका अर्थ करते हैं कि गणेश जी का मुख हाथी का मुख है और इस हाथी के मुख के होने की पुष्टि में उनका भोजन कपित्थ = कैंथ (बिल जैसा कठोर फल) और जम्बू = जामुन का फल बतलाते हैं।

गणेश जी के हाथी का मुख होने का इतिहास भी इस प्रकार बतलाते हैं कि एक बार माता पार्वती जी ने स्नान करते समय अपने पुत्र गणेश जी को (यद्यपि गणेश जी पहले से ही माने जाते हैं) द्वार पर इसलिये खड़ा कर दिया कि कोई अन्दर प्रवेश न कर सके। संयोगवश स्वयं उमापति भगवान शंकर उस समय वहां आ गये। गणेश जी द्वारा प्रवेश के लिये मना किये जाने पर भगवान् शंकर ने क्रोधित होकर गणेश जी का शिर काट दिया। जैसे ही माता पार्वती जी स्नान करके स्नानगृह से बाहर आई तो उन्होंने देखा कि उनके पति भगवान् शंकर ने उनके पुत्र गणेश जी का शिर धड़ से अलग कर दिया है। माता पार्वती जी बहुत रोई चिल्लाई और शंकर जी से गणेश जी के उस शिर को फिर से गणेश जी के धड़ पर जोड़ने की प्रार्थना की। माता पार्वती जी के करुण क्रन्दन को सुनकर शंकर जी का क्रोध दूर हुआ और हृदय में करूणा का संचार हुआ और तब एक हाथी के बच्चे का शिर काट कर गणेश जी के धड़ पर जोड़ दिया। इस प्रकार तब से गणेश जी का मुख हाथी का मुख हो गया और उनका पूजन इसी रूप में होने लगा।

अब यहां पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि शिवजी को यदि गणेशजी के धड़ पर शिर जोड़ना ही था तो गणेश जी के कटे हुए शिर में चेतना एवं शक्ति तथा क्रियाशीलता का संचार करके गणेश जी के शिर को ही जोड़ना चाहिये था। शिवजी तथा शिवजी के गणों को क्रोध आने पर दूसरों का शिर काटने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। शिवजी के गणों ने अपने स्वामी शिवजी की पत्नी, माता सती का समुचित सम्मान न करने पर माता सती के पिता महाराज दक्ष प्रजापति का शिर काटकर सबके देखते देखते दक्ष प्रजापति द्वारा किये जा रहे यज्ञ के हवन कुण्ड में डाल दिया जो तुरन्त जलकर राख हो गया। इस प्रकार अचानक यज्ञ में उत्पन्न हुए भयंकर विघ्न को देखकर यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण करने हेतु देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमारों ने यज्ञ में बलि दी जाने वाले बकरे का शिर काटकर दक्ष प्रजापति के धड़ पर जोड़ दिया। इस बकरे के शिर वाले दक्ष प्रजापति की आयु केवल यज्ञ सम्पूर्ण होने पर्यन्त ही थी। यज्ञ के सम्पूर्ण हो जाने पर उस बकरे के शिर वाले दक्ष प्रजापति की भी उस हवन कुण्ड में बलि दे दी गई, क्योंकि बकरे के शिर को धारण करके दक्ष

प्रजापति अपने पूर्व के अधिकार पर आसीन नहीं हो सकते थे और न ही उनको ऐसी स्थिति में जीवित रखना उपयोगी था। हाँ यज्ञ की समाप्ति पर्यन्त तो दक्ष प्रजापति को जीवित रखना बहुत आवश्यक था। अस्तु यह बात तो निर्विवाद सत्य है कि उस समय शल्य क्रिया और शल्य चिकित्सा बहुत उन्नत अवस्था में थी। परन्तु अब प्रश्न यह है कि शिवज़ी ने जो गणेश जी का शिर काटा था वह काटकर किसी हवन कुण्ड में तो नहीं डाला गया था और यदि यह माना जाय कि शिर धड़ से अलग होकर निष्क्रिय हो गया होगा तो यह भी निश्चित है कि जब तक शिवजी हाथी के बच्चे को ढूंढ़ कर उसका शिर काटकर लाये होंगे तब तक निश्चित रूप से गणेश जी के धड़ की शारीरिक क्रिया भी समाप्त हो गई होगी। और फिर गणेश जी बालक हैं उनके धड़ पर हाथी का शिर भले ही वह हाथी के बच्चे का शिर हो कैसे उसको शल्य क्रिया द्वारा जोड़ा होगा और कैसे उसको स्थिर किया होगा और फिर यदि उसको स्थिर करके शल्य क्रिया द्वारा जोड़ भी दिया हो तो वह तो तात्कालिक उपचार मात्र था उसकी आयु इतनी अधिक कैसे हो गई वह तो कोई स्थायी उपाय नहीं था।

अच्छा यहां तक भी मान लिया जाय कि गणेश जी का शिर हाथी और शेषभाग मानव का, मानव के धड़ ने हाथी के शिर को किसी प्रकार धारण भी कर लिया, अब शरीर और मस्तिष्क की क्रिया को समुचित रूप में संचालित करने के लिये उसके लिये उपयुक्त भोजन की भी आवश्यकता होगी। गणेश जी मनुष्य से सम्बन्धित भोजन खायेंगे अथवा हाथी से सम्बन्धित ? मनुष्य से सम्बन्धित भोजन करने पर वह हाथी का शिर न तो अधिक समय तक स्थिर रह सकता है और न ही शरीर की क्रियाओं का संचालन करने में और उन पर नियन्त्रण करने में सहयोग दे सकता है और यदि हाथी का भोजन करायेंगे तो मानव शरीर वाली गणेश जी के शरीर की पाचन क्रिया उस हाथी के भोजन को पचाने में क्या समर्थ हो पायेगी ? परिणामस्वरूप "कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्" का कथन और उपयोग कैसे सार्थक हो पायेगा ?

भले ही आयुर्वेद शास्त्र की दृष्टि से कपित्थ = कैंथ (बिल के फल के समान एक फल) और जामुन के फल को स्वीकार कर लें किन्तु वर्ष के बारहों महीनों में इनकी पर्याप्त उपलब्धता सम्भव प्रतीत नहीं होती। सम्भवतः गणेश जी को वर्ष के कुछ भाग में कुछ महीनों तक उपवास करना अथवा निराहार रहना पड़ता होगा। गणेश जी के प्रिय भक्त गणेश जी को "मोदकप्रियमुदमंगलदाता" भी कहते हैं किन्तु गणेश जी कितना अधिक मोदक खायेंगे और फिर कपित्थ जम्बू तथा मोदक दो भिन्न २ प्रकृति के भिन्न २ पदार्थ हैं जिनमें से एक के द्वारा हाथी के शरीर का पोषण होता है और दूसरे के द्वारा मानव शरीर का पोषण एवं संरक्षण होता है। अस्तु इस कथन से मानसिक एवं मस्तिष्क की सन्तुष्टि नहीं होती और फिर मस्तिष्क इस विषय में कि "गणेश जी का शिर हाथी का है और शरीर का शेषभाग अर्थात् धड़ मानव का है" सोचने के लिये विवश हो जाता है कि :-

"गणेश जी का वास्तविक स्वरूप क्या है ?"

प्रात: स्मरणीय गणेश जी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि गणेश जी तो "मोदकप्रिय मुदमंगलदाता विद्यावारिधिबुद्धिविधाता" अर्थात् गणेश जी विद्या के वारिधि समुद्र हैं और स्वयं विद्वान् एवं बुद्धिमान् होने के साथ साथ अपने सच्चे भक्तों की बुद्धि का निर्माण करने वाले अर्थात् दूसरों की बुद्धि को श्रेष्ठ सन्मार्ग पर अग्रसारित करके उसका कल्याण करने वाले हैं। गणेश जी की बुद्धि के सम्बन्ध में एक कथा इस प्रकार प्रचलित है कि :-

देवासुरमभूत् युद्धं पूर्णमब्दं शतं पुरा, महिषेऽसुराणामधिपे देवानाञ्च पुरन्दरे।।
तत्रासुरैः महावीर्यैः देवसैन्यं पराजितम्, जित्वा च सकलान्देवानिन्द्रोऽभूत् महिषासुरः।।

अर्थात् देवताओं के स्वामी इन्द्र और असुरों राक्षसों के स्वामी महिषासुर के मध्य दोनों में पूरे १०० एक सौ वर्षों तक युद्ध चलता रहा और तब महापराक्रमी असुरों के रण-कौशल और शक्ति के द्वारा महिषासुर ने देवताओं की सेना और देवताओं के स्वामी इन्द्र को युद्ध में पराजित कर दिया और सम्पूर्ण देवताओं को तथा इन्द्र को जीतकर उन्हें स्वर्ग से बाहर निकाल कर महिषासुर स्वयं स्वर्ग का स्वामी इन्द्र बन गया और स्वर्ग पर भी शासन करने लगा।

ऐसी स्थिति में पराजित हुए देवराज इन्द्र ने पुन: अपने स्वर्ग के राज्य और उसके स्वामी इन्द्र के पद को प्राप्त करने के लिये देवताओं की एक सभा बुलाई। जगत्स्रष्टा ब्रह्मा जी ने उस सभा की अध्यक्षता की। उस सभा में ब्रह्मा जी ने देवताओं की एक बुद्धिमापक परीक्षा का आयोजन किया। इस बुद्धिमापक परीक्षा का विषय था "इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परिक्रमा जो सबसे पहले करके आयेगा उसको इस परीक्षा में सफल समझा जायेगा, तथा उसको देवताओं में अग्रगण्य और सर्वश्रेष्ठ समझा जायेगा। सभी देवता परीक्षा में सफलता प्राप्त करने की इच्छा से अपने २ श्रेष्ठ वाहनों को लेकर शीघ्रातिशीघ्र ब्रह्माण्ड की परिक्रमा में प्रथम स्थान प्राप्त करने की इच्छा से दौड़ पड़े। गणेश जी का स्थूल शरीर, छोटा सा वाहन चूहा, लम्बी यात्रा की प्रतियोगिता। विपरीत परिस्थितियों में भी गणेश जी ने अपने बुद्धि बल से इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया। कहा भी है कि : "क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।" सम्पूर्ण कथा के सार को संक्षेप में इस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है कि गणेश जी बुद्धि के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वमान्य, इसलिये प्रथम पूजनीय हैं।

छान्दोग्योपनिषद् के प्रथम अध्याय के द्वितीय खण्ड में आता है कि "देवसुरा ह वै यत्र संयेतिरे उभये प्राजापत्याः" अर्थात् देवता और असुर दोनों प्रजापति की सन्तान हैं। इसलिये दोनों भाई भाई हैं। किन्तु जहाँ पर राजसत्ता प्राप्त करने तथा स्वार्थपूर्ति का प्रश्न उठता

है वहां प्राचीन काल में मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम एवं श्री भरत तथा वर्तमान युग में नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस जी का चरित्र इसका अपवाद होने के कारण प्रशंसा के योग्य है। अन्यथा विश्व के सभी महान् से महानतम व्यक्ति इसकी परिधि में आ जाते हैं। ऐसी स्थिति में देवता और असुर इस परिधि से ब्राहर कैसे रह सकते हैं ?

राक्षस लोग निश्चित रूप से हठी प्रकृति के थे। वे अपनी हठ को पूरा करने के लिए किसी को क्षमा करना नहीं जानते थे, यहाँ तक कि स्वयं को भी क्षमा नहीं करते थे। यथा हिरण्यकश्यप ने अपनी हठ को पूर्ण करने के लिये अपने पुत्र प्रह्लाद को कितनी यातनाएँ दीं, पर्वत से नीचे गिराया, अपनी बहिन होलिका की गोदी में बैठाकर प्रज्जवलित अग्नि में बैठाया, तप कर लाल हुए लौह स्तम्भ में बांध दिया। अपनी हठ को पूरा करने के लिए अपने सब से अधिक प्रिय, एक मात्र पुत्र को जो इतना भयंकर कष्ट एवं पीड़ा दे सकता है वह और दूसरों को कैसे क्षमा करेगा ?

राक्षसराज रावण ने अपने स्वार्थ **तीनों लोकों का स्वामी बनने के लिये** भगवान् शंकर को प्रसन्न करने हेतु-

> प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरोऽतिरागाद्दशमं चिकर्तिषुः।
> अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः।।
> (शि.व., प्रथम सर्ग, श्लोक ४९)

रावण ने तीनों लोकों का स्वामी बनने की इच्छा से भगवान् शंकर को अपने नौ शिरों की बलि तो चढ़ा दी, जैसे ही उसने दशवें शिर को काटना तथा काटकर बलि चढ़ाने की सोची, भगवान् शंकर ने उसके शिर को काटने से पूर्व ही प्रसन्न होकर उसकी इच्छा के अनुरूप वर प्रदान किया। रावण को वर प्राप्त करने की इतनी प्रसन्नता नहीं हुई जितना दशवां शिर काटे जाने से रोके जाने का दुःख।

राक्षस लोक गुरु की बात पर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास करते थे। यथा छान्दोग्य उपनिषद् के अष्टम अध्याय के सप्तम खण्ड में :- आत्मा है व देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां............ समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः..... तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मा इति ह उवाच......... स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुरान् जगाम। अर्थात गुरु प्रजापति के द्वारा बताये गये आत्मा के स्वरूप पर विश्वास करके असुरों का नेता प्रसन्न मन से अपने घर लौट गया। गुरु जी ने जो उपदेश दिया देवराज इन्द्र ने उस पर विश्वास नहीं किया। **अथहइन्द्रोऽप्राप्यैव देवान् एतदभयं ददर्श।** गुरुजी ने जो उपदेश दिया है वह ठीक है अथवा नहीं उस पर शिष्य को विचार करना उचित नहीं है।

राक्षस लोग सरल प्रकृति के थे यथा समुद्र मन्थन के समय (यदि समुद्र मन्थन की कथा सत्य है तो) देवताओं ने राक्षसों को बहका कर चालाकी से फणों की ओर लगा दिया

और स्वयं शेषनाग की पूँछ पकड़ ली तथा समुद्र से प्राप्त १४ रत्नों में से १. अमृत, २. कौस्तुभमणि, ३. लक्ष्मी, ४. वैजयन्ती माला, ५. शंख, ६. ऐरावत, ७. उच्चैःश्रवा, ८. कामधेनु, ९. धन्वन्तरि, १०. रम्भा तो देवताओं ने ले लिये, ११. भयंकर गरल, १२. चन्द्रमा भगवान शंकर को मिले और राक्षसों के हिस्से में आयी एक मात्र मदिरा।

वैज्ञानिक प्रवृत्ति में भी राक्षस लोग देवताओं से बहुत आगे थे। रावण के पास पुष्पक विमान था, जो आज के युग के अतिस्वन (सुपर सोनिक) विमानों से कहीं बहुत अधिक आगे था। पूर्ण रूप से निःस्वन (ध्वनिरहित) था। सुनसान निर्जन वन में सीता जी को हरने के लिये रावण विमान से ही तो आया था और विमान भी राम की कुटिया के निकट ही उतारा होगा। क्योंकि सीता जी को उठाकर अधिक दूर तक भागना सम्भव नहीं था। विमान को उतारने और सीता जी उसमें बैठाकर फिर आकाश में उड़ाने की ध्वनि राम लक्ष्मण किसी को भी सुनाई नहीं पड़ी। किन्तु जटायु जो विमान निर्माता था अपनी प्रयोगशाला में बैठा हुआ परीक्षण कर रहा था उसे अचानक अपने यन्त्रों पर विमान में ले जायी जाती हुई किसी स्त्री (सीताजी) का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा। जटायु ने तुरन्त दिशासूचक यन्त्र से विमान के जाने की दिशा का ज्ञान प्राप्त करके वह जिस भी स्थिति में था उसी स्थिति में अपना विमान लेकर रावण के विमान का पीछा करने के लिये दौड़ पड़ा था इसलिये वह अपने शस्त्रास्त्र नहीं ले सका था। निश्शस्त्र जटायु का शस्त्रधारी रावण से युद्ध हुआ जिसका परिणाम जटायु घायल होकर रावण से पराजित होकर भूमि पर गिर पड़ा। अनुमान लगाइये कि आज इस विज्ञान के युग में निरन्तर विमानों का अपहरण होता है किन्तु क्या कोई विमान चालक वैज्ञानिक विमान को बचाने अथवा अपने नियन्त्रण में लेने के लिये उनके पीछे दौड़ता है ? राक्षस लोग विमानों में चढ़कर आकाश में स्थित होकर युद्ध भी करते थे। यथाः-

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः। तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका।।
नियुद्धं खे तदा दैत्य श्‍ चण्डिका च परस्परम्। चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम्।।

दुर्गासप्तशती अध्याय १० श्लोक २२,२३

अर्थात् वह शुम्भ नाम का राक्षस देवी को उठाकर एक दम से आकाश में ले गया और वहीं आकाश में बिना किसी आधार के उस राक्षस के साथ देवी का भयंकर युद्ध हुआ। आकाश में देवी और राक्षस का इस प्रकार का भयंकर युद्ध देखकर सिद्धों और मुनियों को बहुत आश्चर्य हुआ।

हमारी कल्पना केवल वहीं तक उड़ान भर सकती है जहाँ तक हमारा ज्ञान है। हमारे ज्ञान से अधिक हमारी कल्पना का विस्तार नहीं हो सकता। निर्धारित संख्या महाशंख से अधिक कहने के लिये हम असंख्य शब्द का, सुन्दरता में कोई उपमान न मिलने पर हम सौन्दर्यातीत, वर्णनातीत आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। राक्षसों के उस युद्ध में राक्षसों

द्वारा विकसित विज्ञान का स्वरूप कितनी उन्नत अवस्था में था हमें रक्तबीज नामक एक भयंकर वैज्ञानिक राक्षस (शस्त्र) से पता चलता है कि :-

रक्तविन्दुर्यदाभूमौ पतत्यस्य शरीरतः, समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ।।४१।।

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः, तावन्तः पुरुषाः जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ।।४४।।

ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्त्रशः, ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः ।।४५/२, ४६/२

दुर्गासप्तशती अध्याय ८

उवाच (चण्डिका) कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु। मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्।। ५३/२ ५७/२

जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् सः पपात महीपृष्ठे शस्त्र संघसमाहतः ।।६१।।

कितना विचित्र एवं भयंकर राक्षस (वैज्ञानिक बम) जिसके रक्त (बम के टुकड़े) की एक बून्द का पृथ्वी से स्पर्श होने पर तो उसी जैसा भयंकर राक्षस (शक्तिशाली बम) उत्पन्न हो जाता था किन्तु देवी के द्वारा उस राक्षस के सम्पूर्ण रक्त (बम के सम्पूर्ण टूकड़ों को अपने मुख में (निर्धारित यन्त्र में) ले लेने पर वह एक बूंद तो क्या सम्पूर्ण रक्त निष्क्रिय हो गया। आज भी तो इराक और अमेरिका के युद्ध में इराक ने कितने भयंकर बमों का प्रयोग किया। यदि उनमें से एक बम भी पृथ्वी पर गिरता तो भयंकर विनाशकारी स्थिति को उत्पन्न कर देता किन्तु अमेरिका ने अपने (उस बम के विरोधी) बमों से इराक के सम्पूर्ण बमों को आकाश में ही (पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही पृथ्वी का स्पर्श होने देने से पूर्व ही) निष्क्रिय बेकार कर दिया।

राक्षसों ने युद्धों में विजय प्राप्त करने के लिये आज के वैज्ञानिकों की भान्ति भिन्न भिन्न प्रकार की अनेक गैसों का निर्माण एवं आविष्कार कर लिया था जिनका प्रयोग करने पर, गैसों का वायुमण्डल में मिल जाने पर उस वायु मण्डल में देवताओं का राक्षसों के साथ युद्ध करना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता था। युद्ध करने पर न केवल पराजय अपितु भयंकर रोगों का भी ग्रास बनना पड़ता था।

महाकाव्य महाभारत में एक स्थान पर आता है कि जिस समय महाभारत के युद्ध की सम्पूर्ण तैयारी पूर्ण हो गई तब वहाँ पर नागराज कन्या चित्रांगदा से उत्पन्न अर्जुन का पुत्र बभ्रुवाहन आया और श्रीकृष्ण जी से कहने लगा कि हे मातुल श्री कृष्ण जी ! आप इतना परिश्रम व्यर्थ में ही कर रहे हैं। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं कुछ ही क्षणों में इन सभी शत्रुओं को समाप्त कर सकता हूँ। तब कुछ ही क्षणों में इतनी बड़ी सेना को समाप्त करने की बात को सुनकर श्रीकृष्ण आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने बभ्रुवाहन से पूछा कि हे बभ्रुवाहन ! तुम इतनी बड़ी सेना को क्षण भर में कैसे समाप्त कर सकते हो ? तुम्हारे पास तो शस्त्रास्त्र भी बहुत कम हैं केवल तीन बाण हैं तुम इन सीमित बाणों से इतनी बड़ी सेना को कैसे समाप्त करोगे ? इस पर बभ्रुवाहन ने कहा कि हे मामा जी ! इन तीन बाणों में

भी दोबाण अधिक हैं केवल एक बाण पर्याप्त है। श्रीकृष्ण जी ने परीक्षण के तौर पर जानना चाहा तब बभ्रुवाहन ने अपने एक बाण की नोक पर पहले एक तरल पदार्थ को लगाया और फिर उस पर एक चूर्ण को लगाया और शत्रु कौरवों की सेना को लक्ष्य करके छोड़ दिया और बाण छूटने के क्षण भर बाद ही सम्पूर्ण कौरव सेना निश्चल जड़वत् मूकवत् पूर्ण रूप से निस्तब्ध हो गई। कृष्ण इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित हो गये। तब बभ्रुवाहन ने कहा कि हे मामा जी ! मेरे इस बाण पर ऐसा पदार्थ था जो वायु का स्पर्श होते ही वायुमण्डल में घुल जाता है और शत्रु को निश्चित रूप में उसी वायुमण्डल में श्वास लेना पड़ता है जिसके फलस्वरूप वह तुरन्त अचेतन होकर कुछ ही क्षणों में निष्क्रिय हो जायेगा। अब इस दूसरे बाण का प्रयोग करने पर वह मर जायेगा केवल शव मात्र ही शेष रह जायेगा। श्रीकृष्ण ने इसके प्रभाव से बचने का उपाय पूछा तो बभ्रुवाहन ने कृष्ण को उस उपकरण को भी दिखाया जिसको मुख नाक आदि पर धारण करने पर वायुमण्डल की वायु का श्वास एवं शारीरिक क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। श्रीकृष्ण समझ गये कि यदि बभ्रुवाहन ने इस भयंकर रसायनिक प्रक्रिया का प्रयोग किया तो न केवल शत्रु पक्ष कौरवों का ही विनाश होगा अपितु पाण्डव पक्ष के वे लोग भी इससे प्रभावित एवं विनाश को प्राप्त हो जायेंगे जिनको हम नष्ट करना नहीं चाहते। श्रीकृष्ण तुरन्त बभ्रुवाहन से बोले कि मैं इस युद्ध की विजय का श्रेय तुम्हारे पिता अर्जुन को देना चाहता हूँ। इस पर बभ्रुवाहन क्रोधित होकर बोला कि इस युद्ध की विजय का श्रेय मैं लूंगा और जैसे ही उस क्रोध की अवस्था में बभ्रुवाहन ने अपना बाण चढ़ा कर चलाना चाहा श्रीकृष्ण ने तुरन्त बभ्रुवाहन का शिर काट दिया और सम्भावित अपनी पाण्डवों की सेना के विनाश को होने से बचा लिया।

उस बभ्रुवाहन के पास एक भयंकर प्रकार की गैस थी, उसके पास उस भयंकर प्रकार की गैस के प्रभाव से बचने का उपकरण भी था। कौरवों के पास तो क्या, पाण्डवों के पास भी उस प्रकार की भयंकर गैस नहीं थी। गैस के प्रभाव से बचने के उपकरणों के होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

महर्षि कपिल भी इसी प्रकार की रसायन एवं रासायनिक प्रक्रिया वाली गैस का आविष्कार कर रहे थे। यह निश्चित था कि वे इस रसायन का आविष्कार किसी पराक्रमी राक्षसराज के लिए कर रहे होंगे जिसका प्रयोग वे देवताओं पर विजय प्राप्त करने के लिए करते। इन्द्र इसको जानकर बहुत भयभीत था किन्तु महर्षि कपिल के विरुद्ध कुछ कर पाने में असमर्थ था। संयोगवश महाराजा सगर ने उस समय अश्वमेध यज्ञ हेतु अपनी ६०,००० साठ हजार सेना के संरक्षण में अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया जिसके सफल होने पर इन्द्र का पद निश्चित रूप से देवराज इन्द्र को छोड़ना पड़ा। देवराज इन्द्र इस समय ऐसी दो भयंकर परिस्थितियों के बीच फंस गया जिनमें से वह एक का भी मुकाबिला नहीं कर सकता था लेकिन तभी उसे एक अच्छा उपाय सूझा उसने अवसर पाकर किसी प्रकार उस

अश्वमेध के घोड़े को चुराकर महर्षि कपिल के आश्रम में बांध दिया। तब महाराजा सगर की सेना अनेक दिनों तक इधर उधर भटकने के तथा अनेकों प्रयत्नों को करने के बाद बड़ी कठिनाई से महर्षि कपिल के आश्रम में उस घोड़े को खोज पाने में समर्थ हो पायी। एक तो अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा कठोर संरक्षण में गायब दूसरे महाराजा सगर की भयंकर भर्त्सना एवं ताड़ना, और फिर अनेकों दिनों तक परिश्रम करना खोज के लिये भटकना, इन सब कारणों से क्रोधित हुई महाराजा सगर की सेना महर्षि कपिल के आश्रम में उस घोड़े को बन्धा हुआ पाकर महर्षि कपिल को मारने के लिये दौड़ी। परिस्थिति से अनभिज्ञ एवं निर्दोष महर्षि कपिल अचानक मारने के लिये अपनी ओर आती हुई उस विशाल सेना को देखकर अपनी सुरक्षा के अभाव में विचलित होकर अपने द्वारा आविष्कृत उस भयंकर रसायन का प्रयोग करने के लिये विवश हो गये। जैसे ही उन्होंने भयंकर रसायन और रसायनिक प्रक्रिया गैस का प्रयोग किया तुरन्त ही राजा सगर की वह ६०,००० साठ हजार सैनिकों की विशाल सेना उस गैस के प्रयोग के क्षण भर बाद ही निश्चेतन एवं प्राणहीन होकर धराशायी हो गई। ६०,००० साठ हजार मनुष्यों का दाह-संस्कार करना एक कठिन कार्य था जिसके लिये एक भयंकर किन्तु निश्चित मार्ग पर चल कर उन शवों को समुद्र तक ले जाने वाले जल के प्रवाह की आवश्यकता थी जिससे शेष मानव जाति पर उन शवों से उत्पन्न होने वाले रोगों का प्रभाव न पड़े इसी लिये महाराजा भगीरथ कठोर परिश्रम करके विशाल पर्वतों के मध्य मार्ग का निर्माण करके गंगा जी को इस धरातल पर लेकर आये और उसके भयंकर प्रवाह से उन साठ हज़ार शवों को समुद्र में पहुँचाने में समर्थ हुए।

महाकवि कालिदास द्वारा विरचित रघुवंश महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में आता है कि महर्षि वशिष्ठ जी की गाय नन्दिनी ने अपने सेवक महाराजा दिलीप की परीक्षा लेने के उद्देश्य से एक कृत्रिम सिंह के द्वारा अपने ऊपर आक्रमण करा दिया और जैसे ही दिलीप ने उस सिंह को मारने के लिये अपने तूणीर से बाण को निकालने के लिये दायें हाथ को बढ़ाया तो-

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकंक पत्रे ।
सक्तांगुलिः सायकपुंखरग्व चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे।।
बाहुप्रतिष्टम्भ विवृद्धमन्युरभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः।
राजा स्व तेजोभिरदह्यतान्तर्भो गीव मन्त्रौषधी रुद्धवीर्यः।।

रघुवंश महाकाव्य, द्वितीय सर्ग, श्लोक ३१, ३२

एक शक्तिशाली समर्थ शासक साधनों के होते हुए भी शत्रु के सम्मुख होने पर जड़वत् होकर के कुछ भी कर पाने में असमर्थ हो जाये तो उसकी मानसिक स्थिति क्या होगी स्वयं यह अनुमान लगाया जा सकता है।

इसी सम्बन्ध में एक और विवरण भी प्राप्त होता है। भगवान् शंकर भक्तों के रक्षक हैं। उन्हें इससे कोई प्रयोजन नहीं है कि वह देवता है अथवा राक्षस'। देवराज इन्द्र इससे

शंकर जी से बहुत अप्रसन्न हुए और शिवजी की समाप्ति करने हेतु उन पर वज्र का प्रहार करने का प्रयत्न किया तभी शंकर जी अचानक प्रहार करने के लिये तैयार हुए इन्द्र की ओर देखा तो-

प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे तत्पूर्वभंगे वितथरप्रयत्नः।
जडीकृतस्त्रयम्बकवीक्षणेन वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः।।

रघुवंशमहाकाव्य सर्ग २, श्लोक ४२

वज्रपाणिः = इन्द्र, वज्रं = वज्र को मुमुक्षन्निव = प्रहार करने की इच्छा से फेंकना चाहता हुआ सा त्र्यम्बकवीक्षणेन भगवान् शंकर के देखने मात्र से, जड़ीकृत = जड़ कर दिया गया।

इस प्रकार सूर्यवंशी राम के पूर्वज महाराजा सगर के समय में महर्षि कपिल के द्वारा महाराजा सगर के ६०,००० साठ हजार सैनिकों को बिना शस्त्र के प्रहार के केवल रसायनिक प्रक्रिया (गैस) के माध्यम से इसके पश्चात् महाराजा दिलीप को महर्षि वशिष्ठ ने नन्दिनी तथा कृत्रिम सिंह के माध्यम से रसायनिक प्रक्रिया (गैस) के माध्यम से, भगवान् शंकर के ऊपर वज्र से प्रहार करने वाले इन्द्र को भगवान् शंकर ने केवल देखने (दृष्टि के माध्यम से रसायनिक प्रक्रिया गैस के माध्यम से) मात्र से जड़ निष्क्रिय बना दिया था।

इस प्रकार की रसायनिक क्रियाओं (गैस आदि के प्रयोगों) का प्रचलन रामायण काल में राम और रावण के युद्ध के समय में भी था। हम उसको या तो आसुरी अथवा मायावी शक्ति अथवा राम (ईश्वर) के वशवर्ती शक्ति का नाम देते हैं। यथा जब हनुमान जी सीता जी की खोज में लंकापुरी में जाते हैं तब हनुमान जी का रावण पुत्र मेघनाद से युद्ध होता है। श्री हनुमान् जी तथा मेघनाद "भिरे युगल मानहु गजराजा" तब हनुमान जी ने अपनी पूरी शक्ति से "मुष्टिक मारि चढेऊ तरु जाई, ताहि एक क्षण (मेघनादको) मूर्च्छा आई।" तब मेघनाद ने "उठि बहोरि कीन्हेसि बहुमाया, जीति न जाय प्रभंजन जाया"। तब मेघनाद ने विवश एवं हताश होकर "ब्रह्मबाण तेहि कपि कहँ मारा, परतिहु बार कटक संहारा। तेहि जाना कपि मूर्च्छित भयऊ नागफांस बांधेसि लेइ गयऊ।" यह ब्रह्मबाण क्या था ? अतिशक्तिशाली होते हुए भी मेघनाद ने जब अपने से भी अत्यधिक शक्तिशाली हनुमान जी को जीत पाने में अपने को असमर्थ पाया तब उसने हनुमान् जी को अचेत मूर्च्छित करने वाले अमोघ अस्त्र उस ब्रह्मबाण को जिसे दूसरे शब्दों में अचेत करने वाली रसायनिक क्रिया (गैस) का प्रयोग कहा जा सकता है का प्रयोग किया। अर्थात् जिस महाशक्तिशाली हनुमान् जी को शारीरिक शक्ति से अपने वश में नहीं किया जा सका, भयंकर शस्त्रों के प्रयोग से हराया नहीं जा सका, उस शक्तिशाली हनुमान् जी को गैस का प्रयोग करके, श्वास के माध्यम से शरीर में प्रवेश कराकर अचेत, मूर्च्छित कर दिया।

(रामचरितमानस-सुन्दर काण्ड, पृष्ठ ८२७, दोहा १७, चौपाई ७, ८, दोहा १८, चौपाई १,२)

इसी प्रकार लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध में लक्ष्मण जी से पराजित हुआ मेघनाद जब नानायुद्ध प्रहार कर शेषा राक्षस भयऊ प्राण अवशेषा। रावणसुत निजमन अनुमाना संकट भयऊ हरहि ममप्राणा।

वीरघातिनी छांडिसि सांगी तेज पुंज लक्ष्मण उर लागी।
मूर्छा भई शक्ति के लागे तब चलि गयऊ निकट भय त्यागे।।

अर्थात् लक्ष्मण जी से युद्ध करते समय जब मेघनाद अपने को असहाय अनुभव करने लगा तो उसने अपने प्राणों की रक्षा के लिये तथा लक्ष्मण जी को मारने के लिये लक्ष्मण जी पर वीरघातिनी सांगी नाम की शक्ति को जो बहुत अधिक तेज का पुंज थी को छोड़ा, जिसके लगते ही भयंकर प्रहार से लक्ष्मण जी एक दम से तुरन्त अचेत हो गये। उस भयंकर रसायनिक प्रक्रिया गैस का प्रभाव था कि उस शरीर पर जिस शरीर पर शक्ति लगी है प्रात: काल के निकलते हुए सूर्य की किरणें स्पर्श हो जाये तो गैस अपना पूर्ण प्रभाव दिखलायेगी और वह अचेतन और निष्क्रिय शरीर प्राणारहित हो जायेगा।

(रामचरितमानस-लंका काण्ड पृष्ठ ९२८, दोहा ७८, चौपाई ५,६,७,८)

इसी प्रकार जब रावण का पुत्र नरान्तक अपने साथी राक्षसों को साथ लेकर राम की सेना से युद्ध करने के लिये आता है और जब राम की सेना से पार पाने में असमर्थ हो जाता है तो तब वह मूर्च्छित, अचेत, बेहोश तथा निष्क्रिय बनाने वाली रसायनिक प्रक्रिया अर्थात् गैस आदि का प्रयोग करता है यथा:-

शर अस्तंभन विपुल पंवारे भये अचल कपि टरहिं न टारे।।
ले ले पाश निशाचर धाई बांधत जिमि चुंगलि शुक पाई।।
जे कपि लखैं विपुलबल बंका, ते मूर्छित फैंके गढ लंका।।
अंगद हनुमान् जब जागे नरान्तकसन जूझन लागे।।
क्षण इक कीश न पायऊ लरई, पुनि शर हति मूर्च्छावश भयऊ।।

उस युद्ध में नरान्तक ने राम की सेना को स्तम्भित (जड़, निष्क्रिय एवं अचेतन) करने वाले (गैस के) शस्त्रों का प्रयोग किया जिनका प्रयोग करने पर राम की सेना पूर्ण रूप से निष्क्रिय जड़ एवं स्तम्भित हो गई। तब राक्षसों ने राम की सेना के सैनिकों को पाश जाल में बांध लिया और उनमें भी जिन जिन सैनिकों को नरान्तक ने अधिक शक्तिशाली एवं हानिकारक योद्धा समझा उन सबको उसी मूर्छित अचेत अवस्था में लंका में भेज दिया और किसी योद्धा का तो कहना ही क्या अंगद और हनुमान जी की भी यही स्थिति हो गई। फिर भी अंगद और हनुमान जी और दूसरे योद्धाओं की अपेक्षा

शीघ्रतापूर्वक सचेत और सावधान होकर फिर नरान्तक से जैसे ही युद्ध करने के लिये तैयार हुए वे एक क्षण भी नरान्तक से युद्ध नहीं कर पाये थे कि नरान्तक ने पुनः और अधिक शक्तिशाली गैस का प्रयोग किया जिसके प्रभाव से अंगद और हनुमान् जी फिर से अचेत जड़ एवं निष्क्रिय हो गये।

याम युगल तेहिकर वरदाना। अर्थात् इस बार प्रयोग की हुई गैस दोपहर अर्थात् कम से कम ६ घंटे (पूरा दिन ८ पहर-२४ घंटे, २ पहर-६ घंटे) का था। पूरी सेना ६ घंटे मूर्छित अचेत रही।

सो युग याम गये जब बीती तब रघुबीर सजी जप रीती।।
हांक देई कपि भालु जगाये भये विगतमूर्छा सब धाये।।
हनुमान अंगद जब जागे राम लखण चरणन अनुरागे।।

दोपहर तक मूर्छित अचेत रहने पर राम की सेना सचेत हो पाई किन्तु तब भी श्री राम ने उन सबको हांक अर्थात् अवाज देकर सावधान किया। सचेत और सावधान होने पर उन्हें पता चला कि हम तो युद्ध के मैदान में हैं इसलिये फिर से युद्ध के लिये तैयार होकर चल पड़े। हनुमान जी और अंगद जी की भी यही स्थिति थी।
(रामचरित मानस-लंका काण्ड पृष्ठ १०२८, १०२९ दोहा २०२, चौपाई ४,५,७ दोहा २०३ चौ० १,२,३,५,६,७)

होते होते रावण युद्ध के मैदान में आ गया और उसने राम की सेना को विचलित करने के लिये रसायनिक क्रिया अर्थात् गैस आदि का प्रयोग किया। उस रसायनिक क्रिया का अर्थात् गैस का प्रयोग होते ही -

जहँ जाहि मर्कट भागि, तहँ बरत देखहिं आगि। भये विकल वानर भालु, पुनि लागु बर्षइ बालु। जहँ तहँ थकित करि कीश, गर्जेऊ बहुरि दशशीश। **लक्ष्मण कपीश समेत, भये सकल वीर अचेत। हा राम हा रघुनाथ, कहि सुभट मीजहिं हाथ।** इहि विधि सकल बल तोरी, तेहि कीन्ह कपट बहोरि।।

राम की सेना के वानर इधर उधर जहाँ पर भी भागते हैं वहीं पर आग को जलती हुई देखते हैं, चारों ओर बालु अर्थात् रेत की वर्षा होने लगती है। परिणाम स्वरूप वानर परेशान और व्याकुल हो जाते हैं। तब रावण प्रसन्न होकर गर्जना करता है उधर लक्ष्मण और हनुमान जी के साथ सुग्रीव आदि सभी वीर उस रसायनिक क्रिया गैस के प्रभाव से अचेत बेहोश मूर्छित हो जाते हैं। सभी योद्धा हा राम, हा रघुनाथ कहकर के हाथों को मलने लगते हैं। इस प्रकार रावण ने राम की सम्पूर्ण सेना के बल को तथा मनोबल को भंग कर दिया।
(रामचरित मानस लंकाकाण्ड पृष्ठ १०८०, दोहा २६१, छन्द ४,५,६)

इसी प्रकार श्री राम लंका की विजय के उपरान्त जब अयोध्या में आकर अश्वमेध यज्ञ करने के लिये अश्व को भली प्रकार से पूज करके, अलंकारों से सुसज्जित करके सेना से सुरक्षित करके घूमने के लिये छोड़ते हैं तो उसके साथ -

षष्टि सहस दश वीर वर रामानुज रणधीर, मध्य ताहि (अश्व को) आनेऊ तहाँ जहाँ राम रघुवीर।।३३।।

पूजेऊ प्रभुलय जग जय हेतू लिखेऊ पत्र सोई करि अभिषेका। १.२.
जेहि बल होय गहे सो बाजी, देहु दण्ड (कर) वन जाहु की भाजी।
तब वन में लक्ष्मण जी और लव कुश का युद्ध प्रारम्भ हो गया और तब :-
शक्रजीत अरि जे शरमारे ते सब बाल काटि महि डारे। ४९/८
कुश करि क्रोध विशिख सो लीन्हा मन्त्र प्रेरि मुनिवर (बाल्मीकि) जो दीन्हा।५०/१
नाक रनसातल भूतलमाहिं यह शर छुटै बचै कोऊ नाहीं।।२।।
मोहन बाण नाम तेहि जानो विष्णु विरंचि शम्भु जेहि मानो।।३।।
मारेऊ ताकि शेष डर माहीं परे धरणि तल सुधि कछु नाहीं।।४।।

श्रीराम तब भरत जी से कहते हैं कि-

रहौ यज्ञ रिपु देखहिं जाई, बालक रावण के दुखदाई।। ५१/२

तब भरत जी के युद्ध भूमि में आने पर-

कुश ने खैंचि धनुष गुण छाडेऊ सायक, कपिपति आदि हने कपि नायक।।५५/४।

मूर्छित सेनपरी महिमाहीं बचेऊ न कपि घायल जो नाहीं।।५।।
दुःखित देख कुश बहुत रिसाना चाप चढाय नाणा सन्धाना।।८।।

समरभूमि सोये भरत लवहि लीन्ह डर लाई, सुमिरि मातु गुरु चरण रहे समर जप पाई।।५६।।

श्रीराम ने ६०००० साठ हजार वीर सैनिकों, १० दश सेनापतियों एवं अपने छोटे भाइयों के साथ अश्वमेध यज्ञ के अश्व को भली भांति पूज करके एक पत्र लिखकर उसके गले में बांध दिया। उस पत्र में लिखा था कि यदि कोई अपने को शक्तिशाली समझता है तो इस अश्व को पकड़ ले। नहीं हमें कर प्रदान करे अन्यथा वह अपने देश को छोड़कर वन को भाग जाये। इसके पश्चात् लक्ष्मण और लवकुश में युद्ध प्रारम्भ हो गया। तब लक्ष्मण जी ने जितने भी बाण मारे लव और कुश ने उन सबको काट डाला। तब कुश ने क्रोधित होकर महर्षि बाल्मीकि जी के द्वारा मन्त्रों से प्रेरित मोहनबाण नामक बाण को जिसका ब्रह्मा विष्णु और महेश भी सम्मान करते हैं और जिसको चलाने पर पृथ्वी आकाश और पाताल में कोई उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, उस बाण को लक्ष्मण जी की छाती में मारा जिसके लगते ही लक्ष्मण जी पृथ्वी

पर गिर पड़े और उन्हें कुछ भी होश नहीं रहा। युद्ध के इस समाचार को सुनकर श्रीराम भरत जी से कहते हैं कि हे भरत ! यह अश्वमेध यज्ञ भले ही रुक जाये तुम उन शत्रुओं को जाकर देखे। हो न हो यह निश्चित है कि वे रावण के दुःखदायी बालक हैं। तब भरत जी युद्धभूमि में सुग्रीव आदि श्रेष्ठ वानरराज एवं अन्य वीर वानरों के साथ आते हैं तब कुश ने धनुष चढ़ा कर बाण छोड़े जिन्होंने सभी सुग्रीव आदि श्रेष्ठ वानरों को मूर्छित कर दिया और फिर कुश ने क्रोध करके भरत जी पर बाण का प्रहार किये जिससे भरत मूर्छित हो गये।

(रामचरितमानस रामाश्वमेघ लवकुशकाण्ड-पृष्ठ १२७१ दोहा ३३, १.२., पृष्ठ १२७२, ३३/४, पृष्ठ १२८६ ४९/८, पृष्ठ १२८६, ५०/१. २. ३. ४., पृष्ठ १२८७.५१/२, पृष्ठ १२९१, ५५/४,५,८, दोहा ५६)

श्रीराम को गुप्तचरों एवं सन्देशवाहकों से जैसे ही यह सब समाचार ज्ञात होता है तो वे बहुत दुःखी होते हैं।

चर वन वचन सुनत दुःखपावा त्यागेऊ मख निज कटक बनावा।।५६/६
चले सकोय कृपालू उदारा आये प्रभु जहँ कटक संहारा।७

तब श्री राम युद्ध भूमि में लव और कुश से कहते हैं कि :-

आवत सुभट समूह हमारे लरिहहिं तुम सनसमर सुखारे।५७/७
अस कहि अंगद नील उठावा जाम्बवन्त कपिपतिहि बुलावा।८
तब हरण शूलहि पाप नाशन कह्यो हँसि रघुनन्दनम्।।छन्द ३७/२
भरतादि रिपुहन सहित लक्ष्मण परे खलमद गंजनम्।

पुनः जब लवकुश हनुमान जी आदि श्रेष्ठ योद्धाओं को सीताजी के पास लाते हैं तो सीता जी कहती हैं

हनुमन्त भालुहि छोरि वेगहि त्यागि बहु समुझायऊ।
रिपुदमन लक्षिमण सहित भरतहि राम समर सुवायऊ।।
सुत कीन्ह कर्मकलंक कुलमंह मोहि विधि विधवा करी।
तजि सोचचन्दन अगर आनहु जाऊँ पियसंग अब जरी।।
मुनिधीर जानकि देई लवकुश संग लै सादर चले।
रण देखि बालक चरित देखत विहँसि मन प्रभु दिन भले।।
रथ देखि हय पहिचानी प्रभु कहँ जाय मुनि आगे भये।
उठि बैठो कौशल नाथ आरत तनय तब आगे छये।। छन्द ४१

सुनि मुनिवर बैन जागे रघुपति भयहरण।
विहंसि उघारे नैन, लीन्हें हृदय लगाय मुनि।। सोरठा ५

श्रीराम को जैसे ही गुप्तचरों से युद्ध का दुःखद समाचार ज्ञात हुआ उन्होंने यज्ञ को बीच में ही छोड़ दिया और सेना लेकर युद्धस्थल में आ गये और लव कुश को देखकर उनसे कहने लगे कि हमारी सेना तुम्हारे साथ लड़ेगी और तब अंगद नील जाम्बवन्त और हनुमान् जी आदि से कहने लगे कि देखो इस युद्ध में, दुष्टों का मद एवं घमण्ड नष्ट करने वाले भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण आदि सभी मूर्छित पड़े हुए हैं। और जब लव और कुश हनुमान् और विभीषण आदि को बांध कर सीताजी के सम्मुख लाते हैं तो सीताजी ने हनुमान् आदि उन सभी योद्धाओं को छुड़वा दिया और दुःखी होकर लवकुश से क़हने लगी कि तुमने युद्धभूमि में शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत और श्रीराम को सुलाकर (मारकर) एक ओर तो कुल का कलंक लगाया है और दूसरी ओर मुझको विध ावा कर दिया है। अब तुम मेरे लिये अगर और चन्दन की लकड़ी की व्यवस्था करो जिससे मैं श्रीराम के साथ चिता पर बैठकर जल जाऊँ। सीताजी के इस करूण-क्रन्दन को सुनकर बाल्मीकि जी ने उनको धैर्य धारण कराया और तुरन्त लव और कुश को साथ में लेकर के युद्ध भूमि में आये और राम के रथ और घोड़ों को पहिचान कर श्री राम से कहने लगे कि हे राम ! उठो आपके सम्मुख आपके पुत्र विनीत भाव में खड़े हुए हैं। मुनि बाल्मीकि जी की इस मधुर वाणी को सुनकर श्रीराम ने अपने नेत्रों को खोला तब बाल्मीकि जी ने श्रीराम को अपने हृदय से लगा लिया।
(रामचरितमानस-रामाश्वमेध लवकुश काण्ड पृष्ठ १२९२, दोहा ५६/६, ७ पृष्ठ १२९३ दो, ५७, ७,८ ३७/२ छन्द पृष्ठ १२९६ छन्द ४०, छन्द ४१ सोरठा ५ ।

यद्यपि रामचरितमानस में लवकुश के साथ राम के युद्ध का विवरण नहीं दिया गया है फिर भी प्राप्त तथ्यों से सिद्ध होता है कि लव कुश के साथ राम का युद्ध अवश्य हुआ होगा और उस युद्ध में लव कुश ने भरत शत्रुघ्न और लक्ष्मण की भान्ति राम को भी अचेत कर दिया था। शास्त्र का नियम है।

यत्स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यं अन्यथा वा प्रकल्पयेत्।।
(सा०द०, परिच्छेद ६, श्लो० ५०)

अनुचितमितिवृत्तं यथा रामस्य च्छद्मना बालिवधः। तच्चोदात्त राघवे नोक्तमेव। वीरचरिते तु बाली रामवधार्थमागतो रामेण हतः इत्यन्यथाकृतः। महाभारते च युधिष्ठिरस्य "अश्वत्थामा हतः" इति पदस्य असत्यवादितादोषपरिहरणार्थमं "अश्वत्थामाहतः" इति पदेन सह "नरो वा कुंजरो वा" अधिक पदस्य संयोजनम्।

श्रीराम के युद्ध में अचेत होने के कारण ही सीता जी लवकुश से अपने विधवा होने तथा प्रिय स्वामी राम के साथ सती होने के लिये चन्दन और अगर आदि लाने के लिये

कहती हैं। अस्तु-

प्राचीन काल में जहां 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः मुनयो मन्तारः' वेद शास्त्रार्थतत्त्व अवगन्तारः थे आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मा तथा परमात्मा के प्रत्यक्षीकरण का कार्य करके स्वयं तथा अन्य प्राणियों को मोक्ष मार्ग की ओर प्रेरित करते थे वहाँ भौतिक उन्नति के लिये आवश्यक रसायनिक प्रक्रिया के उपकरणों का प्रत्यक्षीकरण अर्थात् आविष्कार करना भी उनका प्रमुख कार्य था। तभी तो उनके लिये कहा गया है :-

शमाप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः। (अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

उदाहरणस्वरूपः

१- महर्षि कपिल ने क्षण भर में ही रसायनिक प्रक्रिया के प्रयोग से राजा सगर के ६०००० साठ हजार सैनिकों को जड़ निष्क्रिय एवं निष्प्राण कर दिया।

२. भगवान शंकर ने वज्रधारी इन्द्र को जड़वत् कर दिया।

३. महर्षि वशिष्ठ (के कृत्रिम सिंह) ने महाराजा दिलीप को जड़ स्थिर कर दिया।

४. महर्षि बाल्मीकि जी की रसायनिक प्रक्रिया (गैस) के आविष्कार के फलस्वरूप लव कुश ने मोहन बाण से राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न तथा हनुमान् आदि को जड़ निष्क्रिय कर दिया।

५. शंकर भगवान् ने इसी रसायनिक प्रक्रिया के द्वारा असुरों के तीन नगरों का त्रिपुरदाह किया असुर और राक्षस वर्ग भी इस रसायन प्रक्रिया के प्रयोग से भलीभान्ति परिचित था। तथा आवश्यकता पड़ने पर अथवा शक्तिशाली शत्रु से युद्ध करते समय इसका प्रयोग करते थे यथा-

१- सीताज़ी की खोज में लंका में गये हुए हनुमान् जी पर मेघनाद ने इस रसायनिक प्रक्रिया का प्रयोग किया जिससे हनुमान् जी अचेत हो गये और अचेत अवस्था में रावण के सम्मुख लाये गये। यह वास्तविकता है चाहे इसे कोई किसी भी रूप में स्वीकार करे।

२- मेघनाद ने इसी रसायनिक प्रक्रिया का प्रयोग करके लक्ष्मण जी को मूर्छित कर दिया।

३- रावण के पुत्र नरान्तक ने शर अस्तम्भन से हनुमान् तथा अंगद को अचेत कर दिया।

निःस्पृह होते हुए भी शास्त्रास्त्रों के प्रधान आचार्य तथा आविष्कारक किसी से द्वेष न रखते हुए भी संसार को नियमित एवं व्यवस्थित बनाये रखने हेतु पिनाक नाम के विशाल धनुष को धारण करने वाले शंकर को देवता तथा असुर दोनों ही अपनी सेवा से सन्तुष्ट करके उनसे इन शस्त्रास्त्रों को प्राप्त करते थे। फिर भी न मालूम इन्द्र ने उन

पर वज्र का प्रहार करना चाहा ! शंकर के विरुद्ध भस्मासुर का अभियान तो सर्वविदित है ही।

उपर्युक्त परिस्थितियों में देवताओं के नायक गणेश जी द्वारा यह आवश्यक समझा जाना अनिवार्य ही है कि वे इन रसायनिक प्रक्रिया के प्रयोगों के प्रभाव से प्रभावित न होने तथा अप्रभावित बने रहने के लिये ऐसे उपकरणों का आविष्कार करें जिनको धारण करके वे राक्षसों के साथ निर्बाध रूप से युद्ध करने में समर्थ हो सकें अथवा यह भी सम्भव है कि भगवान् शंकर ने देवताओं की (सेना की) सुरक्षा के लिये इस प्रकार के उपकरणों का आविष्कार करके स्वयं उनके नेता गणेश जी के शिर पर उसको धारण कराया हो और आदि काल से चले आने वाले गणेश जी तभी से शिवजी के पुत्र (शिव द्वारा संरक्षित) माने जाने लगे हों।

इतना तो निश्चित है कि गणेश जी का शिर हाथी का शिर नहीं है। यह एक शक्तिशाली रसायनिक प्रक्रियाओं के प्रभाव को रोकने का एक शक्तिशाली उपकरण है और जिस उपकरण को धारण करके वे वीर वेश में युद्धभूमि में जाते थे, भारत वीरों को वीर वेश में पूजने वाला देश है, भारतीय गणेश जी को उसी रूप में पूजते चले आते हैं।

आज के युग में कुछ विद्वान् न तो गणेशजी को और न ही गणेश जी के उस वीरस्वरूप को स्वीकार करते हैं किन्तु जब हम धार्मिक दृष्टि से भिन्न सामान्य दृष्टि से गणेश जी के स्वरूप पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि आज के युग में भी प्राचीनयुग वाले शस्त्रास्त्रों का आविष्कार उनका प्रयोग रसायनिक प्रक्रिया गैस आदि का आविष्कार तथा उनसे बचने के उपकरणों का आविष्कार किया जाता है और किया जा रहा है।

आज के युग में युद्ध भूमि में किये जाने वाले रसायनिक प्रयोग गैस आदि के प्रभाव से बचने के लिये जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है उनका स्वरूप गणेश जी के हाथी के मुख वाले उपकरण के समान ही है। तनिक सा अन्तर भी हो सकता है किन्तु वह अन्तर तो केवल इसलिये है जिस प्रकार आज के युग में एक ही उपकरण भिन्न-२ फैक्ट्रियों में बने हुए होने के कारण स्वरूप में कुछ भिन्नता लिये हुए होता है। यथा टाटा कम्पनी में बने हुए बसों के ट्रकों के इञ्जिनों के स्वरूप में तथा अशोका लीलैण्ड की कम्पनी में बने हुए बसों और ट्रकों के इञ्जिनों के स्वरूपों में विद्यमान हैं।

अतः गणेश जी का यह स्वरूप उनके वीर वेश का है। वे सामान्य स्थिति में बुद्धि प्रदान करने वाले हैं, युद्ध की स्थिति भयंकर से भयंकर परिस्थिति में भी श्री शत्रु का सामना करके उसका विनाश करने वाले हैं। प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न रहने वाले हैं। उन गणेश जी को हमारा नमस्कार होवे। ॐ श्री गणेशाय नमः।

।। श्री गणेशाय नमः ।।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे।
गणानां गणतिं त्वां हवामहे।

प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे।
प्रियाणां प्रियपतिं त्वां हवामहे।

निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे।
निधीनां निधिपतिं त्वां हवामहे।

आप भिन्न – 2 गणों के गणपति हैं आप उन गणपतियों के गणों के समूह के गणपति हैं। हम अपने इस शुभ कार्य में सर्वप्रथम आपका सम्मान के साथ आवाहन करते हैं।

हे गणेश जी ! इस संसार में हमारे जो सबसे अधिक प्रिय हैं, आप हमारा निरंतर उपकार करने, शत्रुओं से रक्षा करने हमारे सम्मान एवं समृद्धि की रक्षा करने के कारण उनसे भी अधिक प्रिय हैं। हम अपने इस शुभ कार्य में सर्वप्रथम आपका सम्मान के साथ आवाहन करते हैं।

हे गणेश जी ! इस संसार में जो सबसे बड़े निधि, धन के कोष हैं, उन निधियों के जो स्वामी हैं आप उन स्वामियों के भी स्वामी हैं हम अपने इस शुभ कार्य में सर्व प्रथम आपका ससम्मान आवाहन करते हैं।

एक वर्ग किलोमीटर के लिए 10 टन गैस चाहिए

अमेरिकी रासायनिक अस्त्र विशेषज्ञ गार्डन एम. बर्क का कहना है कि इराकी रासायनिक अस्त्रों से कोई खतरा नहीं
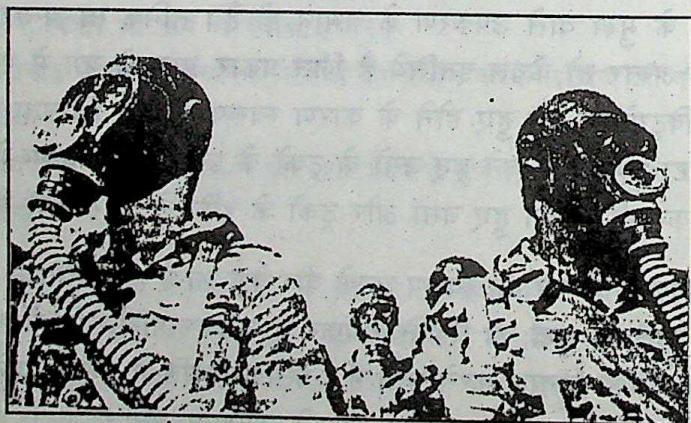
उपर्युक्त गणेश जी के चित्र के साथ चिपकाए हुए दूसरे चित्र को ध्यानपूर्वक देखें। यह चित्र किसी न किसी रूप में गणेश जी के चित्र के समान ही प्रतीत होता है। गणेश जी का शिर एवं मुख का भाग उपकरणों के साथ बहुत प्राचीन काल से निरन्तर इसी रूप में स्वीकृत एवं मान्य होने के कारण उपकरणों सहित स्वीकार कर लिये जाने के कारण हाथी के शिर के समान होने के कारण हाथी का शिर ही स्वीकार कर लिया गया है। फिर इस सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक कथाओं को मान्यता मिल गई है। इस प्रकार हम वास्तविकता से दूर होते गये और पिता शिव जी के द्वारा अनावश्यक रूप से पुत्र गणेश जी का शिर काटा गया और उस पर हाथी का शिर काटकर जोड़ा गया आदि बातों को हम स्वीकार करते गये।

वास्तविकता यह है कि प्राचीन काल के दैवी, ईश्वरीय आश्चर्य उत्पन्न करने वाले शस्त्रास्त्रों की भान्ति आज भी अनेक आश्चर्यजनक शस्त्रास्त्रों, शक्तियों तथा रसायनिक अस्त्रों का आविष्कार किया गया है यथा-

प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४ ई० से १९१९ ई० तक) एक **"मस्टर्ड गैस"** का आविष्कार हुआ। यह गैस वायु में मिल कर शरीर की खाल को जला देती है और श्वास के द्वारा शरीर में प्रवेश करके मार भी देती है किन्तु कम मारती है। हां जब यह शरीर में प्रवेश कर जाती है किन्तु मारने पूर्ण रूप से समर्थ नहीं हो पाती तब यह उन लोगों को जीवन भर के लिये ठीक प्रकार से जीवित रहने में असमर्थ बना देती है। उनको श्वास लेने में जीवन भर कठिनाई होती रही। एक प्रकार से जीवित लाश को ढोते रहे।

द्वितीय विश्वयुद्ध मे जर्मनी ने एक **"सैरिन गैस"** नामक रासायनिक पदार्थ गैस का आविष्कार किया। इस गैस का प्रभाव कुछ समय तक ही रहता है। यह गैस अलकोहल की तरह उड़ती है। इससे शरीर की खाल भी कोई विशेष रूप से नहीं जलती। हाँ जब यह श्वास के माध्यम से शरीर के अन्दर पहुँचती है तब इससे मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। यह सैरिन गैस पिन की नोक पर जितनी मात्रा में आ सकती है केवल उतनी मात्रा किसी भी जीवित प्राणी के प्राणों को समाप्त कर देने के लिये पर्याप्त है।

यह सैरिन गैस "वी एक्स" की तरह होती है जो पेड़ पौधों की पत्तियों, फूलों की पत्तियों पंखड़ियों पर पड़ी रहती है। मनुष्य जैसे ही इसके सम्पर्क में आता है वह अपना प्रभाव दिखलाती है। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् महाकवि कालिदास द्वारा विरचित रघुवंश महाकाव्य के अष्टम सर्ग में आता है कि :-

कुसुमैर्ग्रथितामपार्थिवैः स्रजमातोद्यशिरोनिवेशिताम्।

अहरत्किल तस्य वेगवानधिवासस्पृहयेव मारुतः ।। श्लोक ३४ ।।
अभिभूयविभूतिमार्तवीं मधुगन्धातिशयेन वीरुधाम् ।
नृपतेरमरस्त्रगवाप सा दयितोरुस्तनकोटि सुस्थितिम् ।।श्लोक ३६ ।।
क्षणामात्रसखीं सुजातयोः स्तनयोस्तामवलोक्य विह्वला ।
निमिमील नरोत्तमप्रिया हृत चन्द्रा तमसेव कौमुदी ।। शलेक ३७ ।।
वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती.........................३८ ।।
कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितं यदि ।
न भविष्यति हन्तसाधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः ।।४४ ।।

इस सैरिन गैस का प्रभाव खुले वायुमण्डल में शीघ्रातिशीघ्र होता है जो बहुत घातक होता है किन्तु यह सैरिन गैस का प्रभाव वातावरण में अधिक लम्बे समय तक नहीं रहता और मकानों के अन्दर भी अधिक प्रभावित नहीं करता। इसीलिये उपर्युक्त प्रकरण में ही आगे कहा गया है :-
स्त्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।।४६ ।। ?

अभी खाडी के युद्ध (अमेरिका तथा सहयोगी देश और इराक के मध्य होने वाला युद्ध) में एक और प्रकार की गैस का आविष्कार किया गया है जो पीले रंग के पाउडर के रूप में होती है। जिसका प्रभाव देर तक रहता है। यह रासायनिक गैस की प्रक्रिया अन्य दूसरे गैसों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली एवं घातक होती है। इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि इस गैस के प्रभाव को रोकने अथवा समाप्त करने के लिये सैनिक लोग जिस गैस मास्क फिल्टर को धारण करके युद्ध क्षेत्र में कार्य करते हैं वह गैस मास्क फिल्टर इस पीले रंग पाउडर वाली गैस के प्रभाव को रोकने अथवा समाप्त करने में समर्थ नहीं है क्योंकि गैस मास्क फिल्टर का कार्बन उतनी शीघ्रता से इस गैस को निरस्त नहीं कर सकता और फिर इस पीले रंग की पाउडर वाली गैस का प्रभाव वायुमण्डल में कई दिनों तक बना रहता है। अतः तनिक सी असावधानी होने पर यह गैस विपक्ष के लिये अत्यधिक घातक परिणाम वाली सिद्ध होती है।

इसके अतिरिक्त एक और प्रकार की गैस भी होती है जिसे रोगाणु युद्ध वाली गैस कहते हैं किन्तु इस गैस पर गैस का प्रयोग करने वालों का पूर्ण से नियन्त्रण नहीं हो पाता क्योंकि इस गैस का प्रसार और प्रभाव अधिकतर वायु के प्रवाह पर निर्भर होता है। अतः इस गैस के प्रयोग के लिये अवसर की उयुक्तता के लिये बहुत अधिक विचार करना आवश्यक है। इसीलिये इसका प्रयोग बहुत सफल एवं क्रियाशील वैज्ञानिक की सम्मति पर निर्भर करता है।

इन उपर्युक्त मस्टर्ड गैस, सैरिन गैस, पीले रंग के पाउडर वाली गैस तथा रोगाणुयुद्ध गैस के अतिरिक्त एक और भयंकर गैस होती है जिसको "टाक्सिन" गैस कहते हैं। इसे

बोटालिज्म टॉक्सिन के रूप में भी जाना जाता है। इस बोटोलिज्म टॉक्सिन के सम्बनध में वैज्ञानिकों एवं शस्त्र विशेषज्ञों का मत है कि यह दुनिया का सबसे भयंकर हानिकारक एवं मारक जहर होता है। सौ ग्राम बोटोलिज्म टॉक्सिन के प्रयोग से एक समय में एक साथ लाखों लोगों को प्राणहीन किया जा सकता है मारा जा सकता है। इसके साथ-साथ इस के प्रयोग से वायुमण्डल पूर्ण रूप से प्रभावित एवं दूषित हो जाता है जिसके फलस्वरूप जिस पर इसका प्रयोग किया जाता है न केवल वही प्रभावित होता है न केवल उसी की मृत्यु होती है अपितु उसके आसपास का काफी दूर-दूर तक का विस्तृत क्षेत्र भी प्रभावित हो जाता है।

अमेरिकी वैज्ञानिक रासायनिक विशेषज्ञ, अस्त्रविशेषज्ञ तथा नीति विश्लेषक गार्डन एम०वर्क ने अमेरिका के साथ होने वाले इराक के खाड़ी के युद्ध के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि "इराक के पास लगभग १००० एक हजार टन गैस है जिसमें ९०% अर्थात् ९०० टन मस्टर्ड गैस है और एक वर्ग किलोमीटर के लिये १० टन गैस की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह १००० एक हजार टन गैस इस खाड़ी के युद्ध में यदि" इराक प्रयोग भी कर देता है तो वह अमेरिकी सैनिकों के लिए अधिक भयावह सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि अमेरिकी सैनिकों के पास में गैस के प्रभाव को रोकने के लिये गैस मास्क फिल्टर काफी मात्रा में उपलब्ध हैं।

अमेरिकी रसायन शस्त्रविशेषज्ञ गार्डन एम० वर्क की इस राय के विपरीत सोवियत रसायन शस्त्र विशेषज्ञ कर्नल जनरल स्तानिस्लाव पेत्रोव का मानना था कि इराक के पास दो हजार से लेकर चार हजार टन के रासायनिक पदार्थ होंगे जिनमें मस्टर्ड गैस, सैरिन गैस, और हाइड्रोसायनिक एसिड तथा बोंटोलिज्म टॉक्सिन आदि सभी गैसें हैं। हाँ सोवियत रसायन शस्त्रविशेषज्ञ स्तानिस्लाव पेत्रोव इतना अवश्य स्वीकार करते हैं कि बोटोलिज्म टॉक्सिन आदि सभी गैसें हैं। हाँ सोवियत रसायन शस्त्र विशेषज्ञ स्तातिस्लाव पेत्रोव इतना अवश्य स्वीकार करते हैं कि बोटोलिज्म टॉक्सिन इराक की जलवायु में अधिक समय तक कारगर सफल सिद्ध नहीं हो सकती। अतः उसका होना अधिक भयावह अथवा हानिकारक नहीं है।

देवताओं के नायक गणेश जी का युद्ध कभी रावण के साथ भी हुआ था। निश्चित है कि इस युद्ध में एक पक्ष देवताओं का था, देवताओं की सेना का नेतृत्व श्री गणेश जी कर रहे थे और दूसरा पक्ष असुरों का था। असुरों की सेना का नेतृत्व रावण कर रहा था। किन्तु यह युद्ध कब और कहां पर हुआ तथा इस युद्ध का क्या परिणाम हुआ इसका पूर्ण विवरण प्राप्त नहीं होता। इस युद्ध में रावण ने अपनी गैस शक्ति का गणेश जी पर प्रयोग किया किन्तु गणेश जी असुरों और राक्षसों की इस गैस की विचित्र शक्ति के प्रभाव को भली प्रकार से जानते थे इसीलिये वे प्रतिक्षण हाथी के मुख रूपी उस गैस के प्रभाव को रोकने

वाले यन्त्र (गैस मास्क) को मुख के उपर धारण किये रहते थे जिसके कारण रावण द्वारा प्रयुक्त उस विषैली प्राणों को हरने वाली गैस का गणेश जी पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। राक्षसराज रावण अपनी उस प्राणों को हरने वाली गैस की भयंकर शक्ति को पूर्ण रूप से निष्प्रभावी हुआ देखकर गणेश जी की अद्भुत क्षमता पर विचार करने लगा और तब उसे गणेश जी की अद्भुत शक्ति का रहस्य तथा गैस की शक्ति के निष्प्रभावी होने का कारण समझ में आया। गणेश जी के द्वारा मुख और शिर पर धारण किया हुआ वह हाथी के मुख के सदृश गैस निरोधक यन्त्र (गैस मास्क) गैस की इस शक्ति को निष्प्रभावी कर रहा था। राक्षसराज रावण ने बहुत अधिक क्रोधित होकर अवसर पाकर उस गैस निरोधक यन्त्र के दोनों ओर दाँत के सदृश बाहर निकले हुए वायु को शुद्ध करने वाले दोनों दाँत रूपी यन्त्रों को तोड़ना चाहा किन्तु गणेश जी की अत्यधिक सतर्कता और सावधानी के कारण वह दोनों को तोड़ने में समर्थ न हो सका, हाँ एक दाँत रूपी यन्त्र को अवश्य तोड़ दिया। इसका संक्षेप में नारद जी के मुख से वर्णन कराते हुए देववाणी संस्कृत के प्रसिद्ध मूर्धन्य विद्वान् महाकवि माघ अपने प्रसिद्ध महाकाव्य "शिशुपालवधम्" के प्रथम सर्ग में इस प्रकार कहते हैं कि-

विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिका चिकीर्षया (विधित्सया) नूनमनेन मानिना।
न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति।।श्लोक ६०, सर्ग १।।
अनेनमानिना = रावणेन, विषाणं-विषाणं पशुश्रृंगेस्यात्क्रीडाद्विरददन्तयोः इत्यमरः।

अर्थात् विदग्धलीला विलासक्रीड़ा में सहायक कर्णाभरण को बनाने के लिये घमण्डी इस रावण ने गणेश जी का एक दांत इस प्रकार (जड़ से) उखाड़ा कि वह आज भी फिर से पैदा नहीं हो पा रहा है। कहने का अभिप्राय यह है कि रावण गणेश जी के दांत का महत्व भली प्रकार समझता था इसलिये गणेश जी के सामरिक युद्ध की शक्ति को कम करने के लिये रावण ने ऐसा किया।

गणेश जी को लम्बोदर कहा जाता है। वास्तविकता यह है कि शत्रु, राक्षस, असुर, दानव किसी भी समय अचानक देवताओं पर आक्रमण कर देते थे। उनके आक्रमण को रोकने तथा प्रहार से बचने के लिये अपने यन्त्रों को निरन्तर शरीर पर धारण किये रहते थे जिससे उनका शरीर स्थूल प्रतीत होता था। भेद को गुप्त रखने के लिये उन्हें लम्बोदर कहा गया। आज भी जिस प्रकार शत्रु के प्रहार से सुरक्षा हेतु बुलैटप्रूफ जाकेट को धारण किये रहते हैं अथवा छत्रपति शिवाजी ने अफजल खाँ के अचानक होने वाले आक्रमण से बचने के लिये अपने रेशमी वस्त्रों के नीचे लौह कवच और शिरस्त्राण से उनकी पूर्ण सुरक्षा हुई थी तथा सिक्खों के गुरु जी के द्वारा अपनी सुरक्षा तथा शत्रुओं पर आक्रमण हेतु पंचप्यारों के लिये केश, कंघा, कड़ा, कटार और कच्छा प्रत्येक समय धारण करना अनिवार्य बना दिया था। इसी प्रकार गणेश जी देवताओं की सेना के प्रधान नायक, युद्ध एवं सुरक्षा के लिये प्रत्येक समय सन्नद्ध तैयार हरने वाले एक सशक्त देव नायक थे।

श्री गणेश जी को सभी विद्वान् लम्बोदर भी कहते हैं। क्या वास्तव में गणेश जी लम्बोदर हैं ? इस प्रश्न का उत्तर है "गणेश जी लम्बोदर बड़े पेट वाले नहीं हैं। गणेश जी देवताओं के द्वारा अपने ऊपर सौंपे गये दायित्व के निर्वाह के लिये युद्ध से सम्बन्धित उपकरणों को सदैव अपने साथ सतर्कतापूर्वक धारण किये रहते हैं। शत्रु वर्ग तनिक-सा अवसर प्राप्त करके कब आक्रमण कर बैठे ? कब आग्नेयास्त्रों का प्रयोग कर बैठे ? इसका कोई समय, कोई विश्वास नहीं, इसीलिये वे युद्ध के लिये सदैव सतर्कता के साथ तैयार रहते थे तथा राक्षसों द्वारा प्रयुक्त गैस आदि से बचने के लिये अपने मुख पर गैस मास्क फिल्टर तथा अपने वस्त्रों के नीचे पेट और कमर से सटाये हुए आक्सीजन प्राणवायु से परिपूर्ण यन्त्रों को धारण किये उनके ऊपर लौहकवच (शिवाजी की भांति, तथा आज के नेताओं की भांति बुलट प्रूफ जाकेट के सामान) धारण किये रहते थे जिससे पूर्ण सतर्कता के साथ किसी भी समय युद्ध कर सकें और देवताओं द्वारा उनकी रक्षा के दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सकें।"

इस प्रकार शत्रुओं के विनाश का प्रयत्न सदैव ही होता रहा है। जब जिस भी वर्ग को इस प्रकार का अवसर प्राप्त हुआ उसने अपनी पूर्ण शक्ति के साथ उसका प्रयोग करके दूसरे पक्ष का विनाश कर दिया विशेष रूप से दुर्बल अथवा पराजय की सम्भावना करने वाला पक्ष इस प्रकार के कार्य करता है। यहां तक के देवता भी अपने शत्रुओं शक्तिशाली असुरों दानवों का इस प्रकार विनाश करते थे। यथा:-

मन्त्रो हीनो स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।

शपथैः सन्धितस्यापि न विश्वासं व्रजेत् रिपोः राज्यलाभोद्यतो वृत्रः शक्रेण शपथैः हतः।।
न विश्वासं विना शत्रुर्देवानामपि सिध्यति, विश्वासात्त्रिदशेन्द्रेण दितेर्गर्भो विदारितः।।

आज के युग में भी शक्तिशाली शत्रु की पराजय का कारण उसकी असावधानी और शक्तिहीन पक्ष की विजय का कारण उसकी सतर्कता एवं सावधानी बन जाती है। छत्रपति महाराज शिवाजी अपने प्रबल शत्रु अफजल खां से मिलने के लिये जाते समय यदि अपने रेशमी कुर्ते के नीचे लौह-कवच धारण न करते तो निश्चित रूप से अफजल खाँ के कपट का शिकार होकर मार दिये जाते और यदि बघनख (व्याघ्र का पंजा) धारण न करते तो भले ही शिवाजी की हत्या न हो पाती किन्तु शक्तिशाली अफजलखाँ के द्वारा उनको कैद अवश्य ही कर लिया जाता। आज के युग में सर्वाधिक शक्तिशाली समझे जाने वाले देश अमेरिका के सर्वाधिक सुरक्षित राष्ट्रपति जानसन कैनेडी की कार से यात्रा करते समय सब के देखते देखते गोली मारकर हत्या कर दी गई। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी की तनिक सी असावधानी से विष का प्रयोग करके हत्या कर दी गई। भारत की

पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी की षड्यन्त्र करके उनके निवास स्थान जो पूर्ण सुरक्षित था वहीं पर गोली मार कर हत्या कर दी गई। इसी प्रकार पूर्ण सतर्क एवं सावधान होते हुए भी भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की आत्मघाती दस्ते के सदस्य के द्वारा हत्या कर दी गई। पाकिस्तान के भूतपूर्व राष्ट्रपति जियाउलहक की विमान गिराकर हत्या कर दी गई आदि। श्री गणेश जी बुद्धि के सर्व प्रधान देवता हैं। वे शत्रुओं के द्वारा इस प्रकार के किये जाने वाले सम्भावित षड्यन्त्रों दुर्घटनाओं आदि से भली प्रकार से परिचित थे। अभिज्ञ थे, अत: सर्वदा सतर्क रहते थे, ऐसा होना उनके लिये और उनके देवताओं की सुरक्षा रूपी दायित्व के निर्वाह के लिये नितान्त आवश्यक था।

अभी कुछ समय पूर्व आज के इस वैज्ञानिक युग में इटली के सिसली नामक द्वीप में स्ट्राम्बोली नामक ज्वालामुखी पर्वत में उस समय जबकि वह अपनी पूर्ण प्रचण्ड शक्ति के साथ भयंकर रूप में अग्नि को उगल रहा था एक वैज्ञानिक अपने पूर्ण उपकरणों, यन्त्रों एवं साधनों को साथ लेकर उसके अन्दर प्रविष्ट हुआ और उसके अन्दर से अनेक पदार्थों तथा पदार्थों के नमूनों को साथ लेकर बाहर आया। उसने एस्बेस्टस के वस्त्रों एवं एस्बेस्टस के ही रस्सों का प्रयोग किया जो भयंकर अग्नि में जल नहीं सकते थे। ऑक्सीजन (प्राणवायु) के यन्त्रों एवं उपकरणों को निरन्तर अपने साथ रखा जिससे उस भयंकर अग्निकुण्ड के उच्च तापमान में सफलतापूर्वक शुद्ध वायु को प्राप्त करते हुए बाहर आ गया।

भारतवासी प्रारम्भ में वीरों की पूजा करने वाले रहे हैं। वीरों की पूजा भी उनके वीरवेष में करते रहे हैं। गणेश जी का उपरिवर्णित स्वरूप जिसमें उन्हें गजानन तथा लम्बोदर कहा गया है वास्तव में वे युद्ध के लिये तत्पर, युद्ध में काम आने वाले युद्ध के उपकरणों को धारण किये हुए वीरवेष में हैं। धीरे-धीरे उनके उपासकों ने उन्हें गजानन (हाथी के मुख के समान मुख वाले, न कि हाथी के मुख वाले) और लम्बोदर आदि कह कर उनकी उपासना की। परवर्ती उपासकों ने उन्हें सचमुच हाथी के मुख वाला और उसी आधार पर इस प्रकार की अनेक कल्पित कथाएँ तथा उनका भोजन कपित्थ (कैंथ, बेल जैसा फल) एवं जामुन को निर्धारित करके उनके उपासकों एवं सामान्य जन के मन में एक भ्रान्ति उत्पन्न कर दी।

गणेश जी बुद्धि के शक्ति के एवं युद्ध के देवता हैं। गण समूह के पति-गणपति, गणानां-गणों के जो गण-समूह उनके भी पति-स्वामी, इस प्रकार गणानां त्वा गणपतिं हवामहे, अर्थात् गणों के स्वामियों के गणों के स्वामी हे गणेश जी आपको हम अपने इस शुभकार्य को सुविधापूर्वक सम्पन्न किये जाने हेतु सादर ससम्मान आमन्त्रित करते हैं। प्रणाम करते हैं। आप हमारी रक्षा करें।

नम्र निवेदन इन सब का निर्णय करने के लिये सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि निर्णायक विद्वान् को बहुश्रुत होना आवश्यक है। उसे अपने विषय के साथ अन्य विषयों का

भी पर्याप्त अध्ययन करना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में विद्वान् मनीषियों का मत है कि:-

एकं शास्त्रमधीयनो न विद्याच्छास्त्रनिश्चयम्।
तस्माद् बहुश्रुत: शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सक:।।सुश्रुत।।

अध्ययन और बहुश्रुत होने के उपरान्त उसे एक पक्षीय न होकर पूर्ण रूप से निष्पक्ष होना चाहिये, क्योंकि एकपक्षीय विद्वान् केवल अपने ही पक्ष का समर्थन करेगा। बाल्मीकि जी के सम्बन्ध में विक्रमांकदेव चरितम् के रचयिता महाकवि श्री विल्हण ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं :-

लंकापते: संकुचितं यशो यद् यत् कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्र:।
स सर्व एवादिकवे: प्रभाव: न कोपनीया: कवय: क्षितीन्द्रै:।।
विक्रमांकदेवचरितम् प्रथमसर्ग श्लोक २७।।

ऐसी स्थिति में हमें निर्णायक विद्वानों को महाकवि कालिदास के इस मत को मानना चाहिये-

पुराणमित्येव न साधु सर्व न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्त: परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढ: परप्रत्ययनेयबुद्धि:।।
(मालविकाग्निमित्रम् प्रथम अंक, श्लोक २)

"अन्यतरत्" का अर्थ "किसी एक को" न करके "जिसमें जितना श्रेष्ठ होता है उसके उतने भाग को" और "परप्रत्ययनेय" का अर्थ "दूसरे के द्वारा बताया हुआ न करके केवल एक पक्षीय करना चाहिये"। अत: इस सम्बन्ध में बहुश्रुत निष्पक्ष विद्वान् निर्णायक ही प्रमाण हैं।

टिप्पणी : इस लेख पर भूतपूर्व शंकराचार्य स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि ने टिप्पणी करते हुए लिखा है- "उक्त लेख मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा। लेखक ने परिश्रम पूर्वक भारतीय साहित्य का अध्ययन करके गणपति आदि देवताओं का नूतन स्वरूप बताने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। रूढ़िवादी मान्यताओं का परिवर्तन आवश्यक है। मेरा विश्वास है कि मनीषी-विद्वान् लेखक के चिन्तन का आलोड़न करेंगे और उसे स्वीकार करने का साहस भी प्रगट करेंगे।

-सम्पादक

मौद्गल्यकृत अथर्वभाष्य की समीक्षा

डा० दिनेशचन्द्र शास्त्री
वेदविभाग, गु०.कां०.वि०.वि. हरिद्वार।

अद्भुत वाग्मी, विचित्र ऊहा के धनी, उद्भट विद्वान् शास्त्रों के तलस्पर्शी अध्येता, गुरुकुल कांगड़ी के यशस्वी स्नातक और अध्यापक, आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के लब्ध-प्रतिष्ठ उपदेशक एवं प्रधान आर्य समाज के सम्मान्य विद्वान् और प्रतिष्ठित नेता, हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के सत्याग्रही, उच्चकोटि के शास्त्रार्थकर्त्ता, प्रगल्भ लेखक तथा कुशल वक्ता मुद्गल गोत्रोत्पन्न स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज (पं. बुद्धदेव विद्यालंकार) उन विद्वत्-सन्त-शिरोमणियों में से हैं जो अपने आदर्श जीवन के प्रत्येक क्षण में प्रवचन-पीयूष-वर्षण से लोक-कल्याणकारी कार्यों का प्रचार करते रहे। इसी विश्व कल्याण की भावना से ये जगच्छ्रेयोविधायिनी अपनी वाणी को लेखनीबद्ध भी कर दिया करते थे। स्वामी जी महाराज की लेखनी स्रोतस्विनी से निःसृत छोटे-बड़े लगभग ३२ ग्रन्थ हैं[1], जिनमें अथर्ववेद के प्रथमकाण्ड के १२ वें सूक्त तक का भाष्य एवं चतुर्दश काण्ड का भाष्य भी मिलता है। हम यहाँ उनके अथर्ववेद के प्रारम्भिक ५८ मंत्रों (काण्ड १, सू० १२ तक) के भाष्य का ही समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे वेद के विद्यार्थी ही नहीं अपितु वेदों पर आस्था रखनेवाले जनसामान्य भी लाभान्वित हो सकेंगे।

स्वामी समर्पणानन्द जी का व्यक्तित्व, चिन्तन तथा उनकी साधना बहुमुखी एवं बहुआयामी थी। उन्होंने अथर्ववेदीय शौनक शाखा की तर्कानुमोदित व्याख्या की है। यह व्याख्या उन्होंने आ. प्र. सभा पंजाब के प्रधान आचार्य रामदेव जी की आज्ञा से संवत् १९९३ में लिखी, जो कि उक्त सभा के मासिक मुखपत्र 'आर्य' में धारावाही छपती रही।[2] यह भाष्य संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में है और काण्ड, अनुवाक एवं सूक्त की दृष्टि से व्यवस्थानुसार मन्त्रों को रखकर लिखा गया है। वर्तमानकाल में इस भाष्य का नवीन संस्करण गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ और समर्पण शोध संस्थान साहिबाबाद से छपा है।

बड़े दुःख की बात है कि उभयलोक का कल्याण करनेवाले[3] अथर्ववेद का यह भाष्य अधूरा है। परन्तु अधूरेपन से इसकी महत्ता कम नहीं आंकी जा सकती, क्योंकि भाष्यकार ने अपनी व्याख्या में सदियों से अछूते वेद के ऐसे अज्ञात रहस्यमय गूढ़ तत्वों को ढूंढकर प्रदर्शित किया है, जिससे वेदों पर आस्था रखने वाले किसी भी श्रद्धालु एवं

जिज्ञासु को सहज ही उन तत्वों का यथार्थ ज्ञान होकर वेद की आत्मा के दर्शन हो जाते हैं और वह वेदार्थ की ऐसी कुञ्जी प्राप्त कर लेता है कि कोई भी गुत्थी उलझती नहीं।

(१) **विषयगत विवेचन-**

(I) भाष्य-लेखन का प्रयोजन :- वेदभाष्य की परम्परा में प्रस्तुत वेदभाष्य स्वामी समर्पणानन्द जी की अनुपम देन है। इस भाष्य में वेद-मन्त्रों के आधार पर चिकित्साविज्ञान, राजनीतिविज्ञान, युद्धविज्ञान, ब्रह्मविज्ञान, सृष्टिविज्ञान, मनोविज्ञान आदि विषयों का विशेष विवेचन किया गया है[6] जिसके आधार पर अथर्ववेद के विषय में पाठक को कोई सन्देह नहीं रहता और जादू, सम्मोहन, मारण, उच्चाटन, भूत, प्रेत, पिशाच, कृत्तिका आदि परक कल्पनाप्रसूत तथा पूर्वाग्रह पर आधारित लोकप्रसृत अलीक मान्यताओं का स्वतः खण्डन होकर यह सिद्ध हो जाता है कि यह ब्रह्मवेद है, विज्ञान का वेद है।

भाष्यकार ने स्वयं इस भाष्य का प्रयोजन बताते हुए लिखा है- 'तेन च प्रीयताम्भगवान् यज्ञ पुरुषः' अर्थात् इस भाष्य से भगवान यज्ञ पुरुष का तर्पण होगा। इसी प्रयोजन को स्पष्ट करने के लिए भाष्यकार ने इतरवेदों के साथ इस बह्मवेद की प्रयोजनता भी इस प्रकार सिद्ध की है- 'ऋग्वेद में मनुष्य की जिज्ञासा की अग्नि को प्रज्वलित किया गया है। यजुर्वेद में उसी संगृहीत ज्ञान को लोक हित के लिए अपने स्वार्थ को अर्पण करके राष्ट्रोपयोगी कैसे बनाया जा सकता है इसका उपदेश किया गया है। सामवेद में एक विचित्र प्रकार की नव-रस-रुचिरा काव्य सृष्टि की रचना की गई है। इस रसमयी काव्य सृष्टि के अपने ही स्वतन्त्र नियम हैं, इसमें विधाता की अन्य सृष्टियों के नियम नहीं लगते। इस सृष्टि का निर्माण-तत्व आह्लाद है। आह्लादमय सामवेद में यद्यपि नव-रस हैं, तो भी वहां प्रधान रस वीर है। परन्तु इस अथर्ववेद का उदय उसी ज्ञान-राशि का यज्ञपुरुष के अङ्गभूत पुरुष व्यक्ति के लिए हितकारी तत्व दिखाने के लिए हुआ है।' (पृष्ठ सं० ४)

(II)- शरीर के उपयोगी तत्वों का वर्णन:- भाष्यकार की यह प्रतिज्ञा है कि इस वेद में शरीर के लिए उपयोगी तत्वों का वर्णन किया गया है- 'तत्र शरीरोपयोगि किमपि तत्वमस्मिन् वेदे प्रपञ्चितमित्यनुपदं व्याख्यास्यते।' (पृ० १) शरीरोपयोगी तत्वों का वर्णन होने से ही इस वेद का नाम आङ्गिरस है। शरीर की सारी चेष्टा दो कारणों से होती है १-पञ्चभूतों के संघात से बनी हुई शरीर की सात धातुओं के कारण और २- आत्मा

की शक्ति से प्रेरित होने वाले प्राण के कारण। रसायन शास्त्र के पण्डित हमें बताते हैं कि सात धातुओं का आधारभूत अङ्गार (कार्बन) नामक एक तत्व है। अङ्गार का ही दूसरा नाम अङ्गिरा भी है। प्राण का भी दूसरा नाम अंगिरा: है। अङ्गार और प्राण दोनों का ही नाम अंगिरा है यह ब्राह्मण ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है। प्राण और धातु दोनों को बताने वाले अंगिरा: की व्याख्या इस वेद में होने के कारण इसकी अंगिरस संज्ञा है। आंगिरस वेद के आविर्भाव का साधन बनने के गौरव को प्राप्त होने के कारण इसके आदि ऋषि का नाम भी अंगिरा: पड़ गया।

शरीर के हितकारी एंव उपयोगी तत्त्वो में जल, मुञ्ज, दर्भ (शर.) का वेद-मंन्त्रों के आधार पर उल्लेख करते हुए भाष्यकार ने लिखा है 'तेनान्त्रेषु मूत्र-सञ्चयवर्णनं न विस्मयावहन्तद्विदाम्। तस्य च निरोधश्शरेण-वार्य्यते। शर शब्देन च दर्भजलज्ञानानाङ्ग्रहणमिति प्रागुदाहृतम्। तदेषान्त्रयाणामपि प्रभावो मूत्र निरोधविनाश इति दर्शयिष्यामः। दर्भैरद्भिश्च तनूभृताम्मूत्रनिरोधो वार्य्यते।' (अथर्व. भा. १.३.५, पृ० ५८)

अर्थात् मूत्र का निरोध शर से दूर किया जाता है। शर शब्द से दर्भ, जल और ज्ञान का ग्रहण किया जाता है। दर्भ से और जल से पुरुष के मूत्र का निरोध दूर किया जाता है।

अथर्व .१.३.६ (पृष्ठ ६०)के भाष्य में भाष्यकार ने जलचिकित्साशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् जैसे चार्ल्स. डब्ल्यू. बकले आदि के "इण्डैक्स टू ट्रीटमेण्ट" के उद्धरण देते हुए जलचिकित्सा के बारे में स्पष्ट किया है कि कटि स्नान (**Hips bath**) और मेहन स्नान (**sitz bath**) से मूत्र-निरोध दूर किया जा सकता है।

अथर्व. १.३.५ के व्याख्यान में व्याख्याकार ने लिखा है कि शरीर का स्तम्भक वीर्य शर नामक ओषधि के सेवन तथा जलस्नान से बढ़ता है।(पृष्ठ स. ५६)

अथर्व काण्ड १, सू० ३ के भाष्य में भाष्यकार ने 'शर' शब्द को उपलक्षण मानकर मूत्र के प्रवाह की निरोधक चीजों को बाहर निकालने में समर्थ गोखरु आदि अन्य औषधियों का भी ग्रहण किया है।

मूत्र निरोधादि रोग के निवारक जल किस प्रकार प्राप्त होते हैं, उनमें श्रेष्ठता कैसे आती है यह उल्लेख करते हुए लिखा है- (सिन्धुभ्य: कर्त्वं हवि:, अथर्व १.४.३) अर्थात् नदी रूप से बहनेवाले जल प्रयत्न से घर में लाये जा सकते हैं, एवं इनको (अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्य: सह, अथर्व १.४.२) अग्नि के ताप से तपाकर निर्मल किया जा सकता है।

चरकसंहिता १-२ के अनुसार औषध दो प्रकार के होते हैं। एक स्वस्थ को बलिष्ठ बनानेवाले और एक रोगी को नीरोग करनेवाले। जल में ये दोनों प्रकार के गुण हैं। इन गुणों का अथर्व. १.५.४ के भाष्य में वर्णन करते हुए लिखा है- 'जलों में औषध है। औषध रूप जलों के सेवन से पुरुष अमृत हो जाता है। अर्थात् वह पूर्ण आयु भोगता है।'

(अग्निं च विश्वशम्भुवम्, अथर्व० १.६.२) इस वाक्य के आधार पर भाष्यकार ने लिखा है कि- 'श्रुति में सम्पूर्ण रोगों के निवारण करने में समर्थ जल चिकित्सा शास्त्र का बीज पाया जाता है।' (पृ० ८०)

(III) **शल्य चिकित्सा-** भाष्यकार ने शल्य चिकित्सा के बारे में अथर्व. १. ३.७. के आधार पर लिखा है कि मूत्र के निरोध का प्रतीकार केवल जल, दर्भ या अन्य औषधियों से ही नहीं होता, अपितु समय-समय पर शलाका आदि शस्त्र के प्रयोग की भी आवश्यकता होती है- 'अथ मूत्रनिरोधस्य प्रतीकारो न केवलं जलेन दर्भादिशरजातिप्रविष्टौषधप्रयोगेण वा भवत्यपितु तत्काले काले शस्त्रप्रयोगमप्यपेक्षते।' (पृ० ६२)

अथर्ववेद में केवल उपस्थेन्द्रिय की ही शल्य-चिकित्सा नहीं, अपितु, समयानुसार बस्ति को भी खोलकर बस्ति के द्वार के निरोधक पथरी आदि को भी शल्यचिकित्सादि के द्वारा दूर करने का विधान है। इसलिए (विषितं ते बस्तिबिलम्, अथर्व १.३.८) के भाष्य में इसी प्रकार का संकेत करते हुए भाष्यकार ने लिखा है- 'शल्य प्रयोगेण न केवलं मेहनद्वारमेवानावरणीयं वैद्येनापितु यथाकालं बस्तिं विदार्य बस्ति द्वारनिरोधको ऽश्मादिरप्यपनेय इति।'

इसी प्रकार शरीरोपकारक अग्नि- तत्व[५], प्रसव यन्त्र[६] और रसायन[७] आदि विषयों का भी वर्णन किया गया है।

(IV) **अन्य-** मन्त्रों की व्याख्या करते समय देवतानुसार विविध विषयों का उल्लेख किया गया है। पुनरपि प्रसंगवश निम्न विषयों को भी विवेचित किया गया है। जैसे- प्राण और अपान; दार्शनिकता - ईश्वर, जीव प्रकृति; भक्ति का फल, प्रार्थना, मन्यु; राजसूय यज्ञ; वीर्य और दाई आदि।

दार्शनिक भाषा में परमेश्वर के सत्यस्वरूप, प्रकृति और भक्ति के फल को बताते हुए अथर्व १.२.१ के भाष्य में लिखा है- 'निरूतरोपासना प्रसादितभगवदनुकम्पा धारावर्षणं बिना ज्ञानार्जनसाधनभूता कुशाग्रा बुद्धिर्नोत्पद्यत इत्याह अस्य ज्ञानाख्य शरस्य पितरं भूरि-धायसं भूरीणां बहूनां स्थावरजंगमानां धारणकर्तारं पर्जन्यं तर्पयितारं

जनयितारं जनहितकरञ्च तं परमेश्वरं विद्मः जानीमः खलु। अस्य मातरं भगवदनुकम्पारूपबीजं गृहीत्वा ज्ञानजन्मदात्रीम्मातरं भूरिवर्पसं नानारूपां पृथिव्युपलक्षितां प्रकृतिमपि सुविद्मः। यद्यपि भगवदनुकम्पां बिना न ज्ञानमधिगम्यते तथापि तदधिकरणन्तु प्रकृतिरेव तद्विलोडनेनैव ज्ञानराशेर्लाभ इति भावः। यस्य हि नाम शरस्य भगवान् परमकारुणिको लोके सहस्रधाराभिरानन्दवर्षयिता परमेश्वरः पिता यस्य च जननी खल्वियं भगवती भूतधात्री कथमसौ न नियतं लक्ष्यवेधेन सौभाग्यं ममोत्पादयेत।' (पृ० १९)

इसी प्रकार अथर्व १.४.१. में परमेश्वर के स्वरूप और अथर्व १.१.१ के भाष्य में ईश्वरस्वरूप पूर्वक प्रार्थना पर प्रकाश डाला है।

त्रैतवादपरक वैदिक दार्शनिक मान्यता का उल्लेख करते हुए अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के 'त्रिषप्ताः' पद के भाष्य में भाष्यकार ने लिखा है- 'त्रयः सप्ताः। तीन सप्त। इस अर्थ में सप्त शब्द षप् समवाये धातु से बना हुआ क्त प्रत्ययान्त रूप मानना होगा। जो एक दूसरे में समवाय से रहते हों, सदा एक दसरे के साथ और एक दूसर में व्याप्त रहते हों उन्हें सप्त कहेंगे। ऐसे तीन सप्त जीव, ईश्वर और प्रकृति होंगे। इन्हीं तीनों ने संसार के सारे रूपों को धारण किया हुआ है।' (पृ० ८)

छठे सूक्त में ईश्वर की भक्तिपरायणता और भक्ति के नानाविध फलों का वर्णन किया गया है।[८] वैज्ञानिक प्रक्रिया से प्राण और अपान का विवेचन करते हुए अथर्व. १.३.२ के भाष्य में लिखा है- यत्र ह्याचार्य्यैरन्तः प्रविशन्वायुरपानेत्याख्यया बहिर्निगच्छँश्च प्राणेव्याख्यया ऽभिहितस्स हि तत्र वानस्पत्यस्यास्माभिः प्रत्यक्षमुपलभ्यमानस्य सर्गस्यापेक्षया तथाऽख्यातः। तथा हि वानस्पत्यमिदं जगदस्माभिरुत्सृष्टेन वायुना प्राणिति, तदपानितेन च वायुना वयं जीवामः। यो ह्यस्माकमपानः स हि वीरुधां प्राणो यो वीरुधामपानः स एवास्माकं जीवनाधारतया प्राणः। न च वृक्षादौ प्राणनभावः इत्याक्षेपणीयम्। "येन प्राणन्ति वीरुध" इत्यथर्वसंहितायाम् (१/३२/१) दर्शनात्।' (पृ० ४१)

हमने यथामति संक्षेप में उपर्युक्त विषयों को ढूंढ़कर दिखाया है। इसी प्रकार यदि सूक्ष्म-दृष्टि से मुहुर्मुहुः प्रकृतवेदभाष्य का पारायण किया जाये तो कई अज्ञात वैज्ञानिक वैदिक तत्व मिल सकते हैं। क्योंकि वैदिक तत्वों पर स्वा० समर्पणानन्द जी की पहुंच प्रगल्भ एवं प्रामाणिक थी।

२ प्रकृत भाष्य की विशेषतायें

(I) भाष्य-लेखन का ढंग - स्वामी समर्पणानन्द प्रणीत इस अथर्वभाष्य का

सम्यगध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यह भाष्य इस रीति या क्रम (ढंग) से लिखा गया है कि मन्त्र-व्याख्यान में किसी भी प्रकार का संशय न रह जाये। सूक्त के प्रारम्भ में ऋषि, देवता, छन्द और सूक्त-प्रसंग का पूर्वापर सम्बन्ध स्थापन के पश्चात् संहितापाठ, पदपाठ, अन्वय, मन्त्रों की विशद् व्याख्या (विवेचन), शब्दार्थ और अन्त में मन्त्र का भावार्थ स्पष्ट किया है। मन्त्र के प्रारम्भ में मन्त्र-प्रसंग को भी दिखाया गया है।

प्रत्येक मन्त्र के भाष्य में व्याकरण प्रक्रियान्तर्गत निरुक्तशास्त्र और व्याकरण शास्त्र के द्वारा क्रमशः निर्वचन एवं प्रकृति-प्रत्यय, आगम, विकार आदि का अनुसन्धान कर शब्द की सिद्धि भी की है। इस व्या.प्र. में श्री क्षेमकरणदास जी के भाष्य से विशेष सहायता ली गयी है। इसका उल्लेख करते हुए भाष्यकार ने प्रथम मन्त्र के भाष्य में लिखा है- 'व्याकरणप्रक्रियेयं श्री क्षेमकरणभाष्याद्विशेषत उद्ध्रियते। उपरिष्टादप्यस्य मान्यविदुषो भाष्यात् पदानां व्याकृतिप्रदानेन भूयः साहाय्यमादास्यामः। अतस्तस्य महान्तमुपकारं मन्वानास्तस्मै साञ्जलि नमस्कुर्मः।'

(II) **वेदार्थ-शैली**[९] - स्वामी समर्पणानन्द जी ने पुराण-प्रभावित वेदार्थ-शैली जिसमें बहुदेवतावाद, कर्मकाण्ड एवं विनियोगों की प्रधानता है, को न अपनाकर दूसरी महर्षि दयानन्द द्वारा प्राचीन यास्क-शैली के पुनरुद्धार स्वरूप विकसित शैली[१०] को ही अपने भाष्य में अपनाया है।

स्वामी जी ने कोई नवीन मान्यता स्थापित नहीं की है। उन्होंने आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक अर्थों के साथ व्यावहारिक (अधिराष्ट्र, अधिज्यौतिष आदि इतर प्रक्रियापरक) अर्थ कर अथर्ववेद की दैनिक जीवन में उपादेयता स्थापित की है। उनकी वेदार्थ-शैली के सिद्धान्त हैं-

(१) वेद के सब शब्द यौगिक हैं, योगरूढ़ हैं; रूढ़ नहीं।
(२) वेद ईश्वरीय ज्ञान है।
(३) इनमें मानव-इतिहास और भूत, प्रेत, पिशाच, कृत्तिका आदि का वर्णन नहीं है।
(४) वेदों के अर्थ देवतानुसार होने चाहिए; उनमें स्वर, छन्द का भी ध्यान रखना उपयोगी है।
(५) वेद ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत है; उसमें विकासवाद नहीं है, परन्तु अधिकतम विकास की प्रेरणा देता है।
(६) विकासवाद, अदृष्टवाद एवं विनियोगवाद- ये तीन वेद-विघातक वाद हैं परन्तु यौगिकवाद, समकक्षवाद तथा विज्ञाताश्रयवाद - ये तीनों ही वेदार्थ में परमसहायक हैं।

इस शैली को ही स्वामी जी ने अपने अर्थवभाष्य में स्थान दिया है। जिसके आधार पर इस भाष्य की विशेषतायें इस प्रकार हैं :-

(क) **मन्त्रार्थ देवता के अनुरूप हैं** - शब्द की व्युत्पत्ति एवं रचना पर ही वेद के शब्दों का अर्थ निर्भर करता है। एक मूल शब्द के अनेकों अर्थ होते हैं। विषयानुसार उनका मुख्य अर्थ स्थापित किया जाता है। देवता यह इंगित करता है कि यहां इस शब्द का विषयानुसार क्या अर्थ होना चाहिए[11], और वैसा करने पर ही समस्त शब्दों एवं मन्त्रार्थ की ठीक संगति बैठती है। अतः जब मन्त्र के पदों का देवता की दृष्टि से उनके आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक अर्थ किये जाते हैं, तभी मन्त्र का सत्यार्थ होता है। इस प्रकार देवता मन्त्रार्थ को सुस्पष्ट एवं नियन्त्रित करने में सहायक होता है।

देवता के अनुसार, व्यापक दृष्टि से मन्त्र के कई अर्थ तो हो सकते हैं, मगर सब शब्दों का अर्थात् मन्त्रान्तर्गत प्रत्येक पद का अर्थ देवता से- नियन्त्रित एवं सम्बन्धित (संगत) होना चाहिए। इसी बात की पुष्टि वेदार्थ प्रकाशक निरुक्तशास्त्र से भी होती है- ' न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः। प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्या इति (नि० १३/१२)।' देवता मन्त्र का प्राण है, आत्मा है, केन्द्रबिन्दु है, मन्त्रार्थ का आधार और चिन्तनधारा का मार्गदर्शक है।

देवता-सम्बन्धी उपरोक्त तथ्य एवं विवेचन को ध्यान में रखकर ही स्वामी समर्पणानन्द जी का अथर्ववेद भाष्य के रूप में यह सफल प्रयास है। इसमें जहाँ मन्त्र के कई अर्थ किये हैं; वहाँ भी सब शब्दों का अर्थ देवता से नियन्त्रित एवं सम्बन्धित है। इस तरह के संकेत, भाष्य में स्थान-स्थान पर मिलते हैं, पुनरपि इसकी पुष्टि में हम भाष्यकार के निम्न वचन को ही उद्धृत करना उचित समझते हैं- 'इस प्रकार विविध क्षेत्रों में आपः के उस विषयक अर्थ की कल्पना कर लेनी चाहिये। इस भाँति इन मन्त्रों के अनेक अर्थ हो जायेंगे। इसलिये कहा है कि "अनन्ता वै वेदा : " वेद अनन्त हैं।' (पृ० ६८)

(ख) **प्रकृत भाष्य यौगिक–प्रक्रिया पर आधारित है** : यौगिक-प्रक्रिया का वेदार्थ में अत्यन्त महत्व है। निरुक्त के लगभग सभी आचार्य, विशेषकर आचार्य यास्क, वेदों के समस्त नाम-पद यौगिक हैं एवं वे सभी यौगिक प्रक्रिया से अर्थ का बोध न कराते हैं- ऐसा मानते हैं। स्वामी समर्पणानन्द जी ने अपने भाष्य में प्राचीन शास्त्रीय इस यौगिक-प्रक्रिया का ही आश्रय लिया है। इससे दूसरे अनार्ष भाष्यों से वैदिक मान्यताओं के विषय में जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई थीं, उनका समूल निराकरण हो जाता है।

यौगिक-प्रक्रिया की विशेष देन है वैदिक शब्दों के विविध अर्थों को बताना। कोई शब्द लौकिक संस्कृत में जिस अर्थ में प्रचलित है उसका वही अर्थ वेद में भी हो, यह आवश्यक नहीं। वेद में शब्दों का अर्थ लौकिक शब्दों की अपेक्षा व्यापक है। यह सबको मानना ही पड़ता है, यदि ऐसा न मानें तो-

'अश्वा भवत वाजिनो गावो भवत वाजिनी:' (अथर्व १/४/४)। यहाँ 'वाजी' और 'वाजिनी' शब्द का क्या अर्थ करेंगे ? घोड़े घोड़े हो जावें और गौवें घोड़ी हो जायें। कदापि नहीं।

यहाँ सायण को भी 'वाज इति बलनाम' यह निरुक्त प्रमाण देकर 'अश्वा: बलयुक्ता भवथ' और 'गाव: प्रभूतंक्षीरा भवथ' ऐसा अर्थ करना पड़ा। इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए, यौगिक-प्रक्रिया से प्रस्तुत मन्त्र का अर्थ- 'अश्वा: बलवन्तो भवथ तथा गावस्तद्गुणविशिष्टा भवथ. (पृ० ७२) करते हुए भाष्यकार ने इस प्रक्रिया का वैशिष्ट्य दर्शाते हुए डिण्डिम घोष किया है- 'वैदिक शब्दानां यौगिकत्वं न स्वीकुर्वताम्मते ऽश्वा भवथ वाजिन इति वाक्यस्य कथमर्थनिर्व्वहणं स्यादिति विभावनीयम्भाव-विद्भि:।' अर्थात्, जो लोग वेद के शब्दों का यौगिक अर्थ स्वीकार नहीं करते हैं उन्हें इस मन्त्र के उत्तरार्ध की व्याख्या में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि रूढ़िवाद में अश्व का अर्थ भी घोड़ा होता है और वाजी का भी। 'वाजिनी' का अर्थ होता है घोड़ी। तब मन्त्र-खण्ड का अर्थ यह होगा कि 'हे घोड़ो, तुम घोड़े हो जाते हो और हे गौवो, तुम घोड़ी हो जाती हो।" कितना हास्यास्पद अर्थ है। इसी तरह द्वितीय अनुवाक के प्रारम्भ में भाष्यकार ने यौगिकवाद से 'मूत्र' शब्द के कई प्रकार के मल अर्थ कर लिखा है- 'मूत्र शब्देन च रुढ़िम्परित्यज्य योगमाश्रित्यान्येषामपि मलानामात्मन्यन्तर्भाव: कृत इत्यपि स्फुटीकृतम्' (पृ० ८३)।

(बस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव, अथर्व. १/३/८) इस मन्त्रांश की व्याख्या भी भाष्यकार ने यौगिक प्रक्रिया की सहायता से की है तथा लिखा है- 'बस्तिबिलम् का दृष्टान्त होने के कारण समुद्र सागर न होकर, (उन्दी क्लेदने) उसका यौगिकार्थ ही लिया जायेगा। इस प्रकार उदधि शब्द का अर्थ होगा वह कृत्रिम जलाशय, जो कि वर्षाऋतु के जल को एकत्रित करके बनाया जाता है।'

इस प्रकार अनेकों अर्थ यौगिक-प्रक्रिया से इस भाष्य में किये गये हैं। विस्तार-भय से सबको दिखाना असंभव है। यौगिक प्रक्रिया के साथ-साथ भाष्यकार ने वैज्ञानिक प्रक्रिया का भी आश्रय लिया है। परन्तु, वह भी यौगिक प्रक्रिया से ही अनुप्राणित हैं।[१२]

(ग) <u>ब्राह्मणग्रन्थों का आश्रय</u> - वेदमन्त्रों की व्याख्या में ब्राह्मण ग्रन्थों का विशेष महत्व है। वेद व्याख्येय हैं और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्यान। स्वामी समर्पणानन्द जी

ने प्रस्तुत भाष्य में, अपने विवेचन को सुस्पष्ट करने के लिए जहां निरुक्तशास्त्र के वचनों का आश्रय लिया है वहीं व्याकरण की संगति के अभाव में एवं अर्थ को अधिक सुसंगत करने के लिए ब्राह्मणग्रन्थों के उद्धरणों का सहारा भी लिया है। ५८ मन्त्रों के कलेवर वाले इस भाष्य में ४५ प्रमाण ब्राह्मणग्रन्थों के हैं। जिससे स्वा. समर्पणानन्द जी के तद्विषयक साहित्य-मर्मज्ञत्व का बोध होता है। उनके इस भाष्य में ब्राह्मणग्रन्थों के उद्धरणीय अंशों की विपुलता को देखकर यदि हम यह कहें कि उनका प्रत्येक अर्थ और विवेचन ब्राह्मण वचनों के उद्धरणों से अलंकृत है तो कोई अत्युक्ति नहीं। ब्राह्मणग्रन्थों के जिन प्रमाणों को भाष्यकार ने उद्धृत किया है उनका विवरण इस प्रकार है-

(१) ब्रह्माग्निः । श. १/३/३/१९
(२) ब्रह्म वा अग्निः । श. ५/३/५/३२
(३) ब्रह्म ह्यग्निः । श. १/५/१/११
(४) अग्निरु वै ब्रह्म। श. ८/५/१/१२
(५) अग्निरेव ब्रह्म। श. १०/४/१/५
(६) ब्रह्म ह्यग्निस्तस्मादाह ब्राह्मणेति । श. १/४/२/२
(७) वाग् वै बृहती तस्या एषः पतिः ।श. १४/ ४/१/२२
(८) ब्रह्म वै बृहस्पतिः। श. ३/९/१/११
(९) क्षत्रं वा इन्द्रः । श. ३/९/१/१७
(१०) द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति। आर्द्रं चैव शुष्कं च। यच्छुष्कं तदाग्नेयं यदार्द्र तत् सौम्य।। श. १/६/२/२३
(११) रेतो वै सोमः। श. १/९/२/९
(१२) पूषा वै. देवानां भागदुघः। श. ५/३/१/९
(१३) एते खलु वादित्या यद् ब्राह्मणाः। तै० १/१/९/८
(१४) पूषा भागदुघोऽशनं पाणिभ्यामुपनिधाता। श. १/१/२/१७
(१५) असुराः कुसीदिनः । श. १३/४/३/११
(१६) एष वै शुक्रो य एष तपति। श. ४/५/९/६
(१७) रेतो देवतेति। श. २/३/१/१
(१८) प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ। श. १/८/३/१२
(१९) प्राणो वै मित्रः। श. ६/५/१/५
(२०) ब्रह्ममित्रः। श. ४/१/४/१
(२१) प्राणोदानौ मित्रावरुणौ। श. ३/२/२/१३
(२२) उदानो ह्यन्तर्यामो ऽमुं (दिवं) ह्येव लोकमुदनन्नभ्युदमिति। श. ४/१/२/२६

(२३) वज्रो हि वा आपस्तस्माद् येनैता यन्ति निम्नं कुर्वन्ति यत्रोपतिष्ठन्ते निर्दहन्ति ब्राह्मण (पृ० ४३)

(२४) मित्र एव क्रतुर्वरुणो दक्षो ब्रह्मैव मित्रः क्षत्रं वरुणोऽभिगन्तैव ब्रह्मकर्ता क्षत्रिण इति। श. ४/१/४/१

(२५) मित्रस्त्वा परिबध्नीतामिति०। श. ३/२/४/१८

(२६) अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति। तै. ब्रा. १/७/२/६

(२७) वरुणो वा एतं गृह्णाति०। श. १२/७/२/१७

(२८) वरुण्यं वा एतत्। श. २/५/२/२०

(२९) वरुण्यो वै ग्रन्थिः। श. १/३/१/१६

(३०) तस्मादेव पत्न्या योक्त्रे० । श. ३/२/४/१८

(३१) योषा वै आपः। श. १/१/१/१८

(३२) सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहेति तदुभयतो०। श. २/३/१/३३

(३३) अग्नेरेवैतानि नामानि घर्म्मः, अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः। श. ९/४/२/२५

(३४) तै० ब्रा० ३/९/१७/५

(३५) मनो वै देवताऽन्नम्। श. १/४/३/६

(३६) नामृतत्वस्या शास्ति। श. २/२/२/१४

(३७) वीर्यं वा अश्वः। श. २/१/४/२३

(३८) क्षत्रं वा अश्वः। श. ६/४/४/१२

(३९) या गौः सा सिनीवाली। ऐ. ३/४८

(४०) योषा वै सिनीवाली। श. ६१५/१/१०

(४१) ऐ० ब्रा० ७/१३

(४२) उभयं वै तदन्नं यद् दर्भा आपश्च ह्येता ओषधयश्च। श. ७/२/३/२

(४३) आपो दर्भाः। श. २/२/३/११

(४४) आपो वै दर्भाः। तै० ३/३/२/१

(४५) तै० ब्रा० २/८/३/८

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी समर्पणानन्द जी ने यौगिक-प्रक्रिया को अपनाते हुए तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के वचनों को उद्धृत करके अपने भाष्य को अधिक तर्कसंगत, बोधगम्य एवं चमत्कृत कर दिया है।

ब्राह्मणग्रन्थों के अतिरिक्त अथर्ववेदीय मन्त्रों का अभिप्राय भाष्यकार ने आरण्यक, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, गृह्यसूत्र, आयुर्वेद एवं संस्कृत वाङ्मय के अन्य अनेक ग्रन्थों तथा आंग्लभाषा में प्रणीत शरीर विज्ञान से सम्बन्धित ग्रन्थों एवं कोशों के प्रमाणों से स्पष्ट किया है। जिनका विवरण इस प्रकार है-

संस्कृत वाङ्मय के ग्रन्थ - बाल्मीकि रामायण, महाभारत, चरकसंहिता, न्यायदर्शन, न्यायवात्स्यायन भाष्य, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, पारस्करगृह्यसूत्र, जै० उ०, प्र०उ०, नीतिशतक, अमरकोश, भावप्रकाश, राजनिघण्टु, मनुस्मृति, निरुक्त, निघण्टु, गीता, अष्टाध्यायी, उणादिकोश, तै० आरण्यक, फिट् सूत्र और संस्कार विधि आदि। कल्याण मार्ग का पथिक (हिन्दी)।

अंग्रेजी भाषा के ग्रन्थ - प्रेक्टिस ऑफ मैडिसन, मैडिसन बाईब्यूमौण्ट, मैन एण्ड वीमैन, एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, एन इण्डैक्स ऑफ ट्रीटमैण्ट ब्राई वैरियस राइटर्स, होमियोपैथिक मैटिरिया मेडिका, इण्डैक्स टु ट्रीटमैण्ट आदि।

उपरोक्त ब्रह्मण एवं अन्य ग्रन्थों के प्रमाण इस भाष्य में वेदार्थ-पुष्टि में अत्यन्त सहायक होने से दर्शाये गये हैं। उनसे वेदों के स्वत: प्रामाण्य पर कोई आँच नहीं आती। इसको आलंकारिक भाषा में स्पष्ट करते हुए भाष्यकार ने लिखा है- 'अत्र केचिद् ब्रूयुर्हन्त भो: ! श्रुतिवाक्यान्यपि प्रमाणान्तरै: पुष्टिमपेक्षन्ते तत्रेत्थमावेदयामो यदियमेव लोकस्य यात्रा कदाचिन्नौ शकटं वहति कदाच्छिकटो नावं वहति। प्रत्यक्षेण समर्थितेषु वैदिकवचनेषु प्रत्यक्षागोचरेष्वप्यत्र वर्णितेष्वध्यात्म तत्त्वेषु दृढतरम्प्रत्ययमादध्युरध्येतार: इत्येतदर्थमेवायमभ्यासो न तु श्रुतिसूर्यस्य प्रदीपेनालोकनोपहासे पक्षपातस्तन्मर्षणीयो ऽयं व्यक्तिक्रम: कालस्य महिमानं जानद्भिर्विद्वद्वरेण्यैरिति साञ्जलिबन्धमभ्यर्थयाम:।' (अथर्वभाष्य १/९/२, पृ० १०७)

(घ) **अर्थों की अलौकिकता**-प्रकृत भाष्य में ब्राह्मणग्रन्थानुमोदित एवं यौगिक - प्रक्रिया से बोधगम्य और तर्कसंगत देवतानुसारी अर्थो की अलौकिकता क्या है ? अब इस विषय पर प्रकाश डालते हैं।

स्वामी समर्पणानन्द जी ने अथर्ववेदभाष्य में विविधार्थप्रक्रिया का विशेषरूप से प्रयोग किया है। क्योंकि आधुनिक विद्याओं, विज्ञानों और प्रकृति के तत्वों के प्रति उनकी अतीव निष्ठा थी, इसलिए उनके अर्थों में नवीनता है। ज्ञान का उद्देश्य अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनों की प्राप्ति है। इस कारण उनकी दृष्टि में जीवन का लक्ष्य केवल अध्यात्म ही नहीं, अधिभूत भी है। अत एव भाष्यकार ने प्रकृत वेद के प्रारम्भिक सूक्तों में ही आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, अधिज्यौतिष और अधिराष्ट्रादि व्यावहारिक अनेक पक्षों में अर्थ दिया है। वे मन्त्रान्तर्गत किसी एक शब्द को उपलक्षण मानकर उपमा, रूपक और श्लेष अलंकारों के प्रयोग से मन्त्रों के कई अर्थ प्राय: सूचित कर देते हैं। 'आप:' देवता के मन्त्रों की वे जल, परमात्मा, ज्ञानधारा, स्त्री और प्रजा पाँच पक्षों में अर्थ-योजना करते हैं। मित्र का अर्थ प्राणवायु, जीवन का आधारभूत (आक्सीजन), जलों का उत्पादक, राजसभा में राष्ट्रोपयोगी नियम बनाने वाला राजपुरुष आदि करते

हैं। वरुण का अर्थ उदान अर्थात् हाइड्रोजन नामक वायु और पुलिस विभाग का अध्यक्ष (राज्याधिकारी) आदि करते हैं। सूर्य का अर्थ राजपुरुष, विद्वान्, वीर्य, दर्भोत्पादक और सब प्रजाओं का प्राण करते हैं। शर शब्द के ज्ञान, जल और औषधि; चन्द्र के चन्द्रमा, जलों का पिता, ललित कलाओं के प्रबन्ध करने में नियुक्त राजपुरुष; पर्जन्य के परमात्मा, मेघ, संन्यासी, कुलपति, तृप्तिकर्ता एवं सबका उत्पादक; पृथिवी के पत्नी, पृथिवी और उससे उपलक्षित प्रकृति; सोम के वीर्य और वैद्य; अग्नि के ब्राह्मण, भौतिक अग्नि, जाठराग्नि, विद्युत् रूप अग्नि, प्रजा, विद्वान् और प्राणशक्तिरूप अग्नि; बृहस्पति के सिर, वेदवेत्ता ब्राह्मण और पुरोहितों का अधिपति एवं हवि के मन्त्रजप, नहर खोदना और जलयन्त्र बनाना आदि के व्यापार, आह्वान, सत्कार, स्नेहयुक्त व्यवहार, अन्न, कर (टैक्स) आदि अर्थ करते हैं।

विविधार्थ प्रक्रियाओं में मुख्य शब्दों के अर्थ क्या लिये जायें इस विषय में भाष्यकार प्रायः वेदों और उनके व्याख्यानभूत ब्राह्मणग्रन्थों से ही प्रेरणा लेते हैं। जैसा कि वे लिखते है :-

१. 'आपः' से जल का वर्णन तो होगा ही परमात्मा का भी वर्णन हो जायेगा। क्योंकि वेद में ही 'ता आपः स प्रजापतिः' (यजु. ३२/१) इन शब्दों में आपः का अर्थ प्रजापति परमात्मा किया गया हैं (पृ० ६६)

२. 'आपः' का अर्थ ब्राह्मणों में 'योषा वै आपः' (श. १/१/१/१८) स्त्री भी किया गया है। इसलिए मन्त्रों की व्याख्या स्त्री परक भी हो सकती है। (पृ० ६८)

भाष्यकार ने एक मन्त्र के अनेक अर्थों में किसी एक अर्थ को प्रधान मानकर अन्य आनुषंगिक अर्थों को भी दर्शाया है। इस अनेकार्थक शैली में भाष्यकार ने अध्यात्म से अधिदैवत परक तथा अधिभूत एवं अधिदैवत से अध्यात्म परक अर्थों की संगति लगायी है। इन तीनों प्रकार के अर्थों में ही अन्य प्रकार के अर्थ भी श्लेष अलंकार से समाहित हो जाते हैं। ये विविध अर्थ असंगत नहीं अपितु, इनमें औचित्य विद्यमान है।[१३] इसके साथ ही साथ इनमें विशेषण विशेष्य भावों की सार्थकता भी प्रदर्शित की गयी है।[१४] भाष्यकार ने देवतानुसारी प्रतिपाद्य मुख्यार्थ को मानते हुए कहीं-कहीं प्रत्यक्षकृत ऋचाओं का चेतनप्राणिपरक अर्थ भी सुन्दर रीति से घटाया है।[१५] मन्त्र-व्याख्या में एक वचनान्त क्रियाओं के साथ बहुवचनान्त क्रियाओं की संगति इस प्रकार लगायी गयी है कि एक भी अर्थ का उच्छेद (विघांत) नहीं होता।[१६]

प्रकृत वेद के भाष्यकार ब्राह्मण-साहित्य के अनन्य विद्वान् थे। ऐसा हम ऊपर लिख चुके हैं। समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र में भी उनका अद्भुत प्रवेश था। उन्होंने अथर्ववेद के सूक्तों और मन्त्रों का इसी दृष्टि से अध्ययन और विवेचन किया है। वेद

की ऋचायें मानव-जीवन की सामूहिकता को उदात्त करने के प्रयोजन से मनुष्य को दी गयीं, गम्भीर एवं व्यापक अध्ययन के अनन्तर उनकी ऐसी आस्था बन गई थी और इसी दृष्टि से स्वा. समर्पणानन्द जी के प्रकृत वेद भाष्य में एकरूपता और प्रवाह दिखाई देता है। उदाहरणार्थ, अधिराष्ट्रपरक व्यावहारिक अर्थों में मित्र, वरुण, चन्द्र और सूर्य के अर्थों में एकरूपता की संगति लगाते हुए उन्होंने लिखा है-

'मित्र को चाहिये कि वह दूषित शासन विधान के, इसी प्रकार वरुण दूषित पुरुष के, चन्द्र विषय वासना पैदा करने वाले संगीत कला आदि के, सूर्य, प्रमादादि दोषों से युक्त साहित्य के दोषों को इस प्रकार दूर करे, जिस प्रकार शरीर मूत्र को दूर करता है।' (अथर्व. १/३, पृ० ६०)

३. प्रकृत एवं अन्य भाष्यों में अन्तर—

उपर्युक्त वर्णन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वा. समर्पणानन्दकृत यह अथर्वभाष्य वेदभाष्य परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अथर्ववेद के अन्य भाष्यकार हैं, जैसे - वैनियोगिक भाष्यकार सायणाचार्य, गिरधारीलाल शास्त्री (फर्रुखाबाद वाले), पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी और चतुर्वेदभाष्यकार पं. जयदेव शर्मा विद्यालंकार और दामोदर सातवलेकर आदि। इनमें से दा० सातवलेकर को छोड़कर अन्य सबका भाष्यकार ने अपने वेदभाष्य में नामोल्लेख किया है एवं स्थान-स्थान पर इनके सिद्धान्तों को भी उद्धृत किया है। एक दो स्थानों पर गिरधारी लाल शास्त्री के अर्थों को तटस्थभाव से स्वीकारते हुए भाष्यकार ने उनका स्मरण किया है। पं० गिरधारी लाल शास्त्री ने यद्यपि अथर्ववेद के प्रथम सूक्त का ही भाष्य किया पुनरपि, तद्भाष्य के प्रथममन्त्र के 'त्रिषप्ता:' पद के उत्कृष्ट अर्थ को तर्क और बुद्धि की कसौटी पर कस, अनन्य भाव से उचित ठहराते हुए सम्मानपूर्वक उनका स्मरण किया है। पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी के भाष्य से तो स्वा.समर्पणानन्द जी ने स्थान-स्थान पर सहायता ली है, विशेषत: व्याकरण-प्रक्रिया में, यह हम ऊपर दिखा चुके हैं। इनके अतिरिक्त वैनियोगिक भाष्यकार आचार्य सायण के अलीक, मिथ्या, तथ्यहीन एवं असंगत अर्थों का स्थान-स्थान पर युक्तियुक्त खण्डन कर उनके अस्पष्ट अर्थों की सही संगति लगाकर वेद के रहस्यमय तत्वों को भी उद्घाटित किया है। भाष्यकार ने यह इसलिए नहीं किया कि इससे वेदभाष्य-परम्परा में आचार्य सायण का महत्व कम हो जाये, बल्कि वह तो इनको विद्यार्णव, विनियोगादि सामग्रीसंग्रहीता, वैदिक वाङ्मय के महान् विद्वान् एवं पदवाक्यप्रमाणज्ञ आदि विशेषणों से विशेषित कर उचित सम्मान देते हैं एवं तत्कालीन परिस्थिति को ही इसका दोषी ठहराते हैं।[१९]

प्रत्येक युग की अपनी परिस्थिति भिन्न होती है। तत्कालीन वातावरण (परिवेश) से चाहे वह सामाजिक हो या राजनैतिक रचनाकार अछूता नहीं रहता। इसलिए जिस मध्ययुग में आचार्य सायण पैदा हुए वह बड़ा ही उथलपुथल वाला था और उस समय यज्ञों की प्रधानता थी। अतः इस कर्मकाण्ड प्रधान युग की छाप सायणभाष्य पर स्पष्ट दीखती है। क्योंकि उन्होंने अधियज्ञप्रक्रिया से वेदमन्त्रों के कर्मकाण्ड से सम्बन्धित विनियोगपरक अर्थ किये हैं। अपने से पूर्ववर्ती कृति का महत्त्व क़म नहीं होता, क्योंकि भूत में ही वर्तमान विद्यमान होता है। किन्तु, भाष्यकार स्वामी समर्पणानन्द जी ने यहां खण्डन इसलिए किया है क्योंकि सायणाचार्य ने वेद के रहस्यमय तत्वों को न जानकर भूत-प्रेत-पिशाच-कृत्तिका आदि परक व्याख्या करके वेद के स्वच्छ, सुन्दर, गम्भीर अभिप्राय को विगाड़ दिया और इससे अथर्ववेद को वास्तविक वाणी न मिल पाई, उसकी निगूढ़ आत्मा का उन्मेष न हो पाया तथा उसके लाल (रत्न) छिपे के छिपे रह गये। साथ ही, इसके विपरीत भारतीय जनमानस में भूत-प्रेतादि की भ्रान्ति पैदा हो गयी और वे वेदों पर अश्रद्धा रखने लगे।

इस अश्रद्धा एवं अविश्वास को दूर कर छिपे रत्नों को प्रकट करने का ही यह अभूतपूर्व प्रयास है, यह प्रयास इस भाष्य की मौलिकता है। चाहे अल्पकाय यह भाष्य अपूर्ण हो, फिर भी सदियों तक वेदानुयायियों का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

सायण एवं मौद्गल्य (स्वा. समर्पणानन्द) कृत अथर्वभाष्यों के समीक्षात्मक अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सायण-भाष्य में निम्न दोष हैं, जिनसे वह अस्वीकार्य है :-

१. विशेषण विशेष्य भावों में सार्थकता का अभाव।[२०]
२. पूर्वापर सूक्तों एवं मन्त्रों के अर्थों में असंगति और प्रवाह-भंग।
३. वेदों के शब्दों को यौगिक न मानकर मिथ्याविनियोग परक अर्थ करना।
४. साहचर्य का विरोध।[२१]
५. लोकप्रचलित मिथ्या धारणाओं एवं वेदों में भूत-प्रेत-पिशाच-कृत्तिका आदि का वर्णन है ऐसी गलत मान्यताओं के आधार पर अर्थ करना।[२२]
६. अर्थों में औचित्य का अभाव।
७. वाच्यार्थ की प्रधानता।

किन्तु, प्रकृत मौद्गल्यकृत अथर्वभाष्य इन दोषों से सर्वथा असम्पृक्त एवं इनसे विपरीत अनेक गुणों से युक्त है, जिस कारण यह सर्वथा ग्राह्य है। वे गुण इस प्रकार हैं :-

१. प्रकृत भाष्य में मिथ्याविनियोगों एवं तत्परक अर्थों के खण्डन पूर्वक पूर्वाचार्यों के उचित विनियोगों एवं अर्थों का मण्डन हुआ है।[२३]

२. इसमें पौराणिक कथाओं के मूल रहस्यों का उद्घाटन हुआ है।[२४]
३. व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता है।
४. अर्थों में औचित्य विद्यमान है।
५. पूर्वापर सूक्तों एवं मन्त्रों के अर्थों में संगति एवं प्रवाह है।
६. विशेषणविशेष्य भावों में सार्थकता है।
७. पदों के अर्थों में साहचर्य का विरोध नहीं है।
८. इसमें वेद के शब्दों को यौगिक मानकर एवं तत्प्रक्रिया एवं वैज्ञानिक-प्रक्रिया दोनों से भूत-प्रेत-पिशाच-कृतिका आदि परक अर्थों का खण्डन कर वेद के स्वच्छ, सुन्दर एवं गम्भीर अभिप्राय की पुनः स्थापना की गयी है।

इत्यादि उक्त इन कतिपय गुणों के कारण यह मौद्गल्यकृत अपूर्ण अथर्वभाष्य वेदभाष्य-परम्परा में अपनी पूर्णता का भान हमेशा कराता रहेगा, ऐसी आशा है।

पाद टिप्पणी

१. देखो, डा० भवानीलाल भारतीय, आर्यलेखक कोश, पृष्ठ ३२।
२. प्रस्तुत लेख में पृष्ठ संख्या उसी के अनुसार दी गयी है।
३. देखो, सायणाचार्यकृत अथर्वभाष्य की भूमिका में- 'ऐहिकामुष्मिक फलं चतुर्थं, एवं प्रकृत वेदभाष्य की पृ० सं० ६
४. अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के भाष्य में ही भाष्यकार ने लिखा है 'इस प्रकार इस मन्त्र (ये त्रिषप्ताः०) में अध्यात्मविद्या, भूतविद्या, वयोविद्या, लिंगविद्या, आयुर्वेदविद्या, संगीतविद्या, शब्दविद्या, चित्रकला और राजनीति का बल वाचस्पति मुझे देवें ऐसी प्रार्थना की गई है।' (पृ० १२)
५. द्र० अथर्व. काण्ड-१, अनुवाक-२ की भूमिका, पृ० ८३
६. द्र० अथर्व. १/११/३ का भाष्य, पृ० १२५
७. द्र० अथर्व. १/९ सू० का भाष्य
८. समाराध्यमानं विविधाम्फलपरम्परां प्रसूते। (अथर्वभा. १/६/२)
९. इस विषय में विशेष जानकारी के लिए देखो स्वामी समर्पणानन्द प्रणीत 'ऋग्वेदमण्डलमणिसूत्र' का प्राक्कथन।
१०. द्र० अथर्व० १/१/१ का भाष्य, पृ० ७

११. बृहद्देवता ८/१३६; वेङ्कटमाधव प्रणीत ऋग्वेदानुक्रमणी ५/१/५-७; एवं कात्यायनरचित ऋक्सर्वानुक्रमणी के अनुसार देवता मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय होता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार मन्त्र का जो-जो अर्थ होता है, वही उसका देवता है। (द्र. ऋ. भा. भू., प्रश्नोत्तर विषय)

१२. इस विषय में विशेष जानकारी के लिए द्र० सू० ३ के मं० २ और ३

१३. औचित्य विद्यमानता के उदाहरण स्वरूप मित्र और वरुण के अर्थो को लिया जा सकता है। जै० पृ० ४५ पर- वाणी का बन्धन वरुण अर्थात् पुलिस के हाथ में नहीं रहना चाहिए, वह मित्र अर्थात् राज्य नियम बनाकर अमृत का बन्धन करने वाले राजपुरुष के हाथ में रहना चाहिए अन्यथा प्रजाओं की अपने अभिप्राय के प्रकाशन की स्वतन्त्रता नष्ट हो जायेगी।

१४. देखो, अथर्व. १/३/८ का भाष्य, पृ० ६३-६४.

१५. देखो, अथर्व १/५ आपः सूक्त में मन्त्र सं. १ से ३ का भाष्य तथा एतत्सूक्त सम्बन्धी भाष्यकार का यह कथन-७ अब इस सूक्त में स्त्री अर्थ की प्रधानता है। क्योंकि यहां "स्थ" "दधातन" आदि मध्यमपुरुष की क्रियाओं का प्रयोग हुआ है। मध्य यमपुरुष का प्रयोग चेतन में ही अधिक सुन्दर रीति से घट सकता है। इसके साथ ही "जनयथ" क्रिया का प्रयोग भी स्त्रियों में ही अधिक सुन्दरता से घट सकता है।(पृ० ७४)

१६. (संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि, अथर्व १/१/४) के भाष्य में एकवचनान्त क्रिया के साथ बहुवचनान्त क्रिया के पढ़ने का औचित्य प्रदर्शित करते हुए भाष्यकार ने लिखा है- 'उस (वाचस्पति) की कृपा से मैं भी पूर्ववर्ती विद्वानों की तरह अपने ज्ञान को उपयुक्त पात्रों में दान कर सकूँ। जिससे केवल मैं ही नहीं हम सारे ही ज्ञान से संयुक्त हो सकें। 'विराधिषि' इस एकवचनान्त क्रिया के साथ 'संगमेमहि' इस बहुवचनान्त क्रिया के पढ़ने का यही भाव है।' (पृ० १८)

१७. देखो, अथर्व १/१/२ का भाष्य - 'मन्त्र के वाचस्पति और वसोष्पति पदों से एक और ध्वनि निकलती है। विद्याओं के दो रूप होते हैं। एक केवल ज्ञानरूप और दूसरा सीखे हुए ज्ञान की व्यावहारिक उपयोगिता। वाचस्पति शब्द केवल ज्ञानग्रहण की सूचना देता है। और वसोष्पति शब्द ज्ञान की जीवन यात्रा के लिए उपयोगी धनोपार्जन की शक्ति की सूचना देता है। (पृ० १४)

१८. अयमेव च वायुः समुद्रजलमादाय गच्छतीत्यगस्त्यस्य समुद्रशोषण कथा मूलमित्यनुसन्धेयम्। (अथर्व १/३/२ का भा०, पृ० ३६)

१९. 'सायणादयो ऽपि च सकल शास्त्रावगाहिनो वेदाभ्यास पराङ्मुखेऽस्मिन् घोरतमेकाले विनियोगादि सामग्री संग्रहीतारः पदवाक्यप्रमाणेषु त्रिष्वपि तन्त्रेष्वव्याहतगतयो मादृशानान्तु वन्दनीया एव यच्च कुत्रापि भ्रान्तमेतैर्विद्यादिग्गजैस्तत्र कारणमद्यत्वे ऽस्माभिरुपलभ्यमानानां प्राकृतिकतत्वान्वेषणसारपरिवृढानां तेषां तेषां विद्युदादिशास्त्राणां तस्मिन् काले ऽनुपलाभ एव।' (अथर्व भा० १/१/१, पृ० ६-७)

२०. द्र. अथर्वभा० १/३/८

२१. द्र. अथर्वभा० १/११/४

२२. द्र. अथर्वभा० १/१/१

२३. द्र. मौद्गल्यकृत अथर्वभा. १/११ की भूमिका

२४. द्र. मौद्गल्यकृत अथर्वभा. १/३/२

THE TEN GURUS AND VEDIC DHARMA (HINDUISM)

BY INDER DEV KHOSLA, ADVOCATE (RTD.)

Sakal Jagat Khalsa Panth Jage Dharam Hindu Sakal Bhand Bhage
(Guru Govind Singh) (Saviour of Hinduism)

DEFINATIONS :

a) **Guru** : It means a religious teacher, giving personal spiritual guidance to his disciples, leader.

b) **Hinduism** : The complex of beliefs and customs comprising the dominant religion of India.

c) (i) **Sikh** : A member of Hindu sect, founded in the 16th century that teaches monotheism. It also means disciple (Collions concise dictionary 1987).

(ii) The word Sikh means one of the north India monotheistic sect founded by Guru Nanak (1468-1528), later a military, confedracy, alliance-Sikhism (Hind disciple) Chambers dictionary.

(iii) The word Sikh has no root of its own, it is a distortion (अपभ्रंश) of the word (शिष्य) viz disciple. Accordingly all the ten gurus were gurus and not sikhs (शिष्य) whoseo-ever accepted discipleship or adopted gurumat (गुरुमत), after taking (अमृत) amrit, became (शिष्य) Shisya.

d) **Khalsa Panth** : A panth created for the purpose to destroy the evil doer and to eliminate sufferings (Sainapati).

Ten Gurus :

We often read in books, news papers and also otherwise read these words "Sikh gurus or gurus of Sikhs" which words litrary mean and convey the idea that these ten gurus were sikhs or they exclusively belong to sikhs. The use of such words is a misnomer and palpabaly deviation form accepted norms.

Guru and Shishya (शिष्य) are two different identities. Guru has a higher status than his (शिष्य) disciple. There is a relation of teacher and

taught, leader & follower. Originally it was a Khalsa panth or gurumat (Miri & piri) as is evident from old chronicales like gurumat nirnay, Gurumat Sudhakar, Janmsakhi (जन्म साखी) Bhaiwale etc. All the ten gurus, right from guru Nanak Dev to guru Gobind Singh, were born to Hindu parents, brought up as Hindus throughout their lives practiced Hinduism (Sanatan Dharma), preached Hinduism (gospels of Vedas), were all cremated according to Hindu rites and above all sacrificed their and their kins lives to save Hinduism from the hands of the tyrrant muslim rulers of India of their times, who wanted to convert hindus to muslim faith. They were the leaders and preachers of Hindus and Some of them were spiritual guides. In view of these observations how can one justify that they are or were sikh gurus. Why do Hindus of today condescend to such an assertion when they were their own kith & kin. Gurus are spiritual guides and belong to humanity as a whole, Guru Nanak's teachings are clear on the subject (इको नूर तो सारे उपजे कौन चंगे ते कौन मन्दे) This sectarian outlook reduces the grateness of gurus, more specially of guru Nanak who is considered as a jagat guru (जगत गुरु) Hindu Ka Guru Muslim ka Pir, His (वाणी) Vani is read and quoted everywhere. Guru Govind Singh was also an epoch making national leader of his times and to confine these gurus to a particular sect is to lower their dignity and stature. Guru Govind Singh himself declared in 1695 that he is national leader of a renowned Nation.

Hinduism, as defined above, is a complex of beliefs, and even if there may be some difference in philosophical throught that does not take away the gurus or their follows from the ambit of vast Hinduism. In the main stream of Hinduism, Monoism, Monotheism, Vedanties, Veshnvites, Shivits, Braham Samaj, Prarthna Samaj, Arya Samaj, Idol Worshiper, Non Ideal Worshiper, Kabir Panthis, Dadupanthis are all included, even the atheists are not out of it. Vedic dharma is so wide that there are six schools of throughts in it. Guru Nanak was against the prevalent Brahamanism, Orthodxy of his times. He rightly., like other preachers, condamned idolatory and false practices adopted by the Brahmanas to exploit the ignorant. I herein quote Dr. G.C. narang in this connection." Guru Nanak was the first reformer of modern times who

emancipated the Hindu mind completely from fetters of mythology (Transformation of Sikhism). During the British rule the Privy Council, which was the highest Court of Justice then, rightly adjudicated that sikhs are Hindus and this ruling still prevails.

When the tyrany of the muslim rulers of India reached its climax, against Hindus, Guru Gobind Rai (Singh) could not bear it any more, hence he stood up in revolt against them, like all other great men of all ages, to fight out the tyrant (Adharmi) and formed a force of his disciples (an army or group of people) whom he rightly baptized as khalsa (Pure), reliable people and laid down a code of conduct for them which was relevant in those times and was considered to be necessary. He called it a panth not any new religion. He did it under the command of God as he rightly said (आज्ञा भई अकाल की बगुरु चलाये पंथ) He writes in his vachitra Natak, the following words, while creating this panth. He himself admits that various other panths have been created by wisemen and accordingly he too, like them, is creating one. जो कोई होत भयो जग सिआना तिन तिन अपने पंथ चलाना। जिन जिन तनक सिधि को पायो। तिन तिन अपना राह चलायो जो प्रभु परम पुरुष उपजाए तिन तिन अपनो राह चलाए हम इस काज जगत में आए धर्म हेतु गुरुदेव पढ़ाए।

"There can be nothing more clear than the above words that his was a panth (way of life and not a religion) and that panth is like other panths of great men. Guru Gobind Singh was born to destroy Mughals" (Jagat Singh Sikh studies)- Guruji himself said (I took birth in order to spread faith, save sanity and expiscate all tyrrants) (गुरु गोविन्द ते उसदे खालसे) To establish a panth was a fashion in those days, like kabir panth, Dadu panth, Nirmal panth etc. and not the creation of a new religion. Raising an army, in revolt of a adharmi, of whatever kind, is a natural phenomenon, a dire necessity and every great man has been doing that. Rana partap, Shivaji of his time, did the same thing. Neta Subhash Chandra bose raised I.N.A. against the british rule, Mahatma Gandhi revolted in his own way and there is nothing new in such a concept. Gita is quite clear on the subject.

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

Such great men work under the ordinance of God-They are rather

God sent and Guru Gobind was one of them and he fulfilled the wish of God. Khalsa panth was an army to combat Mughals, it was not merely a religious society but a band of soldiers & workers to fight injustice. This fact is abundantly clear from he following para quoted by proof : Krishan Singh author of Sikh Lehr. "The gurus did not dabble in politics casually or accidently, as some historians may like to put in, they regarded it their duty to fight not only injustice but political oppresion as well" Guru Hargobind founded the Akal Takkat, a seat of temporal authority and set-up two flags flutterneg before it. distincly signifying one as religious and the other as of temporal authority. Such steps tenta-mounted to the declaration of a parallel government and marked a clear change in the character of the movement (Jagat Singh in his journal of Sikh studies), It was a movement. (लहर) The advice of the ninth guru to the rebels of Aurangjeb, was a calculated step to invite confrontation with the Delhi Emperor (ibid) These facts clearly establish that panth was more or less a socio-political organization based on dharma righteousness and not a separate religion. Although I am no scholar of history, yet I have not come across any statement of any of the guru that he is not a hindu.

We now dilate, in brief, some of the basic tenets of Hinduism (Vadic Dharma and those preached by the great gurus) to prove that there is absolutely no difference in main beliefs. The main principles are (1) God (2) soul (3) nature (4) theory of karma & reincarnation of soul (5) Faith in veda which is the source of dharma) and voice of God, and (6) Sacredness of cow, Historians & other writers, who were/are ignorant of the contents of veda, lay much stress on the fact that Guru Nanak founded monotheism but the real fact is that he merely revived it, which is already there in vedas as is clear from the following mantras. As stated Dr. G.C. Narang that Guru nanak was the first reformer in this respect and not the propounder of a new religion.

(a) God : Hindu Version : God is one and only one called by various names, in respect of his main qualities, he possessess, He is perfect in himself and his main name is OM.

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो। य एकं देवमेकवृतं वेद। स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न। य एतं देवमेकवृत वेद। (Ath. Veda)

God is called neither the second, nor the third not yet fourth. He takes care of all those who breath or do not breath) इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः सः सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहु (Rig. 1,164,46) He (OM) is one but the wise men call him by various names like Indra, Mitra, Varuna. पूर्णमदः पूर्णमिदं.......... पूर्णमिवावशिष्यते (Upnishada) He is perfect in Himself, if everything a taken out of Him. He still remains perfect and full.

Guru Version :

सिरमउ जासु बिस्भार एकै नाम जपद
अनन्त अनेके (Sukhmani Saheb)
एक एकंकार प्रभु (Japji Saheb)
ओ सृतिनाम (Japji Saheb)
अनिक भांति होई पसरिया नानक एकंकार
तव सर्वनाम कथेवन करम नाम वर्णत सुमति (Raj mehela 5,14)
सर्वऐर विखै रमयो जह चक्रन्हि नहीं चित्र (Akal Stuti Chand 182)

Soul (H) इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।

(Naya) Souls are not born, but are eternal they charge bodies according to their deeds is various births.

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः
अहोरात्रे प्रजायेते, अन्योऽन्यस्य रूपयोः (Ath. 10-8-23)

Learned ones call soul as eternnal though they appear new. Birth and deaths are like day and night, occur in the form which one of the other of them does wear.

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे (Gita 2.20)

Guru Version :

उडिया हसं दसाई राह आया गया (Raj majh 1.1)
मुहिया नाऊ
न जीउ मरे न डबै तरे (Raj Gauri 1-2)
मरणहार हार एह जिअरा नाही (Raj Gauri 5-112)
कहु नानक इह जीउ कारण बंध होई (Raj Bharce)
इहजेव बहुते जन्म भ्रमिआया ता सतगुर शब्द सुण्इआ (Asadiwar)

Nature (H) : Nature is a compound a five gross elements viz (1) Fire (2) Water (3) Akash (4) Air (5) Earth and three gunas (Sat, Rajas & Tamsa)

(5)(g) पंच तंत्र को तन रचंयो, जहते उपजे नानका तह में लीन हो जान
पवन पानी अग्नी पत्ताल तिसु विचि धरती
थपी रखी धरमसाला (Gapie Sahab)
पवन गुरु पानी पिता माता धरति महतु (Gapie)
दिवसु राति दुई दाई दाहआ खेले सगल जगत

Veda & Cowl (H) वेदेन वै देवा असुराणां विन्ते वेघ धमविदन्त तद्वेदस्य वेदत्वम्

Veda is the fountain head or repository of all knowledge and wisdom, an outline of the whole world Vedas contain all the wisdom that God in His Divine dispensation gave to the forefathers of humanity. (g) same of ignorant & prejudice minded persons say that guru Nanak did not believe in vedas which fact in totally incorrect as in evident from his following words.

सामवेद, ऋग जजुर अथर्व ब्रहम मुख भाईया है त्रैगुण (Maru Mehla)
ओकर वेद निरमाए (Ram Kali) God created Vedas चउथ उपाए चारे वेदा खाणी साजे
चारे वाणी भेदा चचे चार वेद जिन साजे चारे खाणी चार जुगा
खाणी चार जुगा (Rag Asa)
असंख पंथ मुखि वेद पाठ (Japji)
मति वेद (Veda is knowledge) Japji
चारे वेद ब्रह्मा कुंउ दिये पठ पठ करे
बीचारी चारे वेद ब्रह्म नो फुरमाई (Rag Asa)
धर्मवेद मर्यादा जग को उलाऊ
गुउ घात का दोष जग से मिटाऊ (Rag Asa)

This quotation also confirms the belief that much importance to the protection of cow is given in vedas and gurus confirm this fact.

Theory of Karma rebirth (H) : असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेही भोगम्। ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृकया नः स्वस्ति (Reg. 10.59-6)

O God ! bestower of all sorts of pleasures be kind to give us efficient working eyes and other senses in our next birth as at present.

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौदेवी पुनरन्तरिक्षम्।

पुनर्नः सोमस्तत्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः ।। (R/10/59-7)

Oh omnipotent God ! be kind to bestow on us in our repeated birth all the senses in perfect order.

(g) लख चुरासी जोनि भ्रम प्राईयो (Rag Gauri)
इह जीव बहुत जन्म भ्रमिआ (Asadivar)
अनिक जन्म बहुजोनिं भ्रमआ बहुर बहुर दुःख पाया
इह जीव बुढ्े जन्म भ्रमिआता सतगुरु शब्द सुणइआ

6. Misc : Rites & Ceremonies (H) Vedic dharma lays much stress of performance of Yajna & Agnihotra (g) Guru Gobind Singh. Once performed a special Yajna, wherein ghee was poured continuously till the end of the ceremony, and he declared as under stating that it is our dharma.

इह तो धर्म हमारा सार
करते रहे नृप मुनि अवतार
सो तो हम भी करना चाहें
जिसते सभ सृष्टि सुख पेहै
आप हवन के नफे जो गाए
साई अश्वयमेव सब भाए
पर उपकार जगत पर भारी होई आपका जग सुख कारी

(ii) Yojyopavit (H) It is an important Ceremoney is hindu Dharma.

(G) The following is the discription of Shri Guru Gobind Singh i.e. when Yanyopavit (जंजू) Ceremony was performed पीत पुनीत उपरना धोती जोती रवि नव छबि छाजे पीत जनेऊ मनो बहन ससि वै बिजरी विनुरी भ्राजे History suports that Guru Sahiban wore their Yajyopavit after proper Ceremoney (Dixsha). From the life history of Guru Tejbahadur we find these words तिलक जंजू रखा ताका कीनो बाड़ी कलू महि साका

In view of the above what more Cogent reasion is needed to prove that Khalsa Panth was a part & parcel of Hindu Dharma. All the principals are the same. Khalsa panth was a political organization as is clear from the two slogans which are still sung by shishyas.

राज करेगा खालसा आकी रहे न को

Conclusion : Upto the end of 18th Century this Organization was called khalsa brotherhood & the word Bhai' used to be prefixed before most of the names. Even today important persons or leaders are called Bhai as Bhai Rajnit Singh. Maharaja Ranjit Singh upto 1893) named his kingdom as 'Sarkar Khalsa" not sikh Sarkar.

The seed of Separation from the main stream of Hinduism, was sown by one Bhai Kahan Singh of Nabha who wrote a book with a caption "Ham Hindu Nahi" This book got popularity within the Circles of keshdhari Sishyas and they began to control & manage all the institutions of Khalsa panth, to the exclusion of non kesh Dharis. Upto this time both bhais & Pandits used to read guru garanth Sahib in gurudwaras, and took part in the management of properties, and performed ceremonies. The bug of jealousy strung and the spirit of domination & control of institutions played their part. Thus all the institutions began to be controlled by keshdharis who were in majority. By and by this spirit of Separatism, gathered strength which found more help from then government viz British Raj whose patent policy was to divide and rule. They gave fillip to this separatism and thus Sikhism became a popular word.

If the present Sikhism, is a separate religion, than the original khalsapanth then it is a different question, else all the true followers & disciples of Gurusahiban are all Hindus or ought to be Hindus as GuruSahiban themselves were, irrespective of the fact they wear five kakas, or are adopting a different way of life from others of their common ancestors.

APPENDIX

The prime fact about religious is that they are part of social order they are founded by the disciples and followers of saints and prophets, and not by the saints and prophets in whose name they are spread and developed. (Hindustan Times Sept. 1997)

VANPRASTH AWARENESS

YASHWANT MUNI*

One-Day Seminar on Vanprasth Awareness Generation and its significance in Modern context was held on 11-1-1998 by the August institution Saptrishi (Vanprasth Ashram Visakhapatanam 530016 Andhra Pradesh). I spoke on it as follows.

Our rishis divided the human life of 100 years equally in four periods (Ashrams) named as Brahmcharya, Grahsth, Vanprastha and Sanyas. In Brahmcharya, one was devoted to acquisition of all round knowledge and development of health and mind. This prepared one for Grahsth, that is, family and married life where one was required to earn one's livelihood and to help the needy. When exhausted at 50, he was required to switch over all his worldly belongings to the youngsters. This handing over was known as "Pagadri System" in Punjab and thereafter a walk over to the natural habitat, called Van (jungle). Hence, this system was named as Vanprastha Ashram. In Vanprastha Ashram, man was required to devote himself for God, self realization and service of humanity. He would do Tapa and prepare for the next fourth Ashram called Sanyas Ashram after 75 Years of age. At this stage with the concentration of mind, he would seek union with Almighty and attain Moksha, the final aim of mankind. The state must support and fulfil the needs of Vanprasthis and Sanyasis. They would devote themselves to return the debt of the society and that of God.

Let me throw light on the functioning of the Vanprastha Ashram. It is the most important period of life. The Vanprasthis can make the world worth living. They can work as counsellors and teach the youngesters honorarily on the basis of knowledge and experiences attained by them in the 1st and 2nd quarter of life. This would save millions of rupees. This system could even now be adopted and I am sure that this August Saptarishi (Vanaprastha) Ashram will lead in this noble cause.

Another aspect of Vanprasth is to send representatives of

their own in the parliament who may be men of intellect and honesty. They can aspire even to become Rashtrapati to lead the country to be properly governed. I wish you to read a legend written on the front wall of the Parliament House, above the seat of The Speaker :

"न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः न ते वृद्धा

ये न वदन्ति धर्मम..............................."

(An assembly is incomplete without the old, And without the old, the Dharma is not observed.)

The western civilization and the rapid urbanization have broken our ancient joint family system. Our younger generation has neither the affection for the old nor the willingness to accommodate them. As such, the revival of Vanprastha Ashram system has become the need of the day, so that the old people may spend the remaining part of their life in a dignified manner.

In out culture, it was essential to repay the debts of the parents, teachers and God. But, today that idea is no more taught to our present generation. So, they do not care to repay their parents as in the past. This factor too adds to the necessity and importance of establishing Vanprasth Ashrams in the country.

The westernized way of life has affected the health of the old people very badly. You very well know that health is wealth especially in old age. So there is an utmost need of Vanprastha Ashram for their happy life with a sound mind in a sound body. A healthy man can do Tapa, Sadhana and service to the society. In this regard, only Vanprastha can play the best role by providing the old some light manual work, light games, yoga exercises and libraries. These activities will keep them busy and also satisfy their hobbies too.

Last but not the least is the plight of the old man in our country fast adopting the western culture. Today, a young man when married separates himself from his parents leaving them to

live to a solitary life and feed themselves frugally and even by begging. The plight of the old generation is pitiable. where should they go and how could they live ? Of course, the States are helping the old but this help is insufficient. The old are considered as burden on the nation. I am therefore of the firm opinion that only voluntary organisations like Vanprastha Ashrams can make the lives of the old people worth living. Thus, if there could be a Vanprastha Ashram in every district or sub-division, like a home for senior citizens in the advanced countries where old people would find solace, living place and befitting company to pass their lives. Their blessings will elevate the organizers to the higher plane. Thus, the Vanprastha Ashram of these days will play the multiple role, that is, place for Sadhana, imparting knowledge to the society, self realization and preparation for Sanyas Ashram. Finally it will give health and shelter to the aged.

Our Vanprastha Ashram at Haridwar has been taking care of all these aspects for the last 68 years and as an elder brother in this field, I bless this new Institution for the noble cause.

182, Arya Vanprastha Ashram,
Jwalapur, Hardwar-249407

MICROBIOLOGICAL ASPECTS OF KRISHNAL [Abrus precatorius] PLANT IN VEDA AND MODERN SCIENCE

MRS. SHALINI*

The antimicrobial properties of green plants have been recognized since the prehistoric times. The Vedas, pharmacopes of ancient Indian and Chinese system of medicines are largely based on green plants. Unfortunately the use of plant extract or their constituents for controlling disease did not receive much attention, Although the scientific recognition of antimicrobial potentialities of higher plants has occurred during the past few decades.

However, higher plants have been recognized to release volatile substance which keep the air remarkably free from pathogenic micro organism. Likely, we get same description in Vedas. Lot of plants have tremendous activity and medicinal value.

A plant "KRISHNAL" described in Yajurveda Samhita. The fruit of the climber "Gunja" is also described [1]. In Dhanvantri Nighantu KRISHNAL is mentioned as dry, warm and its juice is pungent. It cure from poison, worm and other disease also [2].

In the Atharva Veda Bhashya Sahan mentioned "Gunja" as a medium to have long life and also to have a victory [3]. In addition to "White Gunja" plant is also referred in his work. It has also find place in Taitriya Brahman and in Sutra Sahtya [4].

KRISHNAL is also mentioned as a synonyms of Gunja in Bhavprakash Nighantu by Chunekas. It has two kinds, one is Shweta (white) and other is KRISHNAL (black). Both the forms have been described as a medium for vat, pitta disorder, fever, throat disease, illusion, asthematic, thirst, madness and in eye diseases. It cures, vrishya, varna and kandu (wounds). It is also used for the treatment of worm and leprosy. Chunekar accept it as " Abrus precatorius" Linn., a member of

* Gurukula Kangri, Haridwar.

leguminoseae family [5].

Dhanvantri described it as a subkind of poison [6]. While Suryakanit accepted it as one of the form of the measurement which is generally called as "Ratti" [7]. It is also mentioned as "HIRANYA KRISHNAL" in Taitiriya Brahman [8]. In Vedic index it described as seeds of "Abrus precatorius" plant [9]. In the indigenous system of medicine, the seed extract use externally in the treatment of ulcer and skin infection.

According to latest classification of plants, botanical name of "KRISHNAL" is "Abrus precatorius" which is a leguminous plant. While common names are Crab's Eye, Indian liquorice, Jequirity.

The roots and leaves are used medicinally due to the presence of Glyrrhizin, which is principal constituent of liquorice and used in coughs and catarrhal infection. The roots are used in preparations prescribed for gonaorrhoea, Jaundice and heamoglobinuric bile and possesses diuretic tonic and emetic properties [10]. The alcoholic extract also showed antiestrogenic activities [11,12].

A decoction of leaves is widely used for cough, cold and colic. The leaves are also considered useful in biliousness, leucoderma, itching and in other skin disease [13,14].

The seeds are poisonous due to the presence of Abrin. The bruished seeds have been used for the poisoning cattle, homocidal purposes and abortifacient. Abrin is powerful irritant Alkaloid. It has been studies intensively for its antitumor activities [15,16]. Powdered seeds are said to disturb the uterine function and prevent conception in women. Also used to bring about abortion and employed by malygerers in the army [17].

Petroleum ether extracts of seeds showed antifertility activity, aqueous extract adversely influenced pregnancy and development of foetus in mice. Seed oil produce post coital antifertility activity and oral contraceptive in mice and rats [18,19]. In Ayurvedic medicine, the seed oil is to promote the growth of human hair [20].

REFERENCES

1. तै.सं. - 2/3/2/2,3; मै.सं. - 2/2/2; काठक सं. - 11/4
2. धन्व. नि0 - गुरुप्रसाद शर्मा, पृ. 125-126
3. अर्थव. - 1/35 सायण भाष्य तथा 1/9 सायण
4. तै. ब्रा. - 1/3/6/7; हि.श्रौ. - 3/8/20; 13/1/62; 22/4/1,2,3; बौ.श्रौ. - 11/1; 13/23,24; कौ.सू. - 11/19; 52/20
5. भा.प्र.नि. - के.सी. चुनेकर, पृ. 354, 356
6. धन्व. नि. - डा. गुरुप्रसाद शर्मा, पृ. 280
7. वैदिक कोश - सूर्यकान्त,, पृ. 108
8. हिरण्य कृष्णल - तै. ब्रा. - 1/3/6/7
9. वैदिक इन्डैक्स - अनु. राय, प्रथम भाग,, पृ. 205
10. Shah, C.S. and Bhatt, J.G. (1973). Abrus precatorius as a substitute for liquorice, Deptt. of pharmaeognosy L.M. College of Pharmacy, Ahmedabad-9, 35, 102.
11. Burkill, I.H. (1935). A Dictionary of the Economic products of Malya peninsula, (2 vls.) I, 9.
12. Kirtikar, K.R. and Basu, B.D. (1935) Indian medicinal plants and revived by Blatter J.F. claus and Bhasker K.S. Clalil Mohan Basu, Allahabad, 2nd edn, 4 vols. with C-1033 plates.
13. Dastur, J.F. (1951) Medicinal plants of India and Pakistan. A concise work describing plants used for Drugs and Remedies according into Ayurveda, Unani, Tibbi Systems (D.B> Taraporewala sons and company Ltd., Bombay).
14. Chopra, R.N., Chopra, I.C., Handa K.L. and Kapur L.D. (1958). Chopra's Indigenous drugs of India, (U.N. Deer and sons private Ltd., Calcutta).
15. Desai, V.B. and Sirsi, M. (1966) chemical and pharmacological investigation on Abrus precatorius Linn., N.O. leguminoseae, (Pharmacology laboratory, Indian Journal Pharmacy, 28, 164.
16. Shabnam, S.R. (1964) Medicinal plant of Chamba, Indian Forester, 90, 50.
17. Minchin, A.(1935) A little red seed : The Malingerer's Friend, Indian Journal Forestry, 61,776.
18. Nagrajun, S; Jain, H.C and Aulakh, G.S. (1982). Indegenous plants used in Fertility control, cultivation and utilization of Medicinal plant, 560.
19. Desai, V.B. and Rupawala, E.N. (1996) Antifertility activity of the steroidal oil derived from the seed of Abrus precatorius Linn. on Rats and Mice, Indian Journal of Pharmacy, 28,344.
20. Eckey, E.W. (1954). Vegetable fats and oils (Reinhold Pub. Corp. New York) pp.-503

ADULT EDUCATION : Its Need in India

DR. SATENDRA KUMAR*

Adult Education is the key which unlocks the door to modernization. It is said that adult education shares the same board aims and objectives with education. Nevertheless, the concept of adult education is like a chameleon; its appearance changing with every observer from country to country to country and even from region to region within the same country. Adult Education is by no means a settled exercise since it is of recent origin. It is relatively young discipline. The adult education departments were started into the University system as a part of Government policy in 1978. They were initially established as an extension activity to contribute towards national endeavor to eradicate illiteracy. In essence, adult education is so closely related to the social, political and cultural conditions of each country that no uniform or precise definition can be arrived at. The terms non-formal education, continuing education, complementary education explain different forms and approaches of adult education.

By adult education we do not mean literacy education alone. Adult education is more than literacy or remedial education to 'fill the gap'. It is something people need and want so long as they are alive and regardless of the amount of their previous education. It must therefore, be an integral part of any modern country's educational system.

In normal conditions programmes of adult education presume universal literacy. In the Indian context 60% of the people are still unable to read and write and naturally, 'liquidation of illiteracy' becomes a matter of immediate national concern. The scope of adult education is as wide as life itself. Its requirements are somewhat different from those of the normal school system. It depends upon the support it receives from several agencies, particularly the universities and the public institutions and libraries. The effectiveness of the programmes of adult education depends upon a competent administrative machinery.

In Gandhiji's words, " Mass illiteracy is India's sin and shame; the

* Jamalpur Kalan, Jwalapur, Haridwar

literacy campaign must not begin and end with mere knowledge of the alphabets. It must go hand in hand with the spread of useful knowledge" Again he says, " Literacy is not the end of education, not even the beginning..... it is only with means whereby men and women can be educated."

As this country is eclipsed by corruption and the corresponding offences, similarly the society has been punctured by communalism, casteism, regionalism and linguistic differences. The unity and integrity of the country is in danger. This is a result of mental immaturity. Meanmindedness results in intolerance, while mental immaturity results in meanmindedness. Education must broaden the intellect and the mind.

Knowledge is like fire. Fire can be used for cooking, but also for burning a house. Hence, spread of knowledge does not culminate in social progress. Human and social values must be inculcated alongwith the spread of knowledge. Just as the destructive use of knowledge is a blot to education, similarly the intellectual and mental slavery of the educated, their orthodox nature, blind beliefs and otherwise dependence are equally despising. These prove the education to be useless and are its insult. The purpose of education is to teach a man to think independently, but mental slavery proves that the purpose has been vitiated. What the society needs is a thinker, a leader and a foreseer and not slaves carrying a load of books or prating crammers. It's necessary for the progress of the society that education produces foreseeing thinkers. Mental and intellectual slavery takes back the society by many years. So the purpose of education should be to widened the horizon of mind and intellect.

It is useless to quote that adult education is a matter of life and death which can be ignored or postponed only at grave peril. If someone were to prepare a literacy map of the world and colour illiterate areas of the earth black, India will, to our shape, look like a dark continent. This is the state of things which makes us feel both ashamed and indignant ashamed that a country which prides itself one of the oldest cultural traditions in the world, should have come to this pass, indignant because we've been content to put up with this blot on our reputation for so long.

The National Literacy Mission 1988 has stressed the importance of literacy in these words, " Literacy is an indispensable component of human resource and development. It is an essential tool for communication and learning for acquiring and sharing of knowledge and information, a precondition for an individual's evaluation and growth and for national development". I can summarize the following reasons for the need of adult education in India.

1. Adult education is a powerful auxiliary and an essential incentive to primary education. No programme of compulsory education for children can succeed without the active support and co-operation of adults.

2. India has chosen the path of democracy and the right of vote has been extended to all adults over 18. But the success of democracy rests on the quality of the citizens of the state. It is really very difficult to achieve anything remarkable by way of progress-social, economic or political unless we give full attention to the education of adults.

3. The concept of adult education has brought a new hope for adults who could not get opportunity of receiving education during their school years. Through various programmes and techniques of social education, the illiterate farmers in the fields, labourers in the factories and other can be made acquainted with the latest developments taking place in their own fields and thus they can be made happier and useful citizens who would understand their rights and duties given to them in the constitution of free India.

4. The greatest good that adult education programmes can do to our adults in various fields is the training in co-operative living. Adult education can inculcate the spirit of co-operations which, at present, is lacking among our masses. It will fight against groupism, casteism, and institutionalism.

Needless to say, the problem of providing literacy to our adults is dimensionally a daunting one. The past programme had suffered due to excessive dependence on administrative structure and lack of involvement of the mass organization, media and the educational institutions. Adult education, being considered and intergral part of rural development, must start with the needs of the millions of individuals who consti-

tute the communities of the rural people and must seek to involve all those living in rural areas, rural workers, peasants, marginal frames, artistions and self-employed women as will as men, in the process of development.

Problems related to adult education are multi-dimensional and multi-disciplinary. Research studies undertaken by educators, economist, sociologists, anthropologists, management specialists, would provide useful insight into problems relating to adult education.

The present article is not only an attempt to provoke new thought and to strengthen existing knowledge, it is an impassioned call to all of us to accept our own responsibility and direct duty, to walk back down the ladder which we have climbed, and build in all the missing rungs to helpless fortunate adults to the freedom of status, carrier, and personal fulfillment to which only the fullest educational opportunity is the key.

To sum up, adult education is thus the foundation on which alone free India can build up a welfare state which will recognize the claim of both individual freedom and social security. Our concern for 100% literacy is not an end itself but as a means of bringing about the cultural and socio-economic transformations of our people.

References

1. **Education and Social Change :** A convocation address by Mr. Justice, P.B. Sawant, Chairman, P.C.I.
2. **Educational Status of Rural Girls,** Ed. Kalawti (New Delhi Discovery Publishing House, 1994)
3. **Education for Rural Reconstruction,** Ed. Neelam Sinha (New Delhi, Commonwealth Publishers)
4. **Social Foundation of Education**, Ed. T. Herold (New York : John Wiley & Sons, 1971), pp. 151-170.
5. **Women & Education**, Ed. B.M. Sharma (New Delhi : Commonwealth Publishers).

INCIDENCE OF POVERTY IN INDIA - ITS ESTIMATION AND RELATED DATA GAPS*

A.C. KULSHRESHTHA, GULAB SINGH AND RAMESH KOLLI

CENTRAL STATISTICAL ORGANISATION, NEW DELHI

INTRODUCTION

Removal of poverty and improvement in the standard of living of the masses have remained the basic objectives of the Indian Planning. These are being achieved through planned economic growth and target oriented poverty alleviation programmes for the poor. To help formulate effective schemes for poverty alleviation, measurement of poverty is essential. Though there is difference of opinion among the experts on the methodology to be adopted for its measurement, the importance of quantification of poverty is well recognised. This paper describes the official methodology used by Planning Commission for estimation of proportion and number of poor and the available data source used for this purpose. Data gaps relating to estimation of incidence of poverty have also been enumerated.

2. OFFICIAL METHODOLOGY FOR ESTIMATION OF PROPORTION AND NUMBER OF POOR

The question of defining poverty line was first mooted by the Indian Labour Conference in 1957. A definition of poverty in the Indian Context, was attempted for the first time by a distinguished Working Group set up by the Planning Commission, Government of India in July, 1962. After taking into account the recommendations of the nutrition Advisory Committee of the Indian Council of Medical Research (ICMR) in 1958, regarding the balanced diet, the Working Group came to the view that the national minimum for each household of 5 persons (4 adult consumption units) should not be less than Rs. 100 per month at 1960-61 prices or Rs. 20 per capita. It further suggested that for urban areas this figures should be raised to Rs. 125 per month per household or Rs. 25

per capita to cover the higher prices of the physical volume of commodities on which the national minimum is calculated. By implication, this meant that the corresponding amount in the rural areas would work out to Rs. 18.90.

Dandekar and Rath (1971) used an average calorie norm of 2250 calories per capita per day for both rural and urban areas as a criterion to define the poverty line so as to segregate the poor from non-poor. On the basis of National Sample Survey (NSS) data on consumption expendture, the study revealed that an average monthly per capita expenditure of Rs. 14.20 in the rural areas and an average monthly per capita expenditure of Rs, 22.60 in the urban areas both at 1960-61 prices would suffice to meet the requisite calorie requirements. Prof. Sukhatme argued that average calorie requirement does not represent the minimum below which a person can be treated as undernourished. Bardhan (1971), Rudra (1974), Minhas (1969) and others forwarded different estimates of incidence of poverty at regional level following mainly the national norms.

Planning Commission constituted a 'Task Force on Projections of Minimum Needs and Effective Consumption Demand' in 1979 to recommend a poverty line. The methodology as formulated by the 'Task Force' has since then, been used in estimating the incidence of poverty in Planning commission.

The poverty line has been defined by the 'Task Force' (1979) as that expenditure level, which meet the average per capita, per day calories intake of 2400 calorie for rural areas and 2100 calories for urban areas. The monetary equivalent of these norms (i.e. poverty lines) have been worked out using the 28th round (1973-74) NSS data relating to private consumption both in quantitative and value terms. Using approapriate conversion factors, the calorie content of consumption baskets corresponding to various expenditure classes have been worked out. Applying inverse linear interpolation methods to the data on average per capita monthly

expenditure and the associated calorie content of food items in the class, separately for rural and urban areas, it has been estimated that, on an average Rs. 49.09 per capita per month satisfied a calories requirement of 2400 kilo calories per capita per day in rural areas and Rs. 56.64 per capita per month satisfied a calories requirement of 2100 kilo calories per capita per day in urban areas both at 1973-74 prices. The poverty line so estimated implies that having this amount, on an average, an individual will distribute his expenditure between food and non-food items in such a way that the calorie content of his food consumption satisfies the desired calories norm. Thus, the concept of poverty line used here is partly normative and partly behavioural.

The poverty cut off points, as estimated above are updated over time by using relevant price inflators weighted by approapriate consumption basket, to take care of the changes in price level. Using the updated poverty line and the data on the size distribution of population by expenditure classes from the household consumption survey conducted by National Sample Survey Organisation (NSSO), for the reference year, the number and proportion of persons below the poverty line are estimated. The poverty estimates are made seperately for rural and urban areas and at national and State levels, using appropriate consumption distributions. In estimating the State level incidence of poverty, the national calorie norm and the corresponging all India poverty line have been applied on the State specific household consumption distribution, seperately for rural and urban areas.

It has been observed that the national total of household consumption expenditure as estimated on the basis of the result of NSS household consumption survey is different from the national private final consumption expenditure estimated in national Accounts Statistics (NAS). To make the estimates of total private consumption expenditure consistent from both the sources the expenditure levels reported by the NSS is raised by a factor of proportion, capturing the differences between the total private

consumption as obtained from NSS and the total as estimated by NAS. This factor is applied uniformly to all expenditure classes. The incidence of poverty is then estimated with the adjusted distribution of consumption expenditure. The estimates of poverty based on the aforesaid procedure are presented below :

TABLE : ESTIMATES OF POVERTY (ALL INDIA)

		1972-73	1977-78	1983-84	1987-88
Poverty line (Rs.)	Rural	41.0	60.0	101.8	131.8
(at current prices)	Urban	47.0	69.9	117.5	152.1
Proportion of	Rural	54.1	51.2	40.4	33.4
People below	Urban	41.2	38.2	28.1	20.1
Poverty line	Combined	51.5	48.3	37.4	29.9

Source : Planning Commission Government of India.

There has been significant decline in the incidence of poverty over years. The decline in the incidence of poverty has been achieved due to combined effect of faster economic growth and poverty alleviation programmes.

The procedure for estimation of poverty has been criticised and its limitations have been pointed out from a number of angles. Broadly they fall in two categories, the first related to the concept itself and the second arising from the data and methodologies used in India for estimating the poverty line. Planning Commission, Government of India constituted in September, 1989 an Expert Group to consider methodological and conceptual aspects of estimation of proportion and number of poor in India. The Expert Group has since submitted its report in July, 1993 and its recommendations are under the consideration of the Government of India.

3. POVERTY AND AGRICULTURE

Fortunes of rural poor in India are intrinsically liked with the

Agriculture sector as it contributes about 30 per cent to the GDP and provides sustenance to more than two thirds of the people. Agriculture impacts on the poor in more ways than one. A higher agricultural output leads to lower food prices as well as improve food availability of poor. It will not only generate employment opportunities in the agriculture sector but would also affect the growth in the non-agricultural sector, though linkage effects thereby creating income earning oppotunities. Agricultural growth on the whole will boost the overall economic develoment. However, if a gricultural growth involves a shift from labour intensive crops and technologies to labour saving ones this might as well work to the detriment of the rural poor rather than beneficial as wages from agricultural employment constrtute a major component of the incomes of the poor. Evidences from India, however, suggest that on the whole the green revolution resulted in the net increase of labour use and real wage rates, Dantwala (1985).

4. DATA SOURCE FOR ESTIMATING INCIDENCE OF POVERTY

The data on income distribution by size classes is required for estimation of incidence of poverty. The time series data on income distribution by size classes is, however, not available in India, in the absence of which the country wide data on consumer expenditure, available through NSS consumer expenditure surveys, has become the only source of data for the poverty related studies.

NSSO has conducted household consumer expenditure surveys since its first round started in October, 1950 through the 28th round (1973-74). After 26th round onwards. It decided to conduct the survey once in 5 years only starting from 27th round onwards, So far, four quinquennial surveys have been conducted in 27th (1972-73), 32nd (1977-78), 38th (1983), and 43rd (1987-88) rounds. To maintain the continuity of survey data on consumer expenditure for construction of time series, NSSO has carried out annual thin sample surveys on household consumer expenditure in addition to quinquennial surveys. This has started

from 42nd (1986-87) round.

5. DATA GAPS RELATING TO POVERTY ESTIMATION STUDIES

(1) The poverty line is anchored in a norm for calorie consumption which is taken as representing an absolute nutritional requirement based on the age, sex and activity status of the entire population. To buy the requisite calories one requires definite income. The measurement of the extent of inequality in the distribution of income in the country, therefore, requires data on household income distribution by size classes. Inspite of its importance and direct relevance to economic policy formulation, the study of income distribution in the country has not come to form a regular exercise mainly because of the paucity of the basic data relating to income distribution. In the absence of time series data on household income distribution, most poverty related studies in India have relied on NSS Consumer expenditure survey data.

(2) Income received by the households by far has the largest share in the total and includes not only the labour and property income generated through production of goods and services but also the transfer incomes received mainly from the government in the forms of relief, unemployment insurance benefits, pension etc. Besides these items of factor income and transfers, households also receive income in kind in the form of community and social services provided by the government, like education, medical and health and recreation which are received by the households without any financial payments (or concessional payments). Such services are expected to accrue proportionately more to lower income groups than the rest. Comprehensive study of household income distribution should, therefore, include all these aspects.

NSSO have been making attempts to collect data on household income, the latest being through the "Pilot Survey on Income, consumption and Saving" in 1983-84 in both rural and urban areas of five states, namely Maharashtra, Tamil Nadu, Uttar Pradesh, Haryana, Orissa and the metropolitan cities of Calcutta, Bombay, Delhi and Madras. The Primary objective of the survey is

to explore the possibility of evolving an operationally feasible and technologically sound methodology for the collection of data on household income through household surveys. In this survey two approaches were adopted for the measurement of household income, namely (i) collection of data on income from different sources of income of sampled households and (ii) collection of data on household consumption and savings which would give an alternative estimate of household income. Unfortunately, it has not been possible so far to evolve a suitable methodology for collection of data on household income through household surveys. The efforts in this direction should, however, be continued.

(3) Non-availability of appropriate state specific cost of living is an important gap in the data availability for making state specific estimates of poverty. Steps are required to be taken to construct the price indices representing changes in consumer prices of the poor at relevant disaggregated levels.

(4) The estimates of the incidence of poverty as derived from NSS consumption expenditure distribution provide a composite picture of the number of people whose per capita consumption expenditure is below the desired minimum. It does not, however, provide a complete picture of the state of well-being of the population; for example, it does not tell us anything about the living environement. The data is, therefore, required for dissecting the poverty profile in terms of dominant characteristics, namely, their distribution by region, social group, family characteristic, like, size, education age, sex of the head of the household, dependency ratio etc.

REFERENCES

1. Bardhan, P.K. (1971) : On the minimum level of living and the rural poor - A further note. *Indian Eco. Rev.* April 6.
2. Dandekar, V.M. and Rath, N. (1971) : *Poverty in Inida*. Indian School of Political Economy, Pune.

3. Dantwala, M.L. (1985) ; Technology, growth and equity in Agriculture. In Mellor and Desai (eds) 1985 - Agricultural growth and rural poverty - variations on a theme by Dharam Narain. IFPRI/John Hopkins University Press, Baltimore and London.

4. Minhas, B.S. (1969) : Fourth Plan - Objectives and Policy Frame. Vohra and Co., New Delhi.

5. Rudra, A. (1974) : Minimum level of living. In T.N. Srinivasan and P.K. Bardhan (eds.) A statistical Examination in Poverty and Income Distribution. Statistical Publishing Society, Calcutta.

6. Planning Commission, Government of India (1979) : Report of the Task Force on Projections of Minimum Needs and Effective Consumption Demand.

7. Planning Commission, Government of India (1993) : Report of the Expert Group on Estimation of Proportion and Number of Poor.

Dr. Gulab Singh
(Jt. Director, Planning)
N-289, Sector 8, R.K. Puram
New Delhi - 110022

पुस्तक-समीक्षा

१. दीक्षालोक

(प्रकाशक- स्वामी श्रद्धानन्द अनु. प्रकाशन केन्द्र, गु० कांगड़ी, सम्पादक प्रो० विष्णुदत्त राकेश, सह सम्पादक- डॉ० जगदीश विद्यालंकार)

दुर्लभ दीक्षान्त भाषणों एवं सारस्वत व्याख्यानों का संग्रह-रूप यह ऐतिहासिक दस्तावेज है। इसका प्रकाशन श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार से सन् १९९७ में हुआ। आगामी वर्षों में गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय की मनायी जाने वाली शताब्दी की विस्तृत योजना की यह पहली कड़ी है। ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक हिन्दी जगत् के जाने माने विद्वान् और गुरुकुल कांगड़ी वि०वि० में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर डॉ० विष्णुदत्त राकेश हैं जिन्होंने इसका सम्पादन गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ० जगदीश विद्यालंकार के सहयोग से किया है। इसका मूल्य ५००/- रु० है। विद्वान् सम्पादक ने इस ग्रन्थ को दो खण्डों में विभक्त किया है। पहले खण्ड में सन् १९१३ से १९९६ तक इस शताब्दी में विश्वविद्यालय में दिये गये ऐतिहासिक दीक्षान्त भाषणों का संग्रह है। जिसमें स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय, साधु टी.एल. वास्वानी, आचार्य नरेन्द्रदेव, पं० नेहरु, डॉ० गोकुल चन्द नारंग, डॉ० सम्पूर्णानन्द, पं० गोविन्दवल्लभपन्त, डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, डॉ० राधाकृष्णन्, श्रीमति इन्दिरा गांधी एवं डॉ० ओदोलेन स्मेकल आदि के प्रमुख दीक्षान्त भाषण हैं। द्वितीय खण्ड में विश्वविद्यालय में समय-समय पर विभिन्न अवसरों पर प्रदत्त सारस्वत व्याख्यान हैं। जिनसे भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं वैदिक साहित्य से सम्बन्धित गहन और दुर्लभ तत्वों पर प्रकाश पड़ता है। इसमें डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, महात्मा मुंशीराम, आचार्य रामदेव, विनोबाभावे, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, डॉ० मंगलदेव शास्त्री, नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, पं० नेहरु, ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, प्रो० भवानीलाल भारतीय, डॉ० रामनाथ वेदालंकार, आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन आदि के लेख उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार प्रधान सम्पादक ने इस सारी दुर्लभ सामग्री का सम्पादन अपने द्वारा लिखित विस्तृत परिचयात्मक भूमिका के साथ किया है। इस भूमिका में शिक्षा से सम्बन्धित व्यक्तित्व के निर्माण में अतीव उपयोगी घटक तत्वों जैसे - अर्जित संस्कार, माता-पिता की शिक्षा, परिवेश आदि का वर्णन करने के साथ गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली पर पर्याप्त विचार किया है और इस प्रणाली की एक अन्य विशेषता आत्म निरीक्षण द्वारा शिक्षा पर भी विचार किया है। इस तरह वेद, उपनिषद् एवं अंग्रेजी कवि वड्र्सवर्थ के आवश्यक उपयोगी वचनों को अपने कथ्य की पुष्टि में यथा स्थान उद्धृत करते हुए गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों द्वारा राष्ट्रिय निर्माण के विविध

। क्षेत्रों में किये गये कार्यों का भी संक्षेप में दिङ्मात्र उल्लेख किया गया है। ग्रन्थ आरम्भ में हिन्दी जगत् के मूर्धन्य विद्वान् एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के यशस्वी कुलपति डॉ० धर्मपाल जी का प्रस्तुत ग्रन्थ के सन्दर्भ में 'दो शब्द' के रूप में उद्बोधनात्मक संक्षिप्त लेख भी है। वास्तव में यह ग्रन्थ उनकी इच्छा का ही मूर्त रूप है। कुलपति डॉ० धर्मपाल जी की इच्छा थी कि गुरुकुल में समय-२ पर पधारने वाले महापुरुषों के भाषणों का संकलन प्रकाशित किया जाए ताकि आज का विद्यार्थी यह जान सके कि इस शताब्दी के निर्माता महापुरुषों की दृष्टि में गुरुकुल क्या था और गुरुकुल क्या है ? निस्सन्देह इन भाषणों तथा व्याख्यानों से पूरी शताब्दी का शैक्षणिक इतिहास उभरकर सामने आया है। हमें विश्वास है कि नई पीढ़ी के अध्येताओं को इन भाषणों के प्रकाश में अपना लक्ष्य निर्धारित करने की प्रेरणा मिलेगी। सुधी सम्प्रदाय में निश्चय ही यह ग्रन्थ आदर का पात्र बनेगा ऐसा विश्वास है। ग्रन्थ का मुद्रण कम्प्यूटर द्वारा बहुत सुन्दर रूप में हुआ है। इसमें लगभग ६०० पृष्ठ हैं। यह ग्रन्थ पठनीय एवं सराहनीय है।

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री
उपसम्पादक : गुरुकुल पत्रिका

2. SPIRITUAL EXALTATION OF OM (B.D. DHAWAN) 395/15=I, CHANDIGARH

Review of the book entitled 'Spiritual Exaltation of OM" by Dr. B.D. Dhawan, Self published, available with the author at House No. 359/15-!, Chandigarh, India PP xxvii+128. Rs.150/180 (soft & hard bound) / $10.

I have thoroughly gone through the afore-said recently published book of Dr. Dhawan. He has retired from the Punjab Civil Service as Deputy Secretary to Government of Punjab(India). He is M.A. in Economics/ Sanskrit and Ph.D. in Sanskrit (Vedic Literature) from Punjab University, Chandigarh. This is his second book on Vedic Literature. Besides, he has written about forty literary articles on vedic literature. Valmiki Ramayana etc.

According to Indian Philosophy, OM has been the 'Most sacred word' and an ifallible means of meditation on God. Infact, the entire vedic literature is studded with so many verses which eulogise not only its efficacy in Self-Realisation, but also personal moral upliftment through recitation of and meditation on OM. This

laudable syllable has been said to be not only a mere means, but also the *loftiest goal* to be achieved within the span of this very life. The book of Dr. Dhawan deals with the metaphysical sublimity of OM in an altogether new and unique manner so as to land the worshipper into the arena of 'Extreme Bliss'. The book has been written in an easily understandable simple English, but the flow of the language as well as the thought underneath have been made to go hand in hand so as to progressively rid any normally zealous reader from the all-permeating characteristic human ignorance and misery so as to enable him to attain the qualities of a 'Self-Liberated' person in this very life.

The book is not confined to mere efficacy of OM in uplifting an ardent seeker of 'Supreme Truth' to the high pedestal of 'Mystic Ecstacy', but it also opens up vast vistas of moral and spiritual knowledge to a devoted reader. It immensely widens and sublimates insight into the high altitudes of moral/spiritual equipoise and loftiness. The book gives much needed introduction to the broad basics of Vedic Literature like Monotheism, true nature of author does stop here and diligently and preseveringly presents before the reader's mind in a chart form perfect unison between the functioning of the various limbs/organs in the human body and management of the operations of a multitude of macrosmic forces of the entire universe in the form of a well-knit and perfectly controlled phenomena wherin mighty functionaries like sun, moon etc. observe unfailing regularity and precision even upto fraction of a moment. In short, the book presents to any zealous reader a comprehensive view of the latent, but easily discernible operation, of the omnipotent 'Divine Force' in whole of the world. This, by itself, is potent enough to infuse a moral awakening in the modern materialistically dominated mind so as to impart the essential balancing impact for elimination of the worldly stresses and strains. There are, therefore, good grounds to ifer that the book greatly serves as an elixir for attainment of moral upliftment in this very life.

Mandukya Upanishad which forms the primary base of this book is very brief. However, it is one of the principal upanishads because of its metaphsycal richness and unique approach towards the subject of meditaiton through OM. It has almost become a practice to super-impose on it, the contents of another voluminous book called Agamasastra of Gaudapada, even though, most of it is irrelevant to the subject matter of the upanishad. The author has, therefore, pertinently, brought out the points of contrast and distinction betweem these two books in the form of a seperate chapter.

Last, but not the least, the book contains exhaustive and penetrating notes for the guidance of the research students and scholars regarding correct interpretation of so many vedic verses and words with deep philosophical/mystical significance. This brings out the great amount of labour the author has put in to present, an ordinarily difficult subject, in a readable and understandable language. Briefly speaking, the book ia a potaent catalyst to, both mentally and supramentally, exalt a devoted and even a general reader.

Dr. Vikram Kumar
Reader, Punjab University, Chandigarh

गुरुकुल-पत्रिका

मासिक शोध-पत्रिका

Monthly Research Magazine

न्यायाधीश महावीर सिंह स्मृति-अंक
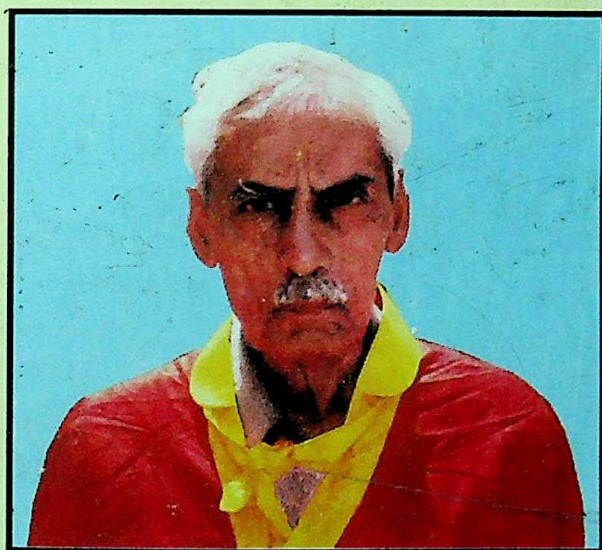
सम्पादक

डॉ भारतभूषण विद्यालंकार

उपसम्पादक

डॉ दिनेशचन्द्र शास्त्री

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-2494

१७.११.७७ को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में
शपथ लेते हुए न्यायमूर्ति स्व० श्री महावीर सिंह जी

गुरुकुल-पत्रिका

शोध-पत्रिका

Monthly Research Magazine

न्यायाधीश महावीर सिंह स्मृति-अंक

सम्पादक

डॉ० भारतभूषण विद्यालंकार

वेदाचार्य, एम.ए., पी-एच.डी.

प्रोफेसर - वेद विभाग

एवं

निदेशक

श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान

उपसम्पादक

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री 'धर्ममार्तण्ड'

वरिष्ठ प्रवक्ता, वेद विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार -249404

जून - अक्टूबर 1998	वर्ष 50वां	ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमी - कार्तिक शुक्ल एकादशी सं0 2055

सम्पादक मण्डल

मुद्रक : किरण प्रिंटिंग प्रेस, निकट गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, कनखल फोन : 415975

अनुक्रमणिका

शीर्षक	लेखक का नाम	पृष्ठ
श्रुति – सुधा	–	(क)
संपादकीय	भारत भूषण विद्यालंकार	1
संदेश	सोमपाल	2
संदेश	साहिब सिंह	3
संदेश	सूर्यदेव	4
संदेश	डा0 धर्मपाल	5
संदेश	प्रो0 एस.एन. सिंह	6
संदेश	बलराम जाखड़	7
संदेश	प्रो0 शेर सिंह	8
संदेश	पण्डिता प्रभात शोभा	9
संदेश	सोमनाथ मरवाह	10
संदेश	डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	11
संदेश	रणबीर सिंह भाटिया	12
संदेश	रामनाथ सहगल	13
संदेश	प्रो0 भवानी लाल भारतीय	14
संदेश	राज पंवार	15
संदेश	देवी सिंह तेवतिया	16
संस्मरण – न्यायाधीश श्री महावीर सिंह	महावीर सिंह	17
आज के युग के महापुरुष	वेदपाल सिंह	23
जस्टिस महावीर सिंह	मास्टर भूपाल	25
न्यायमूर्ति महावीर सिंह...	ओम्पूर्ण स्वतन्त्र	28
इस युग का देवता...	त्रिलोक चन्द चौधरी	30
जस्टिस महावीर सिंह	पी0पी0 राव	31
न्यायमूर्ति महावीर सिंह को...	मुमुक्षु आर्य	32
राष्ट्र व आर्य समाज के नाम...	स्व0 जस्टिस महावीर सिंह	35
एक महान् व्यक्तित्व	लाभ सिंह कादयान	38
एक सौम्य, स्नेहिल व्यक्तित्व...	डा0 शशिप्रभा कुमार	40
जज साहब...	रामवीर सिंह	43
वे सच्चे अर्थों में आर्य थे	डा0 दिनेशचन्द्र शास्त्री	48

नीर क्षीर विवेकी आदर्श आर्य...	निहाल सिंह आर्य	52
श्रद्धेय जस्टिस महावीर सिंह	डा0 सोहनपाल सिंह आर्य	53
देवतुल्य श्री महावीर सिंह जी	सुरेन्द्र सिंह तोमर	55
एक महान् विभूति	बाबूराम	57
जस्टिस साहब से सम्बन्धित...	प्रो0 डी.वी. सिंह राणा	61
महाप्राण जस्टिस महावीर सिंह	इन्द्रपाल सिंह	63
मुजफ्फरनगर की धरती के शलाका...	गजेन्द्र पाल	78
स्मृतियों के वातायन से	कर्नल भूपेन्द्र सिंह	82
अन्तिम विदा	इन्द्रपाल सिंह	97
दिवङ्गतो न्यायाधीशो महावीर सिंहः	प्रो0 वेदप्रकाश शास्त्री	101
न्यायमूर्तयः श्री महावीर सिंहाः	डा0 धर्मपाल	103
जस्टिस महावीर सिंह...	डा0 जयदेव वेदालंकार	105
कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित...	डा0 देवेन्द्र कुमार गुप्ता	108
महर्षि दयानन्द प्रतिपादित...	डा0 महावीर	114
वैदिक ज्यूरिसप्रोडेन्स	इन्द्रदेव खोसला	122
मनुज तो वही है...	महावीर 'नीर'	135

श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र के प्रकाशन

स्वामी श्रद्धानन्द	पं. सत्यदेव विद्यालंकार	500.00
वेद का राष्ट्रीय गीत	वेदमार्तण्ड आचार्य	
	आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति	200.00
श्रुतिपर्णा	डॉ. विष्णुदत्त राकेश	95.00
वैदिक साहित्य, संस्कृति और समाजदर्शन	डॉ. विष्णुदत्त राकेश	500.00
वेद और उसकी वैज्ञानिकता		
भारतीय मनीषा के परिप्रेक्ष्य में	आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति	300.00
शोध सारावली	सम्पादित	220.00
भारतवर्ष का इतिहास (दो खंडों में)	आचार्य रामदेव	350.00
Glimpses of Environmental Percepts	*Dr. B.D. Joshi*	50.00
Classical Writings on Vedic & Sanskrit Literature	*Dr. Suryakant Shrivastava* *Dr. Jagdish Vidyalankar*	800.00
दीक्षालोक	सम्पा. डॉ. विष्णुदत्त राकेश	
	डॉ जगदीश विद्यालंकार	500.00
स्वामी श्रद्धानन्द (समग्र मूल्यांकन)	डॉ रणजीत सिंह	300.00
पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति		
कृतित्व के आयाम	डॉ कुशलदेव शंकरदेव कापसे	300.00
स्वामी श्रद्धानन्द के सम्पादकीय लेख	डॉ. विष्णुदत्त राकेश	500.00
	डॉ. जगदीश विद्यालंकार	
कुलपुत्र सुनें	डॉ. विष्णुदत्त राकेश	300.00
	डॉ. जगदीश विद्यालंकार	

श्रुति-सुधा

☞ **शन्नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु।** **(ऋ. 7-35-2)**

बहुत मनुष्यों में प्रसिद्ध न्यायकारी हमारे लिए आनन्द देने वाला होवे।

☞ **नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु।** **(ऋ. 7-63-6)**

हे न्यायकारी परमात्मन्! आप सबके मित्र और वरणीय हो, अतः हमारे आत्मा के सुख प्राप्त्यर्थ सब प्रकार का ऐश्वर्य धारण करायें।

☞ **शन्नो भवत्वर्य्यमा।** **(ऋ. 1-90-9)**

उत्तम न्याय का करने वाला ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे लिए कल्याणकारी होवे।

☞ **अर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम्।** **(ऋ. 1-136-5)**

जो व्यक्ति कुटिलता रहित सरल आचरण करता है (ऋजूयन्तं) और नियमों के अनुसार काम करता है (अनुव्रतं) अर्यमा उसकी रक्षा करता है।

☞

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः।।

(ऋ. 7-60-5)

सबको सुख पहुँचाने वाले, किसी न दबनेवाले, अदिति अर्थात् मातृभूमि के पुत्र ये मित्र, अर्यमा और वरुण बहुत फैले हुए असत्य का पता लगा लेनेवाले या उसको मार डालनेवाले हैं, ये सत्य के घर में बढ़ते हैं।

☞

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्। द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः।।

जो कोई खड़ा है या चल रहा है और जो धोखा देता है, जो छिपकर चलता है, जो दूसरे को कष्ट पहुँचाकर छिपे-छिपे विचरता है, जो परस्पर मिल-बैठकर जो गुप्त परिभाषण करते हैं, जगत् का राजा वरुण उनमें तीसरा हुआ, उसे जानता है।

☞

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठिन्ति विषिता रुशन्तः। छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु।।

(अथर्व 4-16-6)

हे वरुण! तेरे जो फंदे सात सात, त्रिविध प्रकार से स्थित हैं, शरीर में विशेषतया जो बँधे हुए हैं, और जो कि शरीर को हिंसित कर रहे हैं; वे सब असत्य बोलने वाले को काट दें और जो सत्यवक्ता है उसे छोड़ दें।

संकलयिता
डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री

सम्पादकीय

महाभारतीय कथा के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में सभी मनुष्य परस्पर प्रेम पूर्वक धर्मानुसार व्यवहार करते थे। धीरे-2 वस्तुओं की न्यूनता के परिणाम स्वरूप मत्स्य न्याय प्रचलित हो गया। तब आवश्यकता हुई एक व्यवस्थापक की। जो धर्म की स्थापना कर सके। जिससे पशुता पर अंकुश लगे। इस व्यक्ति की तेजस्विता व दण्ड देने के सामर्थ्य के कारण उसे राजा पद प्रदान किया गया। राजकीय जटिलताओं के बढ़ने पर उसके अनेक सहयोगी, सचिव आदि बनाए गए। यह राजा भी दण्ड व्यवस्था के आधीन था। इसी के प्रतीक के रूप में सिंहासनारूढ़ होने पर उस पर दण्ड का स्पर्श किया जाता था। इस कार्य को करने वाला पुरोहित ही न्याय व्यवस्था भी देखता था। इसके लिए वेद में अर्यमा शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।

वस्तुतः धर्म, सत्य, न्याय आदि विभिन्न शब्द एक ही भाव को व्यक्त करते हैं। इसीलिए न्यायाधीश को इन गुणों से युक्त होना ही चाहिए अन्यथा न्याय करना संभव नहीं होता। उसके लिए न्यायकारी एवं दयालु दोनों ही होना चाहिए। ये दोनों शब्द परस्पर विपरीत से प्रतीत होते हैं। परन्तु वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हैं। यदि न्यायाधीश मन्युवान नहीं है तो वह न्याय नहीं कर सकता। मन्यु का अर्थ है विवेक पूर्वक दण्ड देने का सामर्थ्य। दण्ड देने का सामर्थ्य तो राजकीय आदेश से प्राप्त हो जाता है परन्तु विवेक व्यक्ति का अपना गुण है। जो व्यक्ति सत्य एवं श्रद्धा का समन्वय करने वाला हो वही श्रेष्ठ न्यायाधीश हो सकता है। क्योंकि तभी वह पक्षपात रहित होगा। पाश्चात्य परम्परा में तो न्याय की देवी की आंख पर पट्टी बंधी होती है कि वह छोटा, बड़ा, कुछ न देख सके। पर भारतीय परम्परा में मस्तिष्क एवं हृदय दोनों खुले रखकर ही न्याय हो सकता है। न्यायाधीशों के उपरोक्त गुण युक्त न होने के परिणाम स्वरूप हम निर्णय तो पा सकते हैं पर न्याय नहीं। वह न्याय नहीं है जिससे पीड़ित को सान्त्वना प्राप्त न हो।

उपरोक्त गुण विशिष्ट श्री महावीर सिंह जी जिस एलम ग्राम के निवासी थे वह शब्द ही यह प्रेरणा देने के लिए पर्याप्त है। एलम - इलामन्नानां समूह ऐलम अन्न समूह : यद्वा इला पृथिवी तस्या इदं ऐलम। अन्नै जन्तूनां पोषका इत्यर्थः। जो स्थान सब ओर से धनधान्य से भरा-पूरा हो जो प्रभूत पृथिवी से युक्त हो अर्थात् जहां विस्तृत कृषि भूमि, चारागाह आदि उपलब्ध हों। उनके माध्यम से जो, सभी जीव जन्तुओं का पोषण करने में समर्थ हो। वहाँ का निवासी ऐलभृता या ऐलवृदा होगा जो कि आर्यत्व के गुणों से ही संभव है।

इसलिए आर्य संस्कारवान् बालक महावीर, आर्यसमाज से विभिन्न रूपों में जुड़ा और उसकी न्याय व्यवस्था के सर्वोच्च पद पर पहुँचा। ऋषि दयानन्द से प्रेरणा पाकर जो शैक्षिक क्रान्ति इस देश में हुई उसने बहुत से लोगों को इस ओर प्रेरित किया। महावीर सिंह जी का तो इसमें स्वाभाविक सम्मान था। इसीलिए विश्वविद्यालय के सर्वोच्च पद पर भी वे प्रतिष्ठापित हुए। ये विभिन्न गुण ही मानव को महामानव बना देते हैं।

उस महामानव को कोटिशः नमन।

भारत भूषण विद्यालंकार

स्व० न्यायाधीश महावीर सिंह
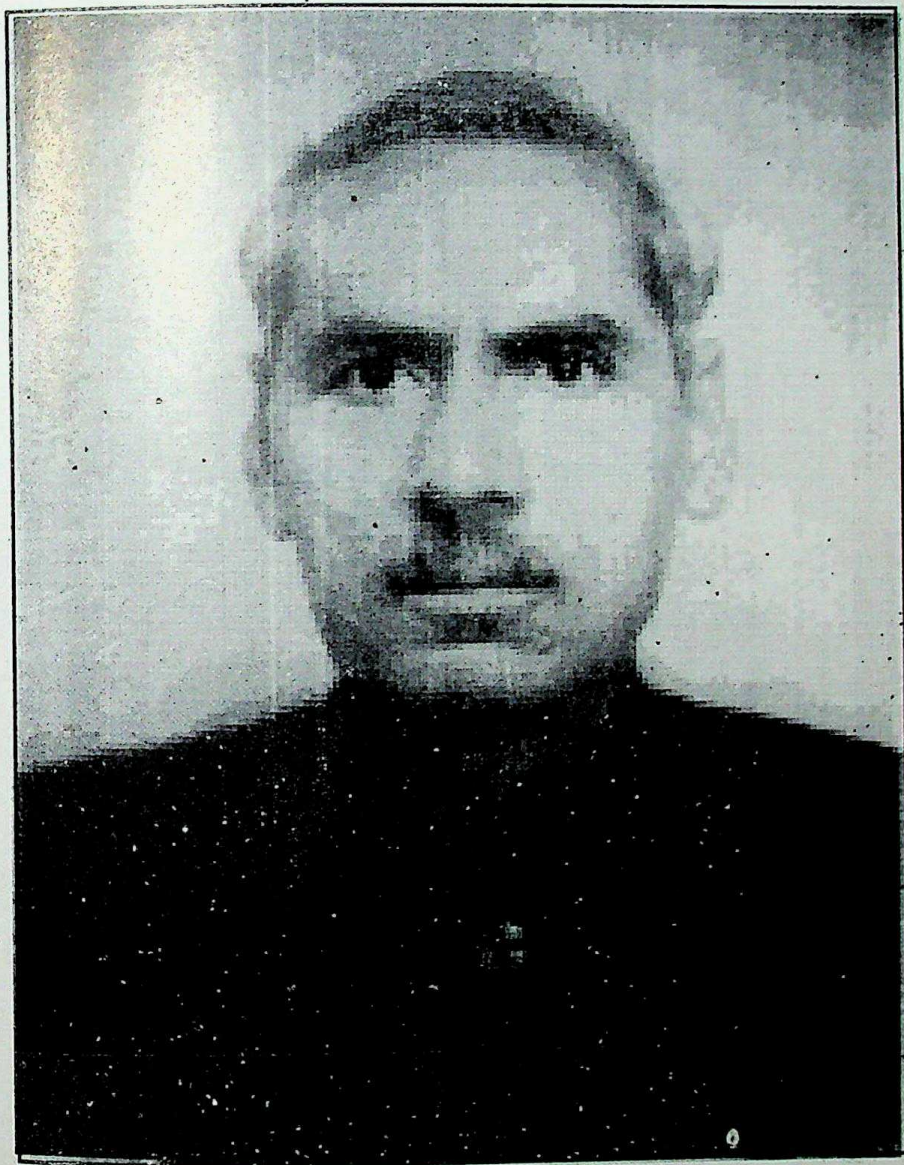
आविर्भाव - १७ अक्टूबर १६१६ तिरोभाव - ११ अगस्त १६६७

सन्देश
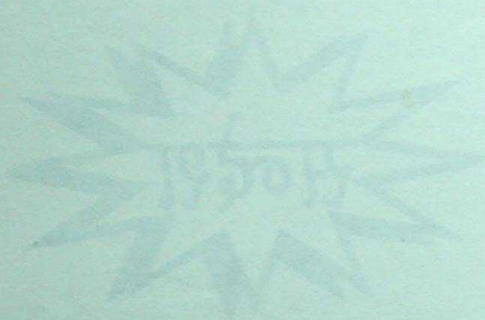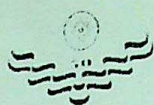
सोमपाल
SOMPAL

D.O. No....................../ MOS (Agri.)/98 (1)
कृषि राज्य मंत्री
भारत सरकार
कृषि दिल्ली – 110 001
MINISTER OF STATE FOR AGRICULTURE
GOVERNMENT OF INDIA
KRISHI BHAWAN
NEW DELHI- 110 001

संदेश

यह जानकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार की "गुरुकुल पत्रिका" द्वारा, श्रद्धेय न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी के जीवन – वृत्त एवं उनके कृतित्व पर विशेषांक प्रकाशन की योजना है। हमारे लिए यह गौरव की बात है कि श्रद्धेय न्यायमूर्ति जी ने इस विश्वविद्यालय के सम्मानित पद, "परिद्रष्टा" को सुशोभित किया तथा उनके प्रेरणादायक नेतृत्व में, विश्वविद्यालय में अनेक आधुनिक पाठ्यक्रमों का समावेश हुआ जिससे विश्वविद्यालय के विकास में और अधिक व्यापकता एवं उपयोगिता के नए सोपान जुड़े।

श्रद्धेय न्यायमूर्ति जी मेरे पूज्य पिताजी के अभिन्न मित्र थे, मैं इनके सम्पर्क में बाल्यावस्था से रहा हूँ। निकट सम्बन्धों के आधार पर मुझे यह कहते हुए परम आनन्द की अनुभूति हो रही है कि उस महापुरुष ने ठेठ ग्रामीण अंचल में अपनी शिक्षा – दीक्षा पूर्ण करके मान्य उच्च न्यायालय इलाहाबाद के गरिमापूर्ण न्यायमूर्ति के पद को सुशोभित किया। मैं यह गर्व के साथ कह सकता हूँ कि उन्होंने अपनी लम्बी न्यायिक सेवा – अवधि में सदैव ईमानदारी, निष्पक्षता एवं मर्यादा का अक्षरशः पालन किया। निःसन्देह उनकी इस कार्यशैली से युवा पीढ़ी सदैव प्रेरणा प्राप्त करती रहेगी। यूं तो श्रद्धेय न्यायमूर्ति जी मानवीय सद्गुणों के भण्डार थे किंतु मैं उनकी सादगी एवं जीवन के प्रति सहजता की विशेषताओं को कभी विस्मृत नहीं कर पाऊंगा। सादा जीवन, उच्च विचार की वे साकार प्रतिमा थे।

मुझे विश्वास है कि **गुरुकुल पत्रिका** का उक्त विशेषांक समाज को नैतिक मूल्यों एवं चरित्र निर्माण के विकास की प्रेरणा प्रदान करेगा। श्रद्धेय न्यायमूर्ति जी के जीवन – वृत एवं कृतित्व से प्रभावित हो युवा पीढ़ी राष्ट्रीय हित में अग्रसर होगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। मैं उस महान पुरूष के प्रति अपनी आस्था एवं श्रद्धा प्रगट करते हुए, गुरुकुल पत्रिका के उक्त विशेषांक की सफलता की शुभ कामना करता हूँ तथा गुरुकुल के सम्मानित अधिकारियों के प्रति आभार प्रगट करता हूँ कि उन्होंने न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी के प्रशंसनीय मानवीय गुणों को प्रसारित करने का शुभ संकल्प लिया।

सोमपाल

डा0 धर्मपाल
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार – 249404

साहिब सिंह
मुख्यमंत्री
SAHIB SINGH
CHIEF MINISTER

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार
GOVT. OF NATIONAL CAPITAL TERRITORY OF DELHI
पुरा सचिवालय, दिल्ली-110 054
OLD SECRETARIAT, DELHI-110 054
TEL. NO. 2933161
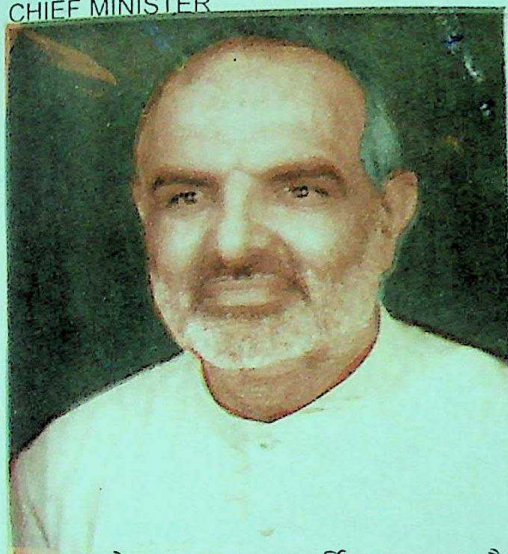
सन्देश

मुझे यह जानकार हार्दिक प्रसन्नता है कि **गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार** द्वारा श्री महावीर सिंह जी की वार्षिकी पर **गुरुकुल पत्रिका** के माध्यम से श्रद्धांजलि स्वरूप "न्यायाधीश महावीर सिंह स्मृति अंक" प्रकाशित किया जा रहा है।

श्री महावीर सिंह जी, इलाहाबाद उच्च न्यायालय से बतौर न्यायाधीश सेवा निवृत्त हुए। अपनी विलक्षण बुद्धि एवं मधुर व्यवहार के कारण आपको आर्यों की सर्वोच्च सभा, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की न्याय सभा का अध्यक्ष मनोनीत किया गया था। आपने भारतीय संविधान का हिन्दी अनुवाद किया जो विधि छात्रों एवं विधि विशेषज्ञों के मध्य अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्रशंसित हुआ। आप ऋषि दयानन्द के परम भक्त, आर्य समाज एवं समाज-सुधार के प्रत्येक कार्य में अग्रणी तथा हिन्दी एवं भारतीयता के लिए समर्पित रहे।

आशा है इस विशेषांक में श्री महावीर सिंह जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व संबंधी विस्तृत जानकारी होगी जिससे पाठक निस्संदेह लाभान्वित होंगे।

मैं, इस अवसर पर स्मृति अंक के सफल-प्रकाशन की कामना करता हूं।

(साहिब सिंह)

ओ३म्

सूर्यदेव
कुलाधिपति

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
निवास - १८६२ चीराखाना मालीवाड़ा
चाँदनी चौक दिल्ली - ६
दूरभाष - ०११-३२६४१२६
३२७४७७१
३३६०१५०
२६६७४४०
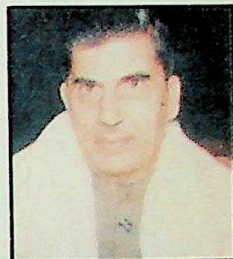
सन्देश

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय "गुरुकुल पत्रिका" के विशेषांक के माध्यम से परिद्रष्टा न्यायमूर्ति स्व० महावीर सिंह को श्रद्धाञ्जलि देने के लिए कृतसंकल्प है।

न्यायमूर्ति श्री महावीर सिंह आर्यसमाज के साथ गहरे जुड़े हुए थे, वे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की न्यायसभा के अध्यक्ष भी थे। मैंने उन्हें अत्यन्त निकट से देखा और उनकी कार्यशैली से अत्यन्त प्रभावित हुआ उनकी सरलता और कर्मठता अनुकरणीय है। मैं इस अवसर पर पत्रिका के सम्पादकों को अपनी शुभकामनाएं देता हूँ।

सूर्यदेव

डॉ0 धर्मपाल
कुलपति

।। ओ३म् ।।

फोन : 0133 - 416366 (ऑ0)
फोन : 0133 - 416235 (नि0)
फैक्स : 0133 - 416366
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार - 249404 (भारत)

"न्यायाधीश महावीर सिंह"

ब्रिटिश राज्य में लुप्त होती हुई भारतीय संस्कृति के रक्षण के लिए तीन महापुरुषों ने शिक्षा के माध्यम से इसकी रक्षा का प्रयास किया। उत्तर में ऋषि दयानन्द के परम शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द ने वैदिक साहित्य एवं संस्कृति को आधार बनाकर गुरुकुल कांगड़ी की, महामना मदन मोहन मालवीय ने पुराण साहित्य को वरीयता देते हुये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की तथा रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन की स्थापना की, जो मुख्यत: कला एवं संगीत को लेकर स्थापित की गई। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों ने अपने कुलपिता के आदर्शों पर चलते हुए विभिन्न क्षेत्रों के अतिरिक्त पत्रकारिता के क्षेत्र में भी सराहनीय योगदान दिया। उसी क्रम में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की **"गुरुकुल पत्रिका"** भी प्रयासरत है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की शिष्ट परिषद् ने १६/४/९३ को अपनी बैठक में सर्वसम्मति से न्यायाधीश श्री महावीर सिंह जी को विश्वविद्यालय का परिद्रिष्टा (विजिटिर) नियुक्त किया। सरल एवं मधुरभाषी, परन्तु प्रत्येक शब्द से अपनी योग्यता की छाप छोड़ने वाले, सीधी-सतर कद काठी, दृढ़ता से बन्द होंठ, चेहरे से टपकती गम्भीरता, तरल आंखें, सादगी पूर्ण लिबास, भारतीय संस्कृति में रचा-बसा मन, हर नयी चीज को ग्रहण करने को उद्यत मस्तिष्क, ये था महावीर सिंह जी का बाह्य रूप।

आपको विदित ही है कि श्री महावीर सिंह जी इलाहबाद उच्च न्यायालय से अवकाश प्राप्त करने के बाद भी अपने सभी सहयोगियों के मध्य अपने मधुर व्यवहार के कारण लोकप्रिय बने रहे। जहाँ-जहाँ भी वे न्यायाधीश रहे अपनी न्याय-प्रियता के लिए वे आज भी याद किये जाते हैं। न्याय न केवल होना चाहिए अपितु दिखाई भी देना चाहिए, जिससे उभय पक्ष सन्तुष्ट हों, यही न्याय की विशेंषता है इसीलिए आर्यो की सर्वोच्च सभा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने अपनी अत्यन्त महत्वपूर्ण न्यायार्य सभा का उन्हें अध्यक्ष मनोनीत किया था। इस रूप में उन्होंने अनेक समस्याओं को अत्यन्त सरल रूप में सुलझाने में सफलता प्राप्त की थी। सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र में भी आपने सराहनीय कार्य किया।

श्री महावीरं सिंह जी ने भारतीय संविधान का हिन्दी अनुवाद भी किया था, जो अपनी प्रामाणिकता एवं विद्वता-पूर्ण टिप्पणियों के लिए विधि छात्रों के लिए ही नहीं विधि विशेषज्ञों के मध्य भी अत्यन्त लोकप्रिय और प्रशंसित हुआ।

हिन्दी एवं भारतीयता के लिए समर्पित, ऋषि दयानन्द के परम भक्त, आर्य समाज एवं समाज-सुधार के प्रत्येक कार्य में अग्रणी, सिद्धान्तों से समझौता न करने वाले इस महापुरुष की स्मृति को अपने हृदय पटल पर अंकित करने हेतु विश्वविद्यालय उनकी वार्षिकी पर गुरूकुल पत्रिका के माध्यम से श्रद्धाञ्जलि स्वरूप **"न्यायाधीश महावीर सिंह स्मृति अंक"** निकालने जा रहा है। इसके लिए पत्रिका के सम्पादक एवं सहयोगीगण धन्यवाद के पात्र हैं।

डॉ० धर्मपाल
कुलपति

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पो.ओ.-गुरुकुल कांगड़ी
जिला-हरिद्वार-२४९४०४ (यू०पी०)
☎ : ०१३३- ४२७१११ कार्यालय
४२६८३५ निवास
फैक्स : ०१३३-४२७३६६

कुलसचिव

संदेश

यह प्रसन्नता का विषय है कि 'गुरुकुल पत्रिका' के माध्यम से गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपने भूतपूर्व परिद्रष्टा, स्वर्गीय न्यायाधीश महावीर सिंह जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को चिरस्थायी रखने के लिए उनकी वार्षिकी पर एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है। निस्सन्देह यह अङ्क भावी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक का कार्य करेगा। मैं इस अंक के निविर्घ्न प्रकाशनार्थ अपनी हार्दिक शुभकामनाएं ग्रेषित करता हूँ।

(प्रो० एस. एन. सिंह)

40, केनिंग लेन,
नई दिल्ली-110001
फोन : 3384958, 3385207
दिनांक : 9 जुलाई, 1998

सन्देश

यह हर्ष की बात है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपनी पत्रिका 'गुरुकुल पत्रिका' के माध्यम से पत्रकारिता के क्षेत्र में सराहनीय योगदान करता रहा है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि इस बार गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हिन्दी एवं भारतीयता के लिए समर्पित, ऋषि दयानन्द के परम भक्त, आर्य समाज एवं समाज-सुधार के प्रत्येक कार्य से अग्रणी, सिद्धान्तों से समझौता न करने वाले महापुरुष श्री महावीर सिंह जी की स्मृति में 'न्यायाधीश महावीर सिंह स्मृति अंक' का प्रकाशन करने जा रहा है। आशा है इसमें प्रकाशित सामग्री पाठकों के लिए उपयोगी होगी। मैं इसके सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

आपका

(बलराम जाखड़)

प्रो० शेर सिंह
पूर्व रक्षा राज्यमंत्री

दूरभाष : 6859234, 6851718, 6857711,
फैक्स : 6522522
एम-14, साकेत
नई दिल्ली-110017

सन्देश
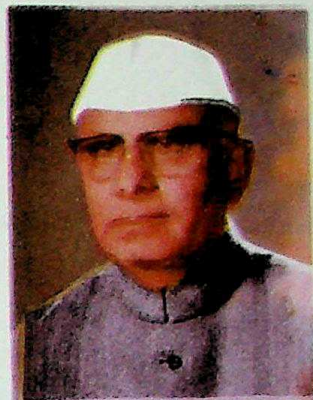
न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी वास्तव में न्याय की मूर्ति थे। वे सच्चे और ईमानदार न्यायाधीश थे और न्यायालय में उनकी न्यायप्रियता और सच्चरित्रता की छाप थी।

वे अपनी कुशाग्रबुद्धि और कानून तथा संविधान की विस्तृत जानकारी के लिये प्रसिद्ध थे। उत्तर प्रदेश में सहकारिता के जो कानून बने, उनके प्रवर्तकों में वे अग्रणी रहे। भारत के संविधान की हिन्दी भाषा में जितनी विस्तृत व्याख्या करके उन्होंने कई भागों में उसे छपवाया, वह हिन्दी साहित्य की अनमोल पूंजी है। हिन्दी भाषा में ही उन्होंने उत्तर प्रदेश के सहकारिता से सम्बन्धित कानूनों की टीकाएं भी छपवाई हैं। राष्ट्रभाषा की इतनी बड़ी सेवा इस क्षेत्र में इनसे बढ़कर शायद ही किसी ने की हो। उनके कुछ ग्रन्थों को पुरस्कृत भी किया गया।

श्री महावीर सिंह जी महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। उनकी राष्ट्रभक्ति, न्यायप्रियता और सच्चरित्रता आदि गुणों के कारण ही उनको सर्वसम्मति से गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का परिद्रष्टा चुना गया, तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की न्याय सभा का अध्यक्ष। जो भी उत्तरदायित्व उनको सौंपा गया, उन्होंने उसे बड़ी योग्यता, निष्ठा और निष्पक्षता से निभाया।

ऐसे महानुभावों के लिये हमारी विनीत श्रद्धान्जलि।

(शेर सिंह)

दूरभाष – 6859234, 6851718
एम – 14, साकेत
नई दिल्ली – 110017

संदेश

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपने स्वर्गीय परिद्रष्टा जस्टिस महावीर सिंह की स्मृति में 'गुरुकुल पत्रिका' का अंक उनकी वार्षिकी पर निकालने जा रहा है। निश्चय ही यह प्रशंसनीय कदम है। इस अवसर पर मैं अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करती हूँ। यह अंक भावी पीढ़ी के लिए सत्य एवं न्याय के पथ पर आरूढ़ होने वालों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करेगा।

(पण्डिता प्रभात शोभा)

स्थापित १९०८
रजिस्टर्ड : १९१४

।। ओ३म् ।।

तार : सार्वदेशिक (Sarvadeshik
फोन : ३२७४७७१, ३२६०९८५

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

SARVADESHIK ARYA PRATINIDHI SABHA

(International Aryan League)

महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान,
नई दिल्ली - ११०००२

प्रिय डा० धर्मपाल जी,

सप्रेम नमस्ते।

आपका पत्र मिला जिससे यह ज्ञात हुआ कि आप सभी गुरुकुलवासियों ने स्व० जस्टिस महावीर सिंह जी के प्रति उनकी सामाजिक सेवाओं को देखते हुये गुरुकुल पत्रिका विशेषांक तैयार करने का निश्चय किया है और साथ ही इस निमित्त एक स्मृति ग्रन्थ भी प्रकाशित करने का निर्णय लिया है।

वह एक साधारण ग्रामीण अन्चल में जन्म लेकर एल०एल०बी० की उच्च उपाधि प्राप्त करके इलाहाबाद हाईकोर्ट के जस्टिस नियुक्त हुए और वहां से अवकाश प्राप्त करने के बाद सुप्रीम कोर्ट में उन्होंने वकालत भी की। शिक्षा-क्षेत्र में आप गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के (परिद्रष्टा) विजिटर भी रहे ।

आपने विधि विधान पर कई पुस्तकें भी लिखीं, जो कि कानून के द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

आप सरल स्वभाव, विवादों से दूर, हंसमुख व्यक्तित्व के धनी थे। आज आप हमारे मध्य नहीं हैं, आपका अभाव हमें सदा ही अखरता रहेगा। आपका जीवन हमारे लिए प्रेरणदायक रहे, आयोजकों को मेरी बधाई और शुभकामनायें।

(सोमनाथ मरवाह)
कार्यकर्ता प्रधान
सार्व० सभा, दिल्ली

ओ३म्

पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
महर्षि दयानन्द वैदिक शोधपीठ
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
पूर्व उपकुलपति एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आचार्य रामनाथ वेदालंकार
विद्यामार्तण्ड, एम.ए., पी-एच.डी.
वेदमन्दिर, ज्वालापुर (हरिद्वार)
पिन- २४९४०७
दिनांक ९-८-९८

प्रिय कुलपति डॉ० धर्मपाल जी,

आपके पत्र से यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप निकट भविष्य में विश्वविद्यालय की 'गुरुकुल पत्रिका' का 'न्यायाधीश महावीर सिंह स्मृति अंक' निकाल रहे हैं। जब श्री माननीय महावीर सिंह जी गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा बने, तब मेरा उनसे कुछ भी परिचय नहीं था। संभव है वे वैदिक लेखक आदि के रूप में मेरे विषय में कुछ जानकारी रखते हों।

एक दिन हमारे आश्रम निवासी एक छात्र ने मेरे पास आकर कहा कि गुरुकुल के परिद्रष्टा महोदय आप से मिलना चाहते हैं। मेरे यह पूछने पर कि कब कहाँ बुलाया है, उसने उत्तर दिया कि वे नीचे खड़े हैं। मैं ज्यों ही उनके स्वागतार्थ नीचे चलने लगा तब वह छात्र बोला कि उन्होंने केवल यह देखने के लिए मुझे भेजा है कि आप अपनी कुटी पर हैं या नहीं। फिर भी मैं जिस वेष में था वैसा ही उनकी अगवानी के लिए नीचे पहुँच गया और उन्हें साथ लेकर अपने कुटीर पर ऊपर आ गया। उन्होंने मुझ से मेरे परिचय की बहुत सी बातें पूछीं और गुरुकुल की कुछ समस्याओं पर भी विचार-विनिमय किया। वे बहुत प्रसन्न मुद्रा में मेरी बातें सुनते रहे। यह भी पूछा कि आप के समय के गुरुकुल में और आज के गुरुकुल में क्या अन्तर है तथा आज के गुरुकुल में आप की दृष्टि में क्या कमियाँ या खूबियाँ है। उन्होंने गुरुकुल से संबंध एक व्यक्ति के विषय में मेरी सम्मति भी जाननी चाही। मेरे मस्तिष्क में उन सज्जन का जो चित्र था वह मैंने उनके संमुख खींच दिया और निवेदन किया कि किस हेतु पूछ रहे है यह ज्ञात होने पर और अधिक कह सकता हूँ। परन्तु उन्होंने कहा कि आपने जितना बताया है उतना मेरे लिए पर्याप्त है।

रणबीर भाटिया
उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाव

B XII - 316
शाहपुर रोड, लुधियाना
नि : 722038
का : 720176
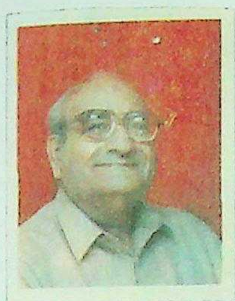
सन्देश

आप के पत्र से मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपनी विख्यात-लोक प्रिय **'गुरुकुल पत्रिका'** में न्यायाधीश महावीर सिंह जी की वार्षिकी पर श्रद्धान्जलि स्वरूप "न्यायाधीश महावीर सिंह स्मृति अंक" प्रकाशित कर रहा है। यह उत्तम कार्य निश्चित ही प्रशंसनीय तथा जनोपयोगी सिद्ध होगा। न्यायाधीशं महावीर सिंह जी के उज्ज्वल चरित्र-उदार विचार देदीप्यमान व प्रेरणादायी जीवन प्रसंग हमारे जीवन के लिये न केवल प्रकाश स्तम्भ हैं अपितु आर्य जगत् की अमूल्य निधि हैं। आपके सम्पर्क मात्र से ही न जाने कितने लोगों की काया पलट हो गई। आप जैसे महान् जीवन पुंज का बृहद् विशेष अंक प्रकाशित करना उपयोगिता की दृष्टि से अति महान् होगा।

जब यह महामना सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की न्याय सभा के अध्यक्ष थे तो मुझे इनसे मिलने का अवसर मिला था आप मिलनसार मधुर भाषी शीतल स्वभाव तथा आकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी थे। न्याय सभा के अध्यक्ष पद पर रहते समय आपने जो कार्य किये हैं। उनकी महत्ता सर्वविदित है। आर्य धर्म और संस्कृति की रक्षा और समाज को स्वस्थ बनाने की दिशा में उनका प्रयास सर्वथा सराहनीय रहा हैं। आपके उत्तम कार्यो की अमिट छाप भुलायीं नहीं जा सकती। कृतज्ञ आर्य जगत् सदा उनका अभारी रहेगा।

आप द्वारा प्रकाशित हो रहे इस विशेष अंक में उनके जीवन के प्रति खोज पूर्ण लेख होंगे जो निश्चय ही प्रेरणादायक होंगे। मैं न्यायाधीश महावीर सिंह स्मृति अंक की सफलता के लिये अनेकों शुभ कामनाएं देता हूं।

(रणबीर भाटिया)

।।ओ३म् ।।

श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट, टंकारा

उपकार्यालयः आर्य समाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली – 110001 दूरभाष : 3363718, 3362110

आदरणीय डॉ० धर्मपाल जी,

सादर नमस्ते।

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की तपोभूमि गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से सतत प्रकाशित 'गुरुकुल पत्रिका' का एक विशेषांक आप 'न्यायाधीश महावीर सिंह स्मृति अंक' के नाम से प्रकाशित करने जा रहे हैं।

मेरी दृष्टि में यह प्रयास अत्यन्त ही सराहनीय है। पुरानी पीढ़ी के विशिष्ट महानुभावों के व्यक्तित्व एंव कृतित्व से नई पीढ़ी का भावनात्मक सम्पर्क सूत्र बना रहे, यह बहुत आवश्यक है।

न्यायाधीश महावीर सिंह जी प्रसिद्ध न्यायविद् होने के साथ-साथ अन्य अनेक विशेषताओं से विभूषित थे। उनकी स्मृति चिन्तनशीलता एवं कार्य के प्रति उत्साह का सृजन करती है।

मैं आपके इस पुण्य प्रयास का हार्दिक अभिनन्दन करता हुआ, प्रस्तुत विशेषांक के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित--

भवदीय

(रामनाथ सहगल)
मन्त्री

ओ३म्

डा० भवानीलाल भारतीय

उपप्रधान–परोपकारिणी सभा
(स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित)
प्रवन्ध सम्पादक – परोपकारी मासिक
अध्यक्ष–आर्य लेखक परिषद
(सेवा निवृत्त अध्यक्ष एवं प्रोफेसर–
दयानन्द शोधपीठ पंजाव विश्वविद्यालय)

दूरभाष : 6 2 8 3 8 3

'रत्नाकर', 8/423, नन्दनवन,
चौपासनी आवासन मण्डल,
जोधपुर–342008 (राजस्थान)

न्यायाधीश महावीर सिंह स्मृति अंक

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल पत्रिका प्रसिद्व न्यायविद्, धाराशास्त्री तथा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व परिद्रष्टा श्री जस्टिस महावीर सिंह की पुण्य स्मृति में एक विशेषांक का प्रकाशन कर रही है। न्याय के लिए समर्पित स्व. न्यायमूर्ति ने इलाहबाद हाई कोर्ट से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् अपना अधिकांश समय समाज सेवा तथा शिक्षा जगत् को समर्पित किया था। वे ऋषि दयानन्द तथा आर्य समाज के अनन्य भक्त तथा निष्ठावान कार्यकर्ता थे। आशा है कि स्मृति ग्रन्थ उस महापुरुष के प्रति हमारी श्रद्वा को सुदृढ़ करने में सफल होगा।

डा. भवानीलाल भारतीय

Summu Manufacturing Ing.

Manufactuer of Tublar Steel Polor.

225 klwnlsbld , vamant Industrial Park , West hazlcton, Pa. 18201 (717) 454, 8730 Fax : (717) 454: 5946

Dr. Dharampal
Kulpati
Gurukul Kangri
Haridwar U.P. - 249404
India

Via Facsimile & Fed-Ex Mail

Shri Dharmpal,

It is an honor to receive this letter from you I am at the time thankful for your support and dedication to publish the special edition for beloved Uncle Justice Mahavir by a great Institution like yours.

I have been living in North American continent for past 31 years. My thinking and ideas have constantly changed while living in influentail western society. However there are words, advises and values which Shri Mahavir Singh spoke to me about have remained unchanged. Most important of all he gave me these two important advises which I have always practiced.

1. Work as hard as your can and have no idle time that you can not account for.
2. You need to have satisfaction of doing the right thing. Be responsible to your past, friends & family as well as being a part of contribution to the society.

These are among many advises I have been fortunate enough to receive from my uncle and I have not forgotten.

Justice Mahavir Singh was a character of inspiration and courage to me as well as hundreds of others. His objectives and goals will always alive be for generations to come.

Respectfully,

Raj Pawar
President
Chief Operating Officer

गु०कां०वि०वि० के ६५वें दीक्षान्त समारोह स्थल पर खड़े हुए बायें से दायें-
श्री हरवंशलाल शर्मा (प्रधान, आ०प्र०स० पञ्जाब)
जस्टिस महावीर सिंह जी (परिद्रष्टा),
सूर्यदेव जी (कुलाधिपति), डॉ० धर्मपाल जी (कुलपति)
पीछे- चौ० ऋषिपाल सिंह एडवोकेट (पञ्जाब), श्री मण्डन मिश्र जी,
डॉ० पुरुषोत्तम कौशिक, डॉ० एस.एल. सिंह आदि।
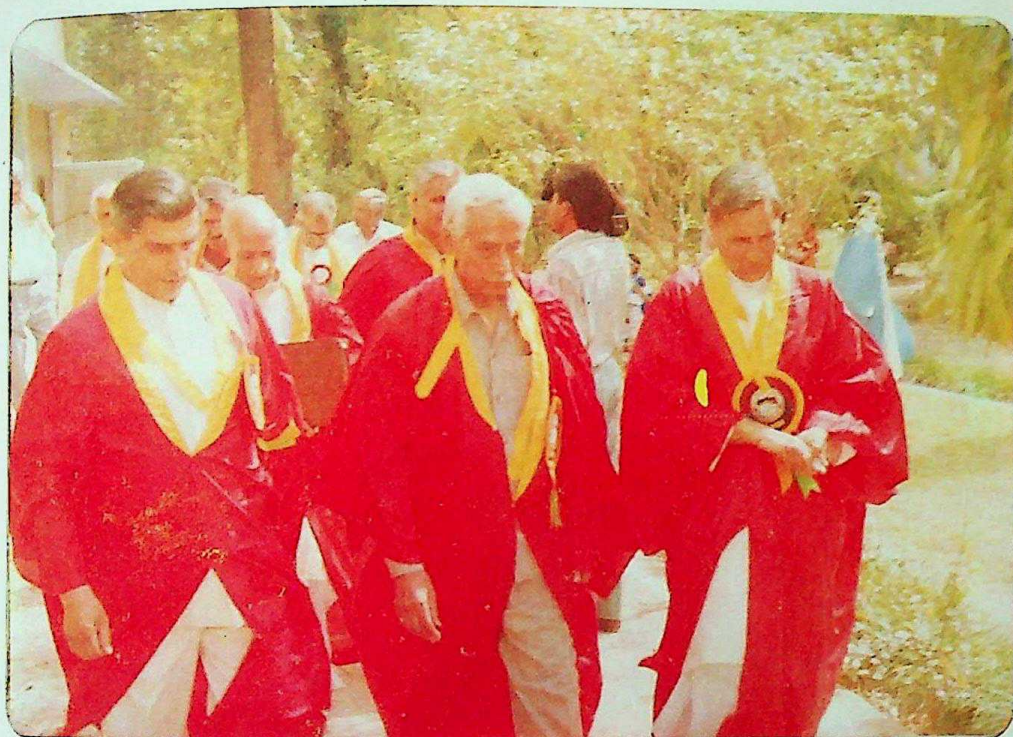
६५वें दीक्षान्त समारोह में बायें से दाये-

श्री सूर्यदेव जी (कुलाधिपति), जस्टिस महावीर सिह जी,

डॉ० जयदेव वेदालंकार (तत्कालीन कुलसचिव)

पीछे-

स्व० आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार, डॉ० धर्मपाल जी (कुलपति)

गु०कां०वि०वि० के ६५वें दीक्षान्त समारोह में यज्ञ करते हुए
जस्टिस महावीर सिंह जी, साथ में बैठे हुए श्री सूर्यदेव जी,
तत्कालीन लोकसभाध्यक्ष शिवराज पाटिल,
कुलपति डॉ० धर्मपाल जी, आचार्य राम प्रसाद जी एवं अन्य

Debi Singh Tewatia

A-27/15, DLF Qutab Enclave, Phase-1
Gurgaon-122002 (Har) Ph.: 350797

I am glad to know that **Gurukul Kangri University** in honouring Late Justice Mahabir Singh by bringing out a special issue of **'Gurukul Patrika'** and dedicating it to the Memory of Justice Mahabir Singh.

Justice Mahabir Singh deserved no less honour. An overview of his life's activities would bring into bold relief his multi faceted personality. He was distingueshed juist a celeberated author, a social activist and an educationist. In his dealings he was generous and very fair minded. He was honesty and simplicity personified. In his demise an year ago we lost an outstanding and memorable person.

I Join you in remembering late Justice Mahabir Singh Ji.

With warm regards.

(Debi Singh Tewatia)

संस्मरण / लेख
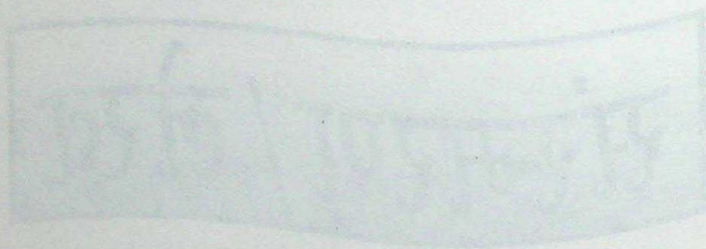
संस्मरण-न्यायाधीश श्री महावीर सिंह

-महावीर सिंह
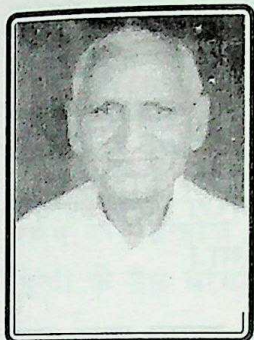
वह हमारे निकट सम्बन्धी एवं आत्मीयजन थे, उनकी बड़ी बहन सुशीला का विवाह मेरे ज्येष्ठ भ्राता कैप्टन महाराज सिंह के साथ हुआ था, जो १९४८ में कश्मीर युद्ध में शहीद हो गये तथा सुशीला भाभी का उनसे पहले ही स्वर्गवास हो चुका था। हमारे दोनों परिवार आर्य समाज के संस्कार तथा राष्ट्रीय-विचारधारा से ओत-प्रोत रहे हैं, जिन्होंने क्षेत्र व समाज की यथाशक्ति सेवा करने में अपनी शक्ति लगाई। अत: स्वाभाविक तौर पर सम्बन्ध-सूत्र में बंधकर दोनों परिवारों में अत्यन्त घनिष्ठता एवं प्रेम का संचार हुआ।

बचपन से ही मुझे अपने पाँचों भाईयों में कनिष्ठ होने के नाते सबसे बड़ी भाभी श्रीमती सुशीला के साथ उनके एलम परिवार में जाने का प्राय: अवसर मिलने के कारण महावीर सिंह जी के समस्त परिवार के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिससे सुसंस्कारित होने में काफी सहायता मिली। बच्चों की भांति मैं उनके परिवार में पूर्णतया घुल-मिल गया था। जहां एक और मुझे उनके पिताजी, चौ० जीत सिंह तथा चचेरे भाई पं० गंगाराम जी (जिन्होंने स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लिया था) से अच्छे संस्कार मिले, वहीं दूसरी ओर श्री महावीर सिंह जी के सरल, सौम्य एवं निष्छल व्यक्तित्व से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ और उनके प्रति सदैव मेरे हृदय में श्रद्धा, प्रेम व सम्मान बढ़ता चला गया।

वह महान् व्यक्तित्व के धनी थे, जिनमें आत्मीयता, सज्जनता एवं मानवीयता कूट-कूट कर भरी थी। उनमें किसी प्रकार का लेषमात्र भी भेदभाव नहीं था। वह एक साधारण किसान परिवार में जन्में थे, जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त करके तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के उच्च पद पर पहुँचकर भी ग्रामीण परिवेश को कभी नहीं भूला। पश्चिमी उत्तर प्रदेश का प्रत्येक किसान उनको अपना परम सहयोगी एवं हितचिन्तक समझता था। वह किसानों को नि:शुल्क विधि-परामर्श देते थे तथा स्वयं एक ग्रामीणजन की भांति व्यवहार करते थे। उनका निष्कपट हृदय था, बनावट उनको छू तक नहीं गई थी।

वह सरल स्वभाव के अत्यन्त समझदार, योग्य, लगनशील व्यक्ति थे। वह जहां कानून के प्रकाण्ड विद्वान् थे, वहां वह आत्म-ज्ञान से भी भरपूर थे, वह सदैव समाज एवं राष्ट्रहित में सोचते थे। उनकी कथनी व करनी में कभी कोई अन्तर नहीं रहा। उनका आदर्श सादा जीवन व उच्च-विचार था। कुछ दिनों राजनीति में रहकर भी उन्होंने अपने स्वभाव को नहीं बदला। वह वास्तव में एक प्रकार से राजर्षि थे। वह नदी में नाव की भांति रहते हुए संसार की वस्तुओं में कभी लिप्त नहीं हुए। वह एक सेवापरायण, ईमानदार एवं व्यवहार कुशल व्यक्ति थे। उनमें सबसे बड़ा गुण यह था कि वह विनम्रता की मूर्ति थे। गांधी जी ने अपने एकादश व्रतों के पालन के लिये विनम्रता का धारण करना अत्यन्त आवश्यक बताया था तथा यह गुण उनमें साक्षात् विद्यमान था।

मेरा उनसे काफी सम्पर्क रहा। वह मुझे लघु भ्राता के समान प्यार करते थे। मैंने उनको कभी क्रोध में नहीं देखा। काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार उन पर कभी हावी नहीं हो सका। उनका बच्चों जैसा सरल एवं निश्छल स्वभाव था, वैर-भाव, वैमनस्यता उनको छू तक नहीं गया था। उन्होंने एम०ए०, एल०एल०बी० तक प्रथम श्रेणी में शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् पहले कुछ दिनों तक मु० नगर में वकालत की तथा बाद में उन्होंने जाट वैदिक कालेज बड़ौत में अर्थशास्त्र के प्रवक्ता के नाते अध्यापन कार्य किया। वह जहां कालेज में अपनी विद्वता की छाप छोड़ते थे, वहीं छात्रों में अपनी व्यवहार कुशलता एवं मृदु स्वभाव के कारण काफी लोकप्रिय थे। उस समय मैं ७-८ कक्षाओं का छात्र था। वह अपने सीधे-सादे ग्रामीण सम्बन्धियों के साथ भी उसी प्रकार आत्मीयता का व्यवहार करते थे, जैसा अन्य शिक्षित एवं उच्च स्तर के सम्बन्धियों एवं मित्रों के साथ वह सबको उचित सम्मान प्रदान करते थे, भेदभाव तो वह जानते ही नहीं थे।

वह सबकी सहायता करते और सबको अच्छी सलाह देते। उन्होंने अपने माता-पिता की जिस निष्ठापूर्वक सेवा की, आज का शिक्षित उच्च पद का व्यक्ति आसानी से नहीं कर सकता। माता पिता जो आज्ञा देते, उन्हें सदा शिरोधार्य करते। वह वर्तमान युग के एक प्रकार से श्रवण कुमार कहे जा सकते थे। एक बार उनके पिताजी के पैर में चोट लग गई थी, उस समय वह रामपुर में जिला न्यायाधीश थे, तथा मैं लखनऊ में अधिसूचना विभाग में नियुक्त था। वह पिताजी को उनके आप्रेशन हेतु लखनऊ ले गये तथा मेरे पास ठहरे। पिताजी को मैडिकल कालेज में भर्ती कराया गया। वह रात्री में उनके पास अस्पताल में रहते तथा प्राय: रातभर उन्हें जागना पड़ता था। पिताजी को भी उनके बिना संतोष

नहीं होता था, उनकी इस सेवा-सुश्रूषा में उनकी पत्नि का भी अत्याधिक योगदान रहा, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। अतिथि-सत्कार में वह अत्यन्त निपुण तथा व्यवहारकुशल थीं, जिनका उनसे कई वर्ष पूर्व स्वर्गवास हो गया। दोनों पति-पत्नि वास्तव में त्यागमूर्ति थे, जिनका स्मरण हृदय-पटल पर सदैव अंकित रहेगा।

वह जहां एक न्यायाधीश एवं प्रशासक के रूप में कार्य करते थे, वहीं राष्ट्रभाषा हिन्दी के समर्थक रहे, उन्होंने विधि सम्बन्धी कई पुस्तकें भी लिखी तथा राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किये। उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में हिन्दी भाषा में प्रथम बार उन्होंने एक केस का निर्णय लिखकर एक उदाहरण प्रस्तुत किया था। हिन्दी के इस योगदान के लिये उन्हें सदैव स्मरण किया जायेगा।

महावीर सिंह न्यायाधीश जैसे सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति समाज में कठिनाई से मिलते हैं। उस पावन आत्मा के प्रति हम नतमस्तक हैं तथा सदैव उनके ऋणी रहेंगे।

हम दोनों की भांति हमारे दोनों के पिताजी भी एक ही नाम राशि (जीत सिंह के नाम) के थे। मेरे पिताजी जज साहब के गुणों के कारण उन्हें बेहद प्यार करते थे और वह भी पिताजी का अत्यधिक सम्मान करते, उन्हें भी पिताजी के समान मानते थे तथा उनके राय-मशवरे को जज साहब सही मानकर उसका हृदय से पालन करते थे। यही कारण था कि मेरे पिताजी के कहने से उन्होंने चौ० लहरी सिंह, भूतपूर्व मंत्री, हरियाणा की भतीजी, होशियारी देवी (जो लगभग निरक्षर थी, क्योंकि उन दिनों बालिका शिक्षा का अत्यन्त अभाव था) के साथ अपना विवाह स्वीकार कर लिया, जबकि उनके परिवार के अन्य सदस्य इस रिश्ते से पूर्णतया सहमत नहीं थे। परन्तु इस नवदम्पत्ति ने केवल एक दूसरे का साथ ही नहीं निभाया, बल्कि जजसाहब की उन्नति में उनकी पत्नी ने चार चांद लगा दिये। जज साहब ने अपने सरल स्वभाव के अनुसार परस्पर सामंजस्य करके अपनी पत्नि का सदैव हार्दिक सम्मान किया और पत्नि के स्वर्गवास हो जाने के बाद तो वह उनका फोटो अपने शयन कक्ष में ही रखते थे तथा अपनी सामाजिक उन्नति में उनको अत्यधिक श्रेय देते थे। उनकी पत्नि वास्तव में देवी तुल्य थी तथा घर पर दूर देहात से आने वाले परिचित, अपरिचित व्यक्तियों का भी हृदय से सम्मान व अतिथि-सत्कार करती थी, जिससे जजसाहब का सामाजिक जीवन उन्नत होता चला गया तथा वह पारिवारिक जिम्मेदारियों से निश्चिन्त होकर अपना बाह्य सामाजिक कार्य करते रहे। अतः जज साहब के साथ उनकी पत्नि का स्मरण आवश्यक प्रतीत होता है।

यद्यपि उनकी पत्नि, श्रीमती होशियारी देवी बहुत कम पढ़ी-लिखी थी, परन्तु उनकी सूझ-बूझ व समझदारी किसी विदुषी महिला से कम नहीं थी। एक बार जब श्री महावीर सिंह जनपद बदायूं के जिला न्यायाधीश थे, उनके समक्ष एक महत्वपूर्ण विधायक की हत्या का केस आया, जिसमें कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भी रंजिशन व पार्टी-बन्दी के कारण अभियुक्त बना रखा था, उन्होंने सही साक्ष्य के अभाव में उनको बरी कर दिया, परन्तु उनके लिये यह कहर हो गया और कठिनाइयों के पहाड़ उन पर टूट पड़े। उपरोक्त विधायक काफी प्रभावशाली तथा जमींदार परिवार से सम्बन्ध रखता था तथा उनके एक भाई उस समय पुलिस में डी०आई०जी० थे, तथा तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी उनके सम्बन्धी थे, जिनके बल पर पुलिस द्वारा जज साहब के विरुद्ध तरह-तरह के झूठे आरोप गढ़े गये तथ उन्हें तथा उनके परिवार को परेशान करने में कोई कमी नहीं रखी गई। परन्तु जहां एक ओर जज साहब स्वयं दृढ़ तथा निष्पक्ष बने रहकर सब कठिनाई झेलते रहे, उनकी पत्नि होशियारी देवी ने भी जज साहब की अनुपस्थिति में पुलिस व अन्य विभागों की ज्यादतियों का दृढ़ता एवं निडरतापूर्वक सामना किया तथा धैर्य का बांध टूटने नहीं दिया। अन्त में वही हुआ, जैसा कि कहावत है "सच्चाई को आँच नहीं।" पुलिस या अन्य कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ सका। बाद में उपरोक्त हत्या कांड की अपील में किसी प्रकार उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त बरी किये गये अभियुक्तों को सजादे दी गई, परन्तु अन्त में उच्चतम न्यायालय द्वारा श्री महावीर सिंह जी का निर्णय ही अप-होल्ड रखा गया। वास्तव में यह उनकी नैतिक विजय थी। इस प्रकार जज साहब ने कानून के इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण पेश किये जिससे न्याय की तराजू को कभी झुकना नहीं पड़ा। वह सदैव दुखी, पीड़ितों की विशेष तौर पर सुनवाई व सहायता करते थे, गलत कार्य करने में वह निकट सम्बन्धियों तक को भी कोई सहयोग देने में साफ इंकार कर देते थे, चाहे कोई अप्रसन्न भी क्यों न हो जाय? परन्तु दूसरी ओर सभी से सहानुभूति रखते तथा उनके सही कार्यों में पूरा-पूरा सहयोग देते तथा मदद करते। वह मुझसे काफी प्रसन्न रहते थे तथा मेरे बिना कहे ही आवश्यकतानुसार मेरी सहायता करते रहते थे।

उनके मानवीय गुणों को भुलाया नहीं जा सकता तथा मेरे हृदय-पटल पर उनकी स्मृति सदैव बनी रहेगी। उन्होंने अपने बच्चों के साथ भी कभी कठोर व्यवहार नहीं किया, वह छोटे बड़े सबसे मित्रवत् व्यवहार रखते थे। उनके दोनों पुत्र कर्नल भूपेन्द्र तथा योगेन्द्र, आई०ए०एस०/आई०एस०एस० (जो विदेश सेवा में है) तथा तीनों पुत्रियां भी काफी योग्य तथा माता-पिता के गुणों को आत्मसात् किये हुये हैं। आशा है कि वे सभी उनके छोड़े हुए कार्य को पूरा करने का पूर्ण प्रयास करेंगे।

वह अपनी सरकारी सर्विस करते हुए समाज-सेवा करने में सदैव अग्रणीय रहे। सूरजमल-ट्रस्ट, जनकपुरी, दिल्ली को उसकी मजबूत नींव पर खड़ा करने में उनका अत्यन्त योगदान रहा। सर्विस करते हुये, वह प्रत्येक सप्ताह के रविवार को इधर-उधर जाकर उसके लाइफ-मैम्बर बनाना उनका एक नियम ही बन गया था। उन्होंने आर्यसमाज के क्षेत्र में भी अपना काफी योगदान दिया तथा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के वह "विजीटर" रहे।

महावीर सिंह एक बहुआयामी व्यक्तित्व का नाम है। समाज में उनके गुणों की गहरी छाप थी। तथा सभी क्षेत्रों में, चाहे वह सामाजिक हो या राजनैतिक क्षेत्र, वह आसानी से ग्राह्य थे। आपराधिक क्षेत्र में भी उनकी सज्जनता का गहरा प्रभाव था। एक बार जब वह जनपद शाहजहॉपुर में जिला न्यायाधीश थे, एक दिन शनिवार को अपने न्यायालय में एक डकैती केस के जघन्य अपराधियों की सुनवाई की थी, सायं को न्यायालय से ही कार्य समाप्त करके जज साहब अपने नियमानुसार ट्रेन की द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में बैठने लगे, तो उन्होंने देखा कि उसी डिब्बे में वे सब अभियुक्त जो उनके समक्ष उस दिन न्यायालय में अपने डकैती केस की सुनवाई के लिये गये थे, बैठे हुये मिले। जैसा कि उन्होंने स्वयं मुझे बतलाया था कि एक बार तो वह उन्हें देखकर थोड़ा घबरा गये, परन्तु वे अभियुक्त जज साहब को देखकर एकदम उनका सम्मान करते हुए खड़े हो गये और अपनी सीट उन्हें बैठने के लिए दी। फिर जज साहब भी उन लोगों से आत्मीयता से बात-चीत करते गये। वह निजी कार्यों के लिये साधारण श्रेणी में ही सफर करते थे। उनमें किंचित् मात्र भी बनावट नहीं थी। वह राष्ट्र-भक्त एवं स्वाभिमानी होते हुए मृदुल एवं व्यवहार कुशल व्यक्ति थे।

उन्होंने कुछ दिनों तक राजनीतिक क्षेत्र में भी कार्य किया, परन्तु बेहद घुटन के साथ। उनके साथ वहां पर न्याय नहीं किया गया। चूंकि वह अपना स्वधर्म छोड़कर अवसरवादी नहीं हो सकते थे, अत: राजनीति की आपाधापी में वह अपना उचित स्थान नहीं पा सके। मेरे विचार से यदि वे सीधे-सीधे सामाजिक क्षेत्र में उतरते, तो अधिक सफलता प्राप्त कर सकते थे और अधिक कार्य कर सकते थे। वह विशेष तौर पर उ०प्र० के ग्रामीण क्षेत्र के जाने-माने व्यक्ति थे। किसान वर्ग उन्हें अत्यधिक श्रद्धा एवं आदर से देखता था।

एक बार जज साहब की नियुक्ति लखनऊ में हुई थी, कुछ दिनों तक वह अकेले मेरे पास रहे, क्योंकि मकान उन्हें नहीं मिल पाया था। वह किराये का मकान तलाश करते थे, तो छोटे मकान को देखकर कहा करते थे कि मुझे तो भाई बड़ा मकान चाहिये।

क्योंकि दो कमरों की तो उन्हें अपने दो पिताओं के लिये जरूरत पड़ेगी। यह सुनकर लोगों को आश्चर्य होता था कि जजसाहब के दो पिता कैसे हो सकते हैं ? इस पर वह हंसकर बताते कि एक मेरे पिता और दूसरे मेरी पत्नि के पिता (जो भी उनके पिता समान हैं) तो लोगों के हृदय में यह सुनकर उनके सरल एवं सच्चे जीवन के प्रति सम्मान उत्पन्न होता। वास्तव में वह तथाकथित अपने दोनों पिताओं में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते थे। मकान में उन दोनों बुजुर्गों के लिये अलग-अलग एक कमरा रहता था। उनकी पत्नी श्रीमती होशियारी देवी अपने पिता चौ० कन्हैया सिंह की अकेली सन्तान थी और वह भी अपने दोनों पिताओं को बराबर का सम्मान देती और उनकी हृदय से सेवा सुश्रुषा करती थी। उनके पिता भी मृत्यु के उपरान्त उनके साथ ही रहे। जबकि उनसे किसी प्रकार का लोभ-लालच भी नहीं था, क्योंकि चौ० कन्हैया सिंह जी ने अपनी सब अचल सम्पत्ति (जमीन जायदाद) ग्राम भगान (हरियाणा) में अपने भाईयों के लिये छोड़ दी थी। यही कारण है कि भगान का खानदान आज भी जजसाहब व उनकी पत्नी के प्रति अत्यन्त सम्मान रखता है। वास्तव में जज साहब व उनकी पत्नी होशियारी देवी के हृदय अत्यन्त विशाल थे और किसी प्रकार लोभ-लालच व संकीर्णता उनको छू तक नहीं गई थी। ऐसी दम्पत्ति जोड़ी का समाज में मिल पाना कठिन है।

ईश्वर उन दोनों पावन आत्माओं को स्वर्ग में शान्ति प्रदान करें।

पूर्व पुलिस उपाधीक्षक
ग्राम : फैजपुर निनाना
जि० : बाग़पत (उ०प्र०)

आज के युग के महापुरुष

–वेदपाल सिंह

कुछ मनुष्य संसार में जन्म लेकर जीवन प्रर्यन्त, धनोपार्जन करके संसार से विदाई लेते हैं। कुछ अपने अयोग्य, व्यभिचारी, मद्यान्ध, धर्मान्ध, स्त्री, पुत्र एवं पुत्रियों के मोह में, येन केन प्रकारेण धन कमाकर, उनपर अपव्यय करते रहते हैं तब संसार को छोड़ते हैं। कुछ जीवन भर दूसरों के अधिकारों को छीनकर, अनैतिक कार्य करके, सदैव झूठ व चालाकी का सहारा लेकर, इस संसार से विदाई लेते हैं। लेकिन आज के युग में ऐसे इन्सान बहुत कुम हैं जो ईमानदारी व सादगी से जीवन जीकर सदैव दूसरों का हित करते हैं, नैतिक मूल्यों की रक्षा करते हैं, देश व समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को बखुबी निभाते हैं और तब इस संसार को अलबिदा कहते हैं। पूर्व न्यायधीश श्री महावीर सिंह आज के युग में जन्मे ऐसे महापुरुष हुए जिन्होंने अपना मूल्यवान् जीवन सदैव दूसरों के हित में, देश व समाज के हित में न्यौछावर कर दिया, ईमानदार व सादगी तथा नैतिक मूल्य अपने जीवन में अपना कर।

सादगी व उज्जवल चरित्र के प्रतीक, ईमानदारी के प्रतीक, दूसरों की सेवा भाव के प्रतीक, देश प्रेम के प्रतीक अपनी जन्मभूमि के प्रेम के प्रतीक, एलम ग्राम जनपद मु० नगर में जन्मे श्री महावीर सिंह का बाल्यजीवन आर्थिक कठिनाई में बीता ज्यों-त्यों करके पूजनीय पिता जी, स्वर्गीय श्री जीत सिंह ने अध्ययन पर खर्च किया तब सर्व प्रथम उन्हें एक शिक्षक के रूप में फिर मुन्सफ के रूप में कामयाब कराया। बाद में उनका ही परिश्रम था जो जनपद न्यायाधीश के रूप में और इलाहाबाद उच्चन्यायालय के न्यायधीश के रूप में नियुक्त हुए और वहीं से सेवानिवृत्त हुए।

न्यायाधीश श्री महाबीर सिंह आर्य समाज की विचारधारा में अटूट विश्वास रखते थे, उनकी इसी विचारधारा के कारण तथा न्यायप्रिय होने के कारण आर्यो की सर्वोच्च सभा, "सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा" ने अपनी महत्वपूर्ण न्यायार्य सभा का उन्हें अध्यक्ष मनोनीत किया था। राजनैतिक क्षेत्र में भी निःस्वार्थ सेवाभाव से कार्य करते हुए कभी भी उन्होंने पद की इच्छा नहीं की, हां उन्हें या उनके स्वाभिमान को ललकारने की कोशिश की तो चुनाव से भी पीछे नहीं हटे, भले ही उसका कुछ भी परिणाम हो। सामाजिक कायों में तथा सामाजिक सेवा में तो आज़कल के नौजवानों को मात दे रक्खी थी। सेवानिवृत्ति के बाद सामाजिक कार्यो में बढ़ चढ़कर भाग लेते रहते थे यहां तक कि किसानों के हित में महेन्द्र सिंह टिकैत द्वारा बनाये गये संगठन

में उनके ही आमन्त्रण पर सक्रिय भाग लेते रहे, किसानों के लिए संघर्ष करते रहे और जब यहां पर भी उनके स्वाभिमान को ठेस पहुंची तो बड़ी सहजता से इससे अलग हो गये।

उच्च न्यायालय के न्यायधीश पद पर आसीन होकर या अन्य उच्च पदों पर आसीन शायद कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो साधारण इन्सान की भांति जीवन जीकर दूसरों के दुःख दर्द के लिए संघर्ष करता रहा हो बल्कि इसके विपरीत शहर की अलीशान कोठियों से बाहर निकलना भी पसन्द नहीं करते लेकिन न्यायाधीश श्री महावीर सिंह ने दिन रात एक करके करीबन सभी वर्गो के संगठन में भाग लेकर उनकी पीड़ा यथासम्भव कम करने की कोशिश की।

इस कर्मवीर ने एलम कस्बा (जन्मभूमि) में अपनी निजि सम्पत्ति पर सन् १९८६ में एक महिला आई०टी०आई० जो भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है, की स्थापना की। मेरे जैसे कुछ व्यक्तियों का सहयोग लेकर अन्तिम सांस तक इस संस्थान को दान देकर इसे फलीभूत किया। इस क्षेत्र की हजारों बहन और बेटियां डिप्लोमा लेकर लाभान्वित हो चुकी हैं। रुग्ण अवस्था में जब भी उनसे मुलाकात होती थी तो शैय्या पर लेटे-लेटे भी अपनी संस्था के भविष्य के विषय में सोचते रहते थे अपने परिवार को समझाते थे कि मेरे मरणोपरान्त इस संस्था का विशेष ध्यान रखना। उनकी सादगी की एक छोटी-सी याद आती है शायद किसान संगठन में भाग लेने हेतु सिसौली कस्बा गये हुए थे वहां से कुछ सामाजिक कार्य हेतु दूसरी जगह चले गये सुबह सवेरे अपनी प्रिय संस्था आई०टी०आई० में पहुंचने के कारण रातभर बस द्वारा यात्रा की जब एलम स्टैण्ड पर पहुंचे तो देखते हैं कि यह दुबला पतला इन्सान एक साधारण से खोखे में बैठकर अपनी दाढ़ी बनवा रहा है समय का सदुपयोग कर रहा है इस समय जो व्यक्ति उन्हें देखता है सहम जाता है और उन्हें हैरानी होती है लेकिन वे भूल जाते हैं कि कितनी सादगी थी उनमें और कितनी इन्सानियत की पराकाष्ठा।

उन्होंने अपना ७५वां जन्म दिन अपने ही कस्बे एलम में सादगी से अपनी जन्मभूमि पर मनाया। जब इस महापुरुष को अपनी बीमारी के समय यह एहसास हो गया कि अब तो इस संसार से विदा ही होना है तो परिवारजनों को कहते हैं कि मेरा दाहसंस्कार उस मिट्टी में करना जिसमें मैं पैदा हुआ हूं ताकि इस क्षेत्र की अधिक से अधिक जनता मेरे अन्तिम दर्शन कर सके, और कहते हैं कि दाह संस्कार के पश्चात् मेरी राख को हरे भरे खेतों में फेंक देना, मेरी अस्थियों को गंगा में विसर्जित कर देना ताकि मेरे शरीर का एक एक कण इस देश की पवित्र मिट्टी में मिल जाये।

इस तपोभूमि की पवित्रात्मा को मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।

प्रधानाचार्य
हरचन्दमल जैन इण्टर कालेज
टीकरी (मेरठ) उ.प्र.

जस्टिस महावीर सिंह : एक महामानव

–मास्टर भूपाल सिंह पँवार

मेरा श्री महावीर सिंह जी से निकट का सम्बन्ध है। मेरे पिता जी एवं श्री महावीर सिंह जी सगे तहेरे चचेरे भाई थे।

श्री महावीर सिंह जी का जन्म कोटा (राजस्थान) में हुआ था। उनके पिता जी श्री जीत सिंह कोटा रियासत में जंगलात विभाग में नौकरी करते थे। उनके पिता जी के अक्सर तबादले होते रहते थे। एक बार श्री महावीर सिंह जब अपने पिता जी के साथ गांव आये तो कहने लगे कि पिताजी सब के तबादले होते हैं ताऊ जी का तबादला नहीं होता, उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि ताऊ जी नौकरी नहीं करते हैं।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर इन्टर तक की कोटा में ही हुई। शुरु से ही वे मेधावी और मितव्ययी रहे। बी०ए० इलाहाबाद से तथा एम०ए०, एल०एल०बी० दोनों एक साथ लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में किया। गोल्ड मैडेलिस्ट रहे जिमनास्टिक के चैम्पियन एवं टैनिस के खिलाड़ी थे। शुरु से ही इनकी रुचि सादे पहनावे में रही। कुर्ता पायजामा बन्डी धोती यह उनका पहनावा था। वे कहा करते थे कि भई हमने तो एम०ए० में जाकर एक पैन्ट सिलाई थी।

सादा इतने की पढ़ाई के अलावा दूसरी बातों पर ध्यान नहीं देते थे। वो सुनाया करते थे कि एम०ए० तक हमें यह पता नहीं था कि अपने प्रोफेसरों को खुश रखने के लिये उनके घर पर भी जाना चाहिये। हमारे साथी ऐसा करते थे।

एम०ए०, एल०एल०बी० करने के बाद १९४४ में मेरठ में वकालत की ट्रेनिंग की उसके बाद मुजफ्फरनगर में प्रैक्टिस शुरु कर दी। इसके पूर्व जाट कालेज में अध्यापन कार्य भी एक वर्ष किया।

प्रैक्टिस के दौरान आई०सी०एस० में बैठे लिखित में पास होने के बाद दिल्ली साक्षात्कार के लिये गये बोर्ड के समक्ष। उन दिनों पाकिस्तान बनने की बात चल रही थी एक सदस्य ने उनसे पूछा कि क्या पाकिस्तान बनना चाहिये श्री महावीर सिंह जी ने निडरता से कह दिया कि पाकिस्तान नहीं बनना चाहिये। उन सज्जनों ने कहा कि तर्क दीजिये उन्होंने जो तर्क दिये उनसे वह नाराज हो गये। अत: श्री महावीर सिंह जी का चुनाव नहीं हो पाया।

इसके बाद भी मुकाबलों में बैठते रहे। अन्त में मुन्सफी की परीक्षा में सफल हो गये प्रथम नियुक्ति नगीना बिजनौर में हो गई।

जिन दिनों गाजियाबाद में नियुक्त थे उस समय एक वाद मलकपुर गांव का श्री महावीर सिंह जी की अदालत में चल रहा था। एक पक्ष के वकील ने अपने मुवक्किल से कहा कि श्री महावीर सिंह की अदालत से अपना केस उठवा लो क्योंकि दूसरे पक्ष की रिश्तेदारी श्री महावीर सिंह के गांव में है तुम केस हार जाओगे। इस पर उस पक्ष वाले ने कहा कि वकील साहब यह केस तो श्री महावीर सिंह जी की ही अदालत से तय होना है मुझे उनके न्याय पर पूर्ण विश्वास है ऐसी थी उनके न्याय पर जनता की धारणा।

श्री महावीर सिंह जी को कभी किसी काम में शर्म नहीं थी। गर्मियों की छुट्टियों में गाँव आते थे तो दूर दूर से लोग बाग कानूनी मशवरा लेने आते थे। जब हम लोग मौजूद नहीं होते थे तो स्वयं उनका हुक्का भरते तमाम आव भगत करते थे। मेरी छोटी बहन के ससुर जो कि बावली गांव के थे श्री महावीर सिंह जी से मिलने गाजियाबाद चले गये, लौटकर गांव में बताते हैं कि महावीर सिंह कैसा मुन्सिफ है अपने हाथ से कुट्टी काटता है अपने ही हाथ से मुझे हुक्का भर के पिलाया। ये कुछ उदाहरण उनकी सादगी के हैं।

उनकी निडरता का एक उदाहरण :-

जिन दिनों बदायूँ में जिला जज थे उनकी अदालत में बहुचर्चित त्रिवेणी सहाय (दाता गंज) मर्डर केस चल रहा था। कमलापति त्रिपाठी उ०प्र० के मुख्य मंत्री थे तथा त्रिवेणी सहाय के रिश्तेदार थे। मुख्यमंत्री बदायूँ आये श्री महावीर सिंह जी को बुलाकर कहा कि महावीर सिंह मैं चाहता हूं कि त्रिवेणी सहाय केस इस तरह तय किया जाये। श्री महावीर सिंह जी ने बड़ी निर्भीकता से कह दिया कि श्रीमान् जी इस केस में क्या किसी में भी वही होगा जो मेरी फाईल या साक्ष्य कहेंगे। मुख्यमंत्री को ऐसे जबाव की उम्मीद नहीं थी वे नाराज हो गये उच्च न्यायालय को शिकायत कर दी कि श्री महावीर सिंह कार रखे हैं लड़का दिल्ली में पढ़ता है ये सब खर्चे कहां से पूरे होते हैं। उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश बदायूँ जाँच हेतु आये जांच के दौरान वकीलों से पूछा कि महावीर सिंह के विषय में क्या विचार हैं। वकीलों का कहना था जो एक संत के विषय में विचार हैं वही विचार श्री महावीर सिंह जी के विषय में हैं उनका दो रुपये रोजाना का खर्चा भी नहीं है। बदायूँ में श्री महावीर सिंह जी को शैडो मिला हुआ था। मुख्यमंत्री के नाराज होने पर शैडो हटा लिया गया। हमारे नाना जी ने अपना रिवाल्वर श्री महावीर सिंह जी को दे दिया लेकिन इन्होंने उसे कभी चलाकर नहीं देखा एक शाम टहलने जा रहे थे रास्ते उनकी बड़ी लड़की ने पूछा पिताजी रिवाल्वर साथ में क्यों नहीं लाये उन्होंने बड़ी सरलता से कहा बेटी मुझे रिवाल्वर चलाना नहीं

आता। लड़की ने कहा पिताजी ऐसी बातें रास्ते में नहीं कहते, इतने सरल थे।

श्री महावीर सिंह जी को मैंने सदैव राजनीति से दूर रहने की सलाह दी क्योंकि सीधे साधे व्यक्ति को राजनीति से दूर ही रहना चाहिये। उन्हें अधिकतर व्यक्तियों ने धोखा ही दिया। उदाहरणार्थ-

यह वाकया इन्दिरा गांधी के जमाने का है। उच्चतम न्यायालय में सीनियर एडवोकेट की जगह खाली थी - श्री महावीर सिंह जी को उसका ऑफर दिया गया था। इसका पता किसी तरह चरण सिंह जी को चल गया चरण सिंह जी ने उन्हें बुला कर कहा कि तुम यह ऑफर स्वीकार मत करो मैं तुम्हें राज्य सभा का सदस्य बनवा दूँगा। इन दिनों मेरी चाची बीमार चल रही थी मैं उन्हें देखने दिल्ली गया था। श्री महावीर सिंह जी ने इसका जिकर मुझसे किया मैंने कहा आप एडोकेट वाला ऑफर स्वीकार कर लें यह आपको राज्य सभा का सदस्य नहीं बनवायेंगे और हुआ भी यही जब समय आया तो उनकी जगह वीरेन्द्र वर्मा को राज्य सभा का सदस्य बनवा दिया गया। ऐसा ही व्यवहार श्री महावीर सिंह के साथ अजीत सिंह ने किया। रामपुर, कैराना व मुजफ्फरनगर से श्री महावीर सिंह से सांसद के लिये नामांकन कराया लेकिन टिकट नहीं दिया।

श्री महावीर सिंह के स्वर्गवास होने से कुछ दिन पूर्व ही उन्हें सूचना दी गई कि उनकी नियुक्ति राज्यपाल के पद पर होने जा रही है। श्री महावीर सिंह ने इसकी सूचना अपने एक परिचित को टेलीफोन पर दी- उन परिचित ने रातों रात पासा पलट दिया और अपनी नियुक्ति करा ली।

हमारे जाटों में एक कहावत है कि जाट के मुख से एक बार अगर ना निकल गई फिर हां नहीं होगी श्री महावीर सिंह सुनाया करते थे कि एक बार मैं एक रिश्तेदारी में करीब १२ बजे पहुँचा रिश्तेदारों ने पूछा कि जज साहब खाना खाओगे। मेरे मुख से ना निकल गई उन्होंने कई बार पूछा मैं ना ही करता रहा हालांकि मुझे बड़े जोर की भूख लगी थी जाति का गुण भी विद्यमान था।

श्री महावीर सिंह जी में एक विशेष गुण था वह अपने कुटम्ब वालों एवं रिश्तेदारों से अत्यधिक प्यार करते एवं उनकी अपने सामर्थ्य के अनुसार सहायता भी करते थे। वास्तव में ही वे एक अत्यन्त सरल एवं सहज मानव थे। उन्हें हार्दिक श्रद्धांजली।

पूर्व प्रधान, ग्रा. मिलक अमाती (डिलारी)
जि० मुरादाबाद - उ०प्र०

न्यायमूर्ति महावीर सिंह : सरलता और निष्कलंकता की मूर्ति

–ओमप्रकाश स्वतन्त्र

मेरा सौभाग्य है कि मुझे उसी धरा प्रांगण-गांव में पैदा होने का सुअवसर मिला जिसमें न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी का जन्म हुआ था। अत: बचपन से ही उनके प्रभामण्डल का प्रेरक संस्पर्श मुझको मिलता रहा। अत: मैं समझता हूं कि मैं आज जो कुछ हूं उसमें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से महावीर सिंह जी की मौलिक भूमिका रही है।

मेरे बचपन के दिनों में महावीर सिंह जब अपनी छुट्टियों का समय बिताने गांव में आते थे तो गांव के वातावरण में जैसे एक उत्साह और प्रेरणा की लहर दौड़ जाती थी। गांव समाज में यह गर्व की अनुभूति होती थी कि उनके अपने परिवार का कोई व्यक्ति एक न्यायाधीश के पद पर गांव को सम्मान व प्रतिष्ठा प्रदान कर रहा है। महावीर सिंह जी स्वयं भी अपना अधिकतर समय गांव में घूमने, गांव वालों से मिलने और गांव के बुजुर्गों के दर्शन करने में व्यतीत करते थे। उनका यह व्यवहार-उनकी मिलनसारता, सरलता और विनम्रता, प्रेम और आत्मीयता सबको बहुत प्रभावित करती थी।

मुझे महावीर सिंह जी के जीवन से जुड़े हुए कुछ प्रेरक प्रसंग याद आ रहे हैं। जिनको मैं पाठकों के सामने पेश करना चाहूंगा।

मैंने अपने गांव में, अपने घर पर एक बार पांच दिवसीय वैदिक यज्ञ का आयोजन किया था जिसके लिए दिल्ली से पंडितों और विद्वानों को बुलवाया गया था। यज्ञ में भाग लेने के लिए अपने गांव के अलावा आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र के प्रतिष्ठित नागरिकों को भी आमन्त्रित किया गया था। पूरे आयोजन में महावीर सिंह जी की भूमिका देखते ही बनती थी, वह यज्ञ शुरु होने से पहले वेदी पर उपस्थित हो जाते और सभी बन्धुओं के प्रसाद ग्रहण कर के प्रस्थान कर जाने के बाद ही वेदी वे विदा लेते। यही नहीं बल्कि यज्ञ में भाग लेने वाले भाइयों को भोजन आदि कराने की सेवा का दिल खोल कर आनन्द लेते। यह थी उनकी ग्राम-निष्ठा।

महावीर सिंह जी की किसान निष्ठा भी उतनी ही गहरी थी जितनी ग्राम निष्ठा। एक बार उन्होंने दिल्ली के महाराजा सूरजमल संस्थान में देश के किसान नेताओं का दो दिवसीय सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन का उद्देश्य था

किसान के नेतृत्व में देश की विशेष कर ग्राम्य भारत की किसान और जन शक्ति को संगठित करना, ताकि भारत की आजादी के अधूरे काम को पूरा किया जा सके और ग्राम्य भारत और वैदिक संस्कृति की नींव पर भारत के भविष्य का निर्माण किया जा सके। इस सम्मेलन में प्राँच स्तर के लोगों को शामिल किया गया था। केन्द्र में किसान नेताओं को रखा गया था। इसके बाद पहले सर्किल में कृषि वैज्ञानिकों को, दूसरे सर्किल में किसान और ग्राम्य जीवन पद्धति में रुचि रखने वाले चिन्तकों और विचारकों को, तीसरे सर्किल में किसान राजनेताओं को लिया गया था और अन्त में उनके साथ प्रबुद्ध किसान समुदाय को जोड़ा गया था। इससे महावीर सिंह जी की वैज्ञानिक सोच और कार्य पद्धति का परिचय मिलता है।

न्यायिक सेवा से अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद जब महावीर सिंह जी दिल्ली में बस कर सुप्रीम कोर्ट में वकालत करने लगे तो एक दिन मैंने पूछा कि अब आपको वकालत करने की क्या आवश्यकता है, तो कहने लगे कि मेरी कुछ देनदारियां हैं, उनको पूरा करने तक मुझे काम करना पड़ेगा, और उसके बाद मैं निश्चित रूप से अपना सारा जीवन समाज की सेवा में समर्पित कर दूंगा। धन्य है, न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी ! शत-शत प्रणाम है ऐसी न्याय की मूर्ति को जो अपनी कर्त्तव्य निष्ठा के साथ साथ अपनी निष्कलंक चरित्र व ईमानदारी के कारण सारा जीवन नौकरी करने के बाद भी देनदारी से मुक्त नहीं हो पाये। आज के भ्रष्ट बाजारू माहौल को देखते हुए महावीर सिंह जी एक सच्चे सन्त और साधु थे।

ईश्वर करे उनकी आत्मा इस देश को सत्य न्याय और त्याग-निष्ठा के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देकर भारत के नये भविष्य का मार्ग प्रशस्त करती रहे। उस ऋषि-पुत्र के चरणों में मेरा बारम्बार प्रणाम।

४-बी, हैली रोड,
नई दिल्ली-१

इस युग का देवता : जस्टिस महावीर सिंह

–त्रिलोक चन्द चौधरी

मेरा आदरणीय श्री महावीर सिंह से परिचय १९५१-५२ से था जब वे गाजियाबाद में मुंशिफ के पद पर नियुक्त थे। उनका व्यक्तित्व प्रत्येक दिशा में इतना महान् था कि उसका उल्लेख शब्दों द्वारा करना मेरे जैसे पुरुष के लिए बहुत असम्भव व कठिन प्रतीत होता है। उनके व्यक्तित्व की अनुभूति का आनंद मुझे अपने मन ही मन इस तरह से प्रतीत होता है जैसे किसी गूंगे को कोई बहुत स्वादिष्ट व मीठी चीज खिलाने पर उसका जो आनन्द प्राप्त होता है, उसको वह गूंगा होने के कारण जो स्वाद की अनुभूति वह मन ही मन अनुभव करता है उसका वर्णन वह अपनी वाणी से नहीं कर सकता। उसी प्रकार मैं भी उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का वर्णन शब्दों द्वारा करने में बहुत असमर्थता प्रकट करता हूं।

उनका व्यक्तित्व न्यायिक, सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में जितना विशाल था उस विशालता को शब्दों द्वारा आंका व मापा नहीं जा सकता।

कुछ व्यक्ति न्यायिक विभाग से संबंधित हैं वो अपने कार्य क्षेत्र में बहुत ईमानदार व कर्तव्यनिष्ठ पाये गये हैं परन्तु सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में वह किसी से सम्पर्क बढ़ाने व बनाने में इतने संकोचीत होते हैं कि कहीं हमारी न्यायिक प्रतिष्ठा खतरे में ना पड़ जाये अत: ऐसे लोग सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से शून्य होते हैं। परन्तु आदरणीय श्री महावीर सिंह जी अपने गाजियाबाद के कार्यकाल के दौरान आर्य समाज से इतने निकट से जुड़ गये थे कि प्रत्येक रविवार और सभी अवसरों पर वह आर्य समाज के कार्यक्रमों में बहुत रूचि के साथ संलग्न रहते थे तथा आर्य समाज के सेक्रेटरी भी चुने गये थे। सामाजिक दृष्टि से शहर के संभ्रांत परिवारों से विशेषकर जो परिवार आर्य समाज से जुड़े थे उनसे इतने निकट के संबंध बन गये कि लोग उन्हें अपने परिवार का सदस्य ही समझने लगे थे। परन्तु इसके साथ-२ अपने न्यायिक क्षेत्र में भी कुशलता पूर्वक कार्य करने में भी इतने निपुण थे कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद को सुशोभित किया तथा न्यायप्रियता के लिए आज तक याद किये जाते हैं। उनका व्यक्तित्व समुद्र की तरह गहरा, हिमालय की तरह विशाल, कमल की भांति कोमल व गंगा जल की भांति पवित्र था। मैं तो उन्हें इस युग के देवता की संज्ञा देता हूं।

आर-९/१२, राजनगर
(गाजियाबाद)

Justice Mahavir Singh

-P.P Rao

I came in contact with Justice Mahavir Singh after he returned to the Bar following his retirement as a Judge of the Allahabad High Court in the early eighties. Within a short time he impressed one and all in the Supreme Court Bar as an active Member. He took keen interest in the affairs of the Supreme Court Bar Association. Not only he served as a senior Membr of the Executive Committee but also shouldered the responsibility for conducting elections to the Bar Association. We worked together in a few cases. He was a person of great integrity and sincere devotion to work. In 1989 I became his neighbour being a resident of sector 15-A, Noida. I had more opportunities to associate with him. He was public spirited and always ready to give his precious time liberally to public causes. He served as Vice-President of the Resident Welfare Association of Sector 15-A. As Vice-President, he was the guiding spirit of the Association.

His house was open to all. Once he invited a Member of the Constituent Assembly from undivided Punjab province to his house and requested all his friends and acquaintances to meet him and interesct with him. We had a very lively session. The chief guest enlightened the audience about some difficult aspects of constitution-making.

Justice Mahavir Singh took keen interest in politics as well. In fact, he had a mind to contest for a seat in Parliament. Unfortunately, he succumbed to cancer. I tried to get him treated by Arya Vaidyasala, Kottakkal, Kerala which has developed a supplementary therapy for cancer. But it was too late. Justice Mahavir Singh himself used to practice Inidan medicine. Once when he saw me suffering from throat trouble with severe cold, he treated me with some which powder which he himself prepared.

He was honest to the core and extremely upright. He had a large circle of friends and admirers in the legal profession and outside the profession. I used to visit him now and then while he was battling hard the deceptive disease. Towards the end he knew that his condition was deteriorating and yet he took it in his stride philosophically. His death is a great loss to the nation.

May his soul rest in peace !

Senior Advocate,
Park View, 143, Sec-15 A
NOIDA - 201301

न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी को सच्ची श्रद्धाञ्जलि किस रूप में हो सकती है ?

-डॉ0 मुमुक्षु आर्य

न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी के निधन से उनके परिवार को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण आर्य जगत् एवं राष्ट्र को भारी क्षति पहुँची है। अपने सौम्य स्वभाव एवं अनुभव से वह चिरकाल से हमारा नेतृत्व एवं मार्गदर्शन करते आ रहे थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के वह अनन्य भक्त थे और वैदिक धर्म की स्थापना हेतु स्थापित आर्य समाज को सशक्त देखने की तीव्र अभिलाषा अपने मन में संजोए हुऐ थे। नौएडा नगरी को यह सौभाग्य प्राप्त था कि उन्होंने अपने जीवन का अन्तिम समय यहाँ व्यतीत किया। आर्य समाज नौएडा के साथ उनका विशेष लगाव था। हमनें जब भी अपने कार्यक्रमों में उनका सहयोग चाहा उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। आर्य समाज नौएडा के भवन में संचालित आर्य गुरुकुल के वह स्वयं सदस्य बने और अपनी बेटी को भी सदस्य बनाया। अन्य लोगों को भी प्रेरित करते रहते थे। सन् १९९६ में आयोजित आर्ष गुरुकुल नौएडा के प्रथम वार्षिकोत्सव पर उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में आर्य समाज नौएडा द्वारा संचालित गुरुकुल की सराहना की और अन्य समाजों को भी यहां की गतिविधियों से प्रेरणा लेने का आह्वान किया। राष्ट्र की समस्त समस्याओं का समाधान गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करने में ही है चल रहे गुरुकुलों को मन-मन-धन से सहयोग देकर सुधारना एवं नये-नये गुरुकुल खोलने के लिए उन्होंने परामर्श दिया। मार्च १९९७ के आर्ष गुरुकुल नौएडा के द्वितीय वार्षिकोत्सव पर आयोजित राष्ट्र रक्षा सम्मेलन में अस्वस्थ होने के कारण उन्होंने अपना अध्यक्षीय संदेश लिखकर भेजा। उपस्थित जनसमूह ने उनके संदेश की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। उनके जीवन काल का यह अन्तिम संदेश था। इस संदेश को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के ९७वें वार्षिकोत्सव पर १३ अप्रैल १९९७ को आयोजित राष्ट्र रक्षा सम्मेलन में भी पढ़कर सुनाया गया। अपने इस अन्तिम संदेश में उन्होंने देश के कर्णधारों को राष्ट्र रक्षा हेतु एटम व हाईड्रोजन बम बिना किसी झिझक के बनाते रहने का परामर्श दिया ताकि दुश्मन हमसे अचानक लाभ न उठा सके। इसके साथ-साथ प्रत्येक नागरिक के लिए सैनिक शिक्षा का अनिवार्य करना, समय-समय पर उनका

अभ्यास करना, पाकिस्तानी व बंगलादेशीय घुसपैठियों व ईसाई पादरियों से सावधान रहने पर भी विशेष बल दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि हममें से कुछ व्यक्तियों को उनकी भाषा, वेश भूषा व जाहिरा धर्म परिवर्तन करके उनमें घुलमिल जाना चाहिए ताकि जानकारी हासिल हो सके अर्थात् साम, दाम, दंड, भेद व छद्मवेष के द्वारा ऐसे तत्वों का पता लगाकर सरकार को व जनता को कार्य करना चाहिए। अपने संदेश में न्यायमूर्ति जी आगे लिखते हैं कि यह सब तभी हो सकता है जब विद्यार्थियों में व नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना को पूरे जोर शोर से भरें। हमारा इतिहास देश पर मिटने वालों से भरा पड़ा है। उनकी जीवनी को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जाये ताकि हमारे बच्चों को प्रेरणा मिल सके। जाति-प्रथा को सम्पूर्ण रूप से नष्ट करना व भिन्न भिन्न मत-मतान्तरों का समूल नाश कर एक वैदिक धर्म की स्थापना करना राष्ट्र रक्षा के लिए अति आवश्यक है और यह कार्य आर्य समाज को ही करना होगा। आर्य समाज की वर्तमान परिस्थिति, शिथिलता, घुसपैठ, मतभेदों की सार्वजनिक चर्चा, परस्पर वैमनस्य व दोषारोपण से वे अत्यन्त चिंतित रहते थे।

आत्मा के शरीर छोड़ने के उपरान्त शोक सभाओं में उसका गुणगान किया जाता है। जब तक आत्मा माता, पिता, भाई बन्धु के रूप में शरीर में विद्यमान रहता है तब तक जो कुछ उसके लिए किया जाता है वही सार्थक है, वही पितृ यज्ञ है, वही श्राद्ध है और वही तर्पण है। परन्तु जब आत्मा शरीर को छोड़कर चली जाती है तब जो कुछ भी उसके लिए किया जाता है वह निरर्थक है, अवैज्ञानिक है व मात्र औपचारिकता है। शवयात्रा एवं शोक सभा का मुख्य प्रयोजन वास्तव में हमें स्वयं को ही सावधान करना होता है कि कोई चाहे कितना भी बड़ा न्यायाधीश हो, राजा हो, अधिकारी हो, सबके शरीर को इसी प्रकार जलकर राख हो जाना है। इसलिए शरीर के ही भरण-पोषण में जीवन को नष्ट नहीं करना चाहिए। स्वयं को अर्थात् आत्मतत्व को पहचानना और उसके उत्थान के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना ही बुद्धिमत्ता है जिस आत्मा की हम बात करते हैं वह परमाणु से भी अति सूक्ष्म है। अन्तर है तो इतना की परमाणु जड़ है और आत्मा चेतन। परमाणु तीन प्रकार के विद्युत् कणों से युक्त रहता है और आत्मा मन, बुद्धि, चित व अहंकार इन चार प्रकार के तत्वों से युक्त रहता है। हम जो भी कार्य करते हैं उनका संस्कार मन पर पड़ता है। इन्हीं संस्कारों के अनुसार हमारा आगामी जन्म होता है। इन्हीं संस्कारों के कारण एक ही समय में उत्पन्न होने वाले बच्चों के भाग्य में इतना अन्तर होता है। न कि किसी ग्रहों आदि के कारण। पूर्व जन्मों की बातों का स्मरण न रहना परमात्मा की ओर से एक बड़ी

कृपा है क्योंकि पूर्व जन्मों की घटनाएं स्मरण रहें तो जीना दूभर हो जाए। कर्मों के संस्कारों के कारण ही आत्मा जन्म मरण के चक्कर में आते रहता है। आत्मा तब तक इस प्रकार भटकता है जब तक मन सब प्रकार के संस्कारों से शून्य होकर मोक्ष को प्राप्त नहीं कर लेता। यह अद्‌भुत शरीर इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिलता है। निष्काम भाव से शुभ कर्म एवं योगाभ्यास द्वारा ही इस चरम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु प्राय: हम इस अद्‌भुत शरीर को अहम्, ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार रूपी दलदल में फंसाकर नष्ट कर डालते हैं। इसका एक कारण शिक्षा का उद्देश्य सच्चे मानव का निर्माण न होकर मात्र धनोपार्जन रह जाना है। शवयात्रा व शोक सभा द्वारा इस हो रही भूल में सुधार करना मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। वरन् दिवंगत आत्मा को तो इस सबका कोई लाभ पहुंचने वाला नहीं होता। उसकी प्रसन्नता, संतुष्टि व सेवा हेतु कुछ किया जा सकता था तो उसके शरीर में रहते ही किया जा सकता था। परम पिता परमात्मा से दिवंगत आत्मा की सद्‌गति व आगामी जन्म में ऐसे उपयुक्त वातावरण, माता, पिता आचार्य की प्राप्ति के लिए प्रार्थना अवश्य कर सकते हैं जिसे पाकर वह दिवंगत आत्मा जीवन के चरम लक्ष्य, मोक्ष को प्राप्त करनें में विशेष प्रयत्न कर सके। हमें आशा है कि वह पुन: जन्म लेकर किसी और रूप में आर्य समाज व ऋषि दयानंद के कार्यों को आगे बढ़ायेंगे। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजली यही होगी कि समस्त परिवारजन आर्य समाज से जुड़कर देश विदेश में वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार में सहयोग करें और समस्त आर्य जन अपनी समर्थता एवं योग्यता अनुसार समाज का कार्य करें। ईष्या, द्वेष आदि का शिकार होकर कुछ अप्रिय व अनुचित न कहें और न करें और अपनी पूरी शक्ति धर्म प्राप्ति व धर्म प्रचार में लगाएं।

न प्रणाशोऽस्ति जीवस्य, दतस्य च कृतस्य च। याति देहान्तरं प्राणी, शरीरं तु विशीर्यते।। (महाभारत) अर्थ: - जीवात्मा का, दिये हुए दान का और किये गये कर्म का कभी नाश नहीं होता। यथा समय जीवात्मा देह को प्राप्त करता है और पूर्व शरीर नष्ट हो जाता है।

जी-६, सेक्टर-१२
नौएडा-२०१३०१

राष्ट्र व आर्य समाज के नाम अन्तिम सन्देश[1]

-स्व0 जस्टिस महावीर सिंह

आर्य समाज के उत्सवों में कुछ समय राष्ट्ररक्षा पर विचार करने को लगाया जाता है। वैसे तो यह भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह इस विषय पर चिन्तन करे व आवश्यक उपाय सुझाए, परन्तु आर्य समाज इस ओर सबसे अधिक प्रयत्नशील रहता है क्योंकि वास्तव में आर्यसमाज राष्ट्र के प्रहरी के रूप में माना जाता रहा है। स्वतंत्रता का उद्घोष करने वाले सर्वप्रथम आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द थे। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में उनका योगदान अब सर्वमान्य हो गया है। उसके बाद के स्वाधीनता आन्दोलनों में ९० प्रतिशत व्यक्ति आर्यसमाज से सम्बन्धित रहे हैं। राष्ट्ररक्षा किसी विशेष काल के लिए ही सीमित नहीं है, कुछ कह सकते हैं कि जब युद्ध हो, तभी इस पर चिन्तन करना उचित है, परन्तु यह भावना बिल्कुल गलत है। यह प्रश्न तो हमेशा ही सामने रहता है क्योंकि जब कभी ढीले पड़े, हमारे दुश्मन राष्ट्र उनका लाभ उठा सकते हैं।

राष्ट्ररक्षा के दो पहलू हैं- एक का सम्बन्ध फौजी तैयारी से है और दूसरा प्रजा (जनता) से है। फौजी तैयारी के सम्बन्ध में हमें इतना ही कहना है कि देश व काल के अनुसार यह रहनी चाहिए। इस समय हमें पाकिस्तान और कुछ हद तक चीन से खतरा हो सकता है। जब पाकिस्तान के पास एटम व हाइड्रोजन बम बनाने की क्षमता है व अब चीन से मिसाइल भी ले लिए हैं तब हमारा बराबर यह कहना कि हम न्यूक्लियर शक्ति को केवल शान्ति कार्यों में लगाएंगे बेमानी हो जाता है। जो देश विशेषकर अमेरिका यह कहते हैं कि हमें एटम बम नहीं बनाना चाहिए, उनसे हमें यही कहना है कि पहले पाकिस्तान को तो रोकें। इसलिए आर्य समाज अपने ऐसे सम्मेलनों में यह मांग सरकार से करता रहे कि वे एटम व हाइड्रोजन बम बिना किसी झिझक के बनाते रहें ताकि दुश्मन हम से अचानक लाभ न उठा सकें। लेकिन इस विषय का दूसरा पहलू ऐसा है जिससे हम प्रत्यक्ष रूप से अधिक कार्य कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में निम्न कार्य अति संगत है।

यह अन्तिम सन्देश स्व0 न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी ने आर्य गुरुकुल नौएडा के दूसरे वार्षिकोत्सव पर 30 मार्च 1997 को एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के 97वें वार्षिकोत्सव पर 13 अप्रैल 1997 को आयोजित राष्ट्र रक्षा सम्मेलनों में भेजा। स्वास्थ्य खराब होने से वे स्वयं इन सम्मेलनों में उपस्थित न हो सके थे। (सम्पादक)

१. **सैनिक शिक्षा** : हमें प्रत्येक नागरिक को कुछ न्यूनतम सैनिक शिक्षा देनी होगी। आजकल युद्ध केवल फौजी इलाकों तक सीमित नहीं रहता है- देश के प्रत्येक भाग पर आधुनिक मिसाइलों द्वारा हमला हो सकता है। अत: प्रत्येक नागरिक को समय पड़ने पर फौजी सिपाही की तरह कार्य करना होता है। यदि इसका प्रशिक्षण हमें न मिले तो हम कमजोर पड़ जाते हैं। इस सम्बन्ध में स्कूलों में एन०सी०सी० के माध्यम से कुछ कार्य होता है परन्तु वह इतना कम है कि कुछ समय बाद वे विद्यार्थी भी जिन्होंने एन०सी०सी० की ट्रेनिंग पाई है, इसको भूल जाते हैं। अत: प्रत्येक पांचवें वर्ष इस शिक्षा को दोहराते रहना चाहिए। सामान्य नागरिक के लिए भी कुछ समय के लिए अनिवार्य कर दिया जाए तो और भी अच्छा हो। यह हमारी रक्षा की दूसरी पंक्ति रहेगी।

२. *हमें राष्ट्र में रहने वाले ऐसे तत्वों को उजागर करना है तथा उनसे सावधान भी रहना है जो रहते व नमक हमारे देश का खाते हैं परन्तु जिनकी आस्था हमसे भिन्न अन्य राष्ट्र या राष्ट्रों* में है। ये विभीषण की भूमिका अदा करते हैं। हमारे देश में पाकिस्तानी व बंगलादेशीय घुसपैठिए बहुत हो गए हैं। पाकिस्तान की आई०एस०आई० का जाल मुस्लिम बहुल इलाकों में बुरी तरह फैलता जा रहा है। सरकार की खुफिया एजेंसी इनकी जानकारी करने में लगी रहती है। परन्तु इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी व सहायता जनता के सजग व्यक्ति कर सकते हैं। कौन नहीं जानता कि १९४७ के दंगों के दौरान यदि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यकर्त्ता दिल्ली के उपायुक्त रणधावा को समय-समय पर सूचना न देते तो दिल्ली को बहुत हानि हो सकती थी। अब यह कार्य और अधिक कठिन होता जा रहा है। इसलिए हमें अपने स्वयं सेवकों को साम, दाम, दण्ड, भेद व छद्म वेष के द्वारा ऐसे तत्वों का पता लगाते रहना चाहिए। हममें से कुछ व्यक्ति उनकी भाषा, वेष भूषा व जाहिरा धर्म परिवर्तन करके उनमें घुलमिल जाना चाहिए ताकि जानकरी हासिल हो सके। ऐसा ही खतरा विदेशी ईसाई पादरियों से है। ये जनजाति क्षेत्र में घुस कर उनको दिखावे के तौर पर डाक्टरी व शिक्षा देते हैं परन्तु कुचक्र उन्हें ईसाई बनाने का है। आज पूरा उत्तर पूर्वी क्षेत्र इनसे भरा पड़ा है। वहां विद्रोही अधिकतर ईसाई ही हैं। आर्य समाज ने उनकी चुनौती को स्वीकार करते हुए जगह-जगह आर्य सेवाश्रम खोले हैं। परन्तु ईसाइयों की तुलना में बहुत कम हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम ऐसे आश्रमों को खोलने व वर्तमान आश्रमों को सुचारु रूप से चलाने में तन मन धन से मदद करें।

३. **राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहित करना** : यह स्पष्ट है

कि यदि हमारे नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना न होती तो हम कोई ठोस योगदान नहीं कर सकते और थोड़ी-सी कठिनाई या लालच होते ही हम अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाते हैं। सरकारी गुप्त अधिनियम (**Official Secrects Act**) में अधिकतर हमारे ही व्यक्ति पकड़े जाते हैं। फौज तभी अच्छी तरह लड़ती हैं जब उनमें राष्ट्र प्रेम हो। केवल वेतन के आधार पर लड़ने वाले सफल नहीं होते। यह आज सब मानते जा रहे हैं कि हम लोगों में राष्ट्रीयता की भावना कम होती जा रही है प्रत्येक वर्ग जाति, धर्म व प्रदेश को दृष्टि में रख कर कार्य करने लगा है। यही से विघटन की शुरुआत होती है। देश जब भी गुलाम हुआ है तब ऐसे तत्वों का ही जोर था। हमें अपने विद्यार्थियों में, नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना को पूरे जोर-शोर से भरना होगा। हमारा इतिहास देश पर मिटने वालों से भरा पड़ा है, उनकी जीवनी शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जाए ताकि हमारे बच्चों को प्रेरणा मिल सके। इस सिलसिले में हमें जाति-प्रथा को सम्पूर्ण नष्ट करना होगा। आर्य समाज ने प्रथम समय में इस सम्बन्ध में बहुत कार्य किया, परन्तु अब बिल्कुल ढीला पड़ गया है। जातिवाद दंगे अब और अधिक मात्रा में होने लगे हैं। प्रदेशों में आपसी मतभेद चरम सीमा पर है। चाहे प्रदेशों में एक ही दल की सरकार क्यों न हो। पंजाब, हरियाणा, गुजरात, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु इसके उदाहरण हैं। अत: हमें इन बुराइयों को दूर करने को प्रभावी उपाय सोचकर उन पर जोर-शोर से कार्य करना होगा, वरना फिर बहुत देर हो जाएगी और देश की एकता खतरे में है। इसका एक परिणाम यह भी है कि हम अपनी कोई राष्ट्रभाषा नहीं बना सके।

अन्त में फिर यही अपील करूंगा कि आर्य समाज का राष्ट्ररक्षा के सम्बन्ध में बहुत बड़ा दायित्व है। हमें इसके सजग प्रहरी के तौर पर कार्य करने के योग्य बनना होगा व दूसरों को बनाना होगा।

एक महान् व्यक्तित्व न्यायाधीश महावीर सिंह जी

–लाभ सिंह कादयान

संसार में अनेक महान् आत्माओं ने जन्म लिया है और समाज को सही दिशा प्रदान की है। इसी कड़ी में स्वामी दयानन्द के परम भक्त, आर्य समाज के सिद्धान्तों पर चलकर जीवन यात्रा करने वाले न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी का नाम प्रमुख है।

इस महान् न्यायधीश का जीवन एक किसान के घर आरम्भ होता है और देश प्रमुख शिक्षाविदों, न्यायविदों और लेखकों के रूप में सामने आया। इनके जीवन से सभी को यह प्रेरणा मिलती है कि यदि हम अपने लक्ष्य को लेकर चलें तो उच्चतम पद को भी प्राप्त कर सकते हैं।

श्री महावीर सिंह जी का जन्म आलम गांव (उ०प्र०) में हुआ। मेरा इनसे पुराना सम्पर्क रहा है। हरियाणा के गांव भिगान जिला सोनीपत में हमारी भी रिश्तेदारी है उसी परिवार में डा० महावीर सिंह जी का विवाह श्रीमती होशयारी देवी सुपुत्री श्री कन्हैया सिंह से हुआ। बहन होशयारी देवी एक आर्य समाजी परिवार से सम्बन्ध रखती थी हमारी वह रिश्ते में बहन लगती थी। अतः उनसे कई बार सम्पर्क होता रहता था। दम्पति में जो सौहार्द था वह भी एक उदाहरण था। कई बार वह उनके जीवन की घटना बताती थी। इस अवसर पर एक घटना का वर्णन करना चाहूंगा। जब श्री महावीर सिंह जी जज बने और जब तक उनके माता-पिता ज़िन्दा रहे तब तक सारा वेतन अपने पिता जी के चरणों में रख देते थे और बाद में उन्हीं से खर्च के लिए लेते थे। डा० महावीर सिंह जी अनेक संस्थाओं से जुड़े हुए थे। महाराजा सूरजमल ट्रस्ट देहली के वे संस्थापक सदस्यों में से थे। उन्होंने जनकपुरी में संस्थान बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई।

कई अवसरों पर उनके विचार सुनने को मिले। वे कहा करते थे कि मनुष्य में जब तक शक्ति है उसे परमार्थ के कार्यों में भाग लेते रहना चाहिए।

श्री महावीर सिंह जी ने भारतीय संविधान का हिन्दी अनुवाद किया जो सभी विधि ज्ञाताओं के लिए तथा विधि के विद्यार्थियों के लिए एक आदर्श पुस्तक है। आप एक मधुरभाषी और व्यवहार कुशल व्यक्ति थे। आपने अनेक पदों को ग्रहण करके उन पदों की गरिमा को बढ़ाया है। गुरुकुल कांगड़ी को आपने अपना मूल्यवान समय विजिटर के रूप में रहकर दिया और अनेक सुधार किए।

आपका अपनी बात कहने का अनोखा ढंग था। आप सदा सरल भाषा में और मधुर शब्दों में अपनी बात कहकर सबका दिल जीत लेते थे। और अपनी बात सहज ही मनवा लेते थे।

आप में अतिथि सत्कार की भावना भी बहुत अधिक थी। इतने महान् पद पर रहते हुए भी जब भी कोई आपके पास आ जाता था तो आप स्वयं उनका आदर सत्कार करते थे। स्वामी शिवान्द जी महाराज प्राय: उनके घर ही ठहरा करते थे। वह भी अपने भाषणों में बताया करते कि किस आदर भाव से श्रीमहावीर सिंह जी तथा उनकी पत्नी होशयारी देवी उनका सत्कार करते थे।

ऐसे महान् व्यक्तित्व को मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि उनका महान् जीवन हम सबको शुभ मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता रहे।

रजिस्ट्रार
आर्य विद्या परिषद्
हरयाणा

एक सौम्य, स्नेहिल व्यक्तित्व : न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी

–डॉ० शशिप्रभा कुमार

सन् १९९३ के मई मास में जब हमने अपने नौएडा स्थित नवनिर्मित गृह 'अभ्युदय' में निवास प्रारम्भ किया तो आदरणीय बन्धु डा० धर्मपाल जी (कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार) ने बताया कि आपके पड़ोस में ही जस्टिस महावीर सिंह जी भी रहते हैं। मैं अक्सर शाम को टहलने जाती तो उनके मकान के आगे से गुजरते समय मन में एक गरिमामय, रौबीले व्यक्ति की छवि उभरती, इसलिए संकोचवश अन्दर जाने का साहस नहीं जुटा पाती और लौट आती। तब मैं नहीं जानती थी कि श्रद्धेय महावीर सिह जी कितने सरल, सौम्य एवं स्नेहिल व्यक्ति हैं। इनकी सादगी का अनुमान इसी घटना से किया जा सकता है कि तीन-चार महीने बाद (सम्भवत: सितम्बर मास के दूसरे सप्ताह में) एक दिन सायंकाल वे स्वयं हमारे घर पधारे और अपना परिचय देते हुए कहने लगे कि मुझे डॉ० धर्मपाल ने आपके बारे में बताया है और हम लोग संस्कृति मंच, नोएडा के अन्तर्गत आपका व्याख्यान कराना चाहते हैं। तभी मुझे ज्ञात हुआ कि वे संस्कृति मंच के संरक्षक अध्यक्ष हैं। अस्तु -

संस्कृति मंच के माध्यम से मेरा उनसे सम्पर्क बढ़ा तो पाया कि उनके हृदय में अपने देश, अपनी संस्कृति, अपनी भाषा और अपनी भूषा के प्रति कितना उत्कट अनुराग हैं सहसा उन्हें देखकर कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वह न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी से रूबरू है। मुझे याद है कि एक बार जब मरे मान्य गुरु प्रो० वाचस्पति उपाध्याय उनसे मिलने गये तो बाहर से उनके मकान को देखकर बरबस कह उठे। इस न्यायाधीश ने कभी अनुचित साधनों से धन न लिया होगा, यह निश्चित है। सत्तर वर्ष से ऊपर आयु होने पर भी वे इतने कर्मठ एवं सक्रिय थे कि किसी नवयुवक को उनके समक्ष लज्जित होना पड़े। हम लोग जब कभी किसी विवाह या अन्य समारोह से रात में देर को लौटते तो मैं देखकर चकित होती थी कि उनके कार्यालय में रोशनी है यानि महावीर सिंह जी अभी तक अपने काम में व्यस्त हैं।

अपने काम के सिलसिले में उन्हें प्राय: दिल्ली नौएडा से बाहर यात्रा भी करनी पड़ती थी। बड़े सहज रूप में बस, ट्रेन या किसी भी सार्वजनिक वाहन का

प्रयोग करते थे। एकबार तो उन्होंने स्वयं बताया कि रात्रि में देर से नौएडा पहुंचे तो कोई सवारी नहीं मिली, अपना समान उठाये हुए पैदल ही घर की ओर चल पड़े तो पुलिसवाले ने रोक लिया जब उन्होंने अपना नाम-पता बताया तो वह हैरान परेशान, किन्तु न्यायमूर्ति जी अविकारी भाव से चलते रहे। उदारता की पराकाष्ठा इतनी कि अपने बच्चों को भी कष्ट नहीं देना चाहते थे।

धीरे-धीरे जब मेरी उनसे घनिष्ठता हुई तो मैंने उनमें एक स्नेह और वात्सल्य से छलछलाते हुए व्यक्तित्व के दर्शन किये। मुझे वे अपनी मानस पुत्री की भांति मानते थे और सदा वैदिक आदर्शों की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देते थे। जब आर्यसमाज हनुमान रोड में उनकी आयु के पचहत्तर वर्ष पूर्ण होने पर उनका अमृत-महोत्सव मनाया गया तो कोई सोच भी नहीं सकता था कि इतनी जल्दी वे हम सबसे विदा ले लेंगे।

दैव की क्रूर नियति का विधान कुछ ऐसा बना कि इतने सात्विक और नियमित जीवन जीने वाले व्यक्ति को भी कैंसर जैसे भयानक रोग ने आ घेरा मुझे जब यह सूचना मिली तो मैं अवाक् रह गई, समझ में नहीं आता था कि उनका सामना कैसे करूंगी। लेकिन जब मैं उनसे मिलने गई तो बिस्तर पर ही अपनी किताबें लेकर अपने अधूरे काम पूरे करने में लगे हुए थे- तभी उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि उनके घर पर सामूहिक यज्ञ का अनुष्ठान किया जाये और मैं वेद में आरोग्य, विषय पर कुछ बोलूं। उनकी इच्छा के अनुसार यह कार्य सम्पन्न हुआ और वे इतने भावुक हो उठे कि उनकी आंखों से अश्रुधारा बह निकली।

उनकी बीमारी के दौरान मैंने उनके व्यक्तित्व का एक दूसरा पक्ष भी देखा- तब तक मैं उन्हें सर्वथा पारम्परिक विचारधारा का अनुयायी समझती थी, लेकिन अपने पोत्री-पोतों के साथ वे बिल्कुल ऐसे हिलमिल कर रहते थे जैसे उन्हीं के हमउम्र हों। उनकी पोती ने भी स्वीकार किया कि 'दद्दू' बिल्कूल दकियानूसी नहीं हैं- उनमें परम्परा और आधुनिकता का अनूठा संगम है। शायद यही रहस्य था उनकी अदम्य जिजीविषा का और यही कारण था कि परिवार के सभी सदस्यों, सबसे बढ़कर उनकी बड़ी बहू, शकुन भाभी के साथ उनका इतना आत्मीय रिश्ता था कि वे अनवरत 'पिताजी' की सेवा- शुश्रूषा में लगे रहते थे। आज के युग में, जब परिवार के वृद्धजनों की उपेक्षा की समस्या विषम रूप धारण करती जा रही है, न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी के परिवार का आदर्श वस्तुतः अनुकरणीय है। उनमें समय के साथ बदलने की इतनी अद्भुत क्षमता थी कि वही उनकी सौम्यता एवं सेवा का स्रोत बनी।

जब उनका रोग बढ़ता गया एवं वे चलने-फिरने में असमर्थ हो गये, तब भी उनके सहिष्णुता एवं बालोपम सरलता ने मेरे मन पर अमिट छाप छोड़ी उनके देहावसान से तीन दिन पहले मैं उनसे मिलने गई तो वे असत्य वेदना में थे, लेकिन अपने सामने लगे महर्षि दयानन्द के चित्र को देखकर कहने लगे कि 'स्वामी जी' के कष्ट के सामने मेरा कष्ट तो कुछ भी नहीं - उनका सारा शरीर छालों से छलनी हो चुका था, फिर भी वे प्रभु की प्रार्थना में लीन थे और मैं हूँ कि इतनी सी तकलीफ से व्याकुल हो रहा हूं। उस समय उनकी आँखों के आँसू इतने निश्छल थे कि अन्दर तक मुझे द्रवित कर गये, मैं उन्हें प्रणाम करके चली आई। दो दिन बाद जब उनके दुखद निधन की सूचना मिली तो ऐसा लगा जैसे सर से एक वरद हस्त का साया उठ गया है, जैसे एक पुण्यात्मा परमात्मा के आश्रय में पहुंच गई है, जैसे पीड़ा से छटपटाते एक जीव को मुक्ति मिल गई है, जैसे एक महान् ऋषिभक्त को ऋषि दयानन्द का सान्निध्य मिल गया है......।

भारतीयता के मूर्तिकार स्वरूप, गुणों एवं आचरण से सच्चे आर्य, विनम्रता और सादगी की प्रतिमा स्नेह और सरलता के पुञ्ज परम श्रद्धेय न्यायमूर्ति महावीर सिंह जी की पावन स्मृति में मैं अपनी हार्दिक श्रद्धान्जलि अर्पित करती हूं।

दर्शन विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

"जज साहब" चौधरी महावीर सिंह

रामवीर सिंह

सन् १९५६-५७ का शिक्षा सत्र, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी; डॉ० गंगानाथ झा छात्रावास; पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हम कई छात्रों में चर्चा है; "कोई मुंसिफ/सिविल जज हैं; मेरठ या मुजफ्फरनगर के, नाम है महावीर सिंह। जाट हैं। टैगोरटाउन में रहते हैं। सीधे सरल स्वभाव के हैं। अपनी ओर के लड़कों को बहुत चाहते हैं।" मिलने की उत्सुकता लिये, पश्चिमी उत्तर प्रदेश का होने के नाते, जाट होने के नाते; एक दिन रविवार को प्रात: टैगोरटाउन में उनके निवास पर पहुँचता हूँ, कुछ प्रमाण-पत्रों की सत्यप्रतिलिपियां कराने के बहाने। छोटा सा बंगला खपरैल की छतों का। सामने छोटा सा बरामदा, दरवाजा खटखटाया, एक सामान्य कद व हल्के शरीर का साधारण-सा दिखने वाला व्यक्ति दरवाजा खोलता है। बरामदे में आता है। पजामा, कुर्ता, बीच में कटी छंटी छोटी-छोटी मूंछे। तीस-पैंतीस साल की आयु। अभिवादन के बाद परिचय। यही हैं महावीर सिंह जी। मैंने अपना नाम बताया, परिचय दिया। "अतरौली (अलीगढ़) के पास गांव है पीपरी। साधारण किसान परिवार। यहाँ इस वर्ष चौथा साल है, डॉ० गंगानाथ झा छात्रावास में रह कर। एम.ए. फाइनल है।" और भी बातें होती रहीं। बड़ा अपनत्व मिला, मानों चार साल बाद इलाहाबाद में मुझे एक गार्जियन मिल गया हो। थोड़ी देर बैठने के बाद ही वह कहने लगे, "मुझे अभी जाना है। फिर मिलेगें, अवश्य आना। 'मैं प्रणाम कर चलने लगा तो पुन: बोले, 'आर्य समाज जाते हो।'? (उनका तात्पर्य कटरा आर्यसमाज से था) मेरा नकारात्मक उत्तर सुनकर बोले, 'इतवार को आया करो। चलो अभी चलो , मैं वहीं जा रहा हूँ। 'मैं मना नहीं कर सका। घर से बाहर मुख्य सड़क पर आकर हम दोनों रिक्शे में बैठे और दस-पन्द्रह मिनट में कटरा आर्य समाज मन्दिर आ गये। वहाँ आकर देखा हमारी यूनिवर्सिटी के कई प्रोफेसर डॉ० रामकुमार वर्मा आदि भी यज्ञ में भाग ले रहे थे। दोपहर तक हम आर्यसमाज मन्दिर में रहे। कार्यक्रम सम्पन्न होने पर मैं अपने छात्रावास चला आया और वह अपने घर चले गये। पहली मुलाकात में, न्यायपालिका से जुड़े व्यक्ति का किसी अपरिचित लड़के के साथ इतना आत्मीय अपनापन उनके जीवन की सरलता, सादगी व निश्छलता को आकाश की अनन्त ऊँचाइयों तक ले जाता है। यूनिवर्सिटी में, उसी समय, उनकी प्रेरणा से, हम पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लड़को ने एक संस्था बनाई थी, 'फ्रेन्ड्स सर्किल', उनकी मीटिगों में भी प्राय: आते रहते थे। हम अनेक लड़कों को ऐसा लगने लगा था कि टैगोरटाउन में अपना एक घर है।

समय के अन्तराल के साथ, जीवन की व्यस्तताओं में हम सब इलाहबाद से इधर-उधर हो गये। सम्पर्क टूट गये। मैं इधर मध्य प्रदेश में आ गया। नये उत्तरदायित्व , नये व्यक्ति, नये सम्पर्क, नई व्यस्तताओं, पुरानी स्मृतियां विस्मृत बनी रहीं।

सन् १९८१-८२। दिल्ली के एक अंग्रेजी दैनिक में उत्तर प्रदेश के किसी कांग्रेसी राज्यसभा सदस्य की सदस्यता समाप्त करने के इलाहबाद उच्च न्यायालय के निर्णय का एक समाचार छपा था। वह निर्णय किन्हीं जस्टिस महावीर सिंह का था, मन में उत्सुकता जगी, सम्भवत: यह जस्टिस महावीरसिंह वही हों, टैगोर टाउन वाले। मैंने एक अनमना सा पत्र इलाहबाद के अपने संक्षिप्त संदर्भ के साथ, अपनी जिज्ञासा बताते हुये, उच्च न्यायालय, खण्डपीठ लखनऊ के पते पर उन्हें लिख दिया। तुरन्त उनका विस्तृत पत्र आया। उन्हें पच्चीस वर्ष पूर्व का सब कुछ याद था। ऐसे व्यस्त जीवन का व्यक्ति और इतनी पुरानी स्पष्ट यादें। बड़ी प्रबल व तीक्ष्ण स्मरणशक्ति थी उनकी। पत्र पाकर मिलने की इच्छा बलवती होने लगी मन में। एक दिन अचानक उनका फोन आया कि, 'मैं दिनांक ९-१० फरवरी (१९८२) को किसी निरीक्षण में आगरा आ रहा हूँ और मन कर रहा है कि ग्वालियर आकर आप लोगों से भी मिलूं। मैं चाहूंगा ग्वालियर में भी इलाहबाद जैसा 'फ्रेन्ड्स सर्किल' बनाओ। 'हम अनेक साथियों ने , जल्दी-जल्दी में कार्यक्रम निश्चित कर उन्हें उनकी यात्रा के दौरान ग्वालियर पधारने का निमंत्रण दे दिया वह दिनांक ११ फरवरी १९८२ को एक दिन की यात्रा पर पहली बार ग्वालियर पधारे। मध्य प्रदेश हाईकोर्ट बार एसोसियेशन ने भी उनके सम्मान में एक विशाल भव्य समारोह, जिसमें मध्य प्रदेश हाईकोर्ट के भी कई न्यायाधीश उपस्थित थे; आयोजित किया। इस सम्मान समारोह में उन्होंने अपने भाषण में, जिस वास्तविकता व अपने हृदय की गहराई से विचार व्यक्त किये, पूरा सभा कक्ष तालियों की गड़गड़ाहट से गूंजता रहा था। न्यायालयों में राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा ग्रामीण क्षेत्रों के आखिरी निर्धन व्यक्ति तक सस्ते न्याय की सुलभता पर उनका वह भाषण आज भी यहाँ याद किया जाता है। शाम को वह हमारे सामाजिक कार्यक्रम में भी पधारे और हमें प्रेरणा दे गये एक ऐसा संगठन खड़ा करने की जो नि:स्वार्थ भाव से समाज कल्याण में लग सके। हमें गर्व है, हमारा यह संगठन आज उन्हीं के दिखाये मार्ग पर चल कर समाज सेवा में लगा है। इसी दिन एक और सुखद संयोग घटा था। आगरा से उनके साथ वहाँ के तत्कालीन अतिरिक्त जिला न्यायाधीश चौ. सी.पी. सिंह भी साथ आये थे। हमारे लिये नितान्त अपरिचित। शाम का कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद आगरा वापिस लौटने से पहले, मैंने जज साहब को सन् १९५७-५८ का इलाहाबाद का, "फ्रेन्ड्स सर्किल"

का एक ग्रुप फोटो; जो मेरी मां ने गांव में अपने किसी बक्से में सम्भाल कर रखा हुआ था, दिखाया। हम अनेकों साथियों के साथ जज-साहब, उस फोटो में, बीच में बैठे थे। यादों में खोये, बड़ी देर तक, उस फोटो को देखते रहे और मुस्कराते रहे। तभी अचानक श्री सी.पी. सिंह बड़े जोर से बोल उठे, "अरे, इसमें तो मैं भी बैठा हूँ।" हमें बिसरे हुये एक और मित्र मिले, जज साहब के माध्यम से। श्री सी. पी. सिंह (चन्द्रपाल सिंह) भी तब इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र थे, हमारे ही छात्रावास में।

तब से लेकर आखिरी समय तक (अगस्त ११, १९९७) ग्वालियर से जज-साहब का अटूट सम्पर्क निरन्तर बना रहा। वह प्रतिवर्ष ग्वालियर किले पर हमारे वार्षिक आयोजन अखिल भारतीय किसान राणा मेला (रामनवमी) में पध ारे, अध्यक्षता की। केवल सन् १९९५ (९ अप्रैल) के हमारे वार्षिक कार्यक्रम में पधारने में उन्होंने अपनी असमर्थता व्यक्त की थी क्योंकि परिद्रष्टा के नाते उन्हें गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में किसी पूर्व निर्धारित कार्य से जाना था। हमारे हर कार्य एवं प्रकाशन के प्रेरणास्रोत आज भी जज साहब ही हैं।

सात-आठ साल पुरानी बात है। नौएडा से जज साहब का एक पत्र आया, "मैं अमुक दिन पंजाब मेल से ग्वालियार आ रहा हूँ। एक दिन रुकूँगा। पत्र में यात्रा का कोई उद्देश्य विशेष या जानकारी नहीं लिखी थी। हमने सोचा, कोई काम होगा, आ रहे होंगे।" उनके आने के निश्चित दिन की पूर्व सन्ध्या को एक सज्जन अम्बेस्डर कार से हमारे घर आये, बोले, "जस्टिस महावीर सिंह जी कल ग्वालियर आ रहे हैं। उनके ठहरने, भोजन तथा गाड़ी की व्यवस्था हमने कर ली है, आप कुछ न करें।" मुझे उत्सुकता हुई, आपको कैसे पता है ? उनके ठहरने की व्यवस्था आपने क्यों की है ? आपके परिचित हैं ? मैंने उनसे यह प्रश्न किये। "नहीं परिचित नहीं," वह सज्जन बोले, "हमारे डी.ए.वी. इन्टर कालेज तथा आर्यसमाज में कुछ विवाद हैं। उनकी जांच करने आ रहे हैं। वह सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की न्याय-सभा के अध्यक्ष हैं।" पूरी बात हमारी समझ में आ गई और वह सज्जन चाय पी कर चले गये।

अगले दिन निर्धारित समय पर हम गाड़ी लेकर कई साथी जज साहब को रिसीव करने स्टेशन गये। वह सज्जन भी वहाँ पहले से उपस्थित थे। ट्रेन आई, जज साहब आये। उन सज्जन ने आग्रह किया, "आप हमारी गाड़ी से चलें हम गाड़ी लाये हैं। आप हमारे काम से आये हैं। हमने आपके ठहरने की भी व्यवस्था की है।" जज साहब बोले, सामान्य मुस्कुराहट के साथ, भाई यहाँ ग्वालियर में मेरा अपना

घर है। और फिर आपका आतिथ्य तो मैं वैसे भी स्वीकार नहीं करूँगा। क्योंकि मैं आपके प्रकरणों की जांच करने आया हूँ। मैं कल दस बजे आर्यसमाज आऊँगा। आप दोनों पक्ष वहीं मिलें।" वह सज्जन भी मुस्कराकर अभिवादन करके अपनी गाड़ी की तरफ चले गये। हम और जज साहब घर आ गये। इस सीधी-सादी घटना में उनके महान् व्यक्तित्व की कितनी महान् ईमानदारी, न्यायप्रियता व निष्पक्षता छिपी है।

लगभग चार-पांच वर्ष पूर्व की बात है। नौएडा से जज साहब का एक दिन फोन आया कि उसी दिन वह ए.पी. (आन्ध्रा एक्सप्रेस ट्रेन) से, जो दिल्ली से चल कर रात १० बजे ग्वालियर पहुँचती है, हैदराबाद जा रहे हैं। भा.ज.पा. की राष्ट्रीय कार्यसमिति की मीटिंग है। उन्हें भी राष्ट्रीय कार्यसमिति में विशेष आमंत्रित के रूप में भाग लेने बुलाया गया है। मुझे स्टेशन पर आकर मिलने के लिये कहा, कुछ चर्चा करनी है। उन्होंने फोन पर ट्रेन की बोगी नम्बर भी बता दी। शाम को घर में चर्चा हुई कि मैं रात को जज साहब से मिलने स्टेशन पर जाऊँगा। पत्नी ने सुझाव दिया कि, "रात १० बजे का समय प्रायः भोजन का समय होता है। खाना बना रहे हैं लेते जाइये। रेल में पता नहीं कैसा खाना मिलेगा। वह खायें, न खायें रेल का खाना।" और स्टेशन जाते समय खाने का डिब्बा स्कूटर में मेरे साथ रख दिया। मैं स्टेशन पहुँचा, ट्रेन आई, जज साहब प्लेट फार्म पर उतर आये। हम दोनों ने चर्चा की, जो करनी थी। ट्रेन पाँच मिनट रुक कर चल दी। मैंने उन्हें वह खाने का डिब्बा दिया, "इसमें आपका रात का खाना है। घर पर सब कह रे थे, पता नहीं रेल में कैसा खाना मिलता है। खायें, न खायें; आप तो खाना लेते जाइये।" जज साहब बोले, यह आपने बहुत अच्छा किया। मैं फोन पर भी कहने वाला था खाने क़ी, लेक़िन जल्दी में कहना भूल गया। और डिब्बे में चढ़ गये। मैं यह सोचते-सोचते प्लेटफार्म से बाहर निकला कि यदि जज साहब के अलावा कोई और व्यक्ति रहा होता तो निश्चित यह कहता, "अरे, खाने की क्या जरूरत थी। क्यों कष्ट किया। ट्रेन में खाना मिलता तो है।" लेकिन यह जज साहब के व्यक्तित्व की सरलता सादगी भोलापन स्पष्टवादिता और उकनी महानता की भीतर बाहर एकरूपता थी जो उन्हें और महान् बना गई थी।

सन् १९६६ में राज्यसभा के लिये कुछ सीटों का चुनाव होना था उत्तर प्रदेश से। जज साहब का मन था संसद में जाने का। एक बार लोकसभा का चुनाव भी लड़ा था। भा.ज.पा. के विधायकों के मतों के बल पर उत्तर प्रदेश से उस बार तीन सदस्य चुनकर राज्यसभा में जाने वाले थे। जज साहब की भी भा.ज.पा. से नजदीकी बढ़ चली थी। एक दिन सुबह उनको फोन आया कि मैं जज साहब के नाम की सम्भावना के बारे में कल्याण सिंह जी से बात करूं। कल्याण सिंह जी से फोन पर बात करने पर पता चला कि वे लोग तीन में से एक टिकिट जाट को भी दे रहे हैं। और वह नाम लगभग

फाइनल हो गया है। अब तो देर हो गई मैंने उनको यह पूरा डवलपमेन्ट फोन पर बता दिया। जज साहब उत्तर प्रदेश भवन में एक दिन बाद कल्याण सिंह जी से भी मिले और उन्हें आश्वस्त किया कि, "जो नाम आपने फाइनल किया है वह हमारे ही भाई हैं। उस नाम के लिये भी हम सब आपके हार्दिक आभारी हैं।"

सन् १९८४ में, किसान भवन मथुरा में अखिल भारतवर्षीय जाट महासभा के "प्रधान" का चुनाव था। दिल्ली, मथुरा, आगरा, जयपुर, भरतपुर, ग्वालियर, रोहतक, हिसार लगभग सभी की ओर से जज साहब का नाम प्रस्तावित होने वाला था। निश्चित था कि वही "प्रधान" बनेंगे। चुनाव से कुछ घंटे पहले उन्हें पता चला कि कैप्टन भगवान सिंह आई.ए.एस. (पूर्व राजदूत) का मन है "प्रधान" बनने का। जज साहब ने अपने नाम के बारे में स्पष्ट मना कर दिया और अपने पूर्ण हार्दिक समर्थन से कैप्टन साहब को जाट महासभा का "प्रधान" बनवाया और फूलमाला पहनाकर उनका अभिनन्दन किया। कितना निष्कपट, निष्कलुष हृदय था साधारण से दिखने वाले इस महामानव का।

बहुत स्मृतियां हैं उनकी हम ग्वालियरवासियों से जुड़ी। सन् १९८२ से लेकर सन् १९९६ तक वह अनगिनत बार ग्वालियर पधारे। एक भावनात्मक आत्मीय जुड़ाव था उनका ग्वालियर से। हमने सुप्रीम कोर्ट की लाइब्रेरी से लेकर नौएडा में उनके घर तक उनके साथ अनेकों बार यात्रा की। अनेकों नेताओं के घर भी कई बार हम साथ-साथ गये। उन्होंने हमारी अनेकों पारिवारिक व संस्थागत समस्याओं का निदान इतनी सहजता, सरलता से किया मानो समस्यायें थी ही नहीं।

जीवन के अन्तिम दिनों में भी वह ग्वालियर से सतत सम्पर्क में रहे थे। कई बार फोन पर स्वास्थ्य के बारे में चर्चा होती रहती थी। मध्य प्रदेश में राजगढ़ में एक व्यक्ति कैंसर की देशी दवा देता है। वह भी उनके पास पहुँची थी। शुरु में उस दवा ने कुछ लाभ बताया था। ग्वालियर कैंसर शोध संस्थान में आने का भी हमने उनसे आग्रह किया था, लेकिन उनकी मान्यतायें और आस्थायें अपनी अलग थीं। उनके दर्शाये समाजसेवा के निस्वार्थ व ईमानदार मार्ग पर हम आगे बढ़ते रहें, यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

हमारे पास भी उनकी अनगिनत स्मृतियां; अनेकों फोटो व ढेर सारे पत्र सुरक्षित हैं। शायद हम भी उन्हें कभी प्रकाशित कर सकें।

तानसेन मार्ग, ग्वालियर

वे सच्चे अर्थों में आर्य्य थे

-डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री

जहां तक आर्य्यसमाज के इतिहास से सम्बन्धित मेरी जानकारी है, उसके अनुसार मैं कह सकता हूँ कि आर्य्यसमाज की पुरानी पीढ़ी में न्यायाधीशों ऐसे न्यायप्रियों कि जिनका यश चतुर्दिक् फैला हुआ था और जिनके मनसा, वाचा, कर्मणा व्यवहार से यह मान्यता बलवती हुई कि आर्य्यसमाजी ईमानदार होते हैं, वे कभी झूठ नहीं बोलते- की परम्परा में स्व० जस्टिस महावीर सिंह जी का नाम उल्लेखनीय है। जिनके शासन में कभी सूर्य्य नहीं छिपता था, जिसके नाविक समुद्र की लहरों पर शासन करते थे- ऐसे अंग्रेजी शासकों की हुकूमत में भी अपनी न्यायप्रियता एवं ईमानदारी का डंका बजाने वाले- दीवानबहादुर (अम्बाला वाले) जस्टिस मेहरचन्द महाजन, जस्टिस गंगा प्रसाद (टिहरी) आदि कुछ ऐसे नाम हैं, जिनके निर्णय न्यायालय के मामलों में मील का पत्थर साबित हुए। इस स्वच्छ आर्यत्व की परम्परा को, आर्योचित विचारधारा को उभयविध (अंग्रेजी एवं स्वदेशी) शासन में आगे बढ़ाया इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश स्व० जस्टिस महावीर सिंह जी ने। उनके समग्र जीवन का अध्ययन करने पर (जैसा मैंने किया) हम कह सकते हैं कि वे एक सच्चे आर्य्य थे। वे किसी वर्ग और क्षेत्र विशेष के न थे। उन्होंने हमेशा निर्बलों को संरक्षण दिया। विनम्रता, सरलता, ईमानदारी, पवित्रता और साहस की तो वे जीती जागती मूर्त्ति थे। उन्होंने न्यायालय में जो सही साक्ष्य पाये गये उसी के आधार पर निर्णय दिये। इसीलिए लोगों का उन पर विश्वास था। मलकपुर (गाजियाबाद) ग्राम से सम्बन्धी वाद इस बात का प्रतीक है बड़ी से बड़ी ताकत के सामने भी वे कभी गलत कार्यो के लिये तैय्यार नहीं हुए। सिद्धान्तों के सामने उन्हें सब समान दिखायी पड़ते थे। क्योंकि वे युगप्रवर्तक स्वामी दयानन्द के सच्चे अनुयायी थे और अनुयायी थे वे भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र के। ईश्वर को छोड़कर कभी इन्होंने किसी से भय न माना। बदायूँ केस से सम्बन्धित तत्कालीन उ०प्र० के मुख्यमन्त्री कमलापति त्रिपाठी से हुई उनकी बातचीत इसका प्रबल उदाहरण है। अपने जीवन में इस महानुभाव ने कभी भ्रष्टाचार को पनपने नहीं दिया। यदि वे चाहते तो अपार अकूत धन-सम्पत्ति अर्जित कर सकते थे परन्तु, लोभलालच से हमेशा किनारा किया। यहाँ तक कि ससुराल की कई सौ बीघा जमीन जायदाद भी जिस पर इनका (इनकी पत्नी का) अधिकार बनता था, को स्वीकार नहीं किया। इस घटना को सुनकर तो स्वामी दयानन्द के जीवन से सम्बन्धी उदयपुर के एकलिङ्ग महादेव मन्दिर की घटना स्मृति-पथ पर आ जाती है। वास्तव में वे ऋषि

के परमभक्त एवं अनुयायी थे। ऋषिवर दयानन्द ने ऋग्वेद (१-४२-३) के भाष्य में लिखा है-

'...........**केचित् प्राड्विवाकाः सन्तो जनान् विवादयित्वा पदार्थान् हरन्ति, केचित् न्यायासने स्थित्वा शुल्कादिकं स्वीकृत्य मित्रभावेन वाऽन्यायं कुर्वन्त्येतदादयस्सर्वे चौरा विज्ञेयाः। एतान् सर्वोपायैर्निवर्त्य मनुष्यैः धर्मेण राज्यं शासनीयमिति।**' अर्थात् राज्य में विविध प्रकार के चोर होते हैं। जिनसे अराजकता उत्पन्न होती है, उनमें लोगों को झूठे मुकदमों में डलवाकर उनका धन ऐंठने वाले वकील और न्याय के आसन पर बैठकर रिश्वत लेकर या मित्रता के कारण अन्याय करने वाले न्यायाधीश भी हैं, इन सब चोरों से निपटकर लोगों को धर्म का राज्य स्थापित करना चाहिए।' जस्टिस साहब ने आजीवन ऋषि के उक्त आदेशानुसार कार्य किया। और यही कारण था कि इस ऋषि-निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हुए उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़े।[1] यहां तक कि अन्त में नौएडा में मकान बनाने के लिए अपनी प्यारी मातृभूमि एलम गांव की जमीन भी बेचनी पड़ी।

योगी अरविन्द घोष ने 'आर्य्य' शब्द की परिभाषा इस प्रकार की है- **'आर्य्य शब्द में उदारता, नम्रता, श्रेष्ठता, सरलता, साहस, पवित्रता, दया, निर्बल, संरक्षण, ज्ञान के लिए उत्सुकता, सामाजिक कर्त्तव्यपालन आदि सब उत्तम गुणों का समावेश हो जाता है। मानवीय भाषा में इससे उत्तम और कोई शब्द नहीं है।**[2]

उपर्युक्त परिभाषा के आलोक में यदि न्यायाधीश महावीर सिंह को परखकर देखते हैं तो वे इस पर खरे उतरते हैं। उन्होंने मन, वचन और कर्म से अपने उत्तरदायित्व का वहन करते हुए कभी अनार्योचित आचरण को अपने जीवन में स्थान नहीं दिया। **अतएव मेरी दृष्टि में वे सच्चे अर्थों में आर्य्य थे।**

---

१. न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्, धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये, जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।।महाभारतम्।।
निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीस्समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।भर्तृहरिः।।

2. The word Arya expresses a particular ethical and social order of well- governed life, condour, courtesy, nobility, straight dealing courage, gentleness, purity, humanity, compassion, protection of the weak, libarty, observance of social duties, eagerness for knowledge, respect for the wise and the leaved and the social accomplishment . There is no word in human speech that has a nobler history. 'Arya' Vol-I, P. 63

स्व० जस्टिस महावीर सिंह भावी संवैधानिक अभिव्यक्ति के द्रष्टा भी थे। विदेशी भाषा के माध्यम से संवैधानिक विषयों का अध्ययन करने वाले छात्रों का कितना अधिक समय भाषा सीखने में नष्ट होता है यह देखकर जस्टिस साहब को सदा कष्ट होता था। ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन-अध्यापन और प्रसार-प्रस्तार साध्य है और भाषा उसका केवल साधन। यदि साध्य की अपेक्षा साधन की प्राप्ति के लिए अधिक यत्न करना पड़े तो सचमुच चिन्ता की बात है। पर इस तथ्य को समझकर इस कष्ट का निवारण करने की सतत अभिलाषा कितने संविधान-विशारदों में है, जो स्व० जस्टिस महावीर सिंह में थी। स्व० जस्टिस साहब ने भारतीय संविधान की आर्य्यभाषा हिन्दी में प्रामाणिक विस्तृत व्याख्या लिखकर उसे कई भागों में प्रकाशित करवाया। हिन्दी में ही उन्होंने उत्तर प्रदेश के सहकारिता से सम्बन्धित कानूनों की टीकाएं भी छपवाई। कानून के क्षेत्र में राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा इनसे बढ़कर शायद ही किसी ने की हो। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के इतिहास में हिन्दी भाषा में सबसे पहली बार एक केस का निर्णय लिखकर एक उदाहरण प्रस्तुत कर मातृभाषा की उन्नति के लिए जो कार्य किया वह सदैव याद किया जायेगा।

आज से एक वर्ष पूर्व मुझे उनके पैतृकगांव में उनके अन्त्येष्टि संस्कार में सम्मिलित होने का अवसर मिला। उत्तर प्रदेश के एक गांव में जन्मे इस धरती-पुत्र के संस्कार में वर्षा ऋतु में भी इतने मनुष्य होंगे, इसका मुझे अहसास भी नहीं था। परन्तु, अपार जनसंमर्द को देखकर लगा कि वास्तव में यह व्यक्तित्व अपनी धरती के साथ जुड़ा रहा है। लोगों में इनके प्रति आदर और सम्मान था। जस्टिस साहब से अवस्था में कई वर्ष बड़े एक वृद्ध महाशय को मैंने यह कहते हुए देखा कि "महावीर को एक बार तो देख लेने दो पता नहीं फिर किस जन्म में दर्शन होंगे ?" और यह कहते हुए उस वृद्ध की आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। इस दृश्य को देखकर मेरा भी हृदय पिघल गया और मैं भावविभोर होकर सोचने लगा कि-

'कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले,
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां,
काले-काले छिद्यते रुह्यते च।।' (भास)

अर्थात् मृत्यु उपस्थित होने पर कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता। जब

रस्सी ही टूट जाये तो घड़ा कैसे धारित हो सकता ? यह समस्त प्राणि संसार वनवृक्षों के समान समय पर नष्ट और उत्पन्न होते रहते हैं।

महाकवि भास का उपुर्युक्त कथन सत्य तो है परन्तु, आर्य्यसमाज में जस्टिस साहब के जाने से जो क्षति हुई है, जो रिक्तता, शून्यता आयी है उसकी पूर्ति होना असंभव है, क्योंकि उन्होंने अनेकों बार न्यायालय से बाहर आर्य्यसमाजी पक्षों में सुलह करवायी और सभाओं के आन्तरिक विवादों को कानूनी प्रक्रियाओं में उलझाने के स्थान पर प्रेमपूर्वक श्रद्धा एवं धार्मिक भावनाओं के आधार पर आपसी सहमति से उन्हें सुलझाने पर बल दिया। आर्य्यसमाजी भाईयों में परस्पर विवाद को देखकर उन्हें बहुत कष्ट होता था।

मानवीय गुणों से ओतप्रोत, ऋषिवर दयानन्द के परमभक्त, भारतभारती के समुपासक, धरतीपुत्र स्व० जस्टिस महावीर सिंह जी की वार्षिकी पर उन्हें मेरी विनत श्रद्धाञ्जलि।

–उपसम्पादक,
गुरुकुल पत्रिका

नीर क्षीर विवेकी आदर्श आर्य नेता श्री महावीर सिंह

निहाल सिंह आर्य, दिल्ली

१९७२ ई० से ही सौरस पंचायत के महामन्त्री वयोवृद्ध चौ० कबूल सिंह ने मुझे एलम ग्राम के निवासी तथा लखनऊ, इलाहाबाद के उच्चन्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश श्री महावीर सिंह जी तथा उनके बड़े भाई गंगाराम जी की सुकीर्ति सुना दी थी। १९७८ ई० में दिल्ली के सी-४, जनकपुरी स्थान में भरत पुर नरेश सूरज मल शिक्षण संस्थान-उद्‌घाटन के सुअवसर पर भारत के राष्ट्रपति महामहीम संजीव रेड्डी, पूर्व मुख्यमंत्री तथा प्रधान मंत्री चौ० चरण सिंह और इस संस्था के उपप्रधान महावीर सिंह जी न्यायाधीश को देखकर बहुत हर्ष हुआ। महावीर सिंह जी निरन्तर इस संस्था में उपप्रधान पद को सुशोभित करते रहे। तब से ही श्री महावीर सिंह जी से मिल कर हम दोनों का सम्बन्ध निरन्तर बढ़ ही गया। आप कुशल प्रवीण न्यायविद् नेता सौम्य स्वभाव, मिलनसार थे। 'सादा जीवन और उच्च विचारों' की आप सजीव मूर्ति थे। आप दिखावे तथा तड़क-भड़क से कोशों दूर सादगी के देवता थे। आपकी स्मरण शक्ति बहुत तीव्र थी आप ने भारतीय राज विधि विधान पर आंगल भाषा में कई प्रशंसनीय पुस्तकें लिखी हैं। आप प्रत्येक अभियोग का सूक्ष्म अध्ययन मनन करके सत्य निर्णय ही लेते थे। एक अभियोग में आपने कई हजारों रुपयों की रिश्वत ठुकरा कर याथातथ्य सत्य न्याय का ही पक्ष लिया। भारतीय जन समाज, आर्य समाज, तथा राजनीति में आपकी बहुत प्रतिष्ठा थी। आपके नेत्रों में सत्यवीरता का तेज चमकता था। सर्वथा नम्र निरभिमानी निर्लोभी जन सेवक थे।

सर्वखाप पंचायत सौरम के अध्यक्ष- सौरम की पंचायत ८-९ मार्च १९५० ई० से सर्वखाप पंचायत के महासम्मेलन से पुन: प्रकाश में आ गई। इसके प्रथम अध्यक्ष २७ अगस्त .१९७९ ई० तक पूर्व सांसद आर्य नेता गुरुकुल कांगड़ी के पूर्व उपकुलपति पं० जगदेव सिंह सिद्धान्ती जी थे। दूसरे १९८१ ई० से १९८३ ई० तक पं० रघुवीर सिंह शास्त्री थे और तीसरे १९८३ से १९९७ ई० तक मेरे इस लेख के नायक आर्य विद्वान् श्री महावीर सिंह जी न्यायाधीश अध्यक्ष रहे। चौ० कबूल सिंह जी के साथ १२ जून १९८३ ई० गोहाना की सर्वखाप पंचायत में हम तीनों साथ थे। महावीर सिंह जी को ही प्रधान बनाया था इन्होंने सर्वखाप पंचायत के संगठन, सदाचार तथा स्वदेश रक्षा पर बल दिया था।

आप गत ४-५ वर्षो से विश्व प्रसिद्ध गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के सर्वमान्य परिद्रष्टा पद पर शोभायमान रहे। इनकी मधुर स्मृति में गुरुकुल कांगड़ी पत्रिका के माध्यम से मेरी श्रद्धाञ्जलि।

आप सदृश महात्मां को अनेकशः नमन ।।

❖❖❖

श्रद्धेय जस्टिस महावीर सिंह

डॉ० सोहनपाल सिंह आर्य

गुरुकुल कांगड़ी वि०वि० के सम्मानित परिदृष्टा जस्टिस महावीर सिंह जी का विगत ११ अगस्त को दिल्ली में निधन हो गया। उनकी पार्थिव देह को अंतिम विदाई देने गुरुकुल परिवार के साथ मैं भी एलम पहुँचा। अपराहन् ३ बजे तक उनका अन्त्येष्टि संस्कार वैदित रीति के अनुसार सम्पन्न भी हो गया। परन्तु शोकाकुल उनके इष्ट-मित्रों एवं शुभचिन्तकों को नहीं लगा कि वे सदा के लिये हमारे बीच से चले गये। वहां सभी लोगों ने जस्टिस साहब के असामयिक निधन से उत्पन्न वेदना एवं रिक्तता को गहराई से अनुभव किया और सचमुच उसे अपनी व्यक्तिगत क्षति माना। जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में शायद ही सम्भव हो।

वस्तुत: सार्वजनिक जीवन में नैतिकता पर मंडराये-गहराये संकट की इस घड़ी में ऐसे निर्भीक व ईमानदार प्रशासक, प्रख्यात कानूनविद् व लेखक, प्रखर राष्ट्रवादी नेता एवं समर्पित आर्य-पुरुष की नितान्त आवश्यकता था, विशेषकर- आर्य समाज, राष्ट्रवादी राजनीति, महिला शिक्षा, ग्रामोत्थान और हिन्दी आन्दोलन से जुड़े लोगों को। यदि स्वार्थवाद की इस वर्तमान आँधी में सत्पथ से हमारे कदम न डिगे, तो यह उस कर्मयोगी के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि हो जायेगी। प्रभु से विनती है कि जस्टिस साहब के पग-चिन्हों पर चलने के लिये वह हमारे भीतर शक्ति एवं साहस का संचार करे।

स्व० जस्टिस साहब स्व निर्मित (Self made) व्यक्तित्व के स्वामी थे। यद्यपि उनकी एलम से इलाहाबाद तक की लम्बी विकास यात्रा अनेक मोड़ों, पड़ावों और संघर्षों से होकर गुजरी; तथापि उसमें कभी ठहराव या भटकाव नहीं आया। देहातों में इसे सुखद आश्चर्य के रूप में देखा गया कि उन्होंने केवल अपनी योग्यता एवं कर्तव्य निष्ठा के बल पर ऐसा सम्मानास्पद पद प्राप्त किया। उन्होंने ग्रामीण मानसिकता के इस मिथक को भी तोड़ा कि राजाश्रय, सिफारिश अथवा रिश्वत के बिना केवल अपनी योग्यता, क्षमता के बल पर अभीष्ट मंजिल तक नहीं पहुँचा जा सकता सही ही, उनसे जुड़े लोग जस्टिस साहब की उपलब्धियों पर गर्व अनुभव करते हैं।

यद्यपि, मुझे उनके निकट सम्पर्क में आकर, उन्हें नजदीक से समझने का सौभाग्य नहीं मिला तथापि, उनके उन्नयनकारी जीवन , विद्वता, जनसेवा और चरित्र की दृढ़ता ने पश्चिमी उ०प्र० में उनकी यश पताका को गाँव-२ में पहुँचाया। बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि स्व० जस्टिस साहब किसान यूनियन उ०प्र० के प्रारम्भिक संगठन कर्ताओं में से थे। किन्तु बाद में किसान नेता श्री टिकैत से मत भेदों के चलते उन्होंने यूनियन

के अराजनैतिकवाद को तिलाञ्जलि देकर सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया। उन्हें पश्चिमी उ०प्र० भाजपा का प्रभारी बनाया गया। जस्टिस साहब के योगदान और सेवाओं के कारण आर्य समाज-विशेषकर गुरुकुल कांगड़ी वि०वि० तो सदैव उनका ऋणी रहेगा।

स्व० महावीर सिंह जी के विकासमान जीवन का मूल मंत्र था 'सादा जीवन, उच्च विचार'। वे चाहे उ०प्र० हाई कोर्ट के माननीय न्यायाधीश के रूप में हो अथवा भाजपा नेता के रूप में या गुरुकुल वि०वि० के परिदृष्टा के रूप में हो या फिर किसान आन्दोलन के संगठन कर्ता के रूप में- वे सदैव सादगी एवं विद्वता की प्रतिमूर्ति दिखलाई पड़े। परन्तु उसकी सादगी कोई ऊपर से ओढ़ी गयी अभिजात्य ढंग की दिखावा मात्र न होकर उनके अन्दर-बाहर पूर्णत: रची बसी सादगी थी और उस सादगी के भीतर से झाँकती उनकी प्रखर बौद्धिकता एवं विद्वता हर किसी को उनका सम्मान करने के लिये विवश कर देती थी। उन्होंने अपने जीवन में ऊँचाइयों को छू लेने के पश्चात् भी अपने कदम धरती से न डिगने दिये। यही कारण है कि वे अपने क्षणों तक एलम में महिला पॉलिटैक्निकल प्रशिक्षण केन्द्र का संचालन करते रहे। यह उनकी नारी शिक्षा और ग्रामोत्थान के प्रति अटूट अनुराग का ज्वलंत प्रमाण है।

स्व० सिंह साहब सही अर्थो में धरती-पुत्र थे वे खाँटी ग्रामीण जीवन शैली में पले एवं बढ़े भी। किन्तु उच्च वर्ग में अपना सम्मानित स्थान बनाने में उस देहातीपन को कभी अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। इसलिये शहरियों के बीच शहरी होकर रहे भी, आगे बढ़े भी। परन्तु उनका वह शहरीपन देहाती समाज से रिश्ते बनाये रखने में कभी बाधक नहीं हुआ। यह उनकी उत्कृष्ट मानवीय संवेदनाओं और सरोकारों के प्रति अटूट आस्था का परिचायक है। जिसके संस्कार उन्होंने अपने परिवार के अलावा आर्य समाज से पाये थे।

वे उन चन्द व्यक्तियों में से थे, जिन्हें अपना लक्ष्य पाने के लिये कदाचित् ही किसी सभा/संगठन से सहायता मिली अथवा लेनी पड़ी हो। यह भी सच्चाई है कि उनके इर्द गिर्द संगठन खड़ा हो जाता था। जब वे किसी काम को पूरा करने की ठान लेते थे। इसलिये स्व० जस्टिस साहब के बारे में यह कहना अधिक सही होगा उनका व्यक्तित्व प्रसिद्धि के लिये किसी पद का मोहताज न था अपितु, वे जिस पद पर भी आसीन हुये, उनके सरल, शालीन, निष्कलंक प्रबुद्ध और तेजस्वी व्यक्तित्व के कारण उस पद की गरिमा ही बढ़ी। वे अब हमारे बीच नहीं है। किन्तु उनके द्वारा दिखाया मार्ग और आदर्श लम्बे समय तक भावी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा।

प्रवक्ता
दर्शन विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

देवतुल्य श्री महावीर सिंह जी

सुरेन्द्र सिंह तोमर

न्यायाधीश चौ० महावीर सिंह हमारे पिताजी के बड़े भाई यानि हमारे ताऊ जी थे। वे सिर्फ नाम के ही महावीर सिंह नहीं बल्कि अपनी कथनी और करनी के भी महावीर थे। मैंने अपनी ट्रेनिंग लखनऊ में ली थी। ताऊ जी कई बार मुझसे मिलने ट्रेनिंग सेन्टर आये। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती होशियारी देवी भी आती थी। जो एक बहुत ही ममतामयी स्त्री थीं। ट्रेनिंग समाप्त होने पर जब मैं ताऊ जी से मिलने गया तो वे बड़े खुश हुए। जब मैंने उन्हें बताया कि मेरा ट्रांसफर दूर हो गया तो वे बोले तुम चिंता मत करो और मेरे साथ चलो। ताऊ जी ने गाड़ी स्टार्ट की। परन्तु गाड़ी स्टार्ट होते ही बंद हो गयी। ताऊ जी चाहते तो गाड़ियों की लाईन लग सकती थी। परन्तु नहीं ताऊ जी ने किसी को परेशान करना उचित नहीं समझा। और कोठी से निकल पड़े। डी०आई०जी० साहब से मुझे मिलवाने के लिए उनके निवास स्थान पर। हालाँकि एक पत्र देकर वे मुझे अकेले को या किसी नौकर को भेज सकते थे या फिर फोन कर सकते थे। परन्तु नहीं, मेरे साथ करीब अढ़ाई किमी० पैदल गये और फिर पैदल आये। ये बात सन् १९८० की है। उस समय वे उच्च न्यायालय में न्यायाधीश के पद को सुशोभित कर रहे थे। वैसे तो उनकी हर एक बात अलग थी।

मुझे एक और घटना याद आ रही है। ये सन् १९८५ की बात है। मैं किसी कार्यवश ताऊ जी से मिलने गया। ताऊ जी ने मेरी समस्या बड़े ध्यान से सुनी और उसका निदान किया। फिर कहने लगे कि दो दिनों बाद तुम मेरे साथ चलना। मुझे किसी रिश्तेदारी में जाना है। दो दिनों बाद ताऊ जी ने मुझे लोनी बॉर्डर पर मिलने को कहा। क्योंकि उन्हें कस्बा शामली के पास किसी गांव में जाना था।

शायद आपको विदित होगा कि दिल्ली से सहारनपुर वाली सड़क पर बेहद भीड़ रहती है और उस रोज मानो सारी दिल्ली भाग रही थी और वे भी सहारनपुर वाली सड़क से बसों में भीड़ का बुरा हाल था। हमने एक बस देखी, दो देखी, दस देखी, परन्तु भीड़ घटने के बजाय बढ़ती जा रही थी। फिर ऐसी ही एक भीड़ भरी बस में चढ़ गये। मैंने उनका परिचय देकर किसी सहयात्री से उन्हें सीट दिलाने के लिए कहा। परन्तु उन्होंने सख्त मना कर दिया। और इस भीड़ भरी बस और पसीने से सराबोर शामली बस अड्डे पर उतर गये। वहाँ से दूसरी बस पकड़ कर हम १० किमी० और चले। फिर हमें बस छोड़नी पड़ी। क्योंकि वहां से आगे बस नहीं जाती थी। बस से उतर कर मैं इधर-उधर देखने लगा। ताऊ जी

बोले क्या देख रहे हो ? मैं बड़ी शर्म महसूस कर रहा था। मैंने कहा कोई वाहन देख रहा हूँ। परन्तु मिल नहीं रहा है। वाहन के अभाव में ५ किमी० पैदल चलना पड़ेगा। ताऊ जी मैं तो चला जाऊंगा। परन्तु आप परेशान हो जायेंगे। ताऊ जी ने प्यार भरी झिड़की दी और कहा- अरे! किसान का बेटा हूँ। क्यों नहीं चलूंगा पैदल। जून का महीना था। नीचे तपती हुई रेत और ऊपर से भीषण गर्मी बरसाता सूर्यदेव। ऐसी भयानक गर्मी में हमारे ताऊ जी यानि की उच्चतम न्यायालय से अवकाश प्राप्त न्यायाधीश और सर्वोच्च न्यायालय में सीनियर वकील पैदल चले जा रहे थे और वो भी बिना किसी परेशानी के। रास्ते में एक पेंड़ की छाया देखकर हम थोड़ी देर के लिए वहां रुक गये। वहां दो-चार आदमी और भी बैठे हुए थे। उन्होंने हमारा परिचय पूछा। जब मैंने ताऊ जी का परिचय दिया तो वे सब नतमस्तक हो गये और कहने लगे कि इस जमाने में इस तरह का दूसरा उदाहरण मिलना असम्भव है। एक छोटा सा क्लर्क भी पैदल चलने में अपनी तौहीन मानता है। और कहां जजसाहब जिनके माथे पर शिकन तक नहीं है।

उनकी हर एक बात अनूठी थी। जब कभी उनसे मिलने जाता, उन्हें हमेशा कुछ न कुछ लिखते या पढ़ते हुए पाता। जब कभी मैं उनसे इस बारे में कहता कि आप थकते नहीं हो तो ताऊ जी हंसकर कहते :-

काक चेष्टा बकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी, सदाचारी पुरुष पंचलक्षणम्।।

वे हमें भी हमेशा यही सलाह दिया करते थे। जो भी कार्य करो सच्चे मन और लगन से करो। जब ताऊ जी हमारे गाँव आया करते थे तो हमेशा ही जमीन पर बैठकर भोजन किया करते थे। और सभी परिवार वालों के साथ बाहर चबूतरे पर सोया करते थे।

आपको विदित ही होगा कि पहले गांव में घर के अंदर शौचालय नहीं बनाते थे। हमारे ताऊ जी सुबह हाथ में पानी का डिब्बा लेकर दिशा मैदान के लिए खेत में जाया करते थे। और फिर नीम की लकड़ी से दातून किया करते थे। ऐसे थे हमारे ताऊ जी। सादा जीवन उच्च विचार की वे जीवंत मूर्ति थे। अपनी बीमारी की हालत में भी वे किसी पर बोझ नहीं बने। जब कभी मैं या कोई भी उनसे मिलने गया तो उन्होंने बिस्तर पर लेटे-२ ही हंसकर स्वागत किया। और फिर एक दिन काल की वो भयानक घड़ी ताऊ जी को हमसे हमेशा के लिए दूर ले गयी। उनके ब्रह्मलीन होने से मैं अपने जीवन में एक बहुत बड़ा शून्य महसूस करता हूं। और बस आखिर में यही कहूंगा कि :-

पूज्य ताऊ जी हो सके, तो लौट के आना।
आँखें हैं दर्शन की प्यासी, दर्शन दिखाना।

मेरी तरफ से मेरे ताऊ जी को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि और शत-२ प्रणाम।

बागपत

एक महान् विभूति

बाबूराम

मनुष्य जीवन के तीन सौभाग्य होते हैं। विद्वानों का यह मानना है कि पहले तो मनुष्य जन्म मिलना ही दुर्लभ है, जीव कर्मों के अनुसार बार-बार जन्म ग्रहण करता है, अर्थात शरीर धारण करता है। जब पूर्व जन्म में जीव बहुत ही अच्छे कार्य करता है तो उसे मनुष्य जीवन प्राप्त होता है फिर उसमें मनुष्य की महानता, तथा महान् पुरुषों की निकटता ये तीनों ही रूप श्री महावीर सिंह जी में साक्षात् रूप में विद्यमान थे।

श्री महावीर सिंह जी सरल स्वभाव एवं मधुर भाषी, सीधी सतर कद की काठी, दृढ़ता से बन्द होठ, चेहरे से टपकती गम्भीरता, तरल आँखें सादगी पूर्ण लिबास, भारतीय संस्कृति में रचा बसा मन, हर नयी चीज को ग्रहण करने को उद्यत मस्तिष्क तथा आँखों को खोलना तथा बन्द करना मानों किसी को तोलने की प्रतिक्रिया था। यह था उनका बाहरी रूप।

इनका जन्म एलम में चौ० जीत सिंह के यहां हुआ था। इनकी माता का नाम हरकौर था जो एक सरल स्वभाव तथा देवी प्रवृत्ति की महिला थी पिता श्री चौ० जीत सिंह जी कट्टर आर्य समाजी, संयमी, समय की पाबन्दी रखने वाले तथा अपने असूलों पर अटल रहने वाले एक महान् व्यक्ति थे। माता-पिता का प्रभाव श्री महावीर सिंह जी पर भी गहरा पड़ा। श्री महावीर सिंह जी में समाज, राष्ट्र, ग्रामीण कृषक, मजदूर तथा माता-पिता की सेवा की भावना जैसी उनमें थी, वैसी अन्यत्र दुर्लभ थी यदि किसी को उनकी कहीं आवश्यकता होती, तो वे चौबीस घन्टे अर्थात् हर समय तैयार रहते थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन दूसरों की सेवा, सादगी एवं ईमानदारी के साथ समर्पित कर दिया। उनके संस्मरणों को हम कई भागों में विभाजित कर सकते हैं। जो निम्न प्रकार हैं।

न्यायप्रियता : श्री महावीर सिंह के हृदय में न्याय की भावना कूट-२ कर भरी हुई थी। वे हाई कोर्ट के न्यायमूर्ति तो बने, परन्तु उनके विचारों से यह आभास होता था कि उनका जन्म न्याय के लिये हुआ है। जब वे प्रारम्भ में मुंशीफ चुने गये, तो छुट्टियों में जब वे गांव आते थे अपने गांव तथा आस-पास के विवादों

के फ़ैसले वे पंचायतों के माध्यम से निपटाया करते थे। उन्होंने अपने यहाँ का कोई भी मुकदमा न्यायालय में नहीं छोड़ा। सभी का निपटारा समझा बुझाकर कर दिया।

जब वे जिला जज के रूप में बदायूँ में थे तब उनकी न्यायप्रियता को देखकर उनका अभिनन्दन किया गया। और उन्हें शाहजाहाँ तथा विक्रमादित्य की उपाधि से सम्मानित किया गया। उनके साथ गांव में चण्डीगढ़ हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस कच्छावत सहाय आये थे उन्होंने बताया कि श्री महावीर सिंह जी के मुंशीफ़ी से हाईकोर्ट तक उनके निर्णय की अपील, उनके फैसले के अनुसार रही, कभी भी किसी अदालत में तबदील नहीं हुई। कानून के तो वे महान् ज्ञाता थे परन्तु न्यायाधीश होने के साथ-साथ स्वभाव तथा जन्म से न्याय का चौला पहने हुए थे।

समाज सेवा तथा मातृ–पितृ भक्ति की भावना –

जिस समय वे सहारनपुर में मुंशीफ थे माता-पिता की सेवा भावना का ध्यान हृदय में रखते हुये छुट्टियां न करते हुए नित्य गांव आये करते थे तथा माता-पिता का ध्यान अपने आप ही करते थे। उनके परिवार के अन्य सदस्य भी सेवा करने वाले थे जबकि उनकी पत्नी के हृदय में भी मातृ-पितृ भक्ति भावना कूट-२ कर भरी हुई थी। परन्तु इतने वे अपने आप अपने हाथों से स्नान नहीं करा देते थे उनके मन को सन्तोष का आभास नहीं होता था। जिस समय सहारनपुर आये थे तो उसी समय इनकी माता का स्वर्गवास हो गया था। जिस समय जिला रामपुर में जिला जज थे तो उसी समय इनके पिता जी के पैर में फैक्चर हो गया। तो इन्होंने उन्हें दिल्ली हास्पिटल में भर्ती कराया, तथा वहीं बरान्डे में फर्श पर चादर बिछा कर महीनों तक सेवा की। उनके ठीक होने पर अपने साथ लेकर गये। चौ० कन्हैया लाल जी उनके श्वसुर थे उनके भी एक पुत्री थी इन्होंने उनको भी अपने पास रखकर अन्तिम समय तक सेवा की। ऐसी मातृ-पितृ भक्ति की भावना रखने वाले श्रवण कुमार का इतिहास। अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इनके पिता जी ने १०२ वर्ष ही अवस्था में अपना शरीर पूर्ण कर लिया। उनकी शताब्दी सादगी स्वरूप बड़ी धूम धाम से मनायी गयी।

गांव मजदूर एवं कृषक की उनके हृदय में चिन्ता सदा बनी रहती थी। गांव में सन् १९४४ में उन्होंने एक सहकारी सोसायटी बनायी फिर क्षेत्र तथा अन्य गांवों में भी सहकारी सोसायटी बनवायी तथा एक संघ का निर्माण कराया,

जिससे गांव वाले अनभिज्ञ थे। जो आज तक कार्यरत हैं एक छोटी सी पूँजी से बहुत बड़ी सम्पत्ति संघ की बनी। गांव में महीने के प्रथम रविवार को एक मीटिंग रखते थे। तथा उसी में सभी समस्याओं का निदान कर देते थे। गांव में ग्रामवासियों के साथ वे कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते थे ग्रामवासियों के साथ घर-२ जाकर चन्दा माँग कर, प्रधानों के माध्यम से फर्श लगवाये। वे हर समय गांव का उत्थान देखना चाहते थे इसलिये उनका कथन भी था कि मेरा पूर्ण सहयोग गांव के लिये रहा है, तथा रहेगा।

शिक्षा के क्षेत्र में योगदान– विद्या एक ऐसा दीपक है जो स्वयं प्रकाशित होता है तथा अपने प्रकाश से दूसरों को भी प्रकाशित करता है। श्री महावीर सिंह जी एक विद्वान् व्यक्ति थे वे विद्या के महत्व को जानते थे तो उन्होंने विद्या रूपी चिराग को जलाने का कार्य सन् १९४४ में मीडिल स्कूल की स्थापना एलम में की तथा उसे सन् १९५० में हाईस्कूल की मान्यता दिलायी। तत्पश्चात् इण्टरमीडिएट की मान्यता दिलाकर शिक्षा के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इसके अलावा न्याय में जाने से पूर्व उन्होंने एक आदर्श अध्यापक के रूप में वैदिक जनता इन्टर कालेज बड़ौत में कार्य किया।

मुजफ्फरनगर जिले के अनेक कालेजों में तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग दिया। गांव में महिला पालिटैकनिक तथा जो बदल कर आई०टी०आई० रूप में, अपना निजि मकान देकर संस्था को मान्यता दिलायी। जो सुचारु रूप से आज भी चल रही है। जो अनेक महिलाओं को दस्तकार बनाकर नौकरी के योग्य बनाती है। वे कई राज्यों में अनेक विद्यालयों के सदस्य भी रहें हैं। १९९२ से गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के विजिटर (परिदृष्टा) पद पर अन्तिम समय तक बने रहे।

ईमानदारी - श्री महावीर सिंह जी एक ईमानदार व्यक्ति थे उनकी ईमानदारी को छिपाया नहीं जा सकता। जिस समय उन्होंने अवकाश प्राप्त किया, तो उनकी पास बुक में केवल एक महीने की ही तनखा थी उन्होंने जो नोएडा प्लाट लिया। अपनी गांव की भूमि बेचकर ही, एक साधारण सा मकान अपनी प्रैक्टिस तथा पुस्तक लिखकर उसे बनाया। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन सादगी तथा ईमानदारी में ही व्यतीत किया। लेखक को साथ रहने का अवसर काफी रहा है। सादा जीवन ऊँच विचार के साथ उनका भोजन भी सादा ही था। वे प्रातः काल में नाश्ते में मट्ठे का प्रयोग करते थे। दिन में नित्य एक ही समय भोजन करने की प्रक्रिया थी। मुझे उनका सहवास काफी रहा है।

उनका चरित्र महान् था तथा अनुकरणीय था मैंने भी उनके जीवन से शिक्षा प्राप्त की, तथा जीवन में उतारने का प्रयत्न किया है। वे एक लौह पुरुष थे कभी भी वे किसी कर्म से पीछे नहीं हटे। उन्होंने अपने जीवन में कर्मठता का संकल्प ले रखा था। उन्होंने जो भी लक्ष्य लिया उसे पूर्ण कर दिखाया उन्होंने जीवन में कर्तव्य पालन को ही अपने जीवन का एक अंग मान लिया और अन्तिम समय तक उसी पर चलकर सिद्धि प्राप्त की। यदि कोई समस्या उकने समक्ष आयी तो वे उस समस्या का निदान स्वयं ही सूझ बूझ के द्वारा कर लिया करते थे। महान् व्यक्तियों के चरित्र का वे अनुकरण करते थे। एक बार भारत के प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी सन् १९६५ में एक नारा दिया था कि हम भूखे रह सकते हैं लेकिन आत्म सम्मान नहीं बेचेंगे। क्योंकि अमेरिका के राष्ट्रपति आमन्त्रित करके भी उनसे नहीं मिल पाये थे। इसलिये उन्होंने निश्चय किया कि देश का हर वासी सोमवार का एक समय का व्रत रखे तो हमारी पूर्ति अनाज के बिना आयात किये ही हो जायेगी। तभी से श्री महावीर सिंह जी ने सोमवार को व्रत रखकर अन्तिम समय तक एक ही समय भोजन किया।

जहां उन्होंने कानून के ऊपर अनेक पुस्तकें लिखीं वहां भारतीय संविधान का हिन्दी रूपान्तर किया। ग्रामीणों के लिये न्याय पंचायत, चकबन्दी एक्ट जैसी पुस्तकें प्रकाशित कराकर बहुत से व्यक्तियों को नि:शुल्क प्रदान की। आर्य समाज की तथा अन्य पत्रिकायें भी उनके पास आती रहती थी उनका व्यय सहन करने की असीम प्रवृत्ति थी। जबकि मितव्ययता इतनी थी कि आस-पास के गांवों में बिना गाड़ी के पैदल ही चलकर ग्रामीण समस्याओं का निपटारा करते थे। यदि कोई उनसे मिलने आता था तो उसके साथ मुस्कराकर बातचीत करते थे। मिलने वाले को ऐसा आभास होता था कि जज साहब की निकटता तुम्हारे साथ अधिक है। लेकिन बुराई के आगे टस से मस नहीं होते थे। उनकी वाणी धीमी शोर गुल के बीच से निकलकर सुनायी देती थी। ऐसे थे न्यायमूर्ति श्री महावीर सिंह जी।

-एलम
(मु० नगर)

स्व० न्यायाधीश महावीर सिंह

आविर्भाव - १७ अक्टूबर १६१६ तिरोभाव-११ अगस्त १६६७

जस्टिस साहब से सम्बन्धित मेरे कुछ संस्मरण

-प्रो. डी.वी. सिंह राणा

श्री महावीर सिंह जी के बड़े भाई स्वं रणवीर सिंह जी असिस्टेंट कलेक्टर (केन्द्रीय आबकारी) से सेवा-निवृत हुए, जो मेरे साढू थे। यह भी सौभाग्य की बात है कि मेरा विवाह आदर्श नंगला के संस्थापक और छपरोली विकास खण्ड के प्रमुख श्री मनीराम जी की बङ्घन से भूतपूर्व कुलपति एंव सासंद स्व. श्री रघुवीर सिंह शास्त्री ने पुरोहित के रूप में सम्पन्न कराया था एंव पृथ्वी सिंह बेधड़क उस शुभ अवसर पर उपस्थित थे। उस समय स्व. महावीर सिंह जी न्यायिक सेवा में मुन्सिफ के रूप में कार्यरत थे। एक बार उनके बड़े भ्राता ने बताया था कि श्री महावीर सिंह जी ने १९४१ की आई.सी.एस. की लिखित परीक्षा में भारत में चौथा स्थान प्राप्त किया था, किन्तु साक्षात्कार के समय एक मुस्लिम सदस्य ने उनसे 'पाकिस्तान की अवधारणा' के सम्बध में प्रश्न पूछ डाला एक सच्चे राष्ट्रवादी के रूप में उन्होंने इस विचार की धज्जियां उखाड़ दी जिससे खिन्न होकर उनको साक्षात्कार में सफल नहीं होने दिया गया।

जिन दिनों उनके पिता स्व. श्री अजीत सिंह ९२ वर्ष की अवस्था में कूल्हे की हड्डी उतरने पर भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान दिल्ली में भरती थे तो श्री महावीर सिंह जी रामपुर में जिलाधीश थे। उनकी सेवा के लिए आप स्वयं एक-दो माह की छुट्टी लेकर दिल्ली अस्पताल में उनकी चारपाई के पास दरी बिछा कर ....ही दिन-रात रहते थे। मैं प्राय: कई बार उनके पास उनके पिता की (अपने ताऊ जी) के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी लेने गया। एक बार मैंने पूछा कि आप महीनों से छुट्टी लेकर यहां रह रहे है, कोई नौकर भी छोड़ सकते थे तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'पिता की सेवा तो हर स्थिति में मुझे ही करनी है चाहे मेंकिसी भी पद पर रहूं। यह कार्य नौकर नहीं कर सकता 'मैंने देखा कि हमारे ताऊ जी अब भी बार-बार आवाज देते 'महावीर, महावीर तो वे भाग कर आते और उनको उठा कर बैठाते। पितृ -भक्ति एवं सेवा का यह एक साक्षात अनूठा नमूना मैंने उनको उठा महीनों से छुट्टी लेकर यहा रह रहे हो, कोई नौकर भी छोड़ सकते थे तो उन्होने उत्तर दिया कि पिता की सेवा तो हर स्थिति तें मुझे ही करनी

है चाहे मैं किसी भी पद पर रहूं। यह कार्य नौकर नहीं कर सकता मैने देखा कि हमारे ताऊ जी जब भी बार-बार आवाज देते-महावीर, महावीर तो वे भाग कर आते और उनको उठा कर बैठाते। पितृ-भक्ति एंव सेवा का यह एक साक्षात अनूठा नमूना मैंने स्वयं उनमें देखा है जिसका निर्वाह वे बड़ी निष्ठा एंव कर्त्तव्य -परायणता और बिना किसी कृत्रिमता के कर रहे थे।

एक और घटना इस समय की है जब उनकी धर्म-पत्नि श्री मती होशियारी देवी गम्भीर बीमारी से पीड़ित सैनिक अस्पताल दिल्ली में भरती थी। उन्हीं दिनों उनके बड़े पुत्रा भूपेन्द्र सेना में मेजर थें। उनके स्वास्थ्य का पता लेनें के बाद जब मैंने श्री महावीर सिंह से अलग से पूछा भाई साहब आपने जीवन में सदैव सद्कार्य नहीं किए, पितृ-सेवा का नमूना मैंने स्वयं देखा है और कभी भी जीवन में कोई ऐसा किया जिससे किसी के साथ कोई अन्याय हुआ हो, परन्तु ईश्वर फिर भी आपको इस रूप में कष्ट दे रहा है तो उनका उत्तर था स्वामी दयानन्द महाराज ने भी सदैव मानुओं परि सद्कार्य किए है, किन्तु उनके जीवन को भी कई बार कष्ट पहुंचा है और महापुरूषों ने भी सदैव इन कष्टों को सहर्ष वहन किया है, मैं तो उनकी तुलना में एक तुच्छ मानव है।

इसी प्रकार अनेक अवसारों पर ये कुछ हंसी-मजाक की घटनाएं भी सुनाते रहते थे जब भी वे बडौत से गुजरते थे तो देहली-रोड़ पर मेरे मकान के सामने अवश्य रूकते औ केवल भट्ठा(छाकू) मक्खन डाल कर ही लेते थे। एक बार वे श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा को लेकर ३-४ घंटे भीषण गर्मी के समय दोपहरी भर यहीं मेरे पास रहे। इस समय भी उन्होंने केवल आम का जूस ही लिया था। शेष उनके चरित्रा की बाह्‌य बातें तो सर्व-विदित ही है।

ये कुछ उपरोक्त संस्मरण है जो मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। हिन्दी भाषा के ऊपर जो प्रभुत्व आप लोगों का है उसकी तुलना में, मैं समक्ष नहीं हूँ, फिर भी यह तुच्छ प्रयास किया है। अत:आप वाक्य-विन्यास सम्बंधी जो संशोधन करना चाहें अपनी इच्छानुकूल कर सकते है। इस सराहनीय कथन के लिए आपका बहुत बहुत धन्यवाद।

- ८४ सुभाषनगर
बड़ौत - मेरठ २५० ६११

महाप्राण जस्टिस महावीर सिंह

–इन्द्रपाल सिंह, एलम

हे श्रेष्ठ पुरुषों ! आप हमें दुःखों से बचाने के लिए अधिकार पूर्वक उत्तम उपदेश सुनाओ। हे विद्वानों ! हम दुःख अथवा दुर्गति में जब पड़ें तब आप दुखियों की सच्ची टेर सुनने वाले हमारे दुःख सुनकर हमारा त्राण करो। अपनी रक्षा और कल्याण के लिए हम दुःखी जन आपको पुकारते हैं।

साधारण जन सारे जीवन तुच्छ स्वार्थों एवं निरर्थक विवादों में ही फंसे रहकर अपनी शक्तियां नष्ट कर देते हैं। उनके जीवन में कभी चमक नहीं आती और अन्ततः काल-कवलित होने पर लोक में सदा के लिए विस्मृत हो जाते हैं। उनके मरणोपरान्त उनकी कोई चर्चा नहीं होती, उनके लिए कोई गीत नहीं गाये जाते, उनका उल्लेख भी कहीं नहीं होता। बरसात की रात में असंख्य कीट पतंगे न जाने कहाँ से आकर पृथ्वी पर छा जाते हैं और प्रातःकाल सूर्योदय होते ही सब धराशायी होकर मिट्टी में मिलने पर पैरों तले रौंद दिये जाते हैं। किन्तु इसके विपरीत महापुरुष स्वार्थों से ऊपर उठकर तथा भौतिक सुख, पद, प्रतिष्ठा, सत्ता, यश, धन आदि के प्रलोभन से अछूते रहकर आदर्शों, सिद्धान्तों एवं मूल्यों के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देते हैं और मानवता के लिए प्रकाश दीप बन कर सदा के लिए अमर हो जाते हैं। जो सदुद्देश्य के लिए संघर्ष करते हैं, इतिहास उनके नाम और यश को स्वर्णिम अक्षरों में सुरक्षित रखता है। इतिहास मानव संघर्ष की ही कहानी है। जिसके जीवन में किसी उत्तम उद्देश्य की पूर्ति के लिए संघर्ष नहीं है, उसमें विशेषता ही क्या है ? जय-पराजय से ऊपर उठकर सत्य और न्याय के लिए संघर्ष करने वाला व्यक्ति ही कुछ उपलब्धि प्राप्त करता है। सीधे सपाट मैदान में चलते चलते उकताहट तथा ऊब हो जाती है। उबड़-खाबड़ तथा ऊँचे-नीचे पहाड़ पर गिरकर और उठकर चलने का उल्लास अद्भुत होता है। नदी की गति में बाधक पत्थर ही उसके प्रवाह में संगीत उत्पन्न करते हैं। सत्य और न्याय के पक्ष में संघर्ष करने वाला व्यक्ति ही दूसरों को प्रेरणा दे सकता है। स्वार्थ लोलुप व्यक्ति के लिए संघर्ष कष्टदायक होता है किन्तु आदर्श महापुरुष के लिए आदर्शों एवं मूल्यों की प्रस्थापना हेतु संघर्ष करना सहज तथा सुखद होता है। भले ही उसे पग-पग पर कठोर विषमताओं का सामना करना पड़े।

ऐसे ही संघर्षशील महापुरुष जस्टिस महावीर सिंह का आचरण सब काल में प्रेरणादायक एवं अनुकरणीय है। उनके संघर्षमय जीवन में कहीं अधीरता अथवा क्षोभ नहीं है। वे सहज, शान्त, धीर और गंभीर हैं।

उत्तर प्रदेश के जिला मुजफ्फरनगर के अन्तर्गत ग्राम एलम में जन्मे चौ. हरनाम सिंह एक अच्छे सम्मानित व्यक्ति थे। उनके दो पुत्र हुए- चौ. हरकेश और चौ. जीत सिंह। चौ. जीत सिंह सब कुछ बड़े हुए तो उन्हें ग्राम एलम ही में स्थित पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजा गया। वे बहुत तेज-तर्रार और कुशाग्र बुद्धि थे। वे अपनी कक्षाओं में प्रथम आने लगे। उन्होंने कक्षा ४ व ५ एक ही साथ पास कर दी। तब उन्हें ग्राम एलम से करीब ६ मील दूर कांधला पढ़ने के लिए भेजा गया जहां से उन्होंने मिडिल पास किया। फिर कुछ समय अपने गाँव में ही शिक्षण कार्य किया। थोड़े समय बाद ही वे कोटबुंदी रियासत में जाकर अध्यापन कार्य करने लगे। इसी दौरान उन्होंने वन विभाग में इंस्पेक्टर पद के लिए परीक्षा दी, जिसमें उन्हें सफलता मिली। उनकी नियुक्ति वन विभाग में इंसपेक्टर के रूप में हो गयी। उनका विवाह ग्राम कासिमपुर खेड़ी जिला मेरठ (बागपत) निवासी चौ. मानसिंह की पुत्री से हुआ। चौ. जीत सिंह के यहां ५ पुत्र-पुत्रियाँ हुए जिनमें दो पुत्र, चौ. रणवीर सिंह सबसे बड़े तथा चौ. महावीर सिंह सबसे छोटे थे। पूरा परिवार उस समय गाँव में ही था। कुछ समय तक बच्चों ने ग्राम एलम के स्कूल में ही शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् वे लोग रियासत कोटा चले गये। रणबीर सिंह कक्षा ४ और महावीर सिंह कक्षा २ तक गाँव के स्कूल में पढ़ते थे। पुत्रियां भी उनके साथ ही पढ़ती थी। बड़े भाई रणवीर सिंह ने बी.ए. पास करने के उपरान्त एल.एल.बी. की। महावीर सिंह को कक्षा ७ से ही आगरा के एक छात्रावासीय स्कूल में पढ़ने के लिए छोड़ दिया गया था। उन्होंने इस स्कूल से इण्टर कक्षा पास करके इलाहाबाद से बी.ए. कक्षा उत्तीर्ण की। इसके उपरान्त उन्होंने बड़ोत स्थित जाट कॉलेज में अर्थाशास्त्र के अध्यापक के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया। इसी दौरान उनका विवाह ग्राम भगान जिला रोहतक निवासी चौ. कन्हैया सिंह की सुपुत्री होशियारी देवी से सम्पन्न हुआ। उनके घर में दो पुत्र और तीन पुत्रियों ने जन्म लिया। बड़े पुत्र का नाम भूपेन्द्र कुमार और छोटे का योगेन्द्र रखा गया। पुत्रियों के नाम क्रमशः विजय लक्ष्मी, निर्मल और रीतू रखे गये। २ वर्ष अध्यापन करने के बाद उन्होंने अपना अध्ययन कार्यक्रम जारी रखते हुए एम.ए. और एल.एल.बी. पास की जिसमें उन्होंने उत्तर प्रदेश में प्रथम स्थान प्राप्त किया। उस दौरान चोकर हेड़ी निवासी बाबू बलवन्त सिंह मुजफ्फरनगर में वकालत करते थे। चौ. महावीर सिंह ने उन्हीं के पास रहकर वकालत शुरु कर दी। कुछ समय पश्चात महावीर सिंह ने मुन्सिफ की

परीक्षा दी किन्तु दो पेपर देकर ही वे अस्वस्थ हो गये। परिणाम स्वरूप वे शेष पेपर नहीं दे सके। लेकिन जब संकल्प दृढ़ होता है तो बाधाएँ भी अधिक समय तक प्रतीकार नहीं कर पाती। अगले ही वर्ष उन्होंने मुन्सिफ के लिए पुनः परीक्षा दी और उसे उत्तीर्ण कर मुन्सिफ के पद पर नियुक्त हो गये। इस पद पर उन्होंने गाजियाबाद, कानपुर, शाहजहाँपुर और नगीना में कार्य किया। सादा जीवन और उच्च विचार के सिद्धान्त पर चलते हुए वे इस समय में भी अपने कार्य साईकिल पर ही कर लिया करते थे। इसके उपरान्त उनकी नियुक्ति सहारनपुर में सेसन जज के रूप में हुई। इसी पद पर वे क्रमशः बिजनौर, इलाहाबाद और अलीगढ़ में कार्यरत रहे। इसके पश्चात वे बदायूँ औ रामपुर के डिस्ट्रिक्ट जज रहे। तत्पश्चात उन्हें लखनऊ हाईकोर्ट में जज बनाया गया। सन् १९८२ में उन्होंने सेवा से अवकाश ग्रहण कर लिया।

यूँ तो उनसे मेरा सम्बन्ध जन्म से ही था चूँकि हमारा कुटुम्ब एक ही है। जस्टिस महावीर सिंह के पिता चौ. जीत सिंह मेरे ताऊजी थे। इस प्रकार हम दोनों में परस्पर भाई का रिश्ता था। महावीर सिंह मुझसे करीब तीन-चार साल आयु में बड़े थे। वे गाँव में जब गर्मियों की छुट्टियों में आते थे तो पूरे परिवार में घुल मिलकर रहते थे। वे मुझसे सचमुच अगाध स्नेह करते थे। उस समय मेरी आयु करीब १९ वर्ष रही होगी, मैं बदायूँ में उनके पास गया और तीन-चार माह ठहरा। तब से तो ताऊजी और जज साहब का मुझसे और भी ज्यादा लगाव हो गया। उस समय बड़ा पुत्र भूपेन्द्र सेना में कैप्टन के पद पर कार्यरत था और छोटा योगेन्द्र जवाहर लाल यूनिवर्सिटी, दिल्ली में अध्ययनरत था। उनके पास उनकी धर्मपत्नी, दो पुत्रियां और पिताजी रहते थे।

उसी समय बदायूँ में कत्ल हुआ जो कदाचित् तुच्छ राजनीति से सम्बन्धित था। इस मामले में मुकदमा चला जिसकी सुनवाई जज साहब ही कर रहे थे। दण्डारय को उचित दण्ड देना न्याय की मांग है। अतः घोर अपराध सिद्ध होते ही जज साहब ने दो विकंट अपराधियों के कठोरतम दण्ड फांसी की सजा निश्यित की। फिर तो जज साहब पर निर्णय में शिथिलता के लिए चहुँ ओर से दबाव पड़ने लगे। कहीं से विशद धन का लालच दिया गया तो कहीं से भयंकर परिणामों की चेतावनी। अनेक बड़े-बड़े अधिकारी, राजनेता और यहां तक कि राज्य सरकार और केन्द्र सरकार के मंत्री भी विविध प्रकार के दबाव डालने लगे। लेकिन उनके निश्चय को कोई तिल मात्र भी हिला न सका। यहाँ यह उल्लेख करना अति आवश्यक है कि श्रीराम अरूणकुमार (पुलिस महानिदेशक, लखनऊ) उस समय बदायूँ में उप-पुलिस अधीक्षक थे और इस केस में मुख्य गवाह थे।

उन्होंने न जाने कितने दबाव झेले किन्तु सच्ची गवाही दी। क्षुद्र राजनीति के चलते उन्हें पुलिस विभाग से हटाकर होमगार्डस् में भेज दिया गया किन्तु उन्होंने सत् कर्तव्य का मार्ग नहीं छोड़ा। सचमुच हम हृदय से उनके ऋणी हैं। जज साहब के इस ऐतिहासिक फैसले को जब उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई तो वहां भी उनके इस फैसले को सर्वथा उचित ठहराया गया और उसका अनुमोदन किया गया।

बदायूँ से जज साहब का स्थानान्तरण रामपुर में हुआ। दो वर्ष बाद ही उनके पिताजी के पैर की हड्डी टूट गयी अत: उन्हें लखनऊ मेडिकल कालेज में भर्ती कराना पड़ा। जज साहब ने इस समय में एक माह का अवकाश लिया। गाँव से मुझे भी बुला लिया गया। हम दोनों भाई मेडिकल कालेज में ही रहे। जज साहब की पितृ-भक्ति वस्तुत: अनुकरणीय है। वे अपनी पूर्ण लगन से पिताजी की सेवा कर रहे थे। आधी रात तक वे स्वयं जागते थे और फिर मैं जागता था। अपने पिता का अनुसरण करते हुए बड़ा पुत्र भी ४० दिन की छुट्टी लेकर अपने दादा जी की सेवा में जा पहुँचा। वृद्धावस्था तो अपने आप में ही एक बड़ी बिमारी है तिस पर हड्डी टूट जाना और भी कष्टकारी है। लेटे-लेटे पिताजी को अन्य बिमारियां भी होने लगी। पेशाब भी बन्द हो गया जिससे तबियत और भी बिगड़ गयी। लखनऊ मेडिकल कालेज से उन्हें दिल्ली में आल इण्डिया मेडिकल इंस्टीच्यूट के लिए रेफर कर दिया गया। जज साहब ने पुन: एक माह की और छुट्टी ली। बड़े भाई रणवीर सिंह जो तब तक कस्टम कलेक्टर के पद से अवकाश प्राप्त कर चुके थे, वे भी वहीं पहुँच गये। हमने पिताजी की बराबर में ही अपना बिस्तर लगा रखा था। जब पिताजी किसी को भी आवाज लगाते थे तो महावीर सिंह झट से उठ जाते थे। करीब दो महीने लगे। अनेक दिक्कतें आई। काफी कष्ट हुआ। लेकिन जिसे संघर्ष में भी उत्कर्ष ढूंढ़ने का अभ्यास हो उसे आगे बढ़ने से कोई कष्ट भला क्या रोक सकता है। ऐसे विकट समय में भी जस्टिस महावीर ने कलम को रूकने नहीं दिया। उन्होंने वहीं रहते-रहते भारतीय दण्ड संहिता पर पुस्तक लिख डाली। रामपुर में अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए उन्होंने अनेक अपराधियों को आजीवन कारावास की सजा दी। इसके उपरान्त उन्होंने लखनऊ में हाईकोर्ट के जज का पद ग्रहण किया। छोटे पुत्र ने इनकी पसन्द के अनुसार आई.एफ.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण कर 'अ' श्रेणी का पद प्राप्त किया। बड़ा पुत्र भी कैप्टन से कर्नल बन गया। पुत्र-पुत्रियों का विवाह भी हो गया था। चारों ओर हर्षोल्लास का वातावरण था। वे जहाँ रहते थे, समस्त परिचित, रिश्तेदार और आस-पास के निवासी उनके पास परामर्श के लिए आते रहते थे। वे अत्यन्त व्यवहार-कुशल थे किन्तु किसी की सिफारिश इत्यादि नहीं

करते थे। इसी कारण कुछ परिचित तो उनसे नाराज भी हो गये थे। यहां तक कि आना-जाना भी बन्द कर दिया था, लेकिन विनम्रता की प्रतिमूर्ति जज साहब स्वयं उनके यहां चले जाया करते थे। जज साहब ने चपरासियों से सभी घरेलू कार्य नहीं कराया। गाँव से हमेशा सम्पर्क बनाये रखते थे। वे पशुओं का चारा-पानी स्वयं करते थे। यहां तक कि चारा मशीन भी स्वयं ही चलाते थे। इस कार्य में उनकी पत्नी भी भरपूर सहयोग करती थी। लखनऊ में रहते-रहते उन्होंने मेरे पुत्र के पैरों का इलाज भी कराया। इस कार्य में उन्होंने बड़ी भाग-दौड़ की। उस समय मेरी माँ भी वहीं रही। वे तो बस हमेशा जज साहब की चर्चा ही करती रहती थी। जज़ साहब ने माँ को जो सम्मान दिया, वह वस्तुतः उनके सदाचार की मिसाल है। सन् १९८२ में जज साहब ने सेवा से अवकाश प्राप्त कर लिया और नोएडा में सैक्टर १४ में आकर रहने लगे। जज साहब के श्वसुर रामपुर से ही उनके साथ में रहने लगे थे। उनकी केवल एक ही पुत्री थी, पुत्र नहीं था। लेकिन जज साहब ने धर्म-पुत्र होकर पुत्र के समस्त दायित्वों को प्यार और विनम्रता से निभाया। नोएडा में उनके साथ उनकी धर्मपत्नी, पिताजी, श्वसुर, मैं और एक नौकर रहते थे। छोटा लड़का, जो विदेश विभाग में था, दिल्ली में ही रहता था। अवकाश प्राप्त कर लेने पर निठल्ले होकर बैठना उन्हें स्वीकार्य नहीं हो सकता था। नोएडा में आने के दो माह बाद ही उन्होंने सुप्रीम कोर्ट में वकालत शुरु कर दी। मैंने उन्हें टोकते हुए कहा भी कि "भाई साहब ! आपने तो फिर से वही मामला कर दिया।" उन्होंने बड़े सरल स्वभाव से मुझे समझाते हुए बताया कि भाई जिस दिन मैं रिटायर हुआ तो मेरे पास कुल ५००० रुपये थे। अब तुम्हीं बताओ कि काम कैसे चलेगा। अभी फण्ड भी नहीं मिला। पेंशन मिलने में भी देरी लगेगी।

उनकी विद्वत्ता का लोहा सभी मानते थे। शीघ्र ही वकालत अच्छी चलने लगी। लेकिन अभी एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ था कि उनके श्वसुर का निधन हो गया। कुछ ही समय बाद उनकी धर्मपत्नी श्रीमती होशियारी देवी अचानक बीमार हो गयी। उन्हें पक्षाघात हो गया। ऐसे समय में क्या किया जाये, कोई रास्ता सूझ नहीं रहा था। पहले एक्यूपंक्चर पद्धति से चिकित्सा की गयी किन्तु कोई लाभ होता दिखाई नहीं दिया। उस समय में पत्नी भी वहीं रहती थी। बड़े पुत्र को खबर की गयी तो वे तुरन्त छुट्टी लेकर आ गये। उनके आते ही उनको मिल्ट्री हास्पीटल में भर्ती कराया गया। छोटी पुत्री ने अस्पताल में रहकर माँ कि बड़ी सेवा-सुश्रुषा की। एक महीने के इलाज के बाद भी उनकी स्थिति में सुधार नहीं हुआ और उनका स्वर्गवास हो गया। तब तो मानो कष्ट का पहाड़ ही टूट पड़ा। निश्चित ही जज साहब को कष्टों के इस झंझावात ने झकझोर कर रख

दिया। किन्तु जज साहब धैर्य की सजीव मूर्ति थे। वे स्वयं को संवारते और दूसरों को धीरज बंधाते थे। ऐसे समय में ही छोटे पुत्र का स्थानान्तरण इंग्लैण्ड में हो गया। इसके छः माह उपरान्त ही पिताजी भी चल बसे। वे उस समय १०२ वर्ष के थे। वे अपने समय के कट्टर आर्य समाजी थे। जज साहब उनकी देख-रेख स्वयं किया करते थे। छोटी पुत्री की अभी शादी नहीं हुई थी। जज साहब नें उसकी शादी गुड़गांव में कर दी। बस घर सूना-सूना सा हो गया। तब बड़ा पुत्र नौकरी छोड़कर अपने पिता जी की सेवा में आ गया। एक दिन जज साहब ने बताया कि मुझे न्यूजीलैण्ड से एक प्रस्ताव आया है। वहां की एक कम्पनी ने सलाहकार के रूप में २०००० रुपये प्रतिमाह देना स्वीकार किया है लेकिन मैंने मना कर दी। जब मैंने इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि २० हजार रुपये के लिए मैं अपने देश को नहीं छोड़ सकता। वे लोकदल आज इण्डिया के कानूनी सलाहकार और फिर अध्यक्ष मनोनीत किये गये। उन्हें सूरजमल इंस्टीच्यूट का उपाध्यक्ष बनाया गया। वहां वे प्रकाशन कार्य के अन्तर्गत सम्पादकीय लिखा करते थे। वे नेफेड, आल इण्डिया जाट महासभा तथा सर्व खाप पंचायत के अध्यक्ष रहे। उन्हें भारतीय किसान यूनियन में ससम्मान आमंत्रित किया गया जिसमें उन्होंने कई उल्लेखनीय कार्य किये। उनके प्रयासों से संगठन में अपूर्व शक्ति का संचार हुआ। फलस्वरूप उन्हें कार्यकारिणी का अध्यक्ष बना दिया गया। इसके पश्चात उन्होंने राजनीति में सक्रिय योगदान किया। चौ. अजीत सिंह ने उन्हें अपनी पार्टी से रामपुर के लिए टिकट दिया। भारी जुलूस के साथ पर्चा भरा गया लेकिन भारतीय जनता पार्टी से समझौता हो जाने के कारण उनको वहाँ से बुला लिया गया। यह एक राजनैतिक भूल थी, यद्यपि इसमें उनका कोई कसूर नहीं था। इसी भूल के कारण वे कैराना विधान सभा में निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में सफल नहीं हो पाये। इसके पश्चात वे भारतीय जनता पार्टी में शामिल हो गये। उनका पार्टी में गर्मजोशी से स्वागत किया गया और पश्चिमी उत्तर प्रदेश का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। इस समय तक वे राजनीति में भी काफी उभर चुके थे। इन सब क्रिया-कलापों के चलते-चलते वे अपनी धर्मपत्नी की स्मृति में भारत का संविधान लिखते रहे। इसी दौरान चुनाव भी हुए। जिसमें उन्होंने पार्टी के लिए अथक प्रयास किये। इस समय तक उन्होंने अपना आवास बना लिया था और अब मकान नं० १९ए के बजाए ७६ ए में रहने लगे थे। मैं हमेशा उनके साथ ही रहा । उन्हें गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का परिद्रष्टा बनाया गया। आर्यो की सर्वोच्च सभा 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' के कार्यो में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान किया। वे इस सभा के अध्यक्ष मनोनित किये गये।

जज साहब ने लेखन कार्य अनवरत जारी रखा। वे अधिकांश लेखन

हिन्दी में करते थे। उन्होंने अलीगढ़ में रहते हुए चकबन्दी अधिनियम पर तथा शाहजहाँपुर में न्याय पंचायत पर लेखन कार्य किया। रामपुर में रहते समय दण्ड संहिता प्रक्रिया पर लिखा तथा लखनऊ में सहकारिता अधिनियम १९५६ पर विशद् विवेचन किया। नोएडा में भारत का संविधान पर पुस्तक लिखी। उल्लेखनीय लेखन कार्य के लिए उन्हें तीन बार अधिकार-शुल्क (रायल्टी) क्रमशः दस हजार, पांच हजार और पन्द्रह हजार रुपये भी प्राप्त हुए।

महापुरुषों को चारित्रिक उपलब्धियों के लिए सम्मानसूचक उपाधियों से विभूषित करना आर्य संस्कृति की परम्परा रही है। गुणीजनों के गुणों के समादर करने से समाज में गुणों की प्रस्थापना एवं वृद्धि होती है। इन्हीं कारणों से जज साहब को मदन मोहन मालवीय मानक उपाधि तथा शाहजहाँ मानक उपाधि से विभूषित किया गया।

जो अपने उत्तम आचरणों से माता-पिता को तृप्त कर दे वास्तव में पुत्र कहलाने का अधिकारी वही है। सदाचार के धनी जस्टिस साहब ने अपने माता पिता की काफी सेवा की। लोग जस्टिस साहब को श्रवण कुमार पुकारते थे।

वे अपने सुचरित्र से न केवल माता पिता अपितु समस्त देश को तृप्त करना चाहते थे। त्याग सबसे कठिन कार्य है। परन्तु कुछ भाग्यशाली इस संसार की वस्तुओं को जीते जी त्याग देते हैं। वे महान हैं, बहुत महान। हम उन्हें नमन करते हैं।

जहाँ लोगों को बड़ी-बड़ी कोठियाँ, कई-कई कारें, कई-कई नौकर-चाकर, एयरकन्डीशनर में रहना देखने को मिलता है, वहाँ जज साहब का उदाहरण दृष्टव्य है। मैं किसी की आलोचना करना नहीं चाहता किन्तु तुलनात्मक टिप्पणी के लिए समान श्रेणी के लोगों को दृष्टिगत रखना वांछित हैं जज साहब के अनुसार जीवन निर्वाह के लिंए सर पर छत अवश्य ही चाहिए। उनके पास उनकी श्रेणी के लोगों की भांति कोई बड़ा बंगला नहीं था अपितु मात्र तीन कमरों का एक आवास था। वे जब तक डिस्ट्रिक्ट जज रहे, तब तक साईकिल पर ही कचहरी जाया-आया करते थे। बदायूँ के एक केस में एक बार उन्हें प्रचुर धन का लालच दिया गया जिसको उन्होंने कठोरता से ठोकर मार दी। स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने उन्हें जनरल एडवोकेट, सुप्रीम कोर्ट बनाने के लिए आमंत्रित किया लेकिन उन्होंने यह कहकर इन्कार कर दिया कि इस पर अनेक प्रकार के दबाव कायम करके प्रायः गलत कार्य कराये जाते हैं और में किसी दबाव में नहीं रहूँगा। कैप्टन सतीश शर्मा जो पेट्रोल एवं गैस मन्त्री थे, उन्होंने अपने विभाग

में चेयरमैन के पद पर नियुक्त करने के लिए जज साहब को प्रस्ताव भेजा। लेकिन जब मन्त्री महोदय ने कमीशन की बात की तो जज साहब ने दृढ़ता से उसका विरोध किया और प्रस्ताव को अस्वीकारन कर दिया। रिटायर होने के बाद घासीपुर गाँव के एक कत्ल के केस का फैसला जज साहब को सौंप दिया गया। फैसला हो जाने के बाद विजयी पक्ष ने जज साहब से कुछ धन देने की इच्छा व्यक्त की। जज साहब ने कहा कि धन मुझे नहीं चाहिये। यदि आप खुशी में कुछ करना चाहते हैं तो किसी स्कूल को दान दे दो। उन्होंने जज साहब की आज्ञा को शिरोधार्य करके एलम में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आई.टी.आई.) को २० हजार रुपये दान में दे दिये। जज साहब इस प्रकार के प्रलोभनों में कभी नहीं आये और उन्हें मिट्टी समझ कर त्यागते रहे।

विद्वान् लोग तप के दो अर्थ करते हैं- तपो द्वन्द्वसहनम् तथा धर्मरावर्ततं तपः। अर्थात् हानि-लाभ, सदी-गर्मी, भूख-प्यास, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों का सहना तथा अनेक कष्ट सहकर भी धर्म के मार्ग को न छोड़ना तप कहलाता है। कुछ लोग जंगलों में रहकर शीत-तापादि को सहते हैं। वे भी प्रशंसा के पात्र हैं। किन्तु जंगल में जन समुदाय से दूर रहने के कारण वे प्रायः जनता की श्रद्धा को ही जान पाते हैं। परीक्षा तो तभी होती है जबकि कभी लोग अश्रद्धा दिखाएं जैसे गाली दें, धूल फैंके इत्यादि और तब भी तपस्वी विचलित न हो। किसी ने अपने अन्तर्मन पर कितना वशीकरण किया है, यह तो तभी पता चल सकता है, जबकि उनसे कोई असभ्य व्यवहार करे। जहाँ तक शारीरिक तप की बात है, कितनी भी सर्दी या गर्मी हो, लोगों ने महावीर सिंह जी कभी कम्बल या शाल ओढ़े हुए नहीं देखा। गर्मी में जबकि लू चलती हुई हो, वे भरी दोपहरी में १२-१ बजे पैदल चल लेते थे। वे छाता भी नहीं रखते थे, चाहे बरसात ही क्यों न हो। प्रातः तीन से चार बजे के बीच स्नान कर लेते थे। प्रायः बस द्वारा सफलर करते थे। बिजली चले जाने पर भी उनके कार्य रुकते नहीं थे। बिजली के पंखे, कूलर आदि का प्रयोग बहुत कम करते थे। जब यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे तो विद्यार्थी तथा प्रोफेसर भी उन्हें ब्रह्मचारी कहकर पुकारते थे। वे सोते भी बहुत कम थे। पांच-पांच छः-छः घण्टे तक लिखते रहते थे। लिखते-लिखते बीच-बीच में १५-२० मिनट के लिए सो लिया करते थे। वे प्रायः हर वक्त कार्य करते रहते थे। विश्राम का कहीं स्थान था ही नहीं। नित्यप्रति योगासन तथा प्राणायाम किया करते थे। निन्दा, अपमान, मिथ्यारोप, विपुल धन-सम्पदा का लोभ, ये सब उन्हें धर्म मार्ग से विचलित न कर सके। कौन करे इतना तप ? "इदं धर्माय इदन्नमम" कहकर आत्म बलिदान देने वाले संसार में कितने मिलेंगे। शारीरिक तप को देखो या धर्मपालन कष्ट सहकर भी धर्म में अडिग रहना दोनों में जस्टिस महावीर सिंह

उच्च कोटि के महापुरुष मिलते हैं।

जस्टिस महावीर उच्च कोटि के समाज सुधारक भी थे। उन्होंने समाज सुधार के अनेक प्रशंसनीय कार्य किये। वे विवाहादि में दहेज न देने की सहमति देते थे। अगर उन्हें कोई शादी में आमंत्रित करता था तो वे यह कहा करते थे कि अगर आपने बिना दहेज के शादी तय की है तो मैं आऊँगा अन्यथा नहीं। और इसमें वे सफल भी हुए। इन्होंने इस सिद्धान्त का स्वयं भी पालन किया। अपने पुत्रों की शादी में न तो दहेज लिया और न ही पुत्रियों की शादी में दहेज दिया। जिस किसी भी शादी में जाते तो सामर्थ्यानुसार विद्या-दान अवश्य कर जाया करते थे। उन्होंने दहेज के विषय में ग्राम सौरम, जिला मुजफ्फरनगर में सन् १९५२ में एक पंचायत का उत्कृष्ट आयोजन किया गया। इस पंचायत में अनेक जज भी शामिल हुए। उनकी प्रेरणा से ग्राम एलम में इण्टर कालेज की स्थापना मं महाराजा सूरजमल ने काफी योगदान दिया। गाँव हो या शहर, उन्होंने अनेक मुकदमों का फैसला परस्पर वार्तालाप और मिल-बैठकर ही सम्पन्न करा दिया। इस प्रकार के फैसलों में घासीपुर वालों का केस, हरियाणा में प्रियव्रत-केस तथा रामपुर में महाशय समेसिंह केस इत्यादि उल्लेखनीय हैं। जस्टिस साहब किसी की मृत्यु के बाद मिठाई, लड्डू आदि बांटने के सख्त खिलाफ थे। यदि उन्हें ऐसी किसी जगह बुलाया जाता था तो वे कहते थे कि यदि मिठाई और लड्डू बनाये गये तो मैं नहीं आऊँगा और इस बारे में अपना लिखित विरोध भी ज्ञापित करते थे। इस सिद्धान्त का पालन करते हुए उन्होंने अपने पिताजी के मृत्यु पर भी साधारण भोजन ही बनवाया। बहन की मृत्यु होने पर लड्डू आदि बने हुए थे। उन्होंने भोजन नहीं किया और नाराज होकर चले गये। समाज सुधार की श्रृंखला में वे महिलाओं के लिए आई.टी.आई. गाँव में ही अपना मकान देकर अपने खर्चे से चला रहे थे जो बाद में उनके पुत्र यथावत् चला रहे हैं। वे बहुत जोर देकर कहते थे कि "परनिन्दा से बचो। समाज के दोषों का ढोल बजाकर तथा व्यक्तियों पर कीचड़ उछाल कर हम समाज में गन्दगी ही फैलाते हैं। इससे किसी का सुधार नहीं होता। यदि समाज में सुधार करना चाहते हैं तो पहले आत्म-सुधार प्रारम्भ करें। आत्म-सुधार करना मानव वृक्ष को सींचना है। नीतिज्ञ, वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ और ब्रह्मज्ञ होना सुलभ है। किन्तु अपने अज्ञान को जानने वाले तथा स्वदोष दर्शन करने वाले बिरले ही होते हैं। अपनी सच्चरित्रता का उदाहरण प्रस्तुत करना ही जन-सुधार का श्रेष्ठ उपाय है। स्वयं अपने लिए अथवा किसी अन्य के लिए क्रोध अथवा भय दिखाकर दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाला असत्य वचन हमें न तो स्वयं बोलना चाहिए और न ही दूसरों से बुलवाना चाहिये। निन्दा के पृष्ठ में द्वेष तथा स्वस्थ समालोचना के पृष्ठ में हित भावना होती है।"

जीवन में विविध कार्यों के सम्पादन के लिए विविध प्रकार की शक्तियों के उपचय की आवश्यकता होती है। किन्तु उनके उपयोग का कोई सुदूर संस्थित उद्देश्य भी होना चाहिए। दुष्ट प्रकृति के लोग पर-पीड़न ही में सुख का अनुभव करते हैं तथा सत्पुरुष अपनी पूरी शक्तियों को जुटाकर परहित करने में अपने जीवन की सार्थकता मानते हैं।

समाज व्यवस्था के हित में दण्ड के द्वारा दमन की आवश्यकता होती है और एतदर्थ शक्ति का उपयोग करना एक कर्तव्य हो जाता है। सत्ता की प्रतिष्ठा के संदर्भ में दण्ड और कोप के प्रदर्शन का विशेष महत्व है। जस्टिस महावीर सिंह इस पर अधिक बल देते थे। उनके अनुसार कोप और क्षमा का सन्तुलन तराजू के दो पलड़ों की भांति ठीक रहना चाहिए क्योंकि व्यवहारिक जगत में किसी एक का भी अतिरेकत होना समाज-हित की घोर हानि कर सकता है। इसका उदाहरण हमें बदायूँ के एक कत्ल के केस में देखने को मिलता हैं। जिसमें उन्होंने फांसी की सजा दी थी। उनके इस निर्णय को हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों ने भी न केवल माना अपितु उसकी प्रशंसा भी की। इस केस में उन्हें बड़ी धमकियाँ दी गई, धन का लालच इत्यादि तरह-तरह के प्रयोग किये गये किन्तु इस विषम स्थिति में भी उन्होंने धर्म-मार्ग से पलायन नहीं किया बल्कि डटकर मुकाबला किया।

जीना भी एक कला है। कुछ लोग सब कुछ होने पर भी रोते हैं तथा कुछ लोग कमी होने पर भी हँसते रहते हैं। श्री महावीर सिंह जीने की कला जानते थे। वे विचित्र थे। पराई आग में जलना प्रभु ने उन्हें न जाने कैसे सिखा दिया था। वे अपने दु:खों में हंसते थे तथा पराये दु:खों में रोते थे। एक बार किसी काम से हमें रुड़की होते हुए सहारनपुर जाना था। रास्ते में सहारनपुर से कुछ पहले कार में पानी डालना पड़ा। जस्टिस साहब खुद कार चला रहे थे। मैं एक नल से पानी लेने गया तो एक बूढ़ी महिला अपनी पुत्रवधू, जो कि कष्ट से कराह रही थी, के साथ बैठी बस का इन्तजार कर रही थी। मैंने उनकी हालत देखकर पूछा कि क्या बात है ? तुम्हें क्या कष्ट है ? बूढ़ी महिला ने बताया कि बेटा बहू की तबियत खराब है और हमें अस्पताल जाना है। मैंने जज साहब से सब कुछ बताया तो उन्होंने कहा कि उन्हें तुरन्त बुला लाओ। हमने उन्हें गाड़ी में बैठा लिया। करीब ५ मील ही चले होंगे कि वृद्धा ने कहा कि कार रोको और हमें उतार दो। पूछने पर वृद्धा बोली कि बेटा हमारी बहू को बच्चा हुआ है। महिला अत्यधिक भयाकुल सी थी। गाड़ी रोकी गई। जज साहब दूर जाकर खड़े हो गये ताकि महिला स्थिति को सँवार सके और मुझे उनके पास भेज दिया।

साथ ही ये भी कहा कि ये बिल्कुल परेशान न हों, हम इन्हें आराम से अस्पताल पहुँचायेंगे। कुछ समय बाद हम उन्हें लेकर अस्पताल पहुँचे और भर्ती कराया। इसके उपरान्त गाड़ी की सफाई इत्यादि भी करवाई। इस कार्य में काफी समय लग गया था। वहाँ से चलते समय जज सांहब मुझसे बोले की यहां से जाकर ये बात किसी को मत कहना।

एक बार एक लड़के का चाबियों का गुच्छा गहरे जल में गिर गया। वह रोने लगा। जज साहब ने उसे देखा तो बोले कि रोओ मत, चाबी का गुच्छा मैं अभी निकाल देता हूँ। जज साहब ने कहा कि जब मैं रस्सी हिलाऊँगा तो तुम मुझे ऊपर खींच लेना। इतना कहकर वे रस्सी के सहारे जल में उतर गये। उन्होंने चाबी उठा ली और रस्सी हिलायी तो उस लड़के ने रस्सी छोड़ दी। तब तो बड़ी मशक्कत के बाद जज साहब स्वयं बाहर आ पाये। वे लगभग मूर्छित हो गये थे। होश आते ही उन्होंने उस छात्र को दण्ड-स्वरूप एक चांटा मारा।

जब वे जिला जज थे तो एक बार रेल में यात्रा करने के लिए स्टेशन पर खड़े थे तो गाड़ी चल दी। एक यात्री का सामान स्टेशन पर छूट गया था, जज साहब उसकी सहायता में लग गये और उसका सारा सामान रेल में चढ़वा दिया। इस कारण वे स्वयं रेल में ठीक से चढ़ नहीं पाये और ऐसी खिड़की पर लटक गये जिसका दरवाजा बन्द था। पूरा सफर पायदान पर ही करना पड़ा। ऐसी अनेक घटनाएँ उनके जीवन से जुड़ी थी। मैं उन्हें जितना देखता गया, वे उतने ही ऊँचे पाते गये।

कितना व्यस्त था उनका जीवन। रात्रि में तीन बजे उठकर टहलना, ईश्वर की आराधना, लेखन, मुकदमों की सुनवाई करना, फैसले सुनाना, शाम को खेलना। टेनिस अच्छा खेलते थे। वे एक कुशल तैराक भी थे। तैराकी में उन्होंने पुरस्कार भी प्राप्त किये थे। समझ नहीं आता कि वे इतने कार्यों के लिए समय कहां से लाते होंगे। साधारण व्यक्ति झंझटों से झुंझलाता रहता है, रक्तचाप तक बढ़ जाता है। और एक जस्टिस महावीर थे कि इतनी व्यस्त दिनचर्या के चलते कभी अधीर नहीं होते थे। सुबह-शाम उनके परिचित व मित्रादि सलाह आदि लेने के लिए उन्हें घेरे रखते थे। वे किसी को निराश नहीं करते थे। वो ऐसे स्त्रोत थे जिसके किनारे से कोई भी पिपासु प्यास-मुक्त होकर ही वापस लौटता था। व्यस्त जीवन था किन्तु मुख-चन्द्र पर हमेशा प्रफूल्लित हास्यपूर्ण छटा विराजमान रहती थी। एक दिन सुबह के समय वे घर पर ही टहल रहे थे। शनिवार का दिन था। एक व्यक्ति गेट पर आकर खड़ा हो गया। जज साहब टहलते-टहलते उसके पास जा पहुँचे और पूछा कि क्या काम है ? वह

व्यक्ति बोला कि मैं शनिचर उतारने आया हूँ, कुछ दान-दक्षिणा दो। जज साहब बोले कि पहले अपना शनिचर उतार लो और फिर अन्दर आकर हंसने लगे तथा गंभीर होकर बोले कि वाह रे भारत देश ! तेरी ये दशा ! उनका साा जीवन ही जीवन-कला का साक्षात् दर्शन है। उपरोक्त कथाएँ तो उसका संकेत-मात्र हैं।

जस्टिस महावीर सिंह आर्य के धुरन्धर विद्वान् थे और स्वामी दयानन्द के परम भक्त थे। वे समय-समय पर स्वामी जी के उद्धरण दिया करते थे और उनसे रोजमर्रा की समस्याओं का समाधान खोज लिया करते थे। आर्य समाज, दिल्ली ने जस्टिस साहब का ७६वॉ जन्मदिन बड़ी धूम-धाम से मनाया जिसमें आर्य समाज के उच्च कोटि के विद्वानों ने भाग लिया। ये सब कार्यक्रम गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति डा. धर्मपाल के देख-रेख में सम्पन्न हुए। जन्म दिन का कार्यक्रम ग्राम एलम में भी आयोजित किया गया। जज साहब आर्य समाज के प्राय: सभी जलसों में जाते थे। उन्होंने मुझे बताया कि जब वे हाईस्कूल में थे तो सत्यार्थ प्रकाश खूब पढ़ते थे। उसी समय योगासन, प्राणायामादि भी थोड़ा-थोड़ा सीख लिया था। उनका कहना था कि "इससे मुझे बहुत लाभ हुआ। आज तक के मेरे जीवन में यही शक्ति कार्य करती रही। ये सब कुछ मुझे पिताजी से प्राप्त हुआ क्योंकि पिताजी आर्य समाज के समर्थक थे और उसी के सिद्धान्तों का पालन करते थे। मुझ पर पिताजी कीं दिनचर्या का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। जब मैं मुन्सिफ बना तो एक बार मैंने योगी बनने की सोची थी। एक बहुत बड़े योगी से भी मिला। मुझे उनका नाम पता नहीं था। लेकिन कुछ तो योगी जी ने ही इन्कार-सा कर दिया और कुछ परिस्थितियों के चलते योगी न बन सका।" पिताजी आर्यसमाज में अंशदान आदि भी करते रहते थे। समय-समय पर स्वामी विन्ध्यानन्द विदेह को भी आमंत्रित करते रहते थे। प्राय: घर पर आर्य समाज की ओर से पत्र जैसे आर्य मर्यादा, आर्य मित्र, आर्य परोंपकार आदि आते रहते थे। एक बार जज साहब एक पार्टी में गये। वहाँ गोश्त भी बना हुआ। जज साहब ने वहाँ कुछ नहीं खाया और लौट आये। तत्पश्चात उन्होंने पत्र द्वारा पार्टी आयोजकों को घनी फ़टकार लगाई। जज साहब दिन में एक ही बार भोजन करते थे। वे अल्पाहारी थे तथा भोजन में मट्ठा, दही, सब्जी, दूध और घी से बनी चीजें बहुत पसन्त करते थे। वे सोमवार, अमावस्या तथा पूर्णिमा का उपवास रखते थे। उपवास के दिन बिल्कुल कुछ नहीं खाते थे। वर्ष में नौ दिन तक केवल पानी के सहारे ही रहते थे। सभी के सुख-दुख में सहभागी होते थे। शायद ही ऐसा कोई राज्य हो जहां उनका कोई परिचित न हो।

श्रेष्ठ महावीर सिंह जी कभी भी अपने द्वारा किये गये कार्यों का बखान

नहीं करते थे बल्कि अन्य जनों द्वारा प्रशंसा किये जाने पर संकोच का ही अनुभव करते थे। उनके व्यवहार सौष्ठव का रहस्य उनके स्वभाव के माधुर्य में निहित था। महावीर सिंह शीलसिंधु, सोमदर्शन थे। उनका स्वभाव सभी को सुख देता था। विरोधी भी उनकी प्रशंसा करते थे। उनका बोलना, विनयपूर्वक मिलना सभी का मन हर लेता था। वे जब बोलते थे तो उनके मुखारबिन्द से अमृत स्रवित होता था। जब किसी से मिलते थे तो उनके सौख्य सौन्दर्य और माधुर्य से सभी मुग्ध हो जाते थे। सभी लोग उनके विनयी व्यवहार के वशीभूत थे। जब वे कहीं जाते थे तो वहां सभी लोगों से मिलते थे। श्री महावीर सिंह स्वयं न्यायाधीश थे किन्तु उनके न्याय का सौन्दर्य उनकी निरभिमानता एवं विनयशीलता में सन्निहित था।

जस्टिस महावीर सिंह को हिन्दी बहुत प्रिय थी। वे सब कार्य हिन्दी में ही करते थे। अपने निर्णय भी हिन्दी में लिखते थे। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी जैसे ग्राम न्याय पंचायत, चकबन्दी अधिनियम, भारतीय दण्ड संहिता, सहकारिता अधि ानियम, भारत का संविधान इत्यादि। उन्होंने अपनी ही प्रेस लगाकर पत्रिका के माध्यम से सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों का हिन्दी अनुवाद का कार्य किया। इस हेतु उन्होंने एक समति गठित की थी जो इस कार्य में सहयोग कर रही थी। डा. मोती बाबू, जिला जज के सहयोग से उन्होंने एक कानून पत्रिका 'इलाहाबाद दण्ड निर्णय' भी निकाली। वे प्रायः हिन्दी के अखबार लिया करते थे। उनके कार्यालय में कानून की पुस्तकों के अतिरिक्त आर्य ग्रन्थों का सारा साहित्य उपलब्ध था।

यह निर्विवाद है कि उच्च नैतिकता के अभाव में लोकतन्त्र के आधारभूत गुणों जैसे समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व और परस्पर सहयोग का उदय कदापि नहीं हो सकता। राजनैतिक साम्यवाद समाज को भौतिक स्तर पर ऊँचा उठाना चाहता है किन्तु व्यक्ति की मानो उपेक्षा ही करता है। क्योंकि उसके साम्य-सिद्धान्त भले ही कुछ भी हों लेकिन व्यावहारिक धरातल पर व्यक्ति समाज के लिए ही होता है। रिटायर होने के कुछ समय बाद जज साहब राजनीति में आये। पहले लोकदल में लीगल एडवाईजर बने लेकिन वहाँ उपेक्षा होने से कांग्रेस में गये और फिर भारतीय जनता पार्टी में राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य बने। चुनाव के दौरान वे दिन में काफी भागदौड़ में रहते थे। मिलने वालों का तांता लगा रहता था। रात्रि में लेखन कार्य करते थे। इसी दौरान उन्होंने एक दिन आपने आफिस में लेखन कार्य करते-करते मुझे दो पन्ने पढ़ने को दिये। उस वक्त मैं उनके आफिस में ही बैठा पढ़ रहा था। मैंने उन पन्नों को पढ़ा। उनमें स्वामी दयानन्द की मृतयु के सम्बन्ध में लिखा था। हम इसी विषय पर चर्चा करने लगे। उसमें

संख्या, सीसा, पारा आदि का वर्णन था। जज साहब को उस समय अतिश्रम के कारण बुखार सा रहने लगा था। मैंने कहा कि भाई साहब आप चुनाव में कहीं-कहीं घूमते हैं। कहीं-कहीं खाना भी पड़ जाता है। यदि कोई आपको खाने में कुद मिलाकर दे दे तो ? वे चुप हो गये, कुछ नहीं बोले। वैसे प्राय: घर से चलते समय उनकी पुत्रवधू उनके साथ पानी और खाने का सामान इत्यादि गाड़ी में रख देती थी। तीन-चार दिन बाद ही उन्हें एक सूचना मिली कि गाजियाबाद में संविधान के ऊपर भाषण देना है। उन्होंने दवाई ली और गाजियाबाद चले गये। उन्होंने वहां एक घण्टा भाषण दिया। आने-जाने का प्रबन्ध बालेश्वर त्यागी, जो मन्त्री भी हैं, ने किया था। जज साहब रात्रि में वापस आये और सो गये। सुबह उनके पैर में काफी दर्द होने लगा। डाक्टर को बुलाया गया। डाक्टर के कहने पर अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। छ: दिन तक जांच होती रही। जांच के बाद पता चला कि कैंसर है। उनको बड़े पुत्र और पुत्रवधू बम्बई स्थित टाटा हास्पीटल में ले गये। वहाँ कोई लाभ न होता देख उन्हें वापिस ले आये। उनकी हालत बिगड़ती जा रही थी। उनके बिमार होने की खबर तेजी से फैलने लगी। अस्वस्थता की खबर सुनकर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० धर्मपाल जी उनसे मिलने आये। उन्हें जब जज साहब की बिमारी के बारे में पता चला तो अत्यधिक दु:खी और चिन्तित हुए। छ: सात दिन बाद प्रो. शेर सिंह जी भी आये। प्रो. शेर सिंह जी ने गुरुकुल झज्झर में स्वामी ओमानन्द को यह खबर दी। वे तुरन्त जज साहब को देखने के लिए मकान पर पहुँचे। उन्होंने उन्हें अपनी औषधी दी। जिससे एक-दो दिन बाद ही आराम होने लगा। ५ महीने दवा खायी। इस अवधि में तबियत में काफी सुधार हुआ। लेकिन मर्ज फिर से बढ़ने लगा। मिलने वालों को तांता लगा रहता था। दूर-दूर से लोग उनसे मिलने के लिए आने लगे। इसी बीच एक दिन जज साहब स्वयं उठकर सुप्रीम कोर्ट पहुँच गये और वहां सबसे मिलकर आये। इसके पश्चात उनकी जांच-रिपोर्टश अमेरिका और बेल्जियम भेजी गयी। वहाँ भी हड्डी का कैंसर बताया गया और रेडियेशन से इलाज बताया गया। हालत ठीक नहीं हुई। यद्यपि दर्द कुछ कम जरूर था। छोटा पुत्र भी छुट्टी लेकर आ गया। सभी जज साहब की सेवा में लगे थे। जज साहब को कितना भी कष्ट था लेकिन चेहरे पर वही आभा विद्यमान थी। देखने में बीमार लगते ही नहीं थे। कुलपति जी किसी योगी को दिखाना चाह रहे थे। लेकिन समय नहीं मिला। होम्योपैथिक उपचार भी दिया गया किन्तु कोई लाभ नजर नहीं आ रहा था। धर्मशीला अस्पताल में रेडियेशन होता था। छोटी पुत्री तो हमेशा उनके साथ ही रहती थी। फिर एक दिन हालत खराब हो गयी। शाम को धर्मशीला अस्पताल में दाखिल किया गया। आक्सीजन लगायी गयी। रात्रि दो

बजे हालत में कुछ सुधार दिखाई दिया किन्तु सुबह हालत फिर खराब हो गयी। सुबह के नौ बजे थे। मैं और उनका बड़ा पुत्र उन्हीं के पास में थे। उनकी पौत्री दवाई आदि लाने में भागदौड़ में लगी थी। मैंने पूछा "तबियत कैसी है ?" वे "ठीक है! तुमने खाना खा लिया ?" मैंने कहा "जी हाँ और आपने ?" "मेरा उपवास है" उनका उत्तर था। अन्त में मृत्यु भिक्षुक बनकर आया और जज साहब से याचना करने लगी कि मुझे अपना पुराना चोला दे दो। जज साहब ने कभी किसी को रीते हाथ नहीं लौटाया तो मृत्यु को भी उसका मांगा दे दिया। वे मुस्काये और मुख पर अमिट आभा तैर आई। माँ की गोद में जाने पर बालक के चेहरे पर जो आभा होती है ऐसी ही शान्ति की अनुपम आभा जगत् माता की गोद में जाते समय जस्टिस महावीर सिंह के मुख पर छा गयी थी। मौत के आदेश को मानते हुए आज जस्टिस महावीर उस उन्नत पथ पर चल दिये जहां न सुख है न दुख। भिक्षुक को निर्मल चादर सौंपकर और कई बुझते दीपों को प्रज्वलित कर जस्टिस साहब जीवन-यात्रा को पूरी कर गये।

• • •

मुजफ्फरनगर की धरती के शलाका पुरुष-"जस्टिस महावीर सिंह"

-गजेन्द्र पाल

बहुत ऊँचे गये दैरो हरम को पूजने वाले,
मैं जहां था वहीं की खाक़ लेकर चूमली मैंने।

जनता वैदिक कालेज बड़ौत में अर्थशास्त्र प्रवक्ता के रूप में १९४४ से सेवा जीवन प्रारम्भ कर, १९४६ में मुंसिफ परीक्षा में चयनित होकर न्यायिक क्षेत्र में पदार्पण और समयबद्ध प्रोन्नतियों का सोपान चढ़ते हुए १९७७ में उच्च न्यायालय के दुर्लभ सम्मानित पद न्यायमूर्ति से सुशोभित होने वाले "न्यायमूर्ति महावीर सिंह" को गांव एलम की मिट्टी से माँ जैसा प्यार, लगाव सदैव रहा।

गुलाम भारत में न्याय की कुर्सी पर किसी हिन्दुस्तानी का बैठना क्या आसान बात थी ? १९४६ से एक लम्बा सफल कानून की राह क़ा आरम्भ हुआ। अपनी योग्यता एवं स्वच्छ छवि व लगन के कारण मुंसिफ से न्यायमूर्ति तक पहुँचने में किसी का सहारा, सिफारिश या कृपा नहीं, स्वत: शक्ति से यात्रा की। मुजफ्फरनगर जनपद के वे प्रथम व्यक्ति थे उच्च न्यायालय के जस्टिस पद से सम्मानित होने वाले, जनपद को गौरव प्रदान करने वाले।

लगभग प्रति वर्ष (जस्टिस बनने के बाद भी) वे कोर्ट के ग्रीष्मावकाश में १५-२० दिन के लिए सपरिवार एलम अवश्य आते थे। सम्बन्धी, मित्रगण, क्षेत्र के सभी वर्ग जाति के लोग मिलने आते। सबके साथ अति-आत्मीयता। किसी के साथ कोई दूरी नहीं, लाट साहबि नहीं। उनका आवास कुछ दिन के लिए "चौपाल" बना रहा। आत्मीयता से बातें, ऐसे करते मानो "बस जज साहब मेरें ही हों।"

गांव में खादी का कुर्ता पायजामा, सादी चप्पल सादगी से ही कंघा किए बाल, उन्नत माथा, मुखमण्डल पर स्थायी सौम्यता का भाव, नयनों में चिन्तन की गहराई, वाणी में विद्वत्ता और कभी कभी नि:संकोच हल्की मुस्कान। इस सम्पूर्ण व्यक्तित्व का नाम था- जस्टिस महावीर सिंह।

अपने गांव प्रवास में मिलने जुलने के अतिरिक्त एक योजना लेकर वे रहते थे। श्रमदान के द्वारा नीचे गलियारों का भराव, खडंजा लगवाना, गांव के प्राण पनघट का जीर्णोद्धार, प्राइमरी पाठशाला के विकास व रख-रखाव की व्यवस्था आदि ऐसे सार्वजनिक कार्य थे जिन्हें ग्रामवासियों के सहयोग व उत्साह से वे पूर्ण कराकर जाते। अपने सेवा काल में आप गाजियाबाद, बिजनौर, सहारनपुर, बदायूं, आगरा, कानपुर शाहजहांपुर, अलीगढ़, रामपुर, इलाहाबाद और लखनऊ में अपनी ईमानदारी, निष्पक्षता और सहृदयता की छाप छोड़ते चलते रहे-सबके बीच एलम की धरती एलम के गली कूचे अपने प्रियजन सदैव उन्हें अपने से जोड़े रखते। १९४५ में प्रथम सहकारी समिति की स्थापना एलम में की, जिसने १९४७ में लाभ दृष्टि से उ०प्र० में प्रथम स्थान पाया।

आप कठोर सिद्धान्त पालक, उदारमना सहयोगी प्रवृत्ति के अद्भुत व्यक्ति थे। जीवन में किसी की कभी सिफारिश की नहीं, किसी की मानी नहीं, फिर सहयोग कैसे हो ? एक रहस्यपूर्ण सच्चाई जो किसी साधना से, तपस्या से कम नहीं। सम्बन्धित व्यक्ति (कोई भी हो) को कहते "फाइल मुझे दे दो, मेरे साथ तीन घण्टे की यात्रा तक चलो।" रेल या बस में बैठ कर फाईल के पन्ने पन्ने का गहन अध्ययन करने लगते। तीन घण्टे बाद दिल्ली या सहारनपुर (जो भी गन्तव्य हो) पहुँच कर कहते "मैंने उन बिन्दुओं को छांट कर लिख दिया है, जिन पर तुम्हारा वकील बहस करे। भरोसा रखो तुम केस जीतोगे, अब वापस जाओ।" यह थी उनकी अनोखी कार्य शैली- समय और धन की बचत, सिद्धान्त की रक्षा भी और वांछित सहायता भी। ऐसे अनगिन प्रकरण हमने देखे हैं। यह कौन अनुभव करेगा कि इस कार्य में शरीर और मस्तिष्क की कितनी कठोर साधना रहती थी।

उनके बंगले का एक कमरा सदैव हास्पिटल वार्ड बना रहता था। गांव से, रिश्तेदारियों से या मित्रों से कोई न कोई बीमार आता रहता (या आती) और उसकी पूरी देखभाल व चिकित्सा सहायता का भार परिवार उठाता। इसमें साक्षात् ममता की मूर्ति आदरणीय चाची जी तथा बाद में कर्नल बी०के० सिंह (बड़े पुत्र) की पत्नी भाभी शकुन का विशेष सहयोग रहता। मुझे बीस रोगी याद है जिन्हें समय-२ पर समुचित उपचार प्रदान करा कर इस परिवार ने जीवन का अवसर प्रदान किया। भैया योगेन्द्र **IFS** (छोटे पुत्र) में भी समर्पित सेवाभाव था। न्यायिक क्षेत्र के अधिकारी प्रायः जनसम्पर्क से दूर रहते हैं। परन्तु जस्टिस सिंह "जनता के आदमी" **(Man of People)** रूप में ही लोक प्रिय हुए। १९८३ में आप सर्व खाप पंचायत उ०प्र० के शोरों सम्मेलन में अध्यक्ष चुने गये। दहेज,

फिज़ूलखर्ची और दिखावे की कुरीतियों के विरुद्ध प्रबल प्रचार किया। १९८५ से जुलाई १९९७ तक सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा की न्याय समिति के अध्यक्ष पद का गरिमायुक्त वहन किया। १९८४ से १९८९ तक भारतीय किसान यूनियन की कार्यकारिणी में विधि सलाहकार रहे। अनन्तर चौ० महेन्द्र सिंह टिकैत (अध्यक्ष) की राजनीतिक मुखरता तथा कुछ नासमझ तत्वों के अनुचित हस्तक्षेप से खिन्न होकर यूनियन से त्यागपत्र दे दिया। बाद में चौधरी टिकैत ने स्वीकार भी किया कि "जब साहब की मूल्यवान् सलाहों से यूनियन को बड़ी शक्ति मिली, उनके जाने से नुकसान हुआ है।"

आपनें गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा (विजीटर) पद पर मई १९९३ से जुलाई १९९७ तक अपनी अमिट छाप छोड़ी। वहां के शैक्षिक वातावरण, आपसी सौहार्द तथा एकाउन्ट दशाओं में प्रत्यक्ष सुधार आया। आज भी विश्व विद्यालय स्टाफ उनकी कार्य प्रणाली को आदर्श रूप में स्मरण करता है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति आपके मन में गहरा प्रेम और अभिलाषा थी। उच्च न्यायालय के अपने **40%** निर्णय हिन्दी में लिख कर सहयोगियों को प्रेरणा दी। न्याय पंचायत कानून (तीन खण्ड) चकबन्दी कानून (तीन खण्ड) तथां भारतीय संविधान पर टीका व अन्य अनेक पुस्तकें हिन्दी में लिखीं जो एक कीर्तिमान है। इस राष्ट्रीय भावना के फलस्वरूप उत्तर प्रदेश तथा तत्पश्चात् भारत सरकार ने क्रमशः राज्य व राष्ट्र का प्रथम पुरस्कार प्रदान किया। १९९० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने "संविधान-टीका" पर विधि वाचस्पति (पी०एच-डी०) से सम्मानित किया। आप १९७८ से १९८२ तक "अखिल भारतीय हिन्दी विधि प्रतिष्ठान" लखनऊ के वरिष्ठ उपाध्यक्ष पद पर रहे। यूँ कहिए "जस्टिस महावीर सिंह न्यायालयों की दहजीज पर राष्ट्र भाषा हिन्दी के ज्योति-कलश बन कर चमके। सुश्री महादेवी वर्मा, डा० ब्रजेन्द्र अवस्थी तथा गोपालदास नीरज जैसे साहित्य मनीषियों से आपका पारिवारिक सम्पर्क रहा।

अपनी ईमानदारी निष्पक्ष न्याय कुशलता एवं योग्यता के कारण आपको चौ० चरण सिंह जी (पूर्व प्रधानमंत्री) तथा नारायण दत्त तिवारी (पूर्व मुख्य मन्त्री, उ०प्र०) का निकट सम्पर्क सदैव प्राप्त रहा। सामाजिक कार्यों में आपको राष्ट्रीय सन्त पद्मश्री स्वामी कल्याण देव जी महाराज का आशीष-सहयोग प्राप्त रहा। पाँच वर्ष पूर्व जज साहब के ७५ वें जन्म "अमृत महोत्सव" आयोजन में एलम पहुँच कर स्वामी जी ने ग्रामीण परम्परा से "पान-बताशा व पुष्प" देकर अपनी हार्दिक शुभकामना उन्हें दी थी। ग्राम व क्षेत्र वासियों की भारी भीड़ का

यह नागरिक समारोह ऐतिहासिक बन गया। स्वामी जी की अध्यक्षता में इसके मुख्य वक्ता जनप्रिय आदर्श राजनेता वीरेन्द्र वर्मा थे।

अगस्त १९८२ को सम्मानपूर्वक न्यायमूर्ति पद से अवकाश लिया। परन्तु समाज सेवा कर व्रत और सुदृढ़ हो गया। गांव के आवास भवन में निजि खर्चे पर महिला पोलिटेक्नीक की स्थापना कर दी। बालिकाओं के लिए डिग्री कालेज की योजना प्रस्तुत की। दिल्ली उच्चतम न्यायालय में सीनियर एडवोकेट बने। परन्तु महानगर में आवास कहां। ईमानदारी और सादगी ने सम्मान प्रतिष्ठा तो भरपूर दी पर जेब खाली रही। फिर एक कठोर निर्णय लिया। अदालत का नहीं, अपने जीवन का निर्णय। गांव की कृषि भूमि बेच कर नोएडा में एक छोटा-सा सुन्दर नीड "होशियारी भवन" (स्व० चाची जी के नाम से) बनाया। अब निश्चित हो कर प्रेक्टिस में कम और सामाजिक कार्यो में अधिक व्यस्त हो गये। न तन की चिन्ता, न खान पान का समय, न सोना बैठना।बढ़ती आयु घटती शरीर ऊर्जा और गहराती थकान। कैसा आश्चर्य कि रिटायर्ड जस्टिस, सीनियर एडवोकेट बस में रेल में या पैदल सफल करता हो। मन तो थका नहीं, तन ने साथ देना बन्द कर दिया। शैय्या पर पूर्ण विश्राम अनिवार्य कर दिया गया। कर्नल ब्री०के० सिंह और शकुन भाभी सेवा-उपचार में जुटे रहे। २२ जुलाई १९९७ को मैं अपना "राज्य शिक्षक पुरस्कार" लेकर आशीर्वाद प्राप्त करने नोएडा गया। हर्ष से गद्‌गद् हुए जज साहब की आँखें जीवन में पहली बार मैंने डबडबाते देखीं। मैं चरण-स्पर्श कर मौन आशंका मन से वापस चला। अब जीवन कि गिनती वर्षो में नहीं महीनों में सिमट गयी है।

११ अगस्त ९७ को इस यशस्वी पुरुष रत्न ने संसार से विदा ली। अन्तिम इच्छा के तहत गांव की जन्म भूमि में ही अन्तिम संस्कार किया गया। मातृभूमि तो सारा देश है, जन्मभूमि की गोद में जन्म और मृत्यु मिलना दुर्लभ वरदान ही है।

इस प्रकार एलम गॉव के देशभक्त पुरुष रत्नों (स्वतन्त्रता सेनानियों, साहित्यकारों, शिक्षाविदों सहित) में जस्टिस सिंह ने न्यायपालिका को, समाज को एक पवित्र स्वर्ण नाम प्रदान किया। उनका सम्पूर्ण जीवन निष्कलंक रहा। वे हम सबके आदर्श प्रेरणा पुरुष रूप में सदैव अमर रहेंगे।

"बड़े ग़ौर से सुन रहा था जमाना, तुम्हीं सो गये दासताँ कहते कहते।"

कल्याणकारी कॉलेज
बघरा (उ०प्र०)

"स्मृतियों के वातायन से"

कर्नल भूपेन्द्र सिंह

सबसे पहली यादों में बचपन की जो बात मुझे याद आती है वह नगीना बिजनौर की एक शाम की बात है जबकि माता जी रोने को हैं. और पिताजी घर नहीं पहुँचे। कुछ कर्फ्यू लगने की बात चल रही थी। कर्फ्यू क्या होता है, यह तो बाद में समझ आया लेकिन उस रात मेरी छोटी सी समझ के हिसाब से बहुत समय गुजर जाने के बाद रात 9.30 बजे एक पुलिस जीप से पिता जी घर पहुँचते है। सबकी जान में जान आती है मगर मुन्सिफ साहब यानी पिता जी अपने आप में पूरी तरह से नियन्त्रित और गम्भीर हैं। भय या चिन्ता की कोई शिकन मुँह पर नहीं है। माता जी को सान्त्वना देते हैं। उनकी यही छवि मेरे मन और हृदय में सदा रही है। यह घटना सन् 1949 की है।

एलम् जिला मुजफ्फरनगर में जन्मे चौ. जीत सिंह की सबसे छोटी संतान थे पिता जी। माता पिता ने पता नहीं क्या सोच कर महावीर का नाम दिया क्योंकि शारीरिक कद काठी से तो बड़े होकर भी औसत भारतीय पुरुष (लम्बाई में 5′-6″ और वजन में 55-60 किलो) ही नजर आते थे। लेकिन शायद इस छोटे से शरीर में इतनी आध्यात्मिक, शारीरिक और मानसिक शक्ति उन्होंने संचित कर ली थी कि वे वाकई में महावीर बन गये थे। उनसे बड़ी तीन बहनें और फिर सबसे बड़े भाई श्री रणवीर सिंह, कस्टम कलेक्टर थे। वे एक अत्यन्त सीधे और कट्टर आर्य समाजी थे। पिताजी के लिए दादा जी सदा पूज्य रहे। दादाजी बूंदी स्टेट में जंगलात में इन्सपेक्टर रहे। चौ. जीत सिंह जी शताब्दियों के बदलाव के समय विद्यायापन कर घर से जीविकोपार्जन के लिए निकले। वाक्पटुता के धनी दृढ़ निश्चयी, अत्यन्त ईमानदार, परिश्रमी व यति थे। सरस्वती का वरदान था उन्हें। वह ऐसे कथाकार थे कि जब रामायण या महाभारत या कोई और महालया सुनाना शुरू करते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि समय ठहर गया है। मन के बाइस्कोप में घटनाओं की फिल्म सी दिखा देते थे। माँ हरकौर वात्सल्य की प्रतिमा थी और मानव मात्र से प्रेम भाव शायद उन्हीं की देन थी। प्रारम्भिक शिक्षा बून्दी रियासत में हुई। लेकिन पाँचवी कक्षा से कोटा में होस्टल में जाना पड़ा। उन्होंने बताया कि छात्रावस्था में एक बार उन्हें उपन्यास पढ़ने का शौक हो गया। जब मैट्रिक में थे तो चन्द्रकान्ता नाम का तिलिस्मी उपन्यास पढ़ रहे थे। लेकिन पढ़ाई का कार्य पूर्ण करने और पाठयक्रम पर पूरा अधिकार कर लेने के बाद ही उपन्यास पढ़ते थे। शौक इतना परवान

(१) पारिवारिक चित्र

श्रीमती शकुन्तला (पुत्रवधु) गीतिका (पौत्री) ज० महावीर सिंह, निवेदिता (पौत्री) भूपेन्द्र सिंह, बीच में पौत्र राजीव

(२) पारिवारिक चित्र

नीचे बैठे : श्रीमती शकुन्तला और श्रीमती इंदिरा कुमार (पुत्रवधु)

बीच में : श्रीमति विजय लक्ष्मी (पुत्री) कर्नल भूपेन्द्र सिंह (पुत्र), श्री महावीर सिंह, श्री योगेन्द्र कुमार सिंह (पुत्र)

पीछे : श्री राजेन्द्र राठी (दामाद) श्रीमती रीतू राठी (पुत्री) कर्नल राज सांगवान (दामाद) श्रीमति निर्मल सांगवान (पुत्री)

चढ़ा कि परीक्षा भवन में जाते–जाते भी चन्द्रकान्ता का कुछ अंश पढ़ लेते थे। गज़ब का आत्मविश्वास था उनमें। एक आचार्य के मना करने पर उन्होंने यह आदत छोड़ दी। बाबा जी की आदत गर्मी की छुट्टियां गाँव में बिताने की थी सो गाँव से संबंध हर साल का रहा। वे बड़ों की सेवा करके आनन्द महसूस करते थे। दिन में समय निकालकर छुट्टियों का होमवर्क पूरा करना और रात में घेर में 2.00 बजे तक हुक्का गुड़गुड़ाना उनकी दिनचर्या का अंग बन गया था। साल में 10 महीने का समय कोटा और बून्दी के बीच व्यतीत होता था। पढ़ाई में अव्वल आने के साथ–साथ उन्होंने अपने सर्वमुखी व्यक्तित्व का विकास किया। कोटा से इण्टरमीडिएट करने के बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और वहाँ के साधारण से जैन हॉस्टल में रहे। नियमित जीवन शैली के अनुरूप प्रातः 4 बजे उठना, व्यायाम करना, भागदौड़ (जॉगिंग) करना, पढ़ना, विश्वविद्यालय में कक्षाओं में जाना, शाम को खेलना, रात को पढ़ने के उपरान्त 10 बजे तक सो जाना एक नियमित जीवन की आधार शिला उन्होंने रखी जो अन्त तक उनके जीवन में रही। यहाँ का एक किस्सा वे सुनाया करते थे। एक बार वार्षिक स्पोर्ट्स के दौरान क्रास कन्ट्री रेस में उन्होंने भाग लिया ओर उस रेस में दूसरे स्थान पर आये। पहले स्थान पर एक प्रदेश स्तर का चैम्पियन था। बस फिर क्या था, जैन हॉस्टल का नाम हो गया जो उसके इतिहास की एक बड़ी बात थी। अगली रेस में तो पूरा हॉस्टल उनके पीछे पड़ गया कि पहले नम्बर पर ही आना है। वे हंसकर बताते है कि ज्यादा दूरी की इस रेस में वो आखिर तक आगे रहे पर स्टेडियम के गेट तक जाकर गिर पड़े और फिर उठ नहीं पाये और दूसरा स्थान भी खो दिया। बाद में जब वे इलाहबाद में पोस्टेड थे तो उन्हें वह स्थान दिखवाया गया। उनका कहना था कि अगर रेंस भी लेता तो द्वितीय स्थान जरूर प्राप्त कर लेता। बी.ए. करते समय ही दादा जी रिटायर गये थे। जब एम.ए. का प्रश्न आया और वहां पर दो साल में एम.ए. और एल.एल.बी. दोनों होते थे जबकि इलाहाबाद में तीन साल लगते थे। पिताजी के विद्यार्थी जीवन की सर्वाधिक उपलब्धियां इसी काल की है। एम.ए. अर्थशास्त्र में प्रथम श्रेणी तथा द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इस कक्षा में ग्यारह साल बाद प्रथम श्रेणी दो विद्यार्थियों को मिली। पिताजी बताते थे कि उस समय हैड ऑफ डिपार्टमेंट पर गृह मंत्रालय का इतना दबाव आया कि उन्हें बीवी के रिश्तेदार के प्रथम डिवीजन देनी पड़ी तो वे बोले कि इसके लिए सबसे योग्य महावीर सिंह है और उन्हें यह डिवीजन जरूर दी जयेगी। इसके साथ–साथ उन्होंने एल.एल.बी. में भी प्रथम और द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इसके बाद जिमनास्टिक में विश्वविद्यालय टीम के कैप्टन रहे। गोमती नदी में नौका–चालन में उनके द्वारा

बनाये गये रिकार्ड दसों साल तक नहीं टूटे। विश्वविद्यालय हाकी टीम जब लखनऊ में खेलती थी तो ये उसमें लेफ्ट आउट (तेज भागने के कारण) पर खेलते थे। पढ़ाई की वजह से टीम के साथ खेलने के लिए बाहर जाने को उन्होंने मना कर दिया था। विश्वविद्यालय ने उनका रहस्य पूछने पर वे हंसकर बताया करते थे कि नियमित जीवन ही उपलब्धि के गर्भ में है। छात्रावास के अतिथि के अनुसार देसी घी का हलवा उन्हें विशेष प्रिय हुआ करता था।

इसके बाद शुरू हुई उनकी जिन्दगी की संघर्ष की कहानी। शिक्षा के क्षेत्र में रूचि होने के कारण वे अध्यापन को अपना कार्यक्षेत्र बनाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने दिल्ली और लाहौर की उस समय जानी मानी संस्थाओं में प्रवक्ता बनने के प्रयास किये परन्तु सफलता नहीं मिली। कहीं भाई – भतीजावाद आड़े आया तो कहीं अनैतिक अभ्यास। लाहौर में तो शर्त ही रख दी कि वेतन आधा मिलेगा और रसीद पूरे धन की हस्ताक्षर करनी पड़ेगी। इससे उनका मन दुखी हुआ और साक्षात्कार के उपरान्त वापस लौट आये। कुछ दिन जाट कालेज, बड़ौत में प्रवक्ता का कार्य किया। कुछ कारणों से वहां से भी कार्य छोड़ना पड़ा। फिर बाबू बलवंत सिंह एड़वोकेट के जूनियर बनकर लीगल प्रैक्टिस सीखनी शुरू कर दी। दो तीन प्रतियोगिताओं में भी बैठे मगर पेपर्स के दौरान ही बीमार होने से सफलता प्राप्त नहीं कर सके। यू.पी. जूडिशियल सर्विसेज कम्पीटीशन का आखिरी अवसर था। अपने पिताजी के दबाव में भरे मन से फीस और फार्म बिल्कुल ऐन वक्त पर आखिरी समय में भेजा ताकि वो निरस्त ही हो जाये। परन्तु ऐसा नहीं हुआ और फार्म स्वीकृत कर लिया गया। उन्होंने अपने सीनियर एडवोकेट को वचन दिया था कि कम्पीटीशन में नहीं बैठेंगे अतः ज्यादा तैयारी नहीं कर पा रहे थे। सीनियर एड़वोकेट को इसी बीच किसी से पता चला कि महावीर सिंह भी कम्पीटीशन में बैठ रहे है तो उन्होंने उनको बुलाकर डांटा लेकिन बाकी का समय तैयारी के लिए मिल ही गया। पेपर्स के समय वे फिर बीमार हो गये किन्तु शायद दो – तीन बार का किया हुआ अध्ययन काम आ गया और वे परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। सन् 1946 में उनकी पहली नियुक्ति बिजनौर में मुन्सिफ के पद पर हुई।

इसी वर्ष उनका विवाह श्रीमती होशियारी देवी सुपुत्री चौ. कन्हैया सिंह, ग्राम भगान जिला सोनीपत से सम्पन्न हो गया। माताजी अपने मातापिता की अकेली संतान थी और यही कारण था कि नानाजी अपने जीवन के अन्तिम वर्षो में पिताजी के पास ही रहे। अपनी शादी का किस्सा सुनाते हुए वे कहते थे कि नानाजी के बड़े भाई मिलाई के समय परम्परा के अनुसार घड़ी देने लगे तो पिताजी ने कहा कि घड़ी तो उनके पास है। फिर साईकिल देने लगे तो बोले कि

साईकिल भी है। तो उन्होंने कहा कि बटेऊ कुछ कमजोर है, एक गाय दे देते है। ग्रहस्थ जीवन में पदार्पण और जीवन के संघर्ष का फल उसे मिला जब वे मुंसफी में आ गये और बिजनौर में पहली नियुक्ति हुई।

कार्य के प्रति शुरू से समर्पित रहने की आदत ओर निरन्तर परिश्रम उनकी सदैव शक्ति बने रहे। मुंसिफ को जयादातर दीवानी केस लॉ का कार्य करना होता है तो जटिल और काफी परिश्रम मांगता है। इस क्षेत्र में उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की। वे केस वर्क निपटाने में सदा अग्रणी रहे। उस समय के जूडिशियल प्रणाली में कोर्ट ठीक समय लगकर चार बजे उठता था। पिताजी आवश्यकता के अनुसार अपने आपको ढालते थे। कोर्ट से आकर अैनिस, बैडमिंटन और टेबिल-टेनिस आदि खेलने का उन्हें सदा ही शौक रहा। उन्होंने ब्रिज (ताश का खेल) भी सीखा किन्तु खेला नहीं चूँकि पैसे के साथ खेलना उन्हें मंजूर नहीं था। अन्य जूडिशियल आफीसर्स की तरह रिक्शा में न चलकर वे साईकिल पर ही चला करते थे। प्रातःकाल में सैर, नहा-धोकर केस वर्क करना (उन दिनों फैसले अपने हाथ से लिखने पड़ते थे), कोर्ट जाना, वहाँ से 8.30 बजे सायं तक वापस आकर चाय आदि पीकर खेलने के लिए क्लब जाना, फिर वहाँ से आकर भोजन करके सोने से पहले मामलों का अध्ययन करना उनका दैनिक कार्य था। वे हमेशा सोने से पहले मामलों का अध्ययन करना उनका दैनिक कार्य था। वे हमेशा सामाजिक कार्यक्रमों के प्रति जागरूक रहते थे। मई-जून में दो महीने के करीब कोर्ट बन्द रहा करते थे तो वे शहर के आराम छोड़कर सपरिवार गांव चले आते थे। गांव में सदैव कुछ न कुछ सामाजिक कार्य में अपने आपको लगाये रखते थे। सबसे पहले पाठशाला स्थापित करवायी जो आज इण्टर कालेज है। फिर कोआपरेटिव सोसाइटी स्थापित की जिसके तहत एक भट्टा और एक फेयर प्राइस शॉप को चलाया। आज भी ये सोसाइटी गांव को लाभान्वित कर रही है। इसके अलावा कोई भी परेशान व्यक्ति कानूनी सलाह ले सकता था। उन्होंने बहुत सारे मामलों में पार्टियों के बीच समझौता करवाया।

सन् 1950 में स्थानान्तरण होने पर वे बिजनौर से नगीना और नगीना से रायबरेली पहुँचे। यहाँ पर तीन साल रहे। इसी बीच उनकी सबसे बड़ी बहन जो निनाना जिला बागपत में है, का निधन हो गया और फिर उनके जीजाजी जो सेना में कप्तान थे, कश्मीर में युद्ध में दुश्मनों की गोलाबारी में शहीद हो गये। रायबरेली का समय मेरे लिए (लेखक) बहुत महत्वपूर्ण रहा। यहाँ से मेरी शिक्षा शुरू हुई थी। हमारे दादाजी, दादी जी आदि हमारे साथ ही रहते थे। पिताजी और दादाजी जैसा कि उस समय वातावरण था, पूरी तरह से स्वदेशी भावना से

ओत–प्रोत थे। इस कारण कान्वेन्ट शिक्षा जो उस समय भी कुछ खास तबके में फैशन बन चुकी थी, में मुझे पढ़ाने के बजाए सामान्य सरकारी प्राइमरी स्कूल में और राजकीय विद्यालय रायबरेली पढ़ाया गया। कैप्टेन भगवान सिंह जी उन दिनों रायबरेली के कलेक्टर थे और बाद में भारत के मशहूर ब्यूरोकेट बने तथा राजदूतों में रहे, उनकी पिताजी से दोस्ती हो गयी। ये दोस्ती सन् 90 तक चली। फौज के शब्दों में स्पिट–दी–कोर को बढ़ाने के लिए कैप्टन साहब प्रशासन के अधिकारियों आदि के साथ शिकार और पिकनिक आदि का अक्सर आयोजन करते थे। पिताजी को एक बोर की बन्दूक भी खरीदवायी जिसका इस्तेमाल शिकार में होते हुए हमने कभी नहीं देखा। इसके बाद पिताजी का स्थानान्तरण रायबरेली से गाजियाबाद हो गया। वहां थोडे ही दिन रह पाये थे कि सिविल जज की पदोन्नति पर उन्हें सन् 1945 में सहारनपुर स्थानान्तरित कर दिया गया। स्कूल के हिसाब से सत्र का मध्य होने से मुझे और मुझसे छोटी एक बहन को गांव की पाठशाला में छोड़ दिया गया। दुर्भाग्य से अचानक छोटी बहन बीमार हुई और इससे पहले कि कुछ समझ आता, वो चल बसी। बाबा जी और पिताजी को हमेशा इसका गहरा मलाल रहा। सहारनपुर का वास दो बातों से महत्वपूर्ण रहा। एक तो पिताजी को दिन में दो–तीन बार हुक्का पीने की जो आदत थी, वो वहां के मशहूर डाक्टर बागले ने प्रतिंबधित करके छुड़वा दी। दूसरे सहारनपुर में यमुना के खादर में जमींदार घरानें में हमारी एक बुआ जी थीं उनके बीसियों मुकद्में दीवानी और फौजदारी के थें उनमें से बहुत सारे आपस में सुलह के द्वारा ही निपटा दिये गये। रिश्तेदारों को लेकर सिफारिश करने आने वालों से निपटना बाबा जी का काम था। उनके रौद्र रूप और कठोर वाणी ने थोड़े दिनों में ही रिश्तेदारियों मे हमारी प्रतिष्ठा का स्तर शून्य पर पहुँचा दिया। यह सिलसिला पिताजी के हाईकोर्ट से सन् 1982 में रिटायर होने तक चलता रहा। किन्तु बाबा जी की वजह से पिताजी इस विषय में निश्चित रहे। हालांकि बाद में सबकों समझ आ गया कि महावीर सिंह न तो सिफारिश सुनेंगे और न ही करेंगे। हाँ कानूनी सलाह देने में उन्होंने कभी भी न संकोच नहीं किया। सहारनपुर का समय एक ओर प्रकार से मेरे लिए विशेष रूप से स्मरणीय है कि एक तो मैंने पहला हिल स्टेशन इसी दौरान देखा तथा दूसरे लक्ष्मणझूला, ऋषिकेश, हरिद्वार के भ्रमण के दौरान दो–तीन दिन गुरूकुल में, जहाँ पर तम्बू आदि की उचित व्यवस्था थी, रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय की रमणीयता, वातावरण और ब्रह्मचारियों का सानिध्य मुझे प्राप्त हुआ। उस समय भारत में जनसंख्या भी कम थी और हरिद्वार तथा आस–पास का क्षेत्र आधुनिकता और विकास से दूर था। हर चीज उस समय मानों प्रकृति की गोद में आराम कर रही थी। सन् 1955

में हम लोग सहारनपुर से फैजाबाद आ गये। पिताजी फैजाबाद तथा इससे अगले स्टेशन इलाहाबाद के इवक्यू प्रोपर्टी के जज थे जिससे आवागमन आदि काफी करना पड़ता था। दोनों ही जगह आवास व कार्यालय एक ही होने से बड़ा आनन्द रहा। फैजाबाद में घर के पास एक जिम्नास्टिक का क्लब था। वहाँ बुआ जी के लड़के के साथ में हम भी कभी-कभी चले जाते थे। पिताजी कोक अपना पुराना शौक चढ़ आया। वे पैरेलल बार और हॉरिजोन्टल बार 35 साल की उम्र में परफेक्ट डेमोंस्ट्रेशन करते थे। उन्हें देखकर वहाँ के प्रशिक्षक भी चकित हो जाते थे। उन्हें लांग-टेनिस, बैडमिन्टन और टेबल-टेनिस खेलते हुए और क्लब टूर्नामेंट जीतते हुए तो पहले भी देखा था टेबिल-टेनिस खेलते हुए और क्लब टूर्नामेन्ट्स जीतते हुए तो पहले भी देखा था लेकिन ये एक नया ही पहलू था। सन् 1955 के आस-पास ही पहली बार चकबन्दी शुरू हुई। गर्मी की छुट्टियाँ गांव मे बिताते हुए पिताजी ने महसूस किया कि किसानों को चकबन्दी के बारे में ज्ञान कम है और इस कारण उनका शोषण किया जा रहा है। यह सोचकर उन्होंने उत्तर प्रदेश में चकबन्दी पर हिन्दी में एक छोटी सी व्यावहारिक जानकारियों से पूर्ण किताब लिखी जो बड़ी पापुलर रही। जहाँ तक मुझे याद आता है, उनके द्वारा लिखी गयी यह तीन किताबें इस विषय पर पहली थी। जैसे-जैसे कानून व्यवहारिक बनाने के लिए बदलाव किये गये, वैसे -वैसे इन पुस्तकों में समायोजन करने का प्रयास किया गया। मेरे विचार से पिताजी का कार्यकाल इलाहाबाद में काफी अच्छा रहा। वहां की यूनिवर्सिटी में चूँकि पिताजी पहले ही पढ़ चुके थे। वहां से काफी छात्रों और अधिकारियों निरन्तर सम्पर्क होता रहता था। जूडीशियरी का मक्का होने की वजह से भी वहाँ पिताजी अपने आपको काफी व्यस्त पाते थे। उस स्थान पर आर्य समाज की गतिविधियाँ भी काफी प्रगति पर थी। मुझे याद है कि मेरी धार्मिक शिक्षा एक तरह से यहीं पर हुई। पिताजी के साथ के कारण आर्य समाज के सम्मानित और जाति के बहुत से गौरव पुरूषों का आशीर्वाद, जो घर के अन्य सदस्यों के साथ-साथ मुझे भी मिला, उसके लिए मैं अपने आपको धन्य समझता हूँ। सिटी ए.वी. इण्टर कालेज से मैंने 1959 में हाईस्कूल की परीक्षा पास की । इसी दौरान पिताजी को पदोन्नत कर सेशन जज के पद पर शाहजहाँपुर स्थानान्तरित कर दिया गया। जूडीशियल जीवन में अब तक तो निर्णयों का असर मानव पर अप्रत्यक्ष रूप से ही पड़ता था, लेकिन अब सीधा पड़ने लगा। सुबह घूमने जाते तो अपने सीनियर से विवेचना करते और शाम का बाबा जी के साथ जीवन के उन पहलुओं पर विचार करते जो मानव की विभिन्न मानसिकताओं से जुड़े हुए है। इसके पश्चात वे स्वयं मनन करते और तब जाकर अपना निर्णय लिखते थे।

किसी – किसी केस में जब अभियुक्त दया का पात्र होता था तो काफी विचलित रहते थे लेकिन कभी भी कानून की लक्ष्मण रेखा का नहीं लांघा। हमेशा इन्साफ किया और उनको इसका यश भी मिला। यहां से वे धीरे – धीरे न्याय करने वाले, निर्भीक, सिफारिश न सुनने वाले जज के रूप में मशहूर होना शुरू हो गये। शाम को टेनिस, बैडमिन्टन इत्यादि नियमित रूप से चलता रहा। साथ में काफी बड़ा बंगला मिला तो एक भैंस रख ली थी। वे उसका काम करने में हमेशा एक भैंस रख ली थी। वे उसका काम करने में हमेशा एक खुशी महसूस करते थे। आर्य समाज (रामप्रसाद बिस्मिल) में लगाव और बढ़ा। सन् 1961 में मैंने इण्टर पास किया और कुछ दिनों के लिए इलाहबाद यूनिवर्सिटी में पढ़ने गया, लेकिन नेशनल डिफेंस अकादमी, खड़कवासला में मेरा चयन हो गया और 2 जनवरी 1962 में मैंने अकादमी ज्वाइन कर ली। अब तो छः माह में एक बार ही मेरा घर पर आ पाना सीमित हो गया। जून 1962 में पिताजी का स्थानान्तरण कानपुर हो गया। गर्मियों में गांव चले जाना अभी तक भी जारी था। इस दौरान मैंने महसूस किया कि उनका परिचितों और मित्रों का दायरा धीरे – धीरे बढ़ रहा था किन्तु वे अपने कार्यों से बिलकुल समझौता नहीं करते थे। उनसे सहज व्यवहार करने वाले सीमित लोग ही थे। पद का कोई अभिमान उनमें नहीं था। बार से, क्लब से, समाज से और जूडीशियरी / अधिकारियों से उनका दायरा बढ. ही रहा था। कई महत्पूर्ण केस करने से उनकी ख्याति पूरे जिले में फेल गयी थी। उस समय नेशनल इन्ट्रीगेशन के तहत एक स्कीम में उन्होंने तेलगू सीखी और कान्पुर के तेलगू भाषियों के प्रिय बन गये। उनकी अगली नियुक्ति सन् 1965 में अलीगढ़ में हुई तो अलीगढ़ विश्वविद्यालय का सानिध्य होने से शोध की तरफ रूझान हुआ। यही कारण था कि रिटायर होने के बाद उन्होंने जानी मानी हस्ती जस्टिस इकबाल पर एक किताब लिखी। ये पुस्तक मेन्यूस्क्रिप्ट खो जाने के कारण प्रकाशित नहीं हो सकी। इस बात का उन्हें दुख भी होता था। दिसम्बर, 1965 में 25 तारीख को मुझे कोर आफ ई.एम.ई. में देहरादून में कमीशन मिला। इस अवसर पर पूरा परिवार देहरादून आया था। परेड़ से पहली रात करीब 8 बजे सब लोग मिलने जब भारतीय रक्षा अकादमी में आये तो उन्हें गेट पर रोक लिया गया। संतरी ने पूछा कि किसके पास जाना है तो पिताजी ने कहा मेरे बेटे का कमीशन मिल रहा है, उससे मिलना है। उसे इस बात का यकीन ही नहीं हुआ। उससे कहा कि आप तो खुद लड़के से लग रहे है। तब किसी ने मुझे खबर दी जब मैं जाकर उन्हें गेट से लेकर आया। पतला किन्तु पुष्ट शरीर, चुस्त चाल, काले बाल, कोई झुर्री नहीं, ऐसा था पिताजी का व्यक्तित्व। बिना काले किए उनके बाल 62 साल की उम्र में जबकि वे रिटायर

हुए काले थे। अलीगढ़ में ही छोटी बहन विजय का विवाह बागडौली के चौ. शिवचरण सिंह के ज्येष्ठ पुत्र श्री नरेन्द्र पाल जी (निवासी सोकत, मेरठ) से जून 1966 में हुआ।

अलीगढ़ से पिताज़ी का स्थानान्तरण इलाहाबाद हुआ जहां पर उन्हें हाईकोर्ट में बहुत समय से लम्बित मामलों के शीघ्र निपटान का कार्य सौपा गया। उसमें अच्छी प्रगति चल रही थी कि किन्हीं कारणवश उनका स्थानान्तरण फिर से आगरा में जज सेल्स टैक्स (रिविजन) पर कर दिया गया। इस तरह से परिवार को इलाहाबाद में स्थापित होते-होते आगरा की तरफ प्रस्थान करना पड़ा। परिवार की ओर से आगरा का समय भी ठीक ही रहा। उस समय रिश्तेदार और दोस्तों का ताजमहल देखने के लिए आना जाना एक आम सी बात थी। 23 साल की न्यायाधीश की जिन्दगी साईकिल पर कोर्ट आने-जाने में गुजारने के बाद सरकारी ऋण लेकर पिताजी ने एक कार खरीदी जो छोटे बहन-भाईयों के लिए एक बहुत आनन्द की बात रही। यह कार अगले बीस साल तक परिवार के साथ रही। सन् 1971 में उन्हें पदोन्नति कर बदायूँ जिले का जिला जज बनाकर भेज दिया गया। 12 सोल सेशन जज का दायित्व निभाने के बाद एक केस में उन पर जोर डालने के लिए जान से मारने की धमकी मिली। जिसको उन्होंने जीवन की रफ्तार में बाधा नहीं समझा। लेकिन ऐसे ही एक राजनैतिक हत्या के केस में उन्हें अनेक मानसिक यातनाएँ झेलनी पड़ी। मृतक् उस समय के प्रदेशीय शासन के सबसे शक्तिशाली परिवार से जुड़ा था और उनकी इच्छा थी कि असली हत्यारे के साथ-साथ तीन-चार व्यक्ति और भी दण्डित हों। परन्तु पिताजी को तो न्याय करना था सो किया और सिर्फ कातिल को मृत्युदंड दिया। इस तरह शुरू हुई आदर्शों और व्यावहारिकता की रस्साकसी। जो भी कारण हों, हाईकोर्ट ने पिताजी का निर्णय पर पहली बार उच्च न्यायालय द्वारा एक गम्भीर कथन जारी किये गये स्वाभाविक रूप से केस की अपील उच्चतम न्यायालय में की गयी। पिताजी का स्थानान्तरण दण्ड-स्वरूप रामपुर कर दिया गया। उन्हें दो तीन छोटी मोटी अनियमितताओं का भी सामना करना पड़ा जो कि उच्च न्यायालय की जांच में निराधार पाये गये। पिताज़ी के लिए यह समय एक परीक्षा की घड़ी थी जब उनके जीवन भर की कमाई और जीवन का साधना दॉव पर लग गयी थी। और फिर वह समय भी आया जबकि उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को खारिज करते हुए पिताजी के निर्णय को ही पुनः लागू कर दिया। इसके साथ ही उनका मान सम्मान जूडीशियन क्षेत्र पुर्नस्थापित हुआ। रामपुर तबादले का दूसरा पहलू एक तरह से राजनैतिक षडयन्त्र था। रामपुर पूर्व में स्टेट होने के कारण रामपुर राजघराने का अधिकारी

वर्ग पर एक अप्रत्यक्ष दबाव था। अधिकारी जो नवाब को नमन नहीं कर पाते थे, वे टिक नहीं पाते थे। ऐसे में सोचा गया कि महावीर सिंह जैसे सीधे-साधे आदमी की तो दुर्गति हो ही जायेगी। लेकिन हुआ उल्टा। कुछ ही दिनों में अपनी सच्चाई, निष्पक्षता, मेहनत और मृदु व्यवहार से रामपुर में वो जगह बनाई कि उनके चले जाने के बाद अभी तक लोग उन्हें याद करते हैं। अराजनैतिक रहने के कारण नवाब साहब और सबसे अधिक समय तक लोकसभा सदस्य रहे मिकी मियां आदि से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध रहे। रामपुर में पिताजी ने पांच साल से ऊपर की पारी खेली। इस बीच फरवरी 73 में मेरी शादी दिल्ली के औचन्दी के एक बहुत पुराने और विख्यात परिवार के डा. लक्ष्मण सिंह लौहचव की पुत्री शकुन्तला से हुई। रामपुर में उस शादी का समारोह हुआ। ऐसा लग रहा था कि रामपुर उठकर आ गया है। इस समय तक उनका सामाजिक दायरा बहुत बड़ा हो गया था। 1975 से 1977 में आपात्काल के दौरान भी पिता जी ने प्रायः निर्भीक फैसले लिए और शासन की हर बात से आंख नीची कर हां नहीं जतायी। टाडा और लैंड सीलिंग एक्ट के उन्होंने निर्भीक निर्णय दिये। 1975 में 93 साल की उम्र में दादाजी के कूल्हे की हड्डी टूट गयी। उन्हें इलाज के लिए डा0 मिनी गोयल के पास लखनऊ मेडिकल कालेज में ले जाया गया। आपरेशन तो ठीक हो गया परन्तु वी.टी.आई. इन्फेक्शन की वजह से स्थिति खतरनाक हो गयी। दादाजी मरते-मरते बचे। पिताजी ने दिन-रात अस्पताल में रहकर उनकी सेवा-सुश्रूषा की। इसका हम सब पर बड़ा असर पड़ा और शायद यही बात आगे चल कर दोहरायी गयी। कुछ समय बाद बाबा जी लखनऊ से पुनः दिल्ली के भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में प्रोस्टेट आपरेशन के लिए वापस आ गये। डाक्टर ने आयु व अवस्था को देखते हुए आपरेशन से मना कर दिया तो बाबा जी ने विभागाध्यक्ष से कहा कि मेरे पेट में से आपरेशन करके पेशाब की नली निकाल दें। मैं गारण्टी देता हूं कि आपरेशन टेबल पर मरूंगा नहीं। खैर किसी प्रकार विभागाध्यक्ष मान गये और बाबा जी का आपरेशन सफलता पूर्वक सम्पन्न हो गया। संस्थान में इन सब कारणों से काफी समय लग गया और पिताजी जिला जज के अपने दायित्वों का निर्वाह करने में रामपुर और दिल्ली के बीच चक्कर काटने पर विवश थे। 4 बजे कोर्ट छोड़कर सीधे रामपुर से दिल्ली स्थित आयुर्विज्ञान संस्थान पहुँचते थे। रात-2 भर जागकर बाबा जी की सेवा की। उन दिनों राहजनी की घटनाओं को देखते हुए रात को गाड़ियों के कारवाँ लगते थे किन्तु पिताजी ने कभी उनकी परवाह नहीं की और अकेले ही देर रात में चलकर सुबह रामपुर पहुँचते थे। मैं भी छुट्टी लेकर उस समय आया हुआ था। उनकी इस रामपुर और दिल्ली की भागदौड़ में कभी भी मुँह पर

शिकन नहीं आयी। चिढ़े हुये बाबा जी की डांट भी वे बड़े आराम से सुन लेते थे। बाबा जी को पूरी तरह से ठीक होने में साल से ज्यादा लग गया। इस बिमारी के बाद वे बैशाखी लेकर चल पाये और इसको उन्होंने अपने अभ्यास में शामिल कर लिया।

इसी बीच सन् 1973 में छोटे भाई ने एम.ए. (आनर्स) इतिहास में करके कालेज आफ वोकेशनल स्टडीज़ दिल्ली में प्रवक्ता पद पर कार्य करना शुरू कर दिया। बाद में सेल्स टैक्स की सेवा मिली जो ज्वाइन नहीं किया। अगले साल रेलवे में नौकरी मिली तो किसी तरह से पिताजी व पारिवारिक सदस्यों के समझाने पर ज्चाइन कर ली। वह भी कुछ पसन्द नहीं आयी तो तीन महीने की छुट्टी लेकर रामपुर आ गया और फिर से आई.ए.एस. की तैयारी की। इस बार बहुत मेहनत करके आई.एफ.एस. में सेवा प्रारम्भ कर दी।

1977 में ही पिताजी का तबादला इण्डस्ट्रियल ट्रिब्यूनल में लखनऊ में हो गया। वहाँ से नवम्बर में हाईकोर्ट जज के लिए शपथ ली। हमारी जाति से इलाहाबाद हाईकोर्ट जो उत्तर प्रदेश और उत्तर भारत में ऐतिहासिक है, के प्रथम न्यायाधीश बने। इसका हम सबको सदैव गौरव रहा। जाति से प्रथम हाईकोर्ट के जज बनने का गौरव श्री तेवतिया को हरियाणा से रहा है और वे चीफ जस्टिस बंगाल हाईकोर्ट में भी रहे। सन् 1977 के दिसम्बर में छोटे भाई की शादी भी दिल्ली में इन्द्रा सुपुत्री डा. जीत सिंह वर्मा जो गाजियाबाद जिले के निवासी और नोसिल जैसे प्रसिद्ध कम्पनी के वाइस प्रेसिडेन्ट थे से हुई। इस तरह से 1977 पिताजी के लिये पेशे तथा पारिवारिक दृष्टि से एक अच्छा वर्ष साबित हुआ। एलिवेट (उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में जज बनने पर इस शब्द का प्रयोग किया जाता है) होने पर पिताजी को लखनऊ बेंच में नियुक्त कर दिया गया और उन्होंने अपना पाँच साल का कार्यकाल यहीं सम्पन्न किया।

सन् 1977 से 1982 का समय पिताजी के जीवन में और अधिक उपलब्धि और कार्यों का समय रहा जबकि उन्होंने एक पेशेवर व्यक्ति की हैसियत से अपने न्यायिक जीवन का यश अर्जित किया। साथ ही साथ इलाहाबाद उच्च न्यायालय के इतिहास में 40 प्रतिशत फैसले हिन्दी में करने वाले प्रथम न्यायाधीश होने का गौरव प्राप्त किया। इसी बीच दिल्ली में स्थापित होने वाली सूरजमल एजूकेशन सोसाइटी के फाउन्डर मेम्बर और 1975 से ही सर्वाधिक क्रियाशील मेम्बर बने। अपने दायित्वों के बीच महीने में दो-तीन बार द्वितीय श्रेणी से लखनऊ से दिल्ली के लिए (प्रायः शुक्रवार को) शाम को चलते थे। संस्थान का काम करके सोमवार को सुबह वापस लखनऊ पहुँच जाते थे। इस तरह उन्होंने अपना जीवन एक कर्मयोगी के रूप में स्थापित कर लिया था। वे जो भी

सामाजिक कार्य करते थे, उसका असर पैशे के कार्य अथवा उसके लिए वांछित समय पर नहीं पड़ने देते थे। इसी दौरान पिताजी की तिसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि उनका हिन्दी भाषा के उत्थान के लिए राज्य और राष्ट्र स्तर के संस्थानों से जुड़कर कार्य करना रहा। न्यायाधीश का कार्य बड़ा संवेदनशील होता है, तिस पर समाज में घुल-मिल कर सामाजिक कार्यों को आगे बढ़ाना एक कठिन कार्य है। प्रायः इस तरह के व्यक्ति एक साथ दोनों कार्य करने से बचते हैं। लेकिन पिताजी ने इन दोनों पहलुओं के बीच एक ऐसी दीवार खींच ली थी जो कभी टूटी नहीं और उन पर न्यायिक प्रक्रिया में कभी अनैतिकता का लांछन नहीं लगा। इसी दौरान 1981 में मझली बहन निर्मल की शादी श्री राज के. सागवान सुपुत्र कैप्टन सागवान निवासी गुड़गांव से सम्पन्न हुयी जो आजकल भारतीय सेना में कर्नल हैं। इस समय उनका सामाजिक सम्पर्क लखनऊ और प्रदेश में काफी बढ़ता रहा तथा जीवन और अधिक व्यस्त होता गया। आर्य समाज की गतिविधियों में उनकी शिरकत बढ़ी। इन सब व्यस्तताओं के बावजूद वे अपनी जन्मभूमि और गाँव को नहीं भूले तथा गर्मियों की छुट्टियों में वहां जाने का समय अवश्य निकाल लेते थे।

लगभग चार दशक की न्यायिक सेवा के बाद अगस्त 1982 में पिताजी ने सेवा से अवकाश ग्रहण कर दिया। तन और मन से युवा, 18 घण्टे लगातार कार्य करते रहने में सक्षम, प्रायः सभी काले बाल, कहीं भी साधारण भारतीय की तरह से साधारण साधनों से यात्रा करने में सक्षम पिताजी ने अगली दृष्टि उच्चतम न्यायालय पर डाली। सेक्टर 14, नोएडा में एक किराये के मकान में आवास बनाया और बाबाजी, नानाजी और सबसे छोटी बहन के साथ वहीं डंट गये। सेक्टर 15ए में गांव की जमीन बेचकर एक भूखण्ड लिया था किन्तु उसमें भी घर नहीं बना पाये थे। यह ईमानदारी की ताकत थी या कमजोरी- दोनों तरह से सोचा जा सकता है। फरवरी, सन् 1983 में पिताजी ने बाबाजी की 100वीं वर्षगांठ धूमधाम से मनाई। इस घटना की तूती अमेरिका तक में बोली। अगस्त, सन् 1983 में मेरी पोस्टिंग पहली बार घर के पास दिल्ली केंट में हुई। लेकिन बिमारी के कारण माताजी का स्वर्गवास हो गया। मानो सारी खुशियां गम में बदल गयी। दुर्भाग्य ने जैसे आक्रमण ही कर दिया। मां की बिमारी के दौरान ही नानाजी, जो पिताजी के साथ ही रहते थे, भी चल बसे। माँ की मृत्यु के बाद बाबा जी का मन इतना खिन्न हुआ कि उन्होंने जीने की सब इच्छाएं छोड़ दी। जब से मुझे याद है, बाबा जी हमेशा हमारे साथ रहे और इस दौरान माँ की सेवाओं पर इतना आश्रित हो गये थे कि माँ के जाने से उनका सारा हौंसला पस्त हो गया। पिताजी और इन्द्रपाल ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की लेकिन

उनकी मनोदशा नहीं सुधरी और मई, 1984 में 101 वर्ष की आयु में इस लोक से विदा हो गये। साल भर पहले तक कई जाने-माने वैद्य, जो उनकी नाड़ी की जांच करते रहते थे, कहा करते थे कि अभी दस साल तक इन्हें कुछ नहीं हो सकता।

6-7 महीनों के अन्दर-अन्दर पिता, श्वसुर और पत्नी को खोकर पिताजी बिल्कुल अकेले से हो गये। उस समय मैं जनकपुरी- दिल्ली कैंट में रहा करता था और छोटा भाई अपने परिवार के साथ कर्जन रोड पर रहता था। हमारे सामने तो उन्होंने कभी व्यक्त नहीं किया किनतु अपने आपको जीवन कर्म में पूरी तरह झोंक दिया। उच्चतम न्यायालय में सीनियर एडवोकेट का कार्य करते हुए उन्होंने सामाजिक गतिविधियों में राजनीति का समावेश कर लिया और जनता दल से जुड़ गये। लीगल प्रेक्टिस में वे गरीब की व्यथा से पिघल जाते थे। अक्सर कोर्ट फीस और कागजों का पैसा भी अपनी जेब से दे देते थे। सही मायनों वे वे विधि के ज्ञाता होने पर भी स्वयं को एक व्यवसायी नहीं बना पाये। उनके जीवन में पैसा कभी भी उद्देश्य नहीं बन पाया। वे तो एक जरूरत की चीज थी और उनकी जरूरतों के लिए शायद पैसों की कमी नहीं पड़ी। 15 अगस्त 1986 को गाँव वासियों को विश्वास में लेकर अपने गाँव के घर में ग्रामीण अंचल की कन्याओं के लिए एक तकनीकी प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की। इसमें लड़कियों को सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, पाचन-विद्या, पेंटिंग आदि का प्रशिक्षण दिया जाने लगा। कुछ दिनों पश्चात इस कार्य में कनाडा की एक संस्था की मदद से दिल्ली पालेटैक्निक के माध्यम से सहायता मिलना आरम्भ हुई किन्तु कुछ ही समय बाद वह बन्द हो गयी। फिर पिताजी ने अपने खर्चे पर इसे चलाया। उस समय इसमें नाम मात्र की फीस ली जाती थी।

सन् 1986 में ही एच.डी.एफ.सी. के ऋण और पेंशन एरियर आदि लगाकर एक छोटा सा अपना घर सेक्टर 15ए में बनाया और दिसम्बर, 86 से इसमें रहने लगे। सन् 1982 में रिटायर होने के बाद तो पिताज़ी का कार्यक्षेत्र उ0प्र0 की सीमाओं को पार करता हुआ दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और मध्य प्रदेश तक फैल गया। सन् 1983 में वे सर्वखाप पंचायत के अध्यक्ष बने जो ग्रामीण अंचल में गाँवों के समूह की संस्था है। 1984 में श्री टिकैत के साथ किसान यनियन में कार्य करना शुरू कर दिया। सोमवार में शुक्रवार तक उच्चतम न्यायालय के दिन थे, तो शनिवार व रविवार ग्रामीण अंचल और आस-पास में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक गतिविधियों के। इस समय में सफल भी खूब किया। वे बसों में व रेल में साधारण श्रेणी में कई-कई घण्टे खड़े होकर सफर कर लेते थे। इन सब गतिविधियों में समय मिलता तो वे अपनी विधि की किताबें लिखते या

उनका पुनर्गठन करते थे। वे कभी खाली नहीं बैठे। 1985 – 86 में वे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की न्याय सभा के अध्यक्ष भी बनाये गये। 1985 से 1995 के दशक में उन्होंने एक समझौताकार का कार्य भी किया। इसमें कुछ कार्य तो सरकारी था किन्तु कुछ परिचितों में बंटवारे आदि के मामलों में उत्पन्न हुए गहन तनाव का था। जब समझौताकार से सभी लोगों की अपेक्षाएं बहुत अधिक होती हैं, तो यह कार्य अत्यन्त जटिल हो जाता है। दोनों पक्षों को एक फैसले पर लाना बहुत ही टेढ़ी खीर है। पिताजी सीधे – साधे होते हुए भी यह इसलिए कर पाये चूँकि विधि के क्षेत्र में उनकी पकड़ असाधारण थी। जैसा की प्रायः होता ही है, इस प्रकार के फैसले करने में यद्यपि कुछ रिश्तों में खटास भी आया किन्तु मेरा मानना है कि उन परिवारों के लिए पिताजी का यह प्रयास कल्याणकारी ही होगा।

1982 में रिटायरमेंट से लेकर 1997 में अपने महाप्रयाण तक के बीच के समय में लगभग 15 साल उनके जीवन का व्यस्तमय समय रहा। इस समय के बारे में संक्षिप्त विवरण देना मेरी क्षमता के बाहर है। लीगल प्रेक्टिस, सूरजमल सोसाइटी, महिला पालिटेक्निक एलम, लोकदल – जनतादल – भारतीय जनता पार्टी की राजनीति, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की गतिविधिया, एन.ए. आई.ई.डी. यूनियन, भारतीय किसान यूनियन, प्रतिमंच नोएडा, हिन्दी साहित्य सभा लखनऊ, नोएडा, सांस्कृतिक मंच, बार एसोसिएशन, विधि साहित्य प्रकाशन, हिन्दी और अंग्रेज़ी में विधि पुस्तकों का सृजन / पुनर्गठन, कोन्सटीच्यूशन क्लब आफ इण्डिया, एन.एच.आर.सी. आदि – कार्यों / गतिविधियों में अपने आपको व्यस्त रखते थे।

सन् 1988 में सबसे छोटी बहन रितु की शादी श्री राजेन्द्र कु0 राठी सुपुत्र चौ. रणधीर सिंह निवासी रोहतक से हुई। बोट क्लब पर किसान यूनियन का धरना और बाद में नारायण दत्त तिवारी, मुख्यमंत्री उ0प्र0 से किसानों की मांगों पर समझौता करने में उनकी विशेष भूमिका रही। 1989 में उन्होंने यूनियन से त्यागपत्र दे दिया ताकि सक्रिय राजनीति में भाग ले सकें। 1989 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने "भारतीय संविधान की टीका" पर उन्हें "विधि वाचस्पति" (पी – एच.डी. की मानद उपाधि) प्रदान की। 1988 में छोटी बहन की शादी के बाद पिताज़ी बिल्कुल अकेले पड़ गये। कुछ अन्य कारणों से मैंने 1989 में पत्नी तथा बच्चों को उनके पास छोड़ दिया। उससे घर की व्यवस्था सुचारू हो गयी। इन्हीं दिनों मैंने देखा कि पिताजी अपने श्रेष्ठतम मानसिक व शारीरिक क्षमता से कार्य कर रहे थे। सप्ताहान्त आप रविवार को रात में घर लौटने के समय बस / स्कूटर आदि नहीं मिलने पर दो – दो बजे तक 7 – 8 किमी. का रास्ता

पैदल चलकर घर पहुँच जाते थे। दो-एक घण्टे विश्राम कर प्रात: 4-5 बजे उठकर सप्ताह भर के कार्य तय करके फिर से व्यस्त हो जाते थे। कोई थकान था नींद उन्हें तंग नहीं करती थी। सामान्यत: 5-6 बजे के बीच उठना, स्वयं चाय बनाना, ठीक 6 बजे आकाशवाणी पर "सुजलाम सुफलाम" का संगीत सुनना, नित्यक्रिया से निवृत्त होकर योगाभ्यास करना फिर अपना केस का कार्य करना, 9 बजे के करीब स्नान, सन्ध्या दूध तथा ब्रेड व केले का नाश्ता करना, कोर्ट जाना, दोपहर के खाने के नाम पर फल और जूस लेना, चार बजे कोर्ट से लौटकर थोड़ी सी सब्जी और चाय लेना तथा आधे घण्टे के आराम के पश्चात पुनः मेज पर अपने केस या किताबों में खो जाना, 8 बजे भोजन करना तथा थोड़ा टहलकर 10-11 बजे तक सो जाना, प्राय: यही उनकी दिनचर्या थी। छुट्टी का ख्याल उन्हें कभी आया ही नहीं। वे अपने आपको हर समय किसी न किसी कार्य में लगा कर रखते थे। उन्हें लोगों से मिलने का बड़ा शौक रहा। इसी बीच कुछ कारणों से मैंने भी सेना से समय से करीब पाँच वर्ष पूर्व ही अवकाश ग्रहण कर लिया और पिताजी के सानिध्य में रहने लगा।

मई 1993 में पिताजी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा बने। गुरुकुल से उनका संबंध हमेशा से ही रहा। परिद्रष्टा बनने पर तो यह सम्बन्ध और भी प्रगाढ़ हो गया। उनकी मृत्यु तक यह सम्बन्ध कायम रहा।

1993 में पिताजी भारतीय जनता पार्टी के सदस्य बने और उ0प्र0 विधान सभा चुनावों में पार्टी के लिए कार्य किया। भारतीय जनता पार्टी ने उन्हें काफी सम्मान दिया। 1993 से 96 तक वे राष्ट्रीय कार्यकारिणी में विशेष आमंत्रित सदस्य रहे। 1996 में क्षेत्रीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पश्चिमी उ0प्र0 की क्षेत्रीय समिति का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। 1995-96 में ही भगवान महावीर के पवित्र स्थल, जो रांची में हैं, पर चल रहे विवाद में श्वेताम्बर जैनियों के ट्रस्ट की तरफ से उन्होंने रांची उच्च न्यायालय में अत्यधिक कार्य किया। उस दौरान रांची और बम्बई के बीच उन्होंने पचासों बार यात्रा की। 1996 में जब वह केस समाप्ति की ओर था तभी विधान सभा के चुनाव थे। अक्टूबर के शुरू में ही चुनाव सम्पन्न हुए। 25 अक्टूबर, 1996 को हृदय-गति तेज होने पर उन्हें कैलाश हास्पीटल, नोएडा में भर्ती कराया गया। हमें क्या पता था कि इस भर्ती से एक घातक बिमारी पता चलेगी। विधि की विडम्बना थी कि उन्हें पौरुष ग्रन्थि का कैंसर निकला और वो भी अन्तिम अवस्था में। पिताजी का इलाज पहले टाटा, बम्बई और धर्मशिला कैंसर हास्पिटल, दिल्ली में चला। दोनों अस्पतालों के सम्मानित और अनुभवी विशेषज्ञों ने मात्र 4-6 सप्ताह के जीवन की सम्भावना व्यक्त की। पिताजी ने इस असाध्य बिमारी से जूझते हुए मृत्यु

को 10 माह तक अपने पास नहीं लगने दिया। महाप्रयाण से एक – दो दिन पूर्व उन्होंने कहा कि मेरी शक्ति समाप्त हो गयी है, लगता है कि अब चलना ही पड़ेगा। सारी जिन्दगी हम उनसे कुछ न कुछ सीखते ही रहे। मरते – मरते भी वे हमें जिन्दगी सिखा गये। बाबाजी की बिमारी तो हमने देखी थी, उनकी सेवा भी की थी किन्तु पिताजी की बिमारी बिल्कुल अलग थी। पिताजी का शरीर व शक्ति तिल – तिलकर कर होती गयी। उन्हें न जाने कितनी पीड़ा रही होगी जो उन्होंने बड़े संयम से सही। एलोपेथी पर कम विश्वास करने वाले पिता जी को इस बिमारी में बहुत सी गोलियों और कैप्सूल लेने पड़े जो उनके लिए बहुत ही कठिन कार्य था। फिर भी उन्होंने दवाईयां खायी। भोजन नियमित परहेज के आधार पर जैसा बताया गया था, वैसा ही लिया। उन्होंने जीवन में नियमितता को कभी भी नहीं त्यागा। इस दौरान भी वे कई बार गांव जाने की जिद करते थे। परन्तु चिकित्सकों की राय से हम बाध्य थे और अन्त में उनका पार्थिव शरीर ही इस यात्रा को पूरी कर सका। अपने सादे स्वभाव में इस अन्तिम यात्रा के लिए उन्होंने हमें अनेक निर्देश दिये, जिन्हें हमने पूरा करने का यथासम्भव प्रयत्न किया। अपने जीवन के अनितम दिनों में उन्हें सिर्फ एक ही चिन्ता थी कि गांव में लड़कियों का संस्थान कैसे चलेगा, उसको स्थायी रूप कैसे दिया जाये। भाई राजेन्द्र पंवार ने अपने चाचाजी के इस स्वप्न को साकार करने में स्मरणीय सहयोग किया है।

पिताजी 78 साल की अपनी जीवन यात्रा पूरी करके चले गये। प्रायः इस पर विश्वास नहीं होता। पिताजी का जीवन कर्मठता से भरा हुआ था, जिसमें आलस नाम मात्र को नहीं था। वे काम से कभी आराम नहीं करते थे। उन्होंने कभी इस बात का भान नहीं होने दिया कि वे "जीवेम् शरदः शतम्" का अनुकरण नहीं करेंगे। मृत्यु से कुछ ही दिनों पूर्व की बात है कि बस में यात्रा करते हुए किसी युवा ने उन्हें बाबा कह कर पुकार दिया। उन्होंने घर आकर मेरी पत्नी से पूछा कि क्या मैं वाकई बूढ़ा हो गया हूँ ? जवानों से ज्यादा कर्मशील और मजबूत उनकी हिम्मत देखकर हमें भी शर्म आ जाती थी। इसे देखते हुए तो लगता है कि वे समय से पहले ही चले गये। वे निश्चित ही कम से कम दस – पन्द्रह साल समाज के लिए और देने में सक्षम थे।

उनके जीवन – कृतं को संक्षेप में सरलता से लेखनी द्वारा समेटा नहीं जा सकता। कदाचित् मेरी योग्यता भी उसे पूर्ण रूप से उद्धृत करने में असमर्थ है अतः ईश्वर से यह विनती करते हुए कि उन्हें अपने चरणों में शान्तिमय वास दे तथा हमें शक्ति दे ताकि हम उनके द्वारा निर्दिष्ट कार्यों को सम्पन्न कर सकें, मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

नोएडा, गाजियाबाद

अन्तिम-विदा

स्वर्गवास के बाद हमने छोटे पुत्र और अमेरिका में उनके बड़े भाई के पुत्र को सूचना भेजी। थोड़ी देर बार ही डॉ० धर्मपाल, कुलपति आये। जस्टिस साहब के महाप्रयाण का समाचार पाते ही वे अपने आपको नहीं रोक पाये और उनकी आंखों से अश्रुधारा बह निकली। लेकिन उन्होंने धैर्य को संजोते हुए सभी को ढाढस बंधाया। परिवार बहुत, व्याकुल था। जिसे भी पता लगा वह उस ओर ही दौड़ पड़ा। देखते-देखते उनके परिचितों का वहाँ एक बड़ा जन-समूह एकत्रित हो गया। जस्टिस साहब का शरीर कैलाश हास्पीटल में फ्रिज में रखा गया था। दूसरे दिन की शात तक डॉ० धर्मपाल लगातार वहीं रहे और सभी को धैर्य बंधाते रहे। सुबह आने के लिए कहकर वे शाम को चले गये और अगले दिन सुबह होती ही पहुँच गये। दूर-दूर से लोग आने लगे। दाह-संस्कार के विषय में सभी ने मिल-बैठकर निश्चय किया कि दाह-संस्कार उनके पैतृक गाँव एलम में वैदिक पद्धति से ही सम्पन्न किया जाये। जस्टिस साहब की यही इच्छा थी। गाँव में सूचना भेजी गयी। इसके उपरान्त डॉ० धर्मपाल हरिद्वार लौट गये। दोपहर बाद उनका छोटा पुत्र आ गया। रात में अमेरिका से उनके बड़े भाई का पुत्र राजेन्द्र भी आ गया। कई अन्य रिश्तेदार भी पहुँच गये। तीसरे दिन सुबह हम सभी लोग जज साहब के शरीर को कैलाश हास्पीटल से आवास पर ले आये। अनेक लोगों ने श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। लखनऊ से उनके परम मित्र जस्टिस एस. एन. सहाय भी तब तक पहुँच गये थे। इसके पश्चात उनके पार्थिव शरीर को लेकर बीस-पच्चीस कारों का काफिला ग्राम एलम की ओर चल दिया। ये काफिला लगभग ११.०० बजे एलम स्टेशन पर पहुँच गया। रेलवे स्टेशन व बस स्टैण्ड पर भी काफी संख्या में लोग वहाँ पहुँच चुके थे। सबक आंखों में आँसू थे। वहाँ से पार्थिव शरीर को लेकर विशाल जुलूस पैदल-पैदल चल दिया। पार्थिव शरीर को उनके पैतृक-निवास पर लोगों के अन्तिम दर्शनार्थ रखा गया। सभी लोगों ने उन्हें पुष्प अर्पित कर अपनी श्रद्धाञ्जलि दी। कलकत्ता से उनकी पुत्री निर्मल १.०० बजे आयी। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से एक बस तथा कुछ कारें आ पहुँची। अन्तिम यात्रा में शामिल होने के लिए डॉ० धर्मपाल के साथ विश्वविद्यालय के सभी आचार्य एवं अन्य अधिकारी तथा अनेक ब्रह्मचारी आ गये। कुलाधिपति श्री सूर्यदेव भी आ चुके थे। पुत्र-पौत्रों ने जस्टिस साहब को कन्धी दी। कन्धी देने वालों में डॉ० धर्मपाल के साथ विश्वविद्यालय के सभी आचार्य एवं अन्य अधिकारी तथा अनेक ब्रह्मचारी आ गये। कुलाधिपति श्री

सूर्यदेव भी आ चुके थे। पुत्र-पौत्रों ने जस्टिस साहब को कन्धी दी। कन्धी देने वालों में डॉ० धर्मपाल भी थे। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। शमशान स्थल पहुँचकर वैदिक मन्त्रों के बीच उनके पार्थिव शरीर को मुखाग्नि दी गयी और उनका शरीर पंचतत्वों में विलीन हो गया। दाह-संस्कार के पश्चात सभी लोग वापस लौट गये। तीसरे दिन अस्थि संचय हुआ। हम लोग अस्थियां लेकर हरिद्वार पहुँचे। अस्थियों को पहले गुरुकुल ले जाया गया। विश्वविद्यालय के सभी विद्वान पहले से ही सीनेट हाल पर मौजूद थे। सभी ने अस्थियों पर पुष्प अर्पित कर श्रद्धाञ्जलि दीं। इसके उपरान्त पतित पावनी गंगा के तट पर जाकर अस्थियां जल में प्रवाहित कर दी गयी। अस्थियां प्रवाहित करने के बाद गंगातट से हम लोग वापस गुरुकुल कांगड़ी पहुँचे जहाँ हमारे लिए तेरहवीं वाले दिन ग्राम एलम में लोगों का हुजूम जुड़ गया। दूर-दूर से लोग आये। दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंह वर्मा भी आये। शोक-सभा हुई। नोएडा में भी एक शोक सभा हुई। वहां भी बड़ी संख्या में लोग इकट्ठा हुए। इस सभा का संचालन डॉ० ध र्मपाल ने किया।

हम मृत्यु को कैसे स्वीकार करते हैं, इससे हमारे ज्ञान, व्यक्तित्व और जीवन साधना की परीक्षा होती है। मृत्यु एक प्राकृतिक घटना है जो प्रत्येक शरीरधारी के साथ घटित होती है। मृत्यु को सहज-भाव से स्वीकार किया जाना चाहिए। किन्तु फिर भी मनुष्य मृत्यु से ऐसे डरते हैं जैसे बालक अंधकार में प्रवेश करने से डरते हैं। मृत्यु तो ऐसे ही है जैसे कहीं से उड़ता हुआ पक्षी एक प्रकाशपूर्ण कमरे में प्रवेश करके थोड़ी देर वहां उड़ते हुए उसमें से निकलकर फिर कहीं बाहर अंधकार में लुप्त हो जाता है। मृत्यु भी ऐसा ही क्षणभंगुर प्रतीत होता हैं ऐहिक जीवन में मनुष्य मृत्यु में विलीन होने के भय से भयभीत रहता हैं। संसार में कोई, किसी प्रकार का भय मृत्यु से बढ़कर नहीं होता। जिसने मृत्यु के भय को जीत लिया है, उसने सब भयों पर विजय प्राप्त कर ली है। जिसने मृत्यु को मित्र समझ लिया हो उसने अखिल जीवन को ही मित्र बना लिया। जीवन और मृत्यु का रहस्य समझ लेने पर मन से भय निरस्त हो जाता है। मृत्यु का सम्यक् स्मरण विवेकशील मनुष्य को पुण्य की ओर प्रवृत करता है। उसे भय-त्रस्त नहीं करता है। भय के स्थान पर उत्साह आ जाने पर मृत्यु एक महोत्सव बन जाता है। यदि स्वस्थ, सुखी जीवन-यापन करना एक कला है तो मृत्यु से सुखद आलिंगन करना भी एक कला है। वही आनन्दपूर्वक जी सकता है जिसने सुखपूर्वक मरना सीख लिया है। श्रेष्ठ सिद्धान्तों वं आदर्शों पर चलते हुए जीवन को सुखमय बनाने वाला व्यक्ति ही आदर्शों के लिए मरना जानता है। आदर्शों के

लिए जीने वाले और आदर्शों के लिए मरने वाले मनुष्य की जीवन-यात्रा धन्य होती है तथा ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों के लिए मृत्यु एक महोत्सव होता है।

मोह पूर्वक वस्तुओं का अनावश्यक परिग्रहण न केवल जीवनकाल में चिन्ता एवं भय का कारण होता है अपितु मृत्यु के सन्निकट होने पर शान्तिपूर्वक प्राण छूटने में भी बाधक होता है। सर्वाधिक वस्तुओं का परिग्रह मनुष्यों के लिए विशेष दुखदायी होता हैं अकिञ्चन व्यक्ति (वस्तुओं का स्वामी होकर भी विरक्त व्यक्ति) अनन्त सुख पाता है। हम तनिक देखें और सोचें कि मित्र तथा कुटुम्बी तो श्मशान तक ही साथ देते हैं। और मृत व्यक्ति की देह को भस्मीभूत करके अपने-अपने कार्यों में संलग्न हो जाते हैं। मृत्यु होने पर धन-भूमि में गड़ा रह जाता है, पशु गोष्ठ में रह जाते हैं, नारी घर के द्वार तक जाती है, मित्र श्मशान तक जाते हैं और देह चिता में भस्म हो जाती है। जीव कर्मफल के साथ अकेला ही जाता है। इस जीवनकाल में किये हुए सत्कर्म अथवा दुष्कर्म बनकर जीवात्मा के आगामी जीवन में प्रारब्ध के रूप में उसके साथ रहते हैं।

प्राणी प्रतिदिन मृत्यु को प्राप्त होते हैं किन्तु फिर भी मनुष्य स्थिरता चाहते हैं और ऐसा अभिमान-पूर्ण आचरण करते हैं मानों उन्हें सदैव यहीं रहना हो। इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है। अनेक सन्त शरीर के जर्जर होने पर और चिकित्सा की विफलता देखकर औषधि सेवन का त्याग कर देते हैं तथा केवल गंगाजल का पान करते-करते प्राणों का विसर्जन कर देते हैं। मरणावस्था होने पर अनेक जैन साधु सल्लेखना ग्रहण कर भोजन, औषधि, जल आदि का पूर्ण परित्याग करके मृत्यु का सहर्ष आलिंगन करते हैं। सन्तों के लिए मृत्यु एक महोत्सव है।

प्राणोत्सर्ग के समय मनुष्य को संसार के सभी विषयों से तथा मित्रगण एवं कुटुम्बीजन से मोह-नाता छोड़कर प्रभु का स्मरण, नामजप तथा ध्यान करना चाहिए। शान्त रस में निमग्न होकर शारीरिक एवं मानसिक सुख-दुख से ऊपर उठकर तथा प्रभुभाव से विभोर होकर सहर्ष मृत्यु का आलिंगन कर लेना चाहिए। सुकरात ने विषपान करते हुए मृत्यु के समय कहा "ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो" और अन्त समय तक घोर कष्ट में भी शान्त रहे। गान्धी जी ने गोली लगने पर भी "हे राम" कहा। स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा महर्षि रमण की मृत्यु भी कैंसर के घोर कष्ट में हुई किनतु वे शरीर की यातना को तटस्थ दृष्टि से देखते रहे और अन्त तक पूर्ण शान्त रहे। मरणासन्न होने पर मोह छोड़कर

परमात्मा के नाम का सहारा लेना ही सर्वाधिक शान्ति-प्रदायक होता है।

श्रद्धाञ्जलि देते हुए डॉ० धर्मपाल ने कहा "मृत्यु एक भयानक विजेता शत्रु के रूप में आती है चूँकि हम प्रिय अतिथि की भाँति इसका सत्कार एवं स्वागत करने की कला को भूल गये हैं।"

किसी मनुष्य को मृत्यु से डरने की आवश्यकता नहीं है। उसे इस बात से अवश्य डरना चाहिये कि कहीं वह अपनी सबसे बड़ी शक्ति को जाने बिना ही मर जाये। जो मनुष्य दूसरों के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने की प्रबल इच्छा शक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुरूप उपलब्ध कर लेता है तथा जिसके मन में जीवन के प्रति गहरी आस्था होती हैं उसके हृदय से मृत्यु का भय निकल जाता है तथा जीवन में सरसता आ जाती है। उपलब्धियों की स्मृति सन्निकट आने पर संतोष प्रदान करती है। मृत्यु समय के सुयश को नहीं खा सकती, उसकी उपलब्धियों को धूमिल कर सकती। सत्य तो यह है कि संसार में मिलना-बिछुड़ना इत्यादि सभी कर्मवश ही होते हैं।

इन्द्रपाल सिंह
एलम (मुजफ्फरनगर)

दिवङ्गतो न्यायाधीशो महावीर सिंहः काले काले सुजनानां संस्मरणीय एव।।

प्रो. वेदप्रकाश शास्त्री

संसारे जन्मावसरे समप्रवृत्तयो भवन्ति। यथा यथा ते वृद्धिमुपयन्ति तथा तथा मातृपितृसंस्कारवशात् स्वसंस्कार वशात् परिकरसन्निधिवशाच्च प्रवृत्तिभिन्नतोद्भवति। केचन जना न केवलं मानवगुणानपितु देवगुणानपि कामयन्ते केचन जना उत्तरोत्तरं गुणैर्विहीना सन्तो निम्नतां प्रयान्ति। केचन शरीरं यावत् जीवितं वहन्ति केचन तु गुणवत्तया शरीरं यावत् प्रतिष्ठां लभन्त एव परं नष्टेऽपि भौतिके शरीरे स्वयशःशरीरेण ते लोके चिरं जीवन्ति, तेषां स्मरणमात्रेणानन्दमनुभवन्तो जनाः पुलकिता भवन्ति। स्वनामधन्यो न्यायाधीशो श्रीमहावीर सिंहो दयावतां धर्मवतां पुण्यवतां दिव्यगुणगणान्वितानां यशोवतां विदुषां प्रथम आसीत्। अद्य तेषां पार्थिवं शरीरं नावतरतिदृक्पथं परं तेषां गुणा अद्यापि प्रायशः सामाजिक क्षेत्रे नयक्षेत्रे न्यायक्षेत्रे सेवाक्षेत्रे शिक्षाक्षेत्रे च स्मर्यन्ते समुद्गीयन्ते च जनैः।

न्यायमूर्त्तीनां स्वाध्यायप्रियता-स्वाध्यायस्तेषां जीवनस्य प्रथममङ्गमासीत्। ते केवलं विधि शास्त्रस्य ग्रन्थानेव नापितु धर्मशास्त्रास्यर्थशास्त्रस्य समाजशास्त्रस्य राजनीतिशास्त्रस्य च ग्रन्थान् पठन्ति स्म। गम्भीराध्ययनान्तरं बुद्धिमतां कश्चिद् विशेषः संजायते प्रतिभोन्मेषः। ये कविबुद्धयो भवन्ति ते स्वकं प्रातिभं शब्दज्योतिषा प्रकाशयन्ति नाशयन्ति चाज्ञानतमः। न्यायाधीशेन श्रीमता महावीरसिंहेन विधिपरम्परां निष्कल्मषां कर्त्तु न्यायविदां विशेषावबोधाय केचन ग्रन्था प्रणीताः। येषां विद्वद्भिः सुतरामभिशंसा कृता।

न्यायमूर्तीनां जीवनेधर्मप्रवेश :- न्यायाधीशा महावीर सिंहा धर्ममूर्तय आसन्। तेषामखिलमपिकर्मजातं धर्मप्रधानमेव। धार्मिकं पुरुषं कश्चिदपि लोभेन भयेन कामेनार्थेन वा स्ववृत्तात स्खलयितुं न क्षमते। धर्मानुष्ठानसम्पादनासुप्तमानसानां निर्मलचरितानां पवित्रंवृत्तं मलीमसं कर्त्तुं कृतप्रयत्ना अपि जनाः साफल्यं नाधिजग्मुः। अस्मिन् विकरालेकाले कण्टककीलिते दुर्गमेऽपिमार्गे न्यायमूर्तिना विपज्जातं कष्टमपाकर्त्तुं धर्मे मित्रभावः प्रकल्पितः।

अग्निसोमयोः समन्वय :- न्यायाधीश महावीर सिंहस्य जीवनमग्निषोमा त्कमासीत्। यथा अग्निः प्रचण्डेन तेजसा दोषान् दग्धुं प्रभवति सोमश्च शीतलेन संस्पर्शेन तापं परिहरति

तथैव महावीर सिंहे दुर्जातविनाश अग्निरिव प्रचण्ड:, मित्रप्रसङ्गे चन्द्र इव शीतल: । योऽपि परिजन: स्वमनासि मित्रभावं निवेश्य महावीरसिंहमुपयाति स्म स पूर्णाश एव ततो निवर्तते स्म ।

न्यायमूर्तेरतिसूक्ष्मा दृष्टि : निगद्यते यन्नेत्रे स्थूले भवत: परं तृतीयं नेत्रमतीवसूक्ष्मं भवति । मनुष्या द्वाभ्यां स्थूलाभ्यां नेत्राभ्यां स्थूलं जगत्पश्यन्ति । तृतीयं नेत्रं ज्ञाननेत्रमिति प्रोच्यते ज्ञाननेत्रेणैव जगत: स्थूलतां पश्यन्नपि सूक्ष्मतां पश्यति । यस्य दृष्टिर्यावती सूक्ष्मा भवति तद्दर्शनशक्तिरपि तावती सूक्ष्मैव । सामान्यजना: केवलं स्थूलेनेत्रे लब्ध्वा नेत्रवन्तमात्मानं मन्यन्ते । परं ये महान्तो जनास्ते तु ज्ञानचक्षुषा जगतो बाह्यं रूपं आन्तरिकं रूपं प्रश्यन्ति । न्यायमूर्तिना निखिलं जगत् यथा स्थूलदृष्ट्या दृष्टं तथैव सूक्ष्मदृष्ट्यापि दृष्टम् । गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य शिष्ट परिषदा सर्वोच्चेन परिद्रष्ट्रपदेन सम्मानिता: । न्यायमूर्तिना परिद्रष्ट्रकाले गुरुकुलस्य महत्सूक्ष्ममध्ययनमकारि । अकाले ते बन्धुबान्धवान् गुरुकुलम् आर्यजगच्च शोकसागरे निपात्य दिवंगता: ।

न्याय मूर्तीनां निखिलमपि पवित्रमासीत् , तेषा जीवनं वेदमन्त्रभासा संस्कृतश्लोककान्त्या च प्रकाशते ।

सोमा: पवन्त इन्दवो अस्मभ्यं गातुवित्तमा: ।
मित्रा: स्वाना अरेपस: स्वाध्य: स्वविर्द: ।। (सामवेद)

शास्त्रेषुनिष्ठा सहजश्च बोध: प्रागल्भ्यमस्तगुणा च वाणी,
कालानुरोध: प्रतिभानवत्वमेते गुणा: कामदुघा: क्रियासु ।। (कालिदास:)

यश:शरीरेण चिरं स्थास्यन्ति जगत्यां ।
न्यायमूर्तय: श्रीमहावीर सिंहा: ।। (वेदप्रकाश:)

आचार्योपकुलपतिश्च
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य

न्यायमूर्तयः श्री महावीर सिंहा अद्यापि सतां हृदिस्थिता :

डॉ० धर्मपालः
कुलपतिः
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य

चित्रकारस्य विधातुः सृष्टिरियं विचित्रा। अत्र दिने दिने जना यथा जायन्ते तथैव म्रियन्ते। परं केचन जना सकृज्जन्म लब्ध्वा न कदापि मृता भवन्ति ते तु शरीरं त्यक्त्वा यशसा लोके सर्वदैव तिष्ठन्ति। स्वनामधन्या न्यायमूर्तयः श्रीमहावीर सिंहाः सम्प्रति देहेन जगति न सन्ति परं अक्षीयमाणेन यशः शरीरेण ते सतां सुहृदां न्यायकृतां च मनसि रमन्ते। उत्तरप्रदेशस्थ मुजफ्फरनगर जनपदान्तर्गतं एलम पद वाच्यं ग्रामपदं न्यायमूर्तिना स्वजन्मना समलंकृतम्। तत्र ग्रामे जनसमूहस्य मान्यो विशिष्टो वरिष्ठश्चौधरी हरनाम सिंहो महावीर सिंह वात्सल्यरसवर्षिणि स्वक्रोडे संस्थाप्य स्वपौत्र स्पर्शसुखं चिरमवाप तथैव चौ० जीत सिंहो महावीरं स्वपुत्रं महावीरमिव मत्वा मुहुर्मुहुराश्लिष्य सुतस्पर्शसुखं ततान। पितुर्जीतसिंहस्य प्रयत्नातिशयेन परिवर्ध्यमानोऽयं पुत्रो महावीरसिंहो देहेन धिया मनसा वाचा च पूर्णतां प्रपेदे। एलमग्रामे प्रारम्भिक शिक्षामवाप्य आगरास्थिते छात्रावासीय विद्यालये माध्यमिक शिक्षां परिपूर्य इलाहाबादविश्वविद्यालयतः स्नातकोपाधिर्गृहीतः। अध्यापनाभिलाषोदयात् श्री महावीर सिंहैः वड़ौतस्थ जाटमहाविद्यालये अर्थशास्त्रमध्यापयितुं प्रवक्तृपदं लब्धम् तत्र "अधीतमध्यापितमर्जितंयशः" इमामुक्तिं सफलां विधाय न्यायपालिकापङ्कप्रक्षालनाय विधि परीक्षामुत्तीर्य अनेकेसु नगरेषु न्यायाधीश पदे कार्यं कृत्वा बदायूं नगरे जिला जज पदं संप्राप्तम्। अग्रतः प्रयान्तिमहान्तः इत्यनुसारं लक्ष्मणपुरे उच्चन्यायालये न्यायाधीशपदमपि प्राप्तम्। न्यायपद्धतिमनुसरन् क्वचिदपि न्यायमूर्तिर्महावीरसिंहः सर्वजनप्रशंसनीयां, कर्मकुशलतां न्यायपालकतां चरित्रनिर्मलतां चः नः तत्याज अमीषां विचित्रया चरित्रचर्चया धर्मपत्न्या होश्यारि देव्या जीवनं सफलं प्राभूत्। भूपेन्द्र कुमार योगेन्द्र कुमारौ द्वौ पुत्रौ स्वपितुर्यशश्चन्द्रज्योत्स्नया स्वजीवनं धवलयतः।

ये जनाः औदार्यदाक्षिण्य वैदुष्य सौमनस्यसारल्य निर्मात्सर्य आदि गुणसम्पन्ना भवन्ति ते निर्मलचेतसां सुधियां प्रज्ञावतां वरेण्याः। सत्ये सत्यं प्रतिष्ठति ये खलु सत्यवाचस्ते सत्यवाग्भिः सदा वन्द्यन्ते यथा–

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूष पूर्णास्त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।।

न्यायमूर्ति भिः महावीर सिंहै रुपरेषां न्यायाधीशानां मानवन्यायसत्यान्वेषणाय

विधि प्रक्रियां निर्मलेन मनसा ये ग्रन्था: प्रणीतास्ते विधि परम्परायां महान्तं गरिमाणं गणयन्ति। लोके प्रतिष्ठाकरं कर्मजातं विज्ञाय विधाय च सर्वेजना: कामयन्ते यश:, परं केचन विरला एव भवन्ति यशोभाज:। कश्चित् प्रशस्येन कर्मणा स्वजनान् प्रीणयति कश्चित् मित्र जनान् प्रीणयति कश्चित्तु प्रियाप्रिययोर्हृदये समानरूपेण राजमानो निखिलं जगत् प्रीणयति। न्यायमूर्तयो महावीर सिंहा सम्प्रति स्वकेन ऋजुना पवित्राचारेण, निश्छलेन चेतसा, मुदितेन मनसा, परोपकारमच्या वृत्त्या च समेषां सचेतसां हृदये प्रतिष्ठापदं प्रसारयन्ति। तद्विषये पद्यमिदं निजामर्थवत्तां प्रकटयति-

एकस्य तिष्ठति नरस्य गृहे सुकीर्तिरन्यस्य गच्छति सुहृद्भवनानि यावत्।
न्यस्याविदग्धवदनेषु पदानिशश्वत्कस्यापि सञ्चरति विश्वकुतूहलीव।।

न्यायमूर्तीनां महावीरसिंहानां जीवने मूर्तिमती दया दृश्यतेस्म, स्वाध्यातिरेको नितरां लसतिस्म, लेखनकला सकलान् गुणान् आकलयतिस्म निरभिमानता सदा हसतिस्म, अपरिग्रहभावना विभाति स्म, साहसधैर्ययोरासीत् संगम:, आत्मभावश्चाभिवर्धते स्म। सकल गुणाधिष्ठानं महान्तं जनमुद्वीक्ष्य दिवसुत्राणां भवत्येष वागुन्मेष: ।

दिवमप्युपयातानामाकल्पमनल्पगुणगणा येषाम्।
रमयन्ति जगन्ति गिर: कथमिह कवयो न ते वन्द्या:।।

यैर्निजं जीवनं राष्ट्रहिते निहितं न्यायपालिका चिरं संरक्षिता लेखनकर्म-नैपुण्यं प्रकटितं, पूर्वप्रधानमन्त्री चौधरी चरणसिंहा देशानुसारं अखिलभारतीय किसान यूनियनस्य पदप्रतिष्ठा संप्राप्ता सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभायां न्यायसभाया अध्यक्ष पदं स्वीकृत्य समाजसेवा कृता, तानेवंविधान् दिवंगतान् स्मरणीयगुणान् स्वापरजनहृदिकृतपदान्, न्यायमूर्तिप्रवरान् श्री महावीर सिंहान् नतेन शिरसा श्रद्धाञ्जलिं प्रयच्छामि स्मरामि च-

गुरुकुलस्य ये परिद्रष्टार आसन् गुणैर्विशेषैगुणवतां च मान्या:।
न्यायमूर्तय: श्री महावीर सिंहा अद्यापि लोके यशसा चकासति।।

जस्टिस महावीर सिंह : एक अद्भुत व्यक्तित्त्व

लेखक - डॉ जयदेव वेदालंकार
प्राच्यविद्या संकायाध्यक्ष

नीतिकारों की मान्यता है कि महापुरुषों का चरित्र बड़ा अद्भुत होता है। वे बचपन से ही एक विचित्र व्यक्तित्व के धनी होते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण आँचल में जन्मे महावीर सिंह, सामान्य किसान क्षत्रिय परिवार के बालक थे। यह बालक बचपन से ही धैर्यवान् तथा परिवार के वृद्धों की सेवा करने में ही आनन्द का अनुभव करता था। वे बचपन की अपनी एक घटना प्रायः सुनाया करते थे मेरे एक ताऊजी हुक्का बहुत पीते थे। इसलिये रात को परिवार के अन्य बच्चे उन के साथ समीप में न सोकर दूर सोते थे। मैं उन के पास चारपाई डालकर सोता था। रातभर में वे लगभग छः या सात बार हुक्का पीते थे

यह क्रम कई वर्ष तक चलता रहा। एक दिन वे बीमार हो गये। रात के दो बजे उन को खांसी उठी। मैं जगा और तुरन्त हुक्का भर कर ले आया। उन्होंने हुक्का पीया। मुझे संकेत से अपने पास बुलाया तुम कौन हो? इस परिवार में कहां से उत्पन्न हो गये हो? रात दिन मेरी सेवा करते रहते हो। आगे बोले बेटे मैं यह तो नहीं जानता बड़ा पद क्या होता है? परन्तु मैं आज यह कहता हूँ तुम एक दिन महान् व्यक्ति बनोगे। इस परिवार का तथा गाँव का नाम रोशन करोगे। यह कह कर वे स्वर्ग सिधार गये।

जब जस्टिस महावीर सिंह अपने जीवन की इस घटना को सुनाते थे तब उन का गला रुध जाता था। वे कहा करते थे मैं जो कुछ हूँ अपने ताऊ के आशीर्वाद के कारण हूँ। उन की यह विनम्रता उन के निश्छल एवं निर्मल हृदय को द्योतित करती है। न्याय पालिका में उन्होंने कई पदों पर कार्य किया। जहाँ भी वे न्यायाधीश बन जाते रहे वहीं पर उनकी न्यायप्रियता की अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। उनका जाति धर्म के प्रति व्यामोह नहीं था वादी और प्रतिवादी किसी भी जाति या धर्म का हो, उस का पक्ष नहीं लेते थे अपितु जो सत्य या न्याय होता था, उस के अनुसार ही न्याय या फैसला सुनाते थे।

यद्यपि स्व० जस्टिस महावीर कट्टर आर्य समाजी थे पक्के दयानन्दी माने जाते थें अपने परिश्रम लग्न और निष्पक्षता के कारण उन को आर्य समाज की सर्वोच्च सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की न्याय आर्य सभा के सम्मानित अध्यक्ष पद पर अलंकृत किया गया। यहाँ पाठकों को यह बताना आवश्यक है कि उन का जन्म जाट क्षत्रिय परिवार में हुआ था। न्याय-आर्यसभा के अध्यक्ष पद पर पहुँचना ही उन के महान् चरित्र को ज्ञापित करता है। उन के समय में अनेक आर्य समाजों एवं आर्य प्रतिनिधि सभाओं के विवाद उन के समक्ष आये। उन्होंने हमेशा ''पानी का पानी'' ''दूध का दूध'' की कहावत के अनुसार उन पर अपना निर्णय दिया। उनके निर्णय पर कभी भी पक्षपात का आरोप नहीं लगां एक बार उन के समक्ष आर्य प्रतिनिधि पंजाब का विवाद, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने प्रस्तुत किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में दो दल बन गये। एक दल की ओर आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के नेतागण थे। वे सभी जस्टिस साहब की जाति के भी हैं। उन की ही जाति के तथा रिश्तेदारों ने दबाव डाला कि अमुक दल को वास्तविक आर्य प्रतिनिधि सभा घोषित किया जाय। उन्होंने विवाद को विस्तारपूर्वक सुना। दोनों पक्षों की दलीलें सुनने के पश्चात् उस दल के चुनाव को वैध घोषित किया, जिसको सभी पराजित करने को कह रहे थे। उन के इस निर्णय के बाद स्व० श्री वीरेन्द्र जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि पंजाब ने अपने साप्ताहिक पत्र आर्य मर्यादा में सम्पादकीय लिखते हुये कहा था कि आज तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली की न्याय आर्य सभा का अध्यक्ष इतना उच्च कोटि का नहीं रहा है जितने उच्च कोटि के धनी तथा महापुरुष और निष्पक्ष प्रचेता जस्टिस महावीर सिंह न्यायमूर्ति हैं।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति के चयन के अवसर पर उन के घर अनेक बार जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन के सादा जीवन को देख कर ऐसी अनुभूति होती थी कि जैसे भारत के गुप्तकालीन प्रधान मन्त्री चाणक्य हों। जब किसी ने चाणक्य का पता जानना चाहा था तो उत्तर मे बतलाया था कि जहां पर प्रतिदिन यज्ञ करने के लिये खपरेलों वाली कुटिया में समिधा तथा उपलें सूख रहे हों यज्ञ के धुएँ से नीचे की छत काली पड़ गई हो।

जब जब मैं उन के निवास स्थान पर गया तो इलाहाबाद उच्च न्यायालय का वह जस्टिस खूंटीदार खड़ाऊं पहन कर अपने बरामदे में भ्रमण कर रहा होता

था। जैसे कोई सन्त अपनी कुटिया में टहल रहा हो। कुलपति चयन की प्रक्रिया में भी उनका व्यक्तित्त्व सामान्य व्यक्ति से ऊपर उठा हुआ था। उनसे जौलाई १९९३ में कुलपति चयन के पश्चात् जब मैं मिलने गया तो उन्होंने कहा मेरे लिये हरिद्वार से एक चीज ला सकते हो। मैंने कहा बतलाइये क्या लाना है? उन्होंने कहा मेरे लिये खूंटीदार खड़ाऊँ लाना। मेरी खड़ाऊं पुरानी हो गई है। मैं उस समय स्तब्ध था। ऐसे ही यदि महान चरित्रवान् विश्वविद्यालयों के कुलपति एवं आचार्यगण हो जायें तो देश का राष्ट्रपति महाराजा अश्वपति की तरह कह सकता है कि हे ऋषि प्रवर मेरे राज्य में ऐसा परिवार नहीं है जिसमें प्रतिदिन यज्ञ न होता हो। इस राज्य में कभी चोरी नहीं होती है। तथा यहां पर कोई मदिरा पान नहीं करता। इस राज्य में दुराचार भी नहीं होता है।

आज के न्यायालयों के प्रति जनमानस की यह अवधारणा है कि वहाँ ईट भी रिश्वत मांगती है। यदि जस्टिस महावीर सिंह जी जैसे न्यायाधीश हों तो देश में न्यायपालिका का सम्मान होने लगेगा। आपने भारतीय संविधान की हिन्दी भाषा टीका की है। उसकी अनेक धाराओं को विस्तारपूर्वक समझाया भी है।

वास्तव में श्री जस्टिस महावीर सिंह जी एक व्यक्ति नहीं अपितु एक संस्था थे।

जयदेव वेदालंकार
डीन, प्राच्य विद्या संकाय

कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित न्याय-व्यवस्था

डा० देवेन्द्र कुमार गुप्ता

मनुष्य के आचरण के साधिकार निर्धारित नियमों को न्याय की संज्ञा दी जा सकती है अर्थात् वे नियम जिनका पालन अनिवार्य हो और जिनका उल्लंघन किसी न किसी रूप में दण्डनीय हो। मानव आचरण के इसी नियमन और संयोजन के आधार को प्राचीन भारत में न्याय की संज्ञा दी गई थी। वास्तव में न्याय व्यवस्था का इतिहास उन नियमों और विधि संस्थाओं के विकास का इतिहास है जो किसी समाज द्वारा नवीन विचारों, परिस्थितियों और सम्बन्धों को आत्मसात् करते हुए अग्रसर होता है। अतः न्याय व्यवस्था के द्वारा समय २ पर स्थापित नियमों और औचित्यपूर्ण सामाजिक सम्बन्धों को सथायित्व व अनौचित्य पूर्ण सम्बन्धों पर प्रतिबन्ध लगाने में सहायता मिलती है। किसी भी सभ्यता के विकास क्रम अर्थात् उस सभ्यता के सामाजिक जीवन का, असभ्यता से सभ्यता व अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर अग्रसर होना किसी सीमा तक उस समाज की न्याय व्यवस्था का ही परिणाम होता है।

मौर्य काल में न्याय व्यवस्था का स्वरूप क्या था ? इस विषय में विस्तृत जानकारी हमें कौटिल्य अर्थशास्त्र के माध्यम से प्राप्त होती है। इस काल में अनेकविध न्यायालयों की सत्ता थी। सबसे छोटे न्यायालय ग्रामों के थे, जहां ग्रामिक ग्राम के वृद्धों की सहायता से न्याय कार्य का सम्पादन करता था। वह अपराधियों को दण्ड देता था और उनसे जुर्माना भी वसूल करता था।[१] इसके ऊपर संग्रहण के, फिर द्रोणमुख के और फिर जनपदीय न्यायालय होते थे।[२] इनके ऊपर पाटलिपुत्र में विद्यमान धर्मस्थीय और कंटकशोधन नामक केन्द्रीय न्यायालय थे। सबसे ऊपर राजा का न्यायालय होता था जो अन्य न्यायधिशों की सहायता से किसी भी मामले का अन्तिम निर्णय करने का अधिकार रखता था। ग्राम संघ और राजा के न्यायालय के अतिरिक्त अन्य सब न्यायालय दो भागों में विभाजित होते थे, एक-धर्मस्थीय और दूसरा कंटकशोधन। धर्मस्थीय न्यायालयों के न्यायधीश धर्मस्थ[३] या व्यावहारिक और कंटकशोधन न्यायालयों के न्यायधीश प्रदेष्टा कहलाते थे।[४] ये न्यायधीश

१- कौटिल्य अर्थशास्त्र, ३/१०,

२- कौटिल्य अर्थशास्त्र, ३/१, "धर्मस्थास्त्रयस्त्रयोऽमात्या जनपदसन्धिसंग्रहणद्रोणमुखस्थानीयेषु व्यावहारिकानर्थान् कुर्युः।।"

३- वही, ३/१,

४- वही, ४/१, "प्रदेष्टारस्त्रयस्त्रयो वाऽमात्या कण्टकशोधनं कुर्युः।"

केवल अकेले कार्य नहीं करते थे, अपितु दोनों प्रकार के न्यायालयों में तीन-२ धर्मस्थ और प्रदेष्टा न्यायकार्य का सम्पादन करते थे।[५] जैसा की वर्तमान समय में भी न्यायालयों में प्राय: दो या तीन या अधिक न्यायधीश बेंच के रूप में बैठकर कार्य करते हैं। ठीक इसी प्रकार की न्याय-व्यवस्था मौर्य काल में भी थी।

धर्मस्थीय और कंटकशोधन न्यायालयों में किन-२ विषयों से सम्बन्ध रखने वाले वाद न्याय के लिए प्रसतुत किए जाते थे, उनमें किन कानूनों के अनुसार फैसले दिये जाते थे और न्याय कार्य करते समय किस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता था ? इन विषयों पर भी कौटिल्य अर्थशास्त्र से विशद् प्रकाश पड़ता है। धर्मस्थीय और कंटकशोधन न्यायालयों में क्या अन्तर था ? इसका स्पष्ट रूप से ज्ञान तो हमें उन वादों के अनुशीलन से प्राप्त होगा, जो इन न्यायालयों में निर्णय के लिए प्रसतुत किये जाते थे। परन्तु स्थूल रूप से हम कह सकते हैं कि व्यक्तियों के पारस्परिक विवाद धर्मस्थीय न्यायालयों में और व्यक्तियों तथा राज्य के वाद कंटकशोधन न्यायालयों में प्रसतुत किए जाते थे। आधुनिक रूप में हम इन्हें 'दीवानी' **(Civil)** और फौजदारी **(Criminal)** न्यायालय भी कह सकते हैं।

धर्मस्थीय न्यायालय - कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार धर्मस्थीय न्यायालय में निम्नलिखित मामले पेश होते थे- दो व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों के आपस के व्यवहार के मामले[६], आपस में जो समय (कंट्रैक्ट) हुआ हो, उसके मामले[७], स्वामी और भृत्य के झगड़े[८], दासों के झगड़े[९] ऋण को चुकाने के मामले[१०], धन को अमानत पर रखने से पैदा हुए झगड़े[११], क्रय-विक्रय सम्बन्धी मामले[१२], डाका, चोरी या लूट के मुकदमें[१३], किसी पर हमला करने के मामले[१४], गाली, कुच्चन या मानहानि के मामले[१५], जुएं सम्बन्धी झगड़े[१६], मिल्कियत के बिना ही किसी सम्पत्ति को बेच देना, मिल्कियत-सम्बन्धी झगड़े[१७], सीमा सम्बन्धी झगड़े[१८], इमारतों को बनाने के कारण उत्पन्न मामले[१९], चरागाहों, खेतों और मार्गों को क्षति पहुँचाने के मामले[२०], पति-पत्नी सम्बन्धी मुकदमें[२१], स्त्रीधन सम्बन्धी विवाद[२२], सम्पत्ति के बंटवारे और उत्तराधिकार सम्बन्धी झगड़े[२३], सहयोग, कम्पनी और साझे के मामले[२४], न्यायालय में

५- कौटिल्य अर्थशास्त्र, ३/१, ४/१,
६- वही, ३/२, 'व्यवहार स्थापना'
७- वही, ३/१०, 'समयस्यानपाकर्म'
८- वही, ३/१२, 'स्वाम्यधिकार: भृतकाधिवार:'
९- वही, ३/१३, 'दासकल्प:'
१०- वही, ३/११, 'ऋणादानम्'
११- वही, १/१२, 'औपनिधिकम्'
१२- वही, ३/१५, 'विक्रीतक्रीतानुशय:'
१३- वही, ३/१७, 'साहसम्'
१४- वही, ३/१९ 'दण्डपारुष्यम्'
१५- वही, ३/१८ 'वाक्पारूष्यम'
१६- वही, ३/२० 'द्यूतसमाह्ययम्'
१७- वही, ३/१६, "स्वस्वामिसम्बन्ध"
१८- वही, ३/८, "सीमा विवाद"
१९- वही ३/८, "गृह्वास्तुकम्"
२०- वही ३/८, "विवीतक्षेत्रपथहिंसा"
२१- वही ३/२, "विवाह धर्म:"
२२- वही ३/२, "स्त्रीधनकल्प:"
२३- वही, ३/३, "दायविभाग:, दायक्रम, अंशविभाग: "
२४- वही, ३/१४, "सम्भूयसमुत्थानम्"

स्वीकृत निर्णय विधि सम्बन्धी विवाद[२५], और विविध मामले[२६] आदि।

धर्मस्थों (धर्मस्थीय न्यायालयों के न्यायधीशों) को कतिपय अन्य कार्य भी करने पड़ते थे। वे देव, ब्राह्मण, तपस्वी, स्त्री, बाल, वृद्ध, रोगी तथा अनाथ आदि के हितों को दृष्टि में रखते थे। चाहे ये मामले उनके न्यायालय में वाद (मुकदमें) के रूप में प्रस्तुत न भी किये गये हो। विद्या, बुद्धि औ पौरुष आदि की दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति का यथोचित सम्मान करना भी धर्मस्थों का कार्य था। धर्मस्थों के लिए कौटिल्य का यह कथन कि धर्मस्थों की सबके प्रति समदृष्टि होनी चाहिए, सबका विश्वास उन्हें प्राप्त होना चाहिए, जनता में वे लोकप्रिय होने चाहिए और बिना किसी छल-कपट के उन्हें अपने कार्यों का सम्पादन करना चाहिए, एक आदर्श न्याय व्यवस्था का द्योतक है।

कंटकशोधन न्यायालय- कंटकशोधन न्यायालयों में निम्नलिखित मामले पेश होते थे- शिल्पियों और कारीगरों की रक्षा[२७], व्यापारियों की रक्षा तथा उनसे दूसरों की रक्षा[२८], राष्ट्रीय व सार्वजनिक आपत्तियों के निराकरण सम्बन्धी मामले[२९], नियम विरूद्ध उपायों से आजीविका चलाने वाले लोगों की गिरफ्तारी[३०], अपने गुप्तचरों द्वारा अपराधियों को पकड़ना[३१], सन्देह होने पर या वस्तुतः अपराध करने पर गिरफ्तारी[३२], मृतदेह की परीक्षा कर मृत्यु के कारण का पता लगाना[३३], अपराध का पता करने के लिए विविध भांति के प्रश्नों का पूछना तथा शारीरिक कष्टों का प्रयोग[३४], सरकार के सम्पूर्ण विभागों की रक्षा[३५], अंग काटने की सजा मिलने पर उसके बदले में जुर्माना देने के लिए आवेदन पत्र[३६], शारीरिक कष्ट के साथ या उसके बिना मृत्युदण्ड देने का निर्णय[३७], कन्या के साथ बलात्कार[३८] और न्याय का उल्लंघन करने पर दण्ड देना।[३९]

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि धर्मस्थीय न्यायालयों में व्यक्तियों के आपस के मुकदमें पेश होते थे। जबकि इसके विपरित कंटकशोधन न्यायालयों में वे मुकदमें उपस्थित किए जाते थे, जिनका सम्बन्ध राज्य से होता था। कंटकशोधन का अभिप्राय ही यह है कि राज्य के कंटकों (काटों) को दूर करना।

२५- कौटिल्य अर्थशास्त्र, ३/१, "विवादपदनिबन्धः"
२६- वही, ३/२०, "प्रकीर्णकानि"
२७- वही, ४/१, "कारूकरक्षणम्"
२८- वही, ४/२, "वैदेहक रक्षणम्"
२९- वही, ४/३, "उपनिपात प्रतीकारः"
३०- वही, ४/४, "गूढ़ाजीविनां रक्षा"
३१- वही, ४/५, "सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम्"
३२- वही, ४/६, "शङ्कारूपकर्माभिग्रहः"
३३- वही, ४/७, "अशुमृतक परीक्षा"
३४- वही, ४/८, "वाक्यकर्मानुयोगः"
३५- वही, ४/९, "सर्वाधिकरण रक्षणम्"
३६- वही, ...
३७- , ४/११, "शुद्धश्चित्रश्चि दण्डकल्पः"
३८- वही, ४/१२, "कन्याप्रकम्"
३९- वही, ४/३, "अतिचारदण्ड"

न्यायालयों में किस कानून के अनुसार न्याय किया जाता था, इस विषय पर भी कौटिल्य अर्थशास्त्र से विस्तृत प्रकाश पड़ता है।[४०] कौटिल्य के अनुसार कानून के चार अंग थे- यथा- धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन। इनका अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि 'धर्म' का अधार सत्य है, व्यवहार साक्षियों पर आश्रित होता है, मनुष्यों के परम्परागत रुप से चले आ रहे नियम 'चरित्र' कहलाते है और राजा द्वारा प्रचारित आज्ञाओं को 'राजशासन' या 'शासन' कहा जाता है।[४१] जिसे आधुनिक समय में औचित्य या इक्विटी(**Eqity**) कहते है, उसी को कौटिल्य ने धर्म कहा है। स्वाभाविक रुप से इस प्रकार का कानून सत्य पर आश्रित होता है। औचित्य का विचार प्राय: सभी जन-समुदायों में विद्यमान रहता है और अनेक विवादग्रस्त विषयों का निणर्य इसी के अनुसार किया जाता है। विशेषतया उस दशा में जब विषय पर कोई स्पष्ट कानून विद्यमान हो। दो व्यक्ति या व्यक्ति समूह परस्पर मिलकर पारस्परिक समझौते द्वारा जो तय करते थे उसे 'व्यवहार' कहते थे। इस व्यवहार का निर्णय साक्षियों के आधार पर ही होता था। पर यदि कतिपय व्यक्ति कोई ऐसा व्यवहार पारस्परिक समझौत द्वारा तय करते थे, जो धर्म विरूद्व होता था, तो उसे स्वीकार्य नहीं समझा जाता था।४२ जिसे आजकल परम्परागत कानून कहते है (**Customarg Law**) उसी को कौटिल्य ने 'चरित्र' कहा है। उस समय विविध जातियों, जनपदों और श्रेणियों आदि में परम्परागत कानूनों की सत्ता थी जिसे प्राचीन काल के न्यायालयों में मान्य समझा जाता था। राजा की ओर से जो आज्ञाएं और आदेश जारी किये जाते थे, उन्हें 'शासन' कहते थे। जब कोई मामला न्यायालय के सम्मुख उपस्थित होता था तो उसका निर्णय इन्हीं चार प्रकार के कानूनों के आधार पर ही किया जाता था।

यदि मुकद्में के दौरान यह अनुभव किया जाता था कि धर्म, व्यवहार, चरित्र और शासन में परस्पर विरोध है तो पश्चिम को पूर्व का बाधक माना जाता था।[४३]

इसका अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'शासन' (राजकीय आदेश) का न्यायालय की दृष्टि में सर्वाधिक महत्व था। यदि राजा की ओर से कोई आज्ञा प्रचारित की

४०- कौटिल्य अर्थशास्त्र, ४/१-१३,

४१- वही, ३/१, "धर्मश्चव्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम्
अत्र सत्यस्थितो धर्मोव्यवहारस्तु साक्षिषु
चरित्रं संग्रहे पुंसां राज्ञामाज्ञा तु शासनम्"

४२- वही, ३/१, "संस्थया धर्मशास्त्रेणशास्त्रं वा व्यवहारिकम्।
यस्मिन्नर्थे विरूद्धयेत धर्मेणार्थं विनिश्चयेत्"

४३- वही, ३/१, "धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम्।
विवादार्थ चतुष्पाद: पश्चिम: पूर्वबाधक:।"

जाती थी, जो परम्परागत कानून या व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार के विरूद्ध होती थी, तो राजकीय आज्ञा ही मान्य समझी जाती थी, चरित्र और व्यवहार नहीं। इसी प्रकार व्यवहार और चरित्र में विरोध होने पर चरित्र मान्य होगा, व्यवहार नहीं। पर यदि धर्म और व्यवहार में परस्पर विरोध हो, तो धर्म विरूद्ध व्यवहार को न्यायालय में मान्य नहीं समझा जायेगा। लेकिन धर्म के आधार पर निर्णय करने की आवश्यकता तभी होती थी, जबकि मुकदमें के विषय में न कोई राजकीय आदेश होते थे और न कोई व्यवहार और चरित्र।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में बहुत से ऐसे कानून मिलते हैं जो निःसन्देह 'शासन' है। सम्राट अशोक ने भी अपने शिलालेखों द्वारा अनेक राजकीय आज्ञाएं प्रचारित की थी। कूटस्थानीय 'एकराजो' के कारण प्राचीन भारतीय राज्यों में शासन या राजकीय कानून का महत्व स्वाभाविक रूप से बढ़ता जा रहा था। पर जाति, जनपद, श्रेणी तथा कुल आदि के जो परम्परागत कानून (चरित्र) चले आ रहे थे, राजा उनकी उपेक्षा व अतिक्रमण नहीं करता था, अपितु अपने आदेशों को उनके 'अविरूद्ध' रखने का प्रयत्न करता था।

न्यायालयों में मुकदमों का निर्णय करते समय किस कार्य प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता था, इस विषय पर भी कौटिल्य अर्थशास्त्र से उनके महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं। अर्थशास्त्र के अनुसार जब न्यायालय में कोई मुकदमा पेश किया जाता था तो उसमें निम्नलिखित बातें दर्ज की जाती थी। जैसे-तारीख, अपराध का स्वरूप, घटनास्थल, यदि ऋण का मुकदमा है तो ऋण की मात्रा, वादी और प्रतिवादी दोनों का देश, ग्राम, जाति, गोत्र, नाम और पेश तथा दोनों पक्षों की युक्तियों तथा प्रत्युक्तियों का पूरा २ विवरण आदि।[४४]

प्रतिवादी को अभियोग का जबाव देने के लिए तीन से सात दिन तक का समय दिया जाता था। इससे अधिक समय लेने पर प्रतिदिन के हिसाब से तीन से बारह पण तक जुर्माना देना पड़ता था। इस प्रकार मुकदमा तैयार करने के लिए अधिक से अधिक पन्द्रह दिन दिये जा सकते थे।[४५] मुकदमों के निर्णयों में साक्षियों को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था। कौटिल्य के अनुसार साक्षी को विश्वास के योग्य, ईमानदार और प्रतिष्ठित होना चाहिए। प्रायः तीन साक्षियों का होना अनिवार्य माना जाता था। उसमें से कम से कम दो

४४-कौटिल्य अर्थशास्त्र, ३/१, "सवंत्सरमृतुं मासं पक्ष दिवसं करणमधिकरणंऋणंवेदकावेदकयोः कृतसमर्थावस्थयोर्देशग्रामजाति-गोत्रनामकर्माणि चाभिलिख्य वादिप्रतिवादिप्रश्नानर्थानुपूर्व्यान्निवेशयेत्। निविष्टांश्चावेक्षेत"

४५-वही, ३/१, "तस्यांप्रतिब्रुवतस्त्रिरात्रं सप्तरात्रमिति। अत ऊर्ध्व त्रिपणावरार्ध्य द्वादशपणपरं दण्डं कुर्यात्। त्रिपक्षादूर्ध्वमतिब्रुवतः परोक्तदण्डंकृत्वा"

ऐसे होते थे जो दोनों पक्षों का मान्य होते थे। जिन साक्षियों पर पक्षपात का जरा सा भी सन्देह होता था उनकी साक्षी को प्रमाण नहीं माना जाता था। गवाही देने से पूर्व साक्षी को सत्य बोलने की शपथ लेनी होती थी। कौटिल्य के अनुसार साक्षी को ब्राह्मण, पानी से भरे हुए कुम्भ और अग्नि के सम्मुख ले जाया जाए। यदि साक्षी ब्राह्मण वर्ण का हो तो उससे कहा जाए- "सत्य २ कहों"। यदि साक्षी क्षत्रिय या वैश्य वर्ण का हो, तो उससे कहा जाए "(यदि तुम असत्य भाषण करोगे तो) यज्ञ और पुण्य कर्मों के फल तुम्हें प्राप्त नहीं होंगे और शत्रु सेना को जीत लेने पर भी तुम्हें हाथ में खप्पर लिए हुए भीख मांगनी पड़ेगी।" यदि साक्षी शूद्र हो तो उससे कहा जाए "(यदि तुम झूठ बोलोगे तो) तुम्हारा जो कुछ भी पुण्यफल है, मरने के बाद वह सब राजा को प्राप्त हो जायेगा। और राजा के सब पाप तुम्हें प्राप्त हो जायेंगे। झूठ बोलने पर तुम्हें दण्ड भी दिया जायेगा। जो भी तथ्य है, वे जैसे भी सुने या देखे जाएँगे, हमें ज्ञात हो ही जाएंगे। लेकिन यदि साक्षियों में मतभेद होता था तो निर्णय बहुसंख्यक गवाहों की साक्षी को आधार मानकर किया जाता था।[४६] अर्थशास्त्र में सत्य का पता लगाने के लिए गुप्तचरों की सहायता लेने का भी विधान किया गया है। गुप्तचर मुकदमें की वास्तविकता का पता लगाने का प्रयत्न करते थे और पता लगाकर न्यायधीश को इसकी सूचना देते थे। लेकिन उनकी सूचनाओं को मानना और न मानना न्यायधीश के हाथ में था। पर इसमें सन्देह नहीं की गुप्तचरों की सूचनाओं का निर्णय के लिए यथोचित उपयोग किया जाता था।

इस प्रकार कौटिल्य अर्थशास्त्र के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता है कि मौर्य काल की न्याय व्यवस्था का बहुत ही व्यवस्थित और सुसंगठित थी। इसके अनुशीलन से इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि प्राचीन भारत में न्यायालय भली भांति व्यवस्थित थे और न्याय करते समय एक निश्यित कार्यविधि का अनुसरण किया जाता था लेकिन उस समय न्यायालयों में वकील होते थे या नहीं, इस सम्बन्ध में कौटिल्य अर्थशास्त्र से कोई ज्ञान प्राप्त नहीं होता। पर जब न्याय विभाग इतना सुव्यवस्थित दशा में हो तो वादी (अभियोक्ता) और प्रतिवादी (अभियुक्त) की सहायता के लिए यदि कतिपय विशेषज्ञ भी हो तो कोई अस्वाभाविक नहीं है।

प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

४६- अर्थशास्त्र, ३/११, "साक्षिभेदे यतो बहवा शुचयोऽनुमता वातत्तो नियच्छेयुः।"

महर्षि दयानन्द प्रतिपादित वैदिक न्याय व्यवस्था

-डॉ0 महावीर, डी.लिट्, व्याकरणाचार्य
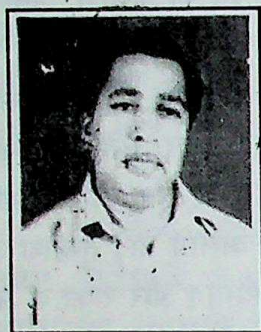
किसी भी समाज को सुव्यवस्थित सुमर्यादित रखने के लिये न्याय-व्यवस्था अपरिहार्य है। न्याय उन्नतिशील सभ्यता का आवश्यक अंग है। इस न्याय व्यवस्था का सम्बन्ध मानव के समस्त क्रिया कलापों से होता है। न्याय मानवीय आवश्यकता पर आधारित संकल्पना है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की सुचारूता की कसौटी उत्तम न्याय-व्यवस्था ही होती है। "न्याय" ही राज्य का वह तत्व है, जो उसे "डकैतों के दल" से भिन्न करता है[1]। क्योंकि निष्पक्ष स्वतन्त्र और विधि सम्मत न्याय प्रणाली के अभाव में सर्वत्र अशांति एवं अराजकता व्याप्त हो जाती है। वास्तव में न्याय के अभाव में सभ्य राज्य या मानव समाज की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती है।

वैदिक साहित्य में न्याय-व्यवस्था के समस्त आयामों-विधि की संकलपना, न्यायिक प्रक्रिया एवं दण्ड विधान आदि की कहीं विस्तार से तो कहीं संक्षेप से रूप-रेखा उपलब्ध होती है, क्योंकि ईश्वर का न्यायकारी विशेषण तभी चरितार्थ होगा, जब उसकी न्याय-व्यवस्था सर्वथा पक्षपात रहित युक्तियुक्त एवं परिपूर्ण हो।

१. विधि की संकल्पना

समाज की शांति, राष्ट्र की सुरक्षा और प्रगति तथा मानव-कल्याण के लिये विधि की अनिवार्यता को न केवल भारतीय चिन्तकों ने अपितु पाश्चात्य विचारकों ने भी किसी न किसी रूप में स्वीकृति अवश्य प्रदान की है। राजनीति शास्त्र में विधि या कानून का सम्बन्ध राज्य के उन नियमों से है, जो मानव के आचरणों को नियन्त्रिण एवं निर्धारित करते हैं।

आधुनिक युग के वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द के अनुसार विधि, मनुष्यों के समस्त बाह्य क्रिया-कलाप को नियन्त्रित तथा निर्देशित करने वाला सूत्र मात्र नहीं है, जिससे राज्य के प्रशासन का संचालन होता है, अपितु विधि का सम्बन्ध वेदोक्त नैतिकता से है। वह मानव के लौकिक उद्देश्यों की पूर्ति के साथ ही पारलौकिक लक्ष्य से भी सम्बद्ध है। स्वामी दयानन्द विधि को प्राकृतिक विधि से उपमित करते हुए ऋग्वेद भाष्य में लिखते हैं-

"जैसे ईश्वर के नियमों में सूर्य की किरणें आदि पदार्थ यथावत् वर्तमान हैं, वैसे

ही तुम (राजा) प्रजा पुरुषों को भी राजनीति के नियमों में वर्त्तना चाहिए।"[२]

इससे स्पष्ट होता है कि राज्य के सफल संचालन हेतु विधि उसी प्रकार आवश्यक है, जैसे सृष्टि के संचालन के लिए प्राकृतिक या ईश्वरीय विधि की आवश्यकता होती है। स्वामी दयानन्द ने वैदिक मान्यतानुकूल विधि को धर्म की संज्ञा प्रदान करते हुए स्पष्ट लिखा है कि- ऐसा वह कानून हो, जिससे यह लोक और परलोक दोनों शुद्ध होवें। वह कानून धर्म से कुछ भी विरूद्ध न होवे, क्योंकि धर्म नाम है न्याय का और न्याय नाम है पक्षपात न छोड़ना।[३] महर्षि ने धर्म को संकुचित अर्थों में प्रयुक्त न कर न्याय, सत्य-सद्गुण एवं ऋतु (प्राकृतिक विधान) के रूप में प्रयुक्त किया है। इस प्रकार विधि की अवधारणा में राजसत्ता (राज्य) और धर्मसत्ता (ईश्वर) दोनों का सन्तुलन रहता है। इस विधि का उद्देश्य मात्र लौकिक कल्याण नहीं, अपितु पारलौकिक हित भी है। वह मानव के बाह्य आचरण का नियन्त्रण भी करता है साथ ही साथ नैतिकता, अध्यात्म एवं जीवन के उच्चतर मूल्यों का संरक्षण और संवर्द्धन भी करता है। इसे हम इस प्रकार से व्याख्यायित कर सकते हैं- "विधि का सर्वोपरि उद्देश्य धर्म (न्याय) की स्थापना, सामाजिक कुरीतियों का निवारण, स्वास्थ्य-संवर्धन, मानव कल्याण तथा व्यक्तित्व विकास, शांति तथा सुव्यवस्था की स्थापना, स्वतन्त्रता और समानता की रक्षा भय एवं आतंक की समाप्ति के साथ ही साथ पारलौकिक हितों का संरक्षण भी है।

स्वामी दयानन्द ने वदोक्त रीति से विधि का निर्माण करने का निर्देश दिया है। सत्यार्थ प्रकाश में विधायन के क्षेत्र में तीनों सभाओं की सक्रिय भूमिका को स्वीकार करते हुए लिखा है कि तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के अधीन सब लोग वर्ते।[४] महर्षि ने आजकल की भांति बहुमत (संख्या) पर बल न देकर गुणवत्ता पर बल दिया है। उनका अभिमत है कि यदि एक अकेला सब वेदों का जानने वाला, द्विजों में उत्तम सन्यासी जिस (विधि) की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि अज्ञानियों का सहस्रों, लाखों और करोड़ों मिलकर जो कुछ व्यवस्था करें, उसको कभी न मानना चाहिए।[५] अन्यत्र भी महर्षि ने विधि निर्माण में वेदविदों को महत्व देते हुए लिखा है कि "राजसभा के सभासद की वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा का उल्लंघन न करें।[६]

वेद विधि के निर्माण के साथ ही साथ विधि-प्रयुक्ति, विधि अधिनिर्णय तथा विधि-अनुपालन पर भी बल देता है। विद्वान् जिन कर्मो

के करने की आज्ञादेवें उनको करो और जिनका निषेध करें उनको छोड़ दो।[७] परन्तु यह भी कटु सत्य है कि भय के बिना विधि का अनुपालन संभव नहीं है, दुष्टजनों द्वारा विधि का पालन कराने के लिये दण्ड की आवश्यकता पड़ती हैं सदा से ही न्यूनाधिक रूप में समाज में ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं जो अपने कुकृत्य से समाज की शान्ति भंग करते हैं। उनको दण्ड देना आवश्यक हो जाता है, दण्ड का वास्तविक लक्ष्य सुधार है। विधि भंग करने वालों को इस प्रकार दण्डित किया जाना चाहिये कि उनके चरित्र का सुधार हो और कोई अन्य प्राणी उनको दिये जाने वाले दण्ड से भयभीत होकर पुनः नियम तोड़ने का दु:साहस न कर सके। वेद के आधार पर महर्षि दयानन्द ने 'विधि की सर्वोच्चता' और 'विधि के शासन' जैसे अत्याधुनिक विधि शास्त्र के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उनका मत है कि विधि के समक्ष राजा-प्रजा, स्त्री-पुरुष आदि के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

२. **न्याय की संकल्पना :**

विधि और न्याय एक दूसरे के पूरक हैं। न्याय साध्य है और कानून उसका साधन। प्रसिद्ध राजनीतिक चिन्तक वार्कर का मत है कि 'राजसत्ता विधि को वैधता प्रदान करती है और न्याय इसे मूल्य प्रदान करता है।[८]

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में न्याय को धर्म का प्रतीक माना गया है, तथा इसी के कारण न्यायाधीश को "धर्माध्यक्ष" या "धर्माधिकारी" और न्यायालय को "धर्माधिकरण" की संज्ञा प्रदान की गयी है। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि "निष्पक्ष न्याय से वही फल प्राप्त होता है जो पवित्र वैदिक यज्ञों से प्राप्त होता है।"[९] स्पष्ट है कि भारतीय हिन्दू चिन्तन न्याय को धर्म और यज्ञ की संज्ञा प्रदान कर उसकी महत्ता और उपयोगिता को सार्वभौमिक स्थिति प्रदान करता हैं

वेदानुयायी स्वामी दयानन्द ने अपनी न्याय की अवधारणा को धर्माचरण से संयुक्त करते हुए स्पष्ट रूप से कहा है कि 'धर्म नाम से न्याय का और न्याय नाम है पक्षपात का छोड़ना।[१०] इसीलिए उन्होंने न्यायपूर्वक राज्य पालन को क्षत्रियों (राजाओं) का अश्वमेघ यज्ञ [११] तथा मोक्ष का कारण भी स्वीकार किया है। उनका मत है कि 'वही राजा है, जो न्याय को बढ़ाने वाला हो[१२], जैसे प्रातः बेला सबको चैतन्य करती है, वैसे न्यास से सम्पूर्ण प्रजाओं को चैतन्य करो[१३], जैसे सूर्य और चन्द्रमा नियम से दिन-रात्रि

चलते हैं, वैसे न्याय-मार्ग को प्राप्त हूजिए।[१४]

आर्यभिविनय नामक अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में वेद मन्त्र की छाया में ईश्वर से प्रार्थना करते हुए वे लिखते हैं- "हे राजाधिराज ! जैसा सत्य-न्याय-युक्त अखण्डित आपका राज्य है वैसा न्याय-राज्य हम लोगों का भी आपकी कृपा से स्थिर हो......हे न्यायप्रिय ! हमको भी न्याय प्रिय यथावत् कर। हे धर्माधीश। हमको धर्म (न्याय) में स्थिर रखा।"[१५] महर्षि के इन विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में भी इस देश में न्याय को परम धर्म माना जाता था। इस अवधारणा की पुष्टि आधुनिक पाश्चात्य विधिशास्त्री जेम्स ब्राइस इस प्रकार करते हैं- "यदि न्याय का दीपक अन्धकार में विलीन हो जाय, तो वह अन्धकार (अन्याय) कितना दुःखद और भयानक होगा।"[१६]

स्वामी दयानन्द की वैदिक व्यवस्था इसी संकल्पना पर केन्द्रित है। वेद में न्याय-व्यवस्था की रक्षा मानव सभ्यता की रक्षा तथा न्याय का विनाश, मानव-सभ्यता का विनाश कहा गया है।

स्वामी जी ने वैदिक साहित्य तथा राजनीति शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर न्याय कार्य की प्राथमिक इकाई ग्राम-पंचायत को माना है। इसके बाद तहसील (सौ ग्रामों का समूह) और जिला (एक हजार ग्रामों का समूह) स्तर पर न्यायालय होंगे। इसी प्रकार यह व्यवस्था दश सहस्र तथा लक्ष ग्रामों की राजसभाओं के स्तर पर उच्च न्यायालय के रूप में होगी। अन्ततः सर्वोच्च न्यायालय के रूप में केन्द्रीय राजसभा होगी, जिसमें सभी सभासद, न्यायाधीश के रूप में राजा सभी अन्य न्यायाधीशों (सभासदों) की सहमति और स्वीकृति से निर्णय देगा।

३. **न्यायाधीश :**

न्याय-कार्य राजा और सभासदों द्वारा सम्पादित किया जायेगा अतः जो योग्यताएं एवं गुण राजा और सभासदों के हैं वे ही न्यायधीश के लिए ही वाञ्छनीय हैं। वेदों के प्रकाण्ड विद्वान आचार्य प्रियव्रत जी ने वैदिक देवता सोम को न्यायाधीश का प्रतिरूप माना है। वे इन्द्र और अग्नि को प्रधान रूप से सम्राट वाचक मानते हैं। न्याय विभाग का कार्य करने के लिये अपने प्रतिनिधि के रूप में सम्राट, जिस अधिकारी को नियुक्त करता है, उसका नाम वेद में सोम है। इसकी पुष्टि में आचार्य श्री निम्न मन्त्र उद्धृत करते हैं :-

१. सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तपोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्।।[१७]

२. ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूष्यन्ति स्वधामि।
अध्ये वा तान्द्रददातु सोम आ वा दधातु निऋतेरूपस्थे।

यहाँ सोम का अर्थ है न्याय और इन्द्र का काम है शासन। सोम जो दण्ड निर्धारित करता है, इन्द्र उसको क्रियान्वित कराता है।

न्यायाधीश को सोम के गुणों से ओतप्रोत होना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने न्यायाधीश के गुणों का उल्लेख इस प्रकार किया है- 'न्यायाधीश वायु के समान सबको प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जाननेहारा यम की भांति पक्षपात रहित, सूर्यतुल्य न्याय, धर्म और विद्या का प्रकाशक तथा अन्धकार, अविद्या एवं अन्याय का निरोधक, अग्निवत् दुष्टों को भस्म करने वाला[१९]। असत्य को छोड़ सत्य को ग्रहण करने वाला, अन्यायकारी को नष्ट और न्यायकारी को बढ़ाने वाला स्वात्मवत् सबका सुख चाहने वाला।[२०] सत्यकारी, सत्यवादी, सत्यमानी[२१] शुद्ध अन्तः करणवाला[२२], सूर्य और चन्द्रमणि के गुणों से युक्त[२३], अग्निवत् तेजस्वी और वेगवान्[२४], मित्रगुणयुक्त[२५] होना चाहिये।

इन योग्यताओं में शैक्षिक अर्हताओं के अतिरिक्त उच्चतम नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों को इसलिए आवश्यक बताया है कि दण्ड का धारण अविद्वान् और अधर्मीजन न कर सकें। उसे विद्वान्, विश्ववित्, सुमेधा ऋषिमना, वचोवित् तथा सुश्रुवा आदि गुण धारक व्यक्ति को ही धारण करना चाहिये।

वे न्याय कार्य में पुरुषों के समान स्त्रियों को भी सर्वथा योग्य मानते हैं[२६]। महर्षि द्वारा वेदमन्त्रों के उद्धरण देते हुए न्याय-प्रशासन जैसे राज्य कार्यों में स्त्रियों की सहभागिता का उद्घोष अभूतपूर्व क्रान्तिकारी विचारों का परिचायक था।

स्वामी जी ने राजा को न्याय-कार्य हेतु प्रतिक्षण उद्यत रहने का संकेत दिया है। उनका स्पष्ट मत है कि यदि राजा भोजन पर भी बैठा हो तो भी उसे न्याय के लिये भोजन छोड़कर चल देना चाहिए। अपने वेद-भाष्य में महर्षि कहते हैं कि- हे राजन् हम सब जब आपको पुकारें, उसी समय आपको आना चाहिए तथा हम लोगों के वचन सुनना और यथार्थ न्याय करना चाहिए।[२७]

महर्षि ने न्याय-अन्याय के निश्चय के लिये वेद, मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सत्पुरुषों का विचार, वेद-प्रतिपादित कर्म तथा जिसको आत्मा चाहे, को आधार

बनाया है। महर्षि ने वैदिक प्रसंग में- "सत्य परीक्षण"[२८] के लिए पांच प्रकार की परीक्षाओं का निर्देश किया है जिनका उपयोग न्यायिक निर्णय में भी किया जा सकता है। ये पांच प्रकार की परीक्षाएं हैं- ईश्वर उसके गुण कर्म स्वभाव और वेद विद्या, प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण सृष्टि-क्रम के अनुकूल, आप्तों का व्यवहार तथा अपने आत्मा की पवित्रता।

दण्ड विधान :

न्याय-व्यवस्था में दण्ड प्रक्रिया आ अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। महर्षि दयानन्द ने मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों के आधार पर दण्ड को ही प्रजा का रक्षक माना है। इनकी दृष्टि में दण्ड न केवल राज्य का अपितु धर्म का भी मूलाधार है। दण्ड ही समस्त लौकिक एवं पारलौकिक लक्ष्यों एवं कार्यों का निर्देशक एवं नियन्ता है। वे सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास में लिखते हैं- दण्ड ही वास्तविक राजा, वर्णाश्रम-धर्म का प्रतिभू, शासन-कर्त्ता, प्रजा का रक्षक, धर्म, कृष्णवर्ण रक्त नेत्र वाला भयंकर पुरूष, धर्म अर्थ काम और मोक्ष का प्रदाता है।

महर्षि की दण्ड की अवधारण सुस्पष्ट है, वे बिना अपराध के दण्ड देने को दुर्व्यसन कहते हुए लिखते हैं कि जो जितना अपराध करे, उसको उतना दण्ड और, जो जितना अच्छा कार्य करे उसे उतना ही पारितोषिक दिया जाना चाहिए, न अधिक न न्यून।[२९] दण्ड का प्रयोजन सभी प्रकार के प्रमाद तथा व्यक्तिक्रमों के विरूद्ध एक व्यापक मानसिक नियम की अभिपुष्टि करना है। दण्ड का उद्देश्य परिशोधन है, प्रतिशोध नहीं। महर्षि का मत है कि- जिस प्रकार शिष्य एवं पुत्र को क्रमशः गुरु और पिता दण्ड देते हैं, उसी भाव से राजा भी दण्ड दे।[३०] दुष्टों को दण्ड द्वारा शिक्षा देकर श्रेष्ठ स्वभावयुक्त करें।[३१] इस प्रकार दण्ड का उद्देश्य मानव की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था को सम्यक् सञ्चालित करना है।

वैदिक वाङ्मय में अनेक अपराधों तथा दण्ड विधानों का उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे यातुधान, राक्षस्, दस्यु, पिशाच, स्तेन, तस्कर आदि ये सभी नाम अपने सामान्य प्रयोग में प्रायः पर्यायवाची हैं। पर साथ ही इनके अर्थों में परस्पर अन्तर भी है। आचार्य प्रियव्रत जी ने अपने ग्रन्थ में ३९ प्रकार के अपराध वेद-मन्त्रों के आधार पर परिगणित किये हैं। इन अपराधियों को दण्ड देना अनिवार्य है। महर्षि ने अनेक प्रकार के दण्डों का विधान किया है। यथा : वाक्-दण्ड, धिक्-दण्ड, अर्थ-दण्ड, देश-निर्वासन[३२], अग्नि से जलाना[३३], कारागार दण्ड[३४] इत्यादि।

स्वामी दयानन्द ने झूठी साक्षी देने वाले, चोर, डाकू, साहसिक, वेदशास्त्र विरोधी, अधर्मी, व्यभिचारी स्त्री-पुरुष, आर्थिक अपराधी, मद्यप, पशुहिंसक, जुआरी आदि के लिये पृथक्-पृथक् दण्ड विधान किया है। यही नहीं तो अपराधी राज-पुरुष तथा राजा-रानी के लिये भी उनके अपराध के अनुसार दण्ड निर्दिष्ट किया है। उनका निर्देश है कि जो राजा या रानी अथवा न्यायाधीश या उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करे तो सभा उनको प्रजा पुरुषों से भी अधिक दण्ड दे।[३५] उन्होंने भिन्न-भिन्न अपराधों के लिये विभिन्न प्रकार की दण्ड-व्यवस्था के साथ ही साथ दण्ड प्रयोग के समय दोषसिद्ध अपराधी के सामाजिक, मानसिक एवं आर्थिक स्तर का भी ध्यान रखा है। इसके अतिरिक्त महर्षि का यह भी सुझाव है कि दण्ड सदैव देश, काल तथा परिस्थिति के अनुकूल देय होना चाहिए। यह दण्ड-विधान प्रतिकारात्मक, प्रतिरोधात्मक एवं सुधारात्मक होने के साथ-साथ बुद्धि एवं तर्क सम्मत भी है।

महर्षि की सम्पूर्ण न्याय-व्यवस्था का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनकी न्याय की अवधारणा उनके राज-दर्शन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। इसमें विधि के शासन और विधि की उक्ति प्रक्रिया दोनों का सुखद संयोग है। इस व्यवस्था का महत्वपूर्ण पक्ष है आध्यात्मिक एवं संवैधानिकता का अभूतपूर्व समन्वय। वर्तमान व्यवस्था में यदि महर्षि की वेद सम्मत न्याय प्रणाली को क्रियान्वित किया जाये, तो न्याय पर से उठा हुआ प्रजा का विश्वास पुनः लौट सकता है।

सन्दर्भ - सूची

१. एल.सी. मैक्डानल-वेस्टर्न पोलिटिकल थ्योरी, भाग-१, पृ० १२०
२. ऋ०भा० १.१०५.११
३. ऋ०द०स० के प० और वि० भाग। पृ० ४२
४. सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ९२
५. ऋ०द०स०-के प० और वि० भाग-२, पृ० ६३३
६. यजु० भा० ७.३५
७. ऋ०भा०-१-७९-१२७
८. ज्ञान सिंह सन्धू-राजनीति सिद्धान्त पृ० २८४
९. याज्ञवल्क्य १.३५९, ३६०
१०. ऋ.द.स. के प० और वि०-भाग १ पृ० ४२
११. ऋ.भू०-पृ० - २५४

१२. यजु० भा० १७-१५
१३. ऋ०भा० ४.१०.१
१४. ऋ०भा०-५.५२.५
१५. आर्याभिविनय पृ० ९१-९२
१६. जेम्स ब्राइस - माडर्न ,डिमोक्रेसीज़, भाग-२ पृ०-४२१
१७. अथर्व०-८.४.१२, ऋग्-७-१.४.१२
१८. अथर्व० ८.४.९, ऋग्० ७.१०४.९
१९. स.प्र.-पृ०-९३
२०. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश - पृ० ४०६
२१. ऋ.भा. १.७०.४
२२. यजु०भा०-१७.११
२३. यजु०भा०-२९.१४
२४. ऋ०भा० ५.५०.४
२५. आर्या०-पृ० ३०
२६. ऋ०भा०-२.२७.७ २.२७.१२ आदि
२७. ऋ०भा०-३.४०.८
२८. मनु० १.१३१
२९. ऋ० द०स० के प० और वि०-भाग २ पृ० ७५६
३०. सत्यार्थ प्रकाश-पृ० २४
३१. ऋ.भा० १.४२
३२. यजु० भा० ८.४४
३३. यजु०भा०११.७७
३४. ऋ.भा. ७.२५२
३५. सत्यार्थ प्रकाश पृ०-११४

रीडर, संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार

VEDIC JURISPRUDENCE

INDER DEV KHOSLA

Necessity of Law

The instinct of self- preservation is the first law of nature and is common with all Scientific life. Bitter felling of aggrieved for revenge and retaliation would have soon resulted in mutual extermination, although at first the weaker, but afterwards the stronger too would have fallen victim to the brute force, which thought employed for preservation, would have inevitably ended in annihilation. Vedic rishis foresaw it and they thus laid down that instead of mutual retaliation and ultimate annihilation states or Government, should frame rules or laws to take the offender to task. on behalf of the offended.

Mr Maine, a legal illuminary, has rightly observed that law, more specially the criminal law, is a civilized way of revenge. He has further remarked, "I recognize the greatness and soundness of Vedic system, now known as Hindu law."

Function and Definition of Law

In a society, law has a definite and important place, as an agent of social evolution, but it can play a limited role. The main function of law is the preservation of stability of state and ensuring security to people against any disorder. Law can be said to have run parallel to culture, sometimes lagging behind it and sometimes leading the way, always taking care that the gap between the two is not large. Law in fact is a social science, as against natural science. In democracy, law as the body of principles recognized and applied by the statue in the administration of Justice.

Indian constitution, is presumbly, the only constitution in the world, with a Vedic background, which imbibes the above idea of harnessing the changing with time. In this connection Art. 15A(H) is explict. It clearly points out that the fundamental duty of every citizen is "to develop the scientific temper, humanism and the spirit of inquiry and reform."

According to Vedas, as also correctly defined in Mahabharata, "Law is Dharma, viz. that which sustains (the society)". The Sanskrit

world Dharma is the one of those words that defy all attempts at an exact rendering in english or in other tongue.

Dharma in Vedic language is derived from the root (Dhar) which means to uphold, to nourish (Rig. 1.87.1 and 10.92.2 and 10.21.3). Broadly speaking it means the fixed principles or rules of conduct, viz. righteousness (तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्) the first rule of conduct (Rig. 1.164.50, 1.164.43). The same words occur in Atharvaveda (7.5.1 and 6.51.3). Dharma is one of the main pillars of a society (ऋतं सत्यं तपो श्रमो धर्मश्च कर्मच) (Atharva. 12.1.1). At another place it is said (तदे तद् क्षत्रं यद् धर्म) Law is the king of kings.

Kinds of Law

Law is divided into two main branches, viz. civil law and criminal law. Other types of the laws are substantive laws and procedural laws. Criminal law is concerned with wrongs against the community as a whole, while civil law is concerned with rights, duties and obligations of individual members of society between themselves. Civil proceedings are taken up on the initiation of the aggrieved and no preliminary inquiry is made as to the authenticity of the grievance, whereas in criminal cases, before charging the accused, a preliminary enquiry is needed.

Sin and crime defined

A breach of moral principle is called sin. A breach lf law, that is a legal duty, if punishable, is a crime. Beneath all the circumstances inducing compliance with morals, the sole force is goodwill and moral spirit with us, but behind law stands the brute force of the state.

Vedic concept of Law of Dharma

Vedas do not contain any codified laws in consonance with the prevalent concept. They use the word dharma for law. They do, however, contain reference to various topics, that fall under the domain of law or Dharm Shastra. Maine, in his treatise on Vedic laws, has brought together some 50 passages that shed flood of light on laws of marriage, succession, adoption, Sradha, Stridhana etc. For example, it is made clear that a brotherless maiden secures her

husband with difficulty (Rig. 1.124.7) Similarly, in Mantra 5, Sukta Mandla 4 of Rigveda reference is made to a sister who does not co-operate with her brother, she is stated to be of no worth. Regarding marriages hymn number 85 of Mandla 10 of Rigveda throws enough of light. Even marriages that are performed these days also follow the same rules.

Codification of Vedic Law

Codification of the law (the earliest available these days) was done by Manu, the great jurist, after churning the Vedic texts throughly. This law is contained in Manusmritit. That very law has come down to us with alterations, amendoments and additions in the course of long period of changes of throughts and conceptions. After Manu various smrities or dharmashastras were written, but authenticity is given to Manusmriti. Some of the names of authors of smrities and dharmashastra are noted below :—

Gautam, Bandhyana, Hiranyakeskeisdham, Vassistha, Koutilya, Yajnavalkya, Puran, Ramayana and Mahabharata, Parasara, Nanda, Madhvacharya.

All these shastras and smirities were the products of their own times and lost their merits with the change of conception from time to time. As a proof of it two quotations from two authors of dharmashastras are noted below.

Kalivarjya says that in Kaliyuga the performance of (अग्निहोत्र), renunciation is not possible.

Parashara says : " The dharma for men in Satyuga is different from that the Treta, Dvapara and kaliyuga. Also there are different dharmas of each yuga, practised in keeping with the distinctive character of that age."

Parashara further adds. "Dharmas for Satyuga are those, as laid by Manu, for Treta those written by Gautam : for Dvapara those laid by Likhila, and for the kaliyuga those laid by Parashara." This principle of change of law according to requirements of time is fully supported by the modern philosophers also :—

The world advances
Times out grow,
Laws; that in our
fathers days were best,
Shall be shaped better than we.

Vedic Legal Terminology

In Vedic language the word (धर्म) Dharma is primarily used for law, virtue, righte ousness; and it has been so employed in all the later smirities and Dharmashastras. For a judge the words used are Dharmdhayaksha (धर्माध्यक्ष), Dharmadhikari (धर्माधिकारी), Nyayadhish (न्यायाधीश) and for an advocate Pradvivako प्राडविवाको . As mentioned in the foregoing para, the king is overall incharge of all the departments in a state including law justice and legislature. He is addressed as Varuna (वरुण), Indra (इन्द्र), Soma (सोम) according to the function performed by him from time to time.

Administration of Justice

(Shatpath : 14.13 12) राजा वै सोम

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्माननासुन्वता संख्यं वटि शूरः।

(Ath.20.89.4)

O mighty Indra ! the people standing in disputes invoke you in their fray for justice, wherein both the parties claim to be right. But you do not befriend him who does not work for the bettlement of the state. The place where justice is administered is called Samika (समीका) for disputes the word employed is (ममसत्य), mamsatya, because both parties to the dispute, claim to be true.

The presiding officer, *viz.*, judge, who takes decision is addressed mostly as Indra (इन्द्र). Parties in dispute place their facts before him.

इन्द्राय साम गायत विप्राय वृह्ते वृहत्।
धर्मकृतो विपश्चिते पनस्यवे।।

(Rig 8.98.1) & (Ath 20.62.5)

"The king or judge (Indra) who administers justice is Dharmakrito (धर्मकृतो) and (पनस्यवे) Pansyave is one who possesses expertise in law."

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्।।

(Yaju. 35.19)

" I, the knower, drive away the eater of raw meat, and the tormentor of men like fire, and cast aside the sinners.

Let all criminals be brought before the court of justice. Let a noble soul in the world learn knowledge from the learned."

These above mantras and the following ones also indicate that justice is administered through regular courts for disputes between litigants. This institution of courts is not modern one, as is currently understood; but it is very old and has come down to us form vedic times. सत्यानृते अवपश्चयंजनानाम् (Rig. 7.49.3)

The judge is called upon to decide after screening the facts and find out the truth. Hymns No. 7.104.15 of Rigveda and 8.4 of Atharvaveda fully convince us of the fact that kings have to establish courts for deciding disputes.

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह।।

(Rig. 7.104.15)

O king (judge), if I am a wicked person or a torturer of the people, or if I harass any man's life, I may be killed else he (the enemy) be sent to prison and remain seperated from his ten sons, words यातुधानो या असुर Yatudhan or Asur, indicates that there are no other type of creatures except human beings. Those who indulge in bad deeds and behave in inhuman way are Asur.

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तर्योयत् सत्यं सतरदृजोयस्तदित् सामा*वति हन्त्यासत्।।

(Ath.8.4.12)

It is very easy for a prudent judge to distinguish between truth and falsehood. Truth and falsehood are two opposite poles. Of these two, truth is always straight, simple, clear, and a man of judicious and righteous nature protects the truth and obliterates the falsehood.

न या उ सोमो वृजिनं हिनेति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यासदवदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाने।

(Ath.7.104.13)

O judge ! never encourage the crime and the criminal, never give protection of encouragement to false claims. As a warrior or brave man kills the wicked, so you also destroy the person who tells a lie, let such a person remain entengled in noose.

Judges are required to decide cases with equity and good consciousness and should not be too rigid in the interpretation of law, because rigidity of law, sometimes provokes the censure that law is an ass.

ये पाकशसं विहरन्त एवैर्ये वां भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरूपस्थे।।

(Ath.7.104.9)

Let the judge hand over the cruel man, for being hanged or send him to prison, Who accuses the person dealing his affairs with righteonuness and also to him, who harms the virtuous for his selfish motives.

यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने।
किमस्यभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचेताम्।।

(Ath.8.4.14)

O wise judge ! if we worship falsehood as truth or if we in vain think of many worshipable deities, do you become angry with us ? Let the calamity fall upon them who speak lie, may they be one of us or some different one.

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता।।

(Ath.8.4.8)

O mighty king ! let the person who speaks untruth and by his

false speeches accuses me when I am rightly engaged in my affairs with nature and guileless mind, he may be thrown away, as water filled in the cavity of joined hands, is wasted aways.

Types of Offences and Punishments

Offenders- (a) Rakshas (b) Dasu (c) Yatudhan (d) Pishach (e) Stean (f)Tasker (g) Attri (h) Afhashans (i) Dushcit (j) Rupu (k) Asatyavadi, etc.

Besides the above, some other punishable crime/offences find repeated references in the Vedas:-

(I) स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य विभजानि वेदः।

(Rig.)

Any one having illicit connection with any woman be punished and his property confiscated and distributed amongst other deserving persons.

(II) निन्दाद्यो अस्मान् धिप्साच्च सर्व त भस्मसा कुरु।

(Yaju.11.80)

(III) अयोदंष्ट्रो अर्चषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः
आ जिह्वा भूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्टवपि धष्त्स्वासन् ।।

(Ath.8.3.2)

O wise ruler ! you pounce upon those foolish person who indulge in anti-social activities and deal with them also in jail who charge exorbitant interest from others.

(IV) त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम्।
मर्त्तो यो नो जिघांसति।।

(Rig.6.16.32)

Person engaged in bed deeds and those who want to kill us, O King! you give them serverst punishment.

(V) अदाशुषं तेषां नो वेद आ भर

(Rig.1.81.9)

O king ! you snatch aways the property of that individual who

does not take part in state affairs and distribute the same amongst other.

(VI) समी पणेरजति भोजनं मुषे विदाशुषे भजति सुनरं वसु

(Rig.5.34.7)

(VII) शूरो यज्वनो विभजन्नेति वेद:।

(Rig.)

The king confiscates the property of harmful people and distributes the same to other deserving person or utilizers the same for the good of the state. The following single Ved mantra enumeates some of the undesirable elements in the society who need punishment.

न्यक्रतून्ग्रथिनो मृघ्रवाच: पर्णीरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान्।
प्रप्रतानदस्यूंरग्निविवाय पूर्वश्चकाराँ परा अयज्यून्।।

(Rig.7.6.3)

(1) अकृतन् (Who does not doany work and is a parasite of the society) (2) ग्रंथिन (a miser who does not use his money for the benefit of the state) (3) अयजन (who does not perform yajna of any king). (4) (मृघ्रवाच:) (A habitual liar).

The head of the state/judge should keep undesirable persons separated from the general society so that they may not influence others and place them in lower category.

the above mantras throw light on the civil law of the state. Confiscation of property of the offenders is the right remedy prescribed therein. The following are some more severe punishments—

(1) The offender be sent to jali (Ath 8.4.9).
(2) Calamity may fall on him (Ath : 8.4.9)
(3) Let the calamity fall on the offender (Ath 8.3.14)
(4) Let the wicked person be properly punished (Ath. 8.4.17)

If a habitual offender does not improve himself then such an incorrigible one be separated from the general society and confined to solitary cell.

(5) पातय परमक्षयुतावरम्
Both eyes of the bandits and villains be removed. (Ath. 1.8.3)

(6) अहये वा तान् प्रदातु सोम:

O king ! send the offender to gallows, (Ath. 8.4.9)

(7) तं त्वा सीसेन विध्यामो यथानोऽसो अवीरहा

We shoot you with lead bullet so that you may not again harm our brave men.

(Ath. 1.16.4)

(8) इन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु

The ruler may get the head of the offender cut with weapon if he is found guilty of a serious crime. (Ath. 1.7.7)

(9) त्वचं यातुधानस्य भिन्धि प्रपर्वाणि जातवेद: शृणीहि।

I pierce through the skin of the criminal and let the fatal electric device destroy him. (Ath. 8.3.4)

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दशन्त्सूर्यमूच्चरन्तम्।।

O judge Indra ! destroy the wicked male or female, who is expert in treachery and evil tricks. Let people of hypocritic nature perish. They be deprived of their necks so that they do not exist before the next sunrise.

In vedic mantras sometimes the word soma and sometimes the word Indra has used while addressing the king, or his representative, administering justice. The word 'Soma' represents a judicial officer and Indra as an executive magistrate.

प्र वर्तय दिवाऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि।
प्राक्तो अप्राक्तो अधरादुदक्तोऽभिजहि रक्षस: पर्वतेन।।

(Ath. 8.4.19)

O Indra ! you execute the order passed by the "Soma" and keep ready, with your expertise, the weapons for punishing the offender. You kill the (राक्षस) Rakshas, with that weapon on all sides.

परीममिन्द्रामायुषे महे क्षत्राया घतन

यथैनं जरसे नयाँ ज्योक् क्षत्रेऽघि जागरत्। (Ath.19.24.2)

परीमं सोममायुषे.......................................जागरत्।। (Ath 19.24.3)

In the above mantras king has been addressed both as Indra and Soma. Soma's function is indicated as (श्रोत्र) and that of Indra (क्षत्र)

Punishment to Beasts

Like human beings beasts of other creatures, who give trouble to human life and property are also punishable. For such creatures the word uses are (व्याघ्र) Vyaghra and (वृक) Vrik etc.

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।
हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग् देवो
वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्त शत्रवः।।

(Ath.4.3.1)

Let the three, ***viz.*** tiger, wolf, and thief stay aways from the vicinity of the population. Just as rivers flow unnoticed so these three too, remain hidden in woods let our enemies bend down.

परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु।

(Ath.4.3.2)

Let the rope having teeth (viz. snake) go far away or remain at a distance from here.

We crush and cut them to pieces, both the eyes of the tiger and also his mouth. We break all the twenty nails of the tiger.

यत् संयमो न वियमो वि यमो यन्न संयमः।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम्।।

(Ath.4.3.7)

One, who is once bound up need not be unbound. Three methods have been prescribed for capturing creatures, namely Indraja (इन्द्रजा), *viz.* by over powering with superior force, second Somja सोमजा meaning thereby that to tame the creature by giving him provisions, grains of other suitable catables, and the third (Atharvana) (अथर्वणा), viz.non-violent methods, applying only mild force. The method to be employed should depend upon the fact, as to how much ferocious and harmful the beast is.

Control of Crimes

For controllng crimes in the state, two methods have been prescribed, one is to punish the criminal/offender, as described in the foregoing para, and second is to bring the criminal to right path by giving him lessons etc. Vedas are, however, of the view that if he offender is not reformed by the second method he/she should be given deterrent punishment.

Qualification of Judges

पश्चात् पुरस्ताघरादुतोत्तरात् कवि: काव्येन परि पाह्यग्ने।
सखा सखायमजरो जरिम्णे, अग्ने मर्ता अमर्त्यस्त्वं न:।।

O king! with your noble conduct and wit ennoble your subjects. You being their friends protect them from all sides till they live to their full age. You have a foresight. You, through your wisdom, put down all crimes. The judges are supposed to be learned person.

(1) सोमो वै ब्रह्मण (here ब्रह्मण means a learned in a Vedic Lore)

(2) स सोमं प्रथम: पपौ (Ath. 4.6.1)

(3) सोमो ह्यस्यस्मद् दायाद: (Ath. 5.18.6)

(4) यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा
अविदुषृरास: अग्निषृद् विश्वादा पृणातृ
विद्धान्त्सोमस्य यो ब्राह्मण आविवेश।।

(Ath.19.59.2)

O learned ones, we being ignorant violate the vows, lawa and discipline, please correct is from these violations. From these mantras it is clear that सोम and ब्राह्मण are synonymous words, indicative of the wise and learned persons.

Note: The dictum "Judge not so that may be judged" is not applicable to judges while deciding the cases. They have to decide each case according to the facts without any extraneous consideration.

Punishment of Collective Crimes

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्।
दिवोदासाय दाशुषे।।

(Rig. 4.30.20)

The king should destroy the cities of places in which thieves, gamblers and criminals thrive.

त्वं मायाभिरप मायिनोऽद्यम: स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।
त्वं प्रिप्रोर्नृमण: प्रारुज: पुर: प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ।

(Rig. 1.51.5)

By the knowledge, devices, straightforwardness and other virtues, you put down the dacoits, thieves, robers etc. In battles you slay them and destroy all malignants completely.

अग्नीरक्षाँसि सेद्यति शुक्रशोचिरमर्त्य: शुचि: पावक ईड्य:।

(Ath.8.3.26)

O mighty rule ! radiant with glow and glamour, strong among his people, destroy the wicked through your noble, pious and purian conduct.

In Vedas much stress has been laid on the qualification for the selection if the judges. They have to be noble in their conduct, so that with their ennobling influence, the idea of committing crime by the criminals is removed.

Court Procedure and Witnesses

श्रधि श्रुत्कर्ण वहिनर्भिर्देवैरग्ने सयावभि:।
आ सोदन्तु बर्हिषि मित्रोऽअर्य्यमा प्रातर्यावाणोऽध्वरम्।।

(Yaju 33.15)

A judge should sit in a full fledged court, alongwith assessirs and learned associates; should listen to the complainant and then give decision without pride and prejudice.

पृष्टाऽपव्ययमानुस्तु कृतावस्थो घनैषिणा।
त्र्यवेरै: साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राहमणसन्निघौ।।

(Manu. 8.60)

Judge should proceed to record the evidence of at least three witnesses, in case the alleged debtor of the debt money.

नार्थ सम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणि:।
न दृष्दोषा: कर्तव्या न व्याघ्यार्ता न दूषिता:।।

(Manu. 8.64)

Evidence of the following persons is not entertainable (1) Debtor of rich persons, (2) A friend, (3) A helper, (4) A servant, (5) An enemy, (6) Irreligious one, (7) Insolvent & one who has already been convicted of an offence, including that of giving false evidence in court. The following persons should also not be allowed to give evidence.

नतो न मतो नोन्मत्तो क्षुतृष्णोपपीडित:।
न श्रामार्तो न कामार्तो न क्रुद्धो नापितस्कर:।।

(Manu. 8.67)

One is anger, an addict, one who is thirsty or hungry, a vicious one, one who is a theif, one who is tried, however, in special circumstances, like the following, any one can be allowed to give evidence when the crime is committed in a lone place.

अनुभावी तु य: कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम्।
अन्तवेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापिवात्यये।।

(Manu. 8.69)

When the incident of crime takes place in a house or in a jungle, any expert can be allowed to give evidence.

Vanprastha Ashram
Jwalapur (Hardwar)

मनुज तो वही है.....

महावीर 'नीर'
विद्यालय–गु.कु. कांगड़ी

बने को मिटाना, सभी जानते हैं।
मिटे को बना दे, मनुज तो वही है।।

उठे को गिराना, सभी जानते हैं।
गिरे को उठा दे, मनुज तो वही है।।

खिले फूल को तो, सभी तोड़ लेते।
उसे जो खिला दे, मनुज तो वही है।।

हँसना, हंसाना, सभी जानते हैं।
सभी को हंसा दे, मनुज तो वही है।।

बातें गगन की, सभी कर रहे हैं।
धरा को संवारे, मनुज तो वही है।।

खुशी में उछलना, सभी जानते हैं।
गमी में हँसा दे, मनुज तो वही है।।

कपट झूठ, बोना, बहुत जानते हैं।
मिटा दे इन्हें जो, मनुज तो वही है।।

अटारी को रोशन, सभी कर रहे हैं।
कुटी जगमगा दे, मनुज तो वही है।।

सुनो 'नीर' जग में, सभी जन्म लेते।
जो जीवन बना ले, मनुज तो वही है।।

गुरुकुल-पत्रिका

मासिक शोध-पत्रिका

Monthly Research Magazine

सम्पादक

डॉ0 महावीर

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-249404

गुरुकुल-पत्रिका

मासिक शोध-पत्रिका

Monthly Research Magazine

सम्पादक

डॉ० महावीर
एम.ए. (संस्कृत, वेद, हिन्दी) व्याकरणाचार्य
पी-एच.डी., डी.लिट्.

प्रोफेसर एवं निदेशक
श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान

सह-सम्पादक

डॉ० दिनेशचन्द्र
वरिष्ठ प्रवक्ता, वेद विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार -249404

नवम्बर - दिसम्बर-९८ जनवरी - फरवरी-९९	वर्ष 50वां	मार्गशीर्ष-फाल्गुन सं. 2055

सम्पादक मण्डल

मूल्य	:	25 रुपये (वार्षिक)

मुद्रक : किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रेस, निकट गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, कनखल फोन : 415975

विषयानुक्रमाणिका

1.	वेद मञ्जरी	—		1
2.	सम्पादकीय	—		2 – 3
3.	संस्कृतसाहित्ये धर्मस्य राजनीतेश्च परस्परैकरसता	—	डॉ0 हरिगोपाल शास्त्री	4 – 6
4.	वैदिक जीवन दर्शन–	—	डॉ0 महावीर	7 – 13
5.	महाभारत में धर्म और राजनीति	—	डॉ0 विक्रम कुमार	14 – 22
6.	पूर्वमध्यकाल में राजनीतिक चुनौती और धर्म	—	डॉ0 ब्रजेश कृष्ण कठिल	23 – 28
7.	वेदों में धर्म एवं राजनीति	—	डॉ0 ज्ञान प्रकाश शास्त्री	29 – 33
8.	छान्दोग्योपनिषद में धर्म और राजनीति	—	डॉ0 मनुदेव बन्धु	34 – 44
9.	ऋग्वेदीय धर्म एवं राजनीति	—	डॉ0 दुर्गाप्रसाद मिश्र	45 – 49
10.	वेद–वर्णित राष्ट्र धर्म	—	डॉ0 वीनेश अग्रवाल	50 – 54
11.	तुलसी के काव्य में धर्म और राजनीति	—	डॉ0 मृदुल जोशी	55 – 65
12.	वेदकालीन मन्त्रिमण्डल	—	डॉ0 बलवीर आचार्य	66 – 84
13.	कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित धर्म और राजनीति	—	डॉ0 देवेन्द्र कुमार गुप्ता	85 – 89
14.	वैदिक परिप्रेक्ष्य में धर्म शब्द का अर्थ और अभिप्राय	—	डॉ0 दिनेशचन्द्र शास्त्री	90 – 91
15.	राजनीति में धर्म का स्थान : वैदिक दृष्टिकोण	—	डॉ0 सत्यदेव निगमालंकार	92 – 95
16.	गीत गाते रहो	—	महावीर 'नीर'	96 – 96

वेद-मञ्जरी

1. सरस्वती वन्दना

पावका नः सरस्वती, वाजेभिर् वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः।। ऋग्० १.३.१०

ऋषिः मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। देवता सरस्वती। छन्दः गायत्री।

पावका-पाविका, पवित्रतादायिनी, **वाजिनीवती**-वाजो बलं वेगो वा अस्या अस्तीति वाजिनी क्रिया तद्वती, क्रियाशालिनीत्यर्थः, **धियावसुः**, धिया प्रज्ञया कर्मणा च वसुः वासयित्री, समासे विभक्त्यलोपश्छान्दसः। धीः कर्म च प्रज्ञा च, निघ० २.२, ३.९ **सरस्वती** रसमयी जगदम्बा वेदवाणी च **वाजेभिः** वाजैः अन्न-धन-बल-विज्ञानादिभिः **नः** अस्माकम् **यज्ञम्** जीवनरूपम् अध्वरम् **वष्टु** निर्वोढुं कामयताम् निर्वहतु इत्यर्थः।।

आगच्छत, वयं सरस्वतीं वन्दामहे। सरस्वती वै जगन्माता जगदीश्वरी। सा रसमयी सती सर्वान् स्वीयं मधुरं स्तन्यं पाययति। तस्या दुग्धरसो ज्ञानं, बलं, पुष्टिं, विवेकं, चैतन्यं, प्राणं, स्फूर्तिम्, आनन्दं ददाति। तस्याः पयः पीत्वा ज्ञानशून्या अपि ज्ञानवारिधयः सञ्जायन्ते। तस्याः पयः पीत्वा पतिता अपि महर्षयः संपद्यन्ते। तस्याः पयः पीत्वा निर्बलात्मानो ऽपि बहुबला भवन्ति। तस्याः पयः पीत्वा सांसारिकैः कर्कशकष्टैः क्लिश्यमाना अपि सुखसागरस्य तरङ्गेषु दोलायन्ते। तस्याः पयः पीत्वा रोगैः क्लान्ता अपि कायेन मनसा च स्वास्थ्यम् अनामयं च लभन्ते। तस्याः पयः पीत्वा निष्क्रिया अपि सक्रियतां भजन्ते। तस्याः पयः पीत्वा असुरा अपि देवत्वं गच्छन्ति। सा जगन्माता **पाविका** वर्तते। अपवित्रान् पावयति सा। कालुष्येन मलिनान्तःकरणानां मालिन्यम् अपहरति सा। सा जगन्माता **वाजिनीवती** कीर्त्यते, यतः सा क्रियामयी सकलक्रियाकारिणी च विद्यते। तस्या एव क्रियया वायुः प्रवहति, सूर्यस्तपति, चन्द्रश्चन्द्रिकां प्रयच्छति, पर्जन्यो वर्षति। सा जगन्माता **धियावसुः** इति कीर्त्यते, यतः सा दिव्यबुद्धिप्रदानेन कर्मोपदेशेन च निवासयित्री जायते। सा जगदम्बा जीवनेऽस्माकं पदार्पणं कृत्वा स्वाधिकारे विद्यमानैरन्न- धन-बल-वेग-विज्ञानादिभिरस्माकं जीवनयज्ञं पूर्णतां लम्भयेत।

वेदवागपि सरस्वतीनाम्ना प्रोच्यते। सा हि जीनसंतर्पकेण ज्ञानरसेन परिपूर्णा। वेदवाण्यां किल भौतिकविद्याया अध्यात्मविद्याया आरोग्यविद्याया मनोविद्यायाः प्राणविद्यायाः सृष्टिविद्यायाः सर्वासामपि विद्यानां सरसं स्रोतः परिप्लवते। सापि **पाविका** वर्वर्ति। सा पाठकानां मनांसि पवित्रीकरोति। **वाजिनीवती** नाम्नापि प्रसिद्धा सा। सा हि सशक्तक्रियाकारिणी विद्यते। अर्थविचारपूर्वकं कृतो वेदवाण्याः पाठो वेदाध्यायिनम् उद्बोध्य तन्मनसि तीव्रां क्रियां जनयति। सा **धियावसुः** कथ्यते। नवनवोन्मेषशालिनीं प्रज्ञां प्रदाय कर्तव्यप्रेरणया च स्वाध्येतॄन् निवासयति सा।

अयि वरदे सरस्वति। अस्मभ्यं वरं प्रदेहि। अयि विद्यावीणाझङ्कारकारिणि मातः! अस्मान् विद्याझङ्कारं श्रावय। अयि दिव्ये ! स्वकीयेन दिव्यनादेन कृतार्थान् नः कुरु। अयि जननि! अस्माकं वन्दनां स्वीकुरु।

-आचार्य रामनाथ वेदालङ्कारः

सम्पादकीय

नव-संवत्सर के शुभागमन की मंगल वेला में मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के जन्मोत्सव के पावन अवसर पर गुरुकुल-पत्रिका का अंक सुधी पाठकों के करकमलों में समर्पित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की यह पत्रिका अपने प्रादुर्भाव काल से अधावधि ५० वर्षों के सुदीर्घ काल खण्ड में उत्तमोत्तम सामग्री पाठकों को प्रदान करती चली आ रही है। इस पत्रिका के सम्पादकों की गरिमामयी पावन परम्परा रही है। समय-समय पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयों पर विशेषांकों के प्रकाशन ने इस पत्रिका के गौरव को बढ़ाया है। उसी श्रृंखला में यह अंक भी अत्यन्त सामयिक विषय 'धर्म और संस्कृति' को लेकर उपस्थित है।

धर्म और राजनीति ये दो ऐसे शब्द हैं जिनपर बहुत विस्तार से लिखा पढ़ा गया है। हमारा सम्पूर्ण वाङ्मय धर्म की व्याख्याओं से भरा पड़ा है। भारतीय मनीषियों का धर्म विषयक चिन्तन अद्भुत है। धर्मो रक्षति रक्षितः, धर्मो धारयते प्रजा, धारणाद् धर्म इत्याहुः इत्यादि वचन मानव जीवन में धर्म की महत्ता और आवश्यकता को स्पष्ट करते हैं। मानव धर्म के व्याख्याता महर्षि मनु ने धर्म की व्यापक विवेचना मनुस्मृति में की है। युगनिर्माता महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में और वेद भाष्य में स्थान-स्थान पर धर्म का स्वरूप स्पष्ट किया है। भगवद्गीता में योगेश्वर अपने जीवन का ध्येय प्रतिपादित करते हुए कह रहे हैं-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दृष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।

भूमण्डल पर धर्म की स्थापना करना ही महापुरुषों के जीवन का लक्ष्य होता है। धर्म शब्द बहुत व्यापक हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई धर्म अर्थात् स्वरूप अवश्य होता है। अग्नि का धर्म है दाहकत्व, जल का धर्म है शीतलता इसी प्रकार मानव का भी धर्म है। धर्म के इस स्वरूप पर कहीं कोई विप्रतिपात्ति नहीं होनी चाहिए थी किन्तु दुर्भाग्य मानव जाति का कि धर्म और ईश्वर के नाम पर संसार में इतने युद्ध हुए हैं, मानव का इतना रक्त बहा है कि स्मरण कर हृदय कांप जाता है। धर्म के नाम पर अखण्ड भारत का विभाजन हुआ। यह दुष्परिणाम है धर्म के वास्तविक स्वरूप को न समझने का। धार्मिक व्यक्ति कभी दूसरे को दुःख देना नहीं चाहता। वह 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' को सदैव स्मरण रखता है। धर्म, सम्प्रदाय अथवा मत-मतानन्तर को एक समझ लेने की भूल के कारण यह अनर्थ हुआ है। मानव धर्म तो सबका एक ही है।

धर्म के समान राजनीति शब्द भी बहुत विवादास्पद है। प्रायः यह सुनने में आता है

कि राजनीति भले लोगों का कार्य नहीं है। छल-प्रपञ्च के बिना राजनीति में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती, धर्म को राजनीति से दूर रखना चाहिए आदि। स्वतन्त्र भारत में 'धर्म निरपेक्षता', शब्द को सुनकर भी धर्म के विषय में नाना प्रकार की भ्रान्तियां और सन्देह उत्पन्न हो जाते हैं। हमारे प्राचीन आर्य-ग्रन्थों, रामायण, महाभारत आदि में 'राजनीति' शब्द का प्रयोग न होकर 'राजधर्म' का प्रयोग किया गया है। कितना पवित्र और उदात्त भाव है राजधर्म शब्द में। इसमें छल, कपट, असत्य आदि का कोई स्थान ही नहीं है। शत्रु पक्ष को पराजित करने के लिए नीति का आश्रय भले ही किया जाता हो किन्तु प्रजा के साथ राजा का सम्बन्ध पिता-पुत्र का था। इस प्रकार धर्म मानव-मात्र के लिए सर्वदा कल्याणकारी था। राजाओं का जीवन भी अत्यन्त पवित्र था। महाराजा दिलीप, रघु, जनक सदृश अनेकानेक महीपतियों से यह वसुधा शोभायमान रही है। हम सभी देशवासी जिस राम राज्य की कल्पना करते हैं वह रामराज्य धर्म पर प्रतिष्ठित था। विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ने पर भी कभी श्रीराम ने धर्म की मर्यादा नहीं छोड़ी। महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं- 'रामो विग्रहवान् धर्मः' अर्थात् राम तो धर्म के साकार रूप हैं। जब धर्म और राजनीति दोनों का लक्ष्य देश में सुख, शान्ति, ऐश्वर्य की स्थापना है तो परस्पर विरोध कैसा। यह विचारकर मार्च ९८ में 'प्राचीन भारत में धर्म एवं राजनीति' विषय पर एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी आयोजित की गयी थी। इस शोध संगोष्ठी में विभिन्न विश्वविद्यालयों से विद्वान प्रतिनिधि पधारे थे। विद्वानों ने अपने वैदूष्यपूर्ण शोध पत्र प्रस्तुत किये थे। उन्हीं शोध-पत्रों में से कुछ पत्र इस अंक में प्रकाशित किये जा रहे हैं। शोध संगोष्ठी का उद्घाटन गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा प्रो० शेर सिंह जी ने मुख्य अतिथि के रूप में किया। विषय का प्रवर्त्तन शिक्षा जगत् की मूर्धन्य विदुषी पण्डिता प्रभात शोभा जी ने किया। अध्यक्षीय उद्बोधन के रूप में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री सूर्यदेव जी ने धर्म और राजनीति की सुन्दर विवेचना की। विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय डॉ० धर्मपाल जी तथा उपकुलपति प्रो० वेदप्रकाश जी ने अतिथियों का भावभीना स्वागत किया।

यह अंक कितना उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक है इसका निर्णय मैं सुधी पाठकों पर छोड़ता हुआ विनम्र निवेदन करना चाहूँगा कि विभिन्न विद्याओं के मर्मज्ञ विद्वान् अपने गवेषणापूर्ण शोध-लेख हिन्दी और संस्कृत भाषा में हमारे पास भेजते रहें। हम ऐसे सुन्दर, सुरुचिपूर्ण लेख प्रकाशित कर गौरवान्वित होते रहेंगे। पुनः नव वर्ष की मंगल कामनाओं के साथ यह विशेषांक सादर समर्पित है।

प्रो० महावीर
सम्पादक
गुरुकुल पत्रिका

संस्कृतसाहित्ये धर्मस्य राजनीतेश्च परस्परैकरसता

डा0 हरिगोपालशास्त्री
प्राचार्यः, गुरुकुलमहाविद्यालयः ज्वालापुरम्
हरिद्वारम्-२४९४०४ (उ०प्र०)

इदं नाम सहृदयैः सर्वैरपि विद्वद्भिः विचारणीयं विचार्य च अङ्गीकर्तव्यम् यत् यावन्तो व्यापाराः क्रिया-कलापा वा सोद्देश्या एव प्रवर्तन्ते। राजशासनपद्धतिरपि तासु समासु क्रियासु काचिद् एका क्रिया, तयाऽपि सोद्देश्यया सफलया च भवितव्यम्। क्रियाणां स्वरूपाणि तावद् अन्यानि अन्यानि भवन्ति। कृषि-वाणिज्य-विविधोद्योगात्मिका क्रिया ऐहिक-प्रयोजना भवन्ति। तासु च सम्यक् अनुष्ठितासु प्रचुरं ब्रीहियवादिलाभः द्रव्यादिलाभश्च प्रत्यक्षमनुभूयते। उक्तं च "नाकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते न च श्रूयते।" इति दिशा सर्वाऽपि क्रिया केनचिद् परोद्देश्येनैव अनुष्ठीयन्ते। पारलौकिक्योऽपि यज्ञ-दान-तपोऽनुष्ठान-शास्त्रपरिशीलन-उपनिषदादि श्रवणं मोक्षार्थिभिः अभ्यस्यमाणः मोक्षाय कस्मैश्चिद् महते वा श्रेयसे कल्पन्ते, अत्र नास्ति संशीतिलेशावसरः इति।

इत्थमेव प्रजापालन-शासनपद्धतयोऽपि विविधा राजनीतिशास्त्रे अन्यत्र वा शास्त्रशरीरे समवलोक्यते। चिरात् समतीते काले राजशासनानुसारेण राजतन्त्रानुसारेण च प्रजासु एकस्मिन् देशे एकस्य कस्यचिद् सैन्यद्रव्यादिप्रचुर-साधनसम्पन्नस्य प्रभुत्वमभूत्। स यत् वाञ्छति तदैव करोतिस्म। कदाचित् च एवंविधे शासने निरंकुशतायां वर्तमानः कश्चन शासकः प्रजासु अन्यायम् अहितम् अपि कर्तुं शक्नुयात्। यतो हि प्रभुता-मदम् अभिमानं च समुद्पादयति, तथा सति अहितम् आददानि कस्मिश्चिद् राजनि प्रजाविषादं अनेकविधं दुःखमपि अनुभवितुम् अर्हति।

चिरमतीतेषु वर्षेषु सर्वामपि अपेक्षितां मर्यादां विहाय विषयवासनासु प्रसृतमतयः राजानः बहुविधानि प्रजालुण्ठनादीनि अकार्याणि अन्यायानि समन्वतिष्ठन्। अयं खलु शाश्वतिकः सिद्धान्तः यद् समस्या समाधानं गवेषयति। एवंविधेभ्यः निरंकुशेभ्यः शासकेभ्यः आत्मनस्त्राणाय कैश्चन मनीषिभिः प्रजातन्त्रपद्धतेराविष्कारः कृतः। अनयाऽपि सरण्याः प्रजया यादृश-सुखस्य समृद्धेः न्यायस्य च अपेक्षा कृता सा न खलु सफला सकला च परिदृश्यते। अत्र च प्रज्ञावद्भिः महद्भिर्महानुभावैः यथा चैवविधैः पूर्वमहानुभावैः राज्यपालन-धर्मपालन-सदाचार-संरक्षणादिषु केचन सारगर्भिताः सिद्धान्ताः निश्चिताः, मन्वादिभिर्मनीषिभिः येन मार्गेण वर्णाश्रमादि

निर्णयः तत्र च अवश्यं वर्णाश्रमानुसारेण अनुष्ठेया धर्मा निर्दिष्टा, तथैव यावद्भिः तत्त्वदर्शिभिः हरिश्चन्द्र-भगीरथ-दिलीप- दशरथ-युधिष्ठिर-जनमेजय-प्रभृतीभिः ते वर्णिता आदर्शा अतीव विनयभावेन प्रजासु वात्सल्येन च यावता पालिता संरक्षिता वर्धिताश्च तावता प्रजासु सर्वत्र सुखस्य शान्तेः समृद्धेश्च निवासोऽभूत्, एवंविधया प्रजाशासनरीत्या महत् सम्मानं समादरोऽपि तैरन्वभूयत यतो हि ते शास्त्रद्रष्टारः अभवन्। धर्मशास्त्रस्य नीतिशास्त्रस्य दर्शनशास्त्रस्य अन्येषामपि प्रसिद्धानां समेषां शास्त्राणां सम्यग् ज्ञानम् तेषाम् अभूत्। शास्त्रमर्यादया वर्तमानानां अकल्याणस्य चर्चैव न भवति। किन्तु इदानींतने काले सर्वमपि विपरीतं जातम्। ते तु वदन्ति राष्ट्रे धर्मस्य चर्चाऽपि न कर्तव्या, ते च अहर्निशं '**धर्मनिरपेक्षता**' इति शब्दं मुहुर्मुहुरटन्तः धर्मनिरपेक्षताशब्दस्य स्वमपि अर्थमजानाना तदा अस्य शब्दस्य अर्थं परान् कथं बोधयेयुः। इमे खलु ज्ञान-दुर्बला शिष्टाचार-दरिद्रा इदमपि न जानन्ति यथास्मिन् लेखे पूर्वं संकेतितं यत् सर्वाऽपि क्रिया सफला भवति। प्रजाशासन-क्रियया सत्स्वपि गौणेषु अन्येषु प्रयोजनेषु मुख्यं तावत् प्रयोजनं धर्मस्य प्रचारणं प्रसारणमेव। उक्तं च भगवता-

"**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः**" (मनु ८/१५)

प्रजानां परिपालनं राज्ञां धर्मः। इयं धार्मिकी व्यवस्थैव राजधर्मः राष्ट्रधर्मः राजनीतिर्वा कथ्यते। धर्मस्य रक्षा प्रजानां रक्षा। धर्मस्य नाशः प्रजानां विनाशः। वयं तु अनुभवामः यदि मे स्वल्पं सुखं अन्याय जनितं अनुभवन्तः आगामि महादुःखगर्तपातं विवेकान्धत्वेन पश्यन्ति। यदि पश्येयुः कथं सदाचारं परित्यजेयुः।

भगवता सर्वज्ञेन मनुना महाराजेन श्रीमुखेन समुद्घोषितं यद्- "**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**" वैदिको हि धर्मः केवलं धर्म अन्यस्तु अधर्मेव। शास्त्रज्ञानमन्तरा स्वेच्छया समाचारिता तथाविधा आचारा विचाराश्च नैवाहिकाय नवामुष्मिकाय च सुखाय भवेयुः। तर्कशास्त्रेऽपि महामुनिना कणादेन सम्यग् उक्तम्- "**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः**" अस्मिन खलु सूत्रे अखिलमपि सिद्धान्तं रहस्यं च सम्यग् गुम्फितम्, '**परनित्यान्तरङ्गापवादानाम् उत्तरोत्तरं बलीयः**' इति न्यायेन यथा व्याकरणशास्त्रे पूर्वशास्त्रार्थं परशास्त्रं बलवत् तथा सूत्रं '**विप्रतिषेधे परं कार्यम्**' पदादपि अन्तरंगं बलवत् अन्तरङ्गात् अपि चापवादम्। तथैव धर्मरक्षणे धर्मनिःश्रेयसोर्मध्ये निःश्रेयसः बलवत्त्वम्। निश्रेयस् शब्देन शान्तिः, वैराग्यं ज्ञानं भक्तिः इति सर्वमपि संगृहीतम् भवति। इमा खलु सर्वाऽपि धर्मस्यैव शाखा प्रशाखा। यदि च राजा यस्मिन् शासने न प्रसीदति अपितु विषीदति, अनेकविधानि च कष्टानि अनुभवति तदेव शासनं कुशासनं गीयते।

इदमेव इदानीमपि भवति, यतो हि राजा धर्मदण्डं गृहीत्वैव आत्मानं प्रजां च रक्षितुं शक्नोति। अमीषां अविवेकिनां तथाकथित-शासकानां धर्मनिरपेक्षताकुमन्त्रे धर्मदण्डस्य कथैव न भवति। तस्याभावेन च यस्मै यद् यद् रोचते तत् तत् स्वैरितया समाचरति। किम्बहुलम्, प्रोज्झित-धर्माणां मानव-पशूनां आहारव्यवहारविषये पशुभ्यो व्यतिरेको न संतिष्ठेत्। तेन च मानवतायाः सर्वथा ह्रासैव परिलक्ष्यते। सुखं शान्तिश्च तदैव समुन्मिषेत् यदा च धर्मशास्त्रानुसारेण शासनं भवेत्। उक्तं च भगवता श्रीकृष्णेन-

"*तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते*"

अपि च महाराजेन मनुनाऽपि कथितम्-

"***सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।***
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति।"

-मनु० ७/५४

अनेन स्पष्टं ज्ञायते यद् धर्मशिक्षाविधुरा राजनीति विधवैव भामिनी, अमंगलायैव कल्पेत। तथा च धर्मनिरपेक्षता वदतां मुखमुद्रणाय सर्वैरपि बद्धपरिकरैर्भाव्यम्। धर्मविहीनाया राजनीतेः कुत्रापि कथा नास्ति। अन्तरानेन कथमपि देशस्य कल्याणं भवितुं नार्हति।

वैदिक जीवन दर्शन

डॉ० महावीर,
एम०ए० (वेद,संस्कृत,हिन्दी) डी.लिट्.व्याकरणाचार्य
प्रोफेसर एवं निदेशक वैदिक शोध संस्थान,
गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०,हरिद्वार

वेद मानव-मात्र को जीवन के कल्याण का श्रेष्ठतम मार्ग दिखाने वाला पवित्रम ज्ञान है। वेदों में वह जीवन दर्शन प्रतिपादित किया गया है, जो मानव की आसुरी वृत्तियों को दूर कर दैवी वृत्तियों का जागरण करता है। वेद संसार के कोटि-कोटि मानवों को सम्बोधित करते हुए कह रहा है-

"शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः" हे अमृत पुत्रों ! सबके सब सुनो ।

अमृत पुत्र कहकर सम्बोधित कर वेद हमें जीवन का सच्चा सुख अथवा आनन्द प्रदान करने वाला जीवन दर्शन सुनाना चाहता है। हम जीवन और जगत् को किस रुप में देखें,ताकि संसार के सत्य का साक्षात्कार कर सकें। सारी भ्रान्तियाँ, समस्त सन्देह दूर हो जायें, सब प्रकार के भेद-भाव मिट जायें और विश्व-मानव एकत्त्व प्राप्त कर लें। आज सारा संसार विभिन्न धर्मो ,विभिन्न जातियों,नाना प्रकार के मत-मतान्तरों और धाराओं मे बँटा हुआ है। परन्तु वेद की दृष्टि में संसार के सभी मानव एक हैं। जैसे उस ईश्वर के बनाये सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश, बादल, वर्षा, वृक्ष, वनस्पति सबके लिए हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए हैं।

वैदिक दर्शन का मूलभूत विचार यह है-'प्रकृति है, परन्तु प्रकृति ही सब कुछ नहीं है, प्रकृति के पीछे आत्मतत्त्व है, जिसे कुछ लोग परमात्मा कहते हैं। शरीर है, परन्तु शरीर ही सब कुछ नहीं, शरीर के पीछे आत्मतत्त्व है, वही तत्व जिसे कुछ लोग जीवात्मा कहते हैं।'[१] वेद का चिन्तन त्यागवादी है न कि भोगवादी। संसार के भोग्य पदार्थों को देखकर आँखें बन्द करना उचित नहीं, संसार को भोगो, परन्तु त्यागपूर्वक, संसार में रहो, परन्तु निर्लिप्त होकर, निस्संग होकर पानी में कमल-पत्र की तरह, घी में पानी की बूँद की तरह। भोग और त्याग का समन्वय भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का मेल वैदिक दर्शन का मूलाधार है।

आत्मज्ञान : वैदिक जीवन दर्शन की उत्कृष्ट अवस्था है- आत्म ज्ञान अथवा आत्म दर्शन। बृहदारण्यक उपनिषद में ऋषि याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी मैत्रेयी के मनोरंजक संवाद में इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं- 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।'[२]

---

१. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार-'वैदिक संस्कृति के मूल तत्व' पृ० सं०-२०
२. बृहदारण्यकोपनिषद्-२।४।५

आत्मा के सम्बन्ध में यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि 'तू सबकी नाप और सबकी कसौटी है।'[1]

आत्मदर्शी व्यक्ति के लिये भेद की सब दीवारें ढह जाती हैं और वह सब प्राणियों में एक ही आत्म-तत्व के दर्शन करता हुआ सबमें समभाव रखकर लोकोपकार में प्रवृत्त होता है।[2]

परमात्म सत्ता : जैसे शरीर में चेतनता देखकर, उसमें किसी आत्म-सत्ता का विचार उठता है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में एक नियामिका तथा व्यवस्थापिका शक्ति की प्रतीति एक विश्वात्मा की सत्ता को सिद्ध करती है। उस परम-सत्ता पर अटूट विश्वास और ईश्वर संसार के कण-कण में व्याप्त है, प्रत्येक प्राणी के अच्छे बुरे सभी कर्मों को वह देखता है, यह मानकर सदा शुभ-कर्म करना यह वैदिक दर्शन का सार तत्व है। यजुर्वेद में कहा है- 'योगी उसे देखता है जो हृदय-गुहा में छिपा है।[3] वेद में स्थान-स्थान पर ईश्वर को विश्व का पिता, माता, भ्राता, सखा, बन्धु एवं जनिता कहा गया है। वेद-मन्त्रों में परमात्मा के विविध गुणों और शक्तियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। परमात्मा की अनुभूति से आत्मा की नैतिक भावना प्रखर हो जाती है।

वैदिक आस्तिकवाद की एक और विशेषता यह है कि प्रत्येक आत्मा का परमात्मा के साथ सीधा सम्बन्ध है। मेरे और मेरे परमात्मा के बीच में कोई मध्यस्थ नहीं। जब परमात्मा मेरे हृदय में है तो वह अन्य किसी की अपेक्षा मेरे अधिक निकट है- 'तू हमारा है, हम तेरे हैं।'[4]

कर्म सिद्धान्त : वैदिक जीवन दर्शन का एक प्रमुख अंग है- कर्म सिद्धान्त, मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसको उस कर्म का वैसा ही फल प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त को मान लेने पर मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति शुभकर्मों की ओर हो जाती है। वेद में कहा है कि मनुष्य जैसा पकाता है वह पकाने वाले को वैसा ही प्राप्त होता है।[5]

ब्रह्म साक्षात्कार या मोक्ष : वैदिक दर्शन में मानव जीवन का परमलक्ष्य मोक्ष माना गया हैं मुक्ति वह अवस्था है जिसमें मनुष्य सब वासनाओं को त्यागकर पूर्ण काम हो जाता है और सब प्रकार के कष्ट-क्लेशों से दूर विशुद्ध, दिव्य आनन्द के महासमुद्र में हिलोरें लेने लगता है। परमपिता परमेश्वर मुक्त स्वभाव है, उनकी ज्ञान-बल-क्रिया स्वाभाविक है। प्रभु

---

१. सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि। यजु० १५।६५
२. यजु० ४०। ६, ७
३. वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सत्। (यजु० ३२ । ८)
४. त्वमस्माकं तव स्मसि (ऋग्० ८।९२।३२)
५. आ यो धर्माणि प्रथमः संसाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरुणि।
धारयुर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत।।अथर्व० ५।१।२

निर्विकार हैं, एकरस एवं आनंन्दस्वरूप हैं। इसके विपरीत मनुष्य की मुक्ति परिश्रम-साध्य है, स्वभाव-सिद्ध नहीं। मनुष्य यज्ञ, योग एवं उपासना आदि के द्वारा जितना-जितना परमात्मा का सामीप्य प्राप्त करेगा, उतना ही अधिक आनन्द का अनुभव करेगा। मुक्ति की दशा में जीवात्मा-परमात्मा का अत्यन्त सामीप्य होता है। यजुर्वेद में कहा गया है-

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।। यजु० ३१।१८

अर्थात् मैंने इस परमात्म देवरूप पुरुष को जान लिया है जो महान् है, सूर्य जैसा तेजस्वी है और अन्धकार से परे है। उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु को जीत सकता है। अमरता की ओर जाने का और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

इस प्रकार वैदिक जीवन दर्शन के केन्द्रीभूत विषय है परमात्मा, आत्मा, प्रकृति, कर्मफल, मोक्ष, ऋत एवं सत्य। इनके अतिरिक्त भी ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दू हैं, जिन पर विचार करना प्रासंगिक होगा।

समत्व भावना : वेद के अनुसार सब मनुष्य भाई-भाई हैं, जन्म से न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। इस समानता के भाव को धारण करते हुए हम सब ऐश्वर्य या उन्नति के लिए मिलकर प्रयत्न करें।

"अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।" ऋग्० ५।६०।५

एक ऋचा में कहा गया है "सब चलने वालों का मार्ग पर समान अधिकार है।"

समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे।"ऋग्० २।१३।२

ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त (१०।१८) समता का अत्यन्त हृदयस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत करता है-

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

अर्थात् हे मनुष्यों ! आप लोग परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर रहो। परस्पर मिलकर प्रेम से बातचीत करो। विरोध छोड़कर एक समान वचन कहो। आप लोगों के मन एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार पहले के विद्वज्जन सेवनीय और मनन करने योग्य प्रभु का ज्ञान सम्पादन करते हुए अच्छी प्रकार उपासना करते रहे हैं, उसी प्रकार आप लोग

भी ज्ञान-सम्पन्न होकर सेवनीय अन्न का सेवन एवम् उपासनीय प्रभु की उपासना करो। आप सबका वचन और विचार एक समान हो। सबका चित्त एक दूसरे के साथ मिला हो। मैं आप लोगों को एक समान विचारवान् करता हूँ। आप लोगों के संकल्प और भाव एक समान रहें। आपके हृदय एक समान रहें। आप लोगों के मन समान हों, जिससे आप लोगों का परस्पर का कार्य सदैव सहयोगपूर्वक भली भांति हो सके।

प्राणिमात्र में मित्र दृष्टि : वैदिक ऋषि सम्पूर्ण संसार को मित्रता की दृष्टि से देखने का संदेश देते हैं। वेद कहता है-

"मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षमहे।" यजु० ३६।१८

अथर्ववेद में गौओं, जगत् के अन्य प्राणियों एवं मनुष्यमात्र के कल्याण की कामना की गयी है-

"स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।" (अथर्व १।३१।४)

एक अन्य मन्त्र में कहा गया है-

प्रभु हमारे दोपाये और चौपाये पशुओं के लिए कल्याणकारी और सुखदायी हो-

"शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।" (यजु० ३६।८)

अथर्ववेद में ही एक अन्य स्थल पर कामना की गयी है कि भगवन्! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मैं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना रख सकूँ-

यांश्च पश्यामि यांश्च न, तेषु मा सुमतिं कृधि। अथर्व० १७।१।७

सौमनस्य की भावना :

वेदमन्त्रों में सभी जनों में समभाव, परस्पर सौहार्द की भावना व्यक्त की गयी है। यह अभिलाषा प्रकट की गई है कि परिवार के सभी सम्बन्धी प्रेम-पूर्वक मिल-जुलकर रहें, क्योंकि समाज का मूल परिवार ही है। सब एक दूसरे से मधुर-वाणी में बोलें और सबके मन एक-समान हों। उनमें एक-दूसरे के प्रति पूर्ण सहानुभूति हो। यह सौमनस्य प्रत्येक काल में रहे, जिससे समाज में कलह न हो और सब कार्य सुचारू रूप से चलते रहें, इसी से राष्ट्र उन्नति और समृद्धि को प्राप्त होता है। आज के स्वार्थपरक युग में स्नेह और सौहार्द का यह सन्देश और भी आवश्यक है। अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के-

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।

अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।

आदि मन्त्रों में यह भावना उत्कृष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई है।

मानव कल्याण की भावना :

ऋग्वेद संसार को सन्देश देता है कि एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य की सब प्रकार से रक्षा और सहायता करनी चाहिए।

"पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः' (ऋग्० ६।७५।१४)

अथर्ववेद में भी कहा है कि आओ हम सब मिलकर ऐसी प्रार्थना करें, जिससे मनुष्यों में परस्पर सुमति और सद्भावना का विस्तार हो-

"तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः"। अथर्व० ३।३०।४

ऋग्वेद कहता है-

"सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव"। ऋग् ६।१०५।५

मित्र जिस प्रकार मित्र का सहायक होता है वैसे ही तू सब मानवों का हित करने वाला बन और उनका तेज बढ़ा।

वेद की दृष्टि में ऋषि वही है जो मनुष्यों का हितकारी है-

ऋषिः स यो मनुर्हितः। ऋग् १०।२६।५

ऋत और सत्य की भावना :

वैदिक जीवन दर्शन का मौलिक सिद्धान्त है- ऋत और सत्य। बाह्य जगत की सारी प्रक्रिया विभिन्न प्राकृतिक नियमों के अधीन चल रही है। परन्तु उन सारे नियमों में परस्पर विरोध न होकर एकरूपता या ऐक्य विद्यमान है। इसी को 'ऋत' कहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य के जीवन के प्रेरक जो भी नैतिक आदर्श हैं, उन सबका आधार 'सत्य' है। वेद में 'ऋत' और 'सत्य' की महिमा का हृदयाकर्षक वर्णन अनेक स्थानों पर पाया जाता है। यथा-

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिराततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः।।
ऋतस्य दृष्ट्वा धरूणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वप्रषे वपूंषि।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन माव ऋतमा विवेशुः।। (ऋग् ४।२३।८-६)

अर्थात ऋत अनेक प्रकार की सुख-शान्ति का स्रोत है। ऋत की भावना पापों को विनष्ट करती है। मनुष्य को उद्‌बोधन और प्रकाश देने वाली ऋत की कीर्ति बहिरे कानों में भी पहुँच चुकी है। ऋत की जड़ें सुदृढ़ हैं, विश्व के नाना रमणीय पदार्थों में ऋत मूर्तिमान हो रहा है। ऋत के आधार पर ही अन्नादि खाद्य पदार्थों की कामना की जाती है। ऋत के कारण ही सूर्य-रश्मियां जल में प्रविष्ट हो उसको ऊपर ले जाती है।

इसी प्रकार वेद सत्य की महिमा से भरा पड़ा है। वेद-मन्त्रों में कहा गया है कि जिस प्रकार द्यु-लोक का धारण बाह्य लोक से सूर्य द्वारा हो रहा है वैसे ही वास्तविक रूप में इस भूमि का धारण सत्य के आश्रय से ही हो रहा है-

'सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।' ऋम्० १०।८५।१

अर्थववेद के भूमि-सूक्त में भी पृथिवी के धारण करने वाले पदार्थों में सर्वप्रथम सत्य का ही परिगणन किया गया है-

सत्यं बृहदृमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। अथर्व० १२।१।१

यजुर्वेद में कहा गया है कि सृष्टिकर्ता परमेश्वर ने सत्य और असत्य के रूपों को देखकर पृथक्-पृथक् कर दिया है। उनमें से श्रद्धा की पात्रता सत्य में ही है। अश्रद्धा की अनृत या असत्य में है।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।। यजु० १६।७७

भद्र-भावना :

वैदिक मन्त्रों की एक दूसरी विशेषता उनकी भद्र-भावना है। यह कल्याण-भावना भोगैश्वर्य-प्रसक्त, इन्द्रिय-लोलुप या समयानुकूल अपना काम निकालने वाले आदर्श हीन व्यक्तियों की वस्तु नहीं है। मानव को परमोच्च देव-पद पर अधिष्ठित कराने वाली भद्रभावना वैदिक प्रार्थनाओं में पदे-पदे देखी जा सकती है।

जैसे- आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सद्मिद्वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे-दिवे।।

यज्ञमय जीवन की कामना :

वेद-मन्त्रों में यज्ञीय जीवन जीने की प्रेरणा स्थान-स्थान पर दी गयी है। वेद कहता है-

उतिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।
आयुःप्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं यजमानं च वर्धय।। अथर्व० १८।६३।१

हे वेद-पाठ के देवता ! उठो, देवताओं को यज्ञ का सन्देश सुनाओ। आयु, प्राण, प्रजा, पशु और कीर्ति की वृद्धि करो और यज्ञकर्त्ता को हर प्रकार से बढ़ाओ।

इयं ते यज्ञियाः तनूः (यजु० ४।१३)

तेरा शरीर प्रभु प्राप्ति के लिए है।

ईजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् (अथर्व० १८।४।२)

यज्ञमय और योगमय जीवन का सन्देश वेदमाता इस प्रकार देती है-

मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः ।। ऋग्० १०।५७।१

हे ऐश्वर्य सम्पन्न प्रभो ! शान्ति तथा ऐश्वर्य के अभिलाषी हम सुपथ से कभी भी विचलित न हों। हम यज्ञमय जीवन से कभी पृथक् न हों। अदान-भावना तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि शत्रु हमारे भीतर न रहें।

वेद कहता है-

उत्क्रामातः पुरुष मावपत्था मृत्योः षड्वीशमवमुच्यमानः। अथर्व० ८।१।४

हे पुरुष ! उठ खड़ा हो, आगे बढ़, उन्नति कर, नीचे मत गिर, अवनति की ओर मत जा। यदि मृत्यु भी तेरे मार्ग में आकर खड़ी हो जाए तो भी परवाह मत कर, मौत की बेड़ियों को काटता हुआ आगे बढ़।

इस प्रकार वेद प्रतिपादित जीवन दर्शन, मानव मात्र को कल्याण और परमानन्द का सुमार्ग प्रतिपादित कर विश्व में सुख, शान्ति और विश्व बन्धुत्व की गंगा प्रवाहित करता है।

● ● ●

महाभारत में धर्म और राजनीति

डॉ० विक्रम कुमार
प्रोफेसर, दयानन्द शोधपीठ
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

धर्म :

महाभारत में इतिहास, धर्मशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र का त्रिवेणी रूप में अद्भुत संगम दृष्टिगोचर होता है। विषयवस्तु व घटनाओं की दृष्टि से जहाँ यह महाकाव्य इतिहास है वहाँ प्रसंगवश धर्म एवं राजनीति भी यत्र-तत्र चर्चित हुई है। इस ग्रन्थ का अन्त:साक्ष्य इसे धर्मशास्त्र का नाम देता है- धर्मशास्त्रमिदं महत्।[१] धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।[२]

संस्कृत साहित्य में धर्म विषयक एवं राजनीति विषयक भिन्न-भिन्न शास्त्र उपलब्ध होते हैं। परन्तु महाभारत पुरुषार्थचतुष्टय को ही स्वयं में समेटे हुए हैं, यह सत्य है। धर्म-शास्त्रों में धर्म का अभिप्राय मुख्य रूप से उदात्त मानवीय आधार तथा कर्त्तव्य हैं। "धृ" धातु से निष्पन्न धर्म शब्द का अभिप्राय उन गुणों व लक्षणों से है जो किसी भी वस्तु के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। अत: मानव को मानव बनाये रखने वाले समस्त गुण ही मानव-धर्म हैं जो सार्वकालिक व सार्वदेशिक हैं। मनुष्य को अभिलषित अभ्युदय व नि:श्रेयस को प्राप्त कराने में सहायक साधन भी धर्म हैं। वे आचार व व्यवहार भी जो उदात्त एवं उत्थापक होते हुये सर्वमान्य व सर्वप्रतिष्ठित हैं, धर्म के ही अंग हैं जिसकी ओर छान्दोग्य उपनिषत्कार ने संकेत किया है- त्रयो धर्मस्कन्धा: यज्ञोऽध्ययनं दानमिति।[३]

महाभारत के शान्तिपर्व में धर्म एवं राजनीति की विशद चर्चा है। बड़े भाई कर्ण की मृत्यु से शोकाभिभूत युधिष्ठिर को व्यास मुनि ने यह परामर्श दिया कि उन्हें पहले राजा या शासक के धर्म का पालन करना चाहिये तत्पश्चात् जीवन के संन्ध्याकाल में ही यतिधर्म का अनुपालन करना चाहिये। व्यास के परामर्श पर ही युधिष्ठिर ने शरशय्याशायी भीष्म पितामह के पास चारों भाई व श्रीकृष्ण सहित जाकर धर्म एवं राजनीति सम्बन्धी प्रश्न किये। भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को जो उत्तर एवं उपदेश दिया वह शान्तिपर्व में पूर्णतया उपलब्ध होता है। विषयवस्तु की दृष्टि से शान्तिपर्व दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्ध में राजधर्म का वर्णन है तथा उत्तरार्ध में मोक्ष का। चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों के कर्त्तव्य,

---

१. आदिपर्व २, ३८३
२. वही ६२, ५३
३. छान्दोग्य उप. २. २३. ।

माता-पिता एवं गुरु के प्रति कर्त्तव्य, आपद्धर्म, आत्म-संयम, यतिधर्म, सत्य-पालन तथा जीवन के प्रति तीनों पुरुषार्थों के पारस्परिक सम्बन्ध आदि विषय इस पर्व में विवेचित हुये हैं। यहाँ बताया गया है कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए संन्यास जितना सहायक तथा विश्वसनीय मार्ग है उतना ही गृहस्थ व शासक द्वारा स्वधर्म का पालन करते हुए निष्काम बुद्धि से अपने दायित्व को पूर्ण करने का मार्ग भी मुक्ति के लिए सहायक है।

इस पर्व में विशेषतः धर्म तथा राजनीति की ही शिक्षा विस्तार से मिलती है। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म का सर्वप्रथम स्थान है। शान्तिपर्व में उल्लिखित है कि अर्थ व काम से धर्म उत्तम है।

धर्मो राजन् गुणश्रेष्ठो मध्यमो ह्यर्थ उच्यते।
कामो यवीयानिति च प्रवदन्ति मनीषिणः।।४

जीवन में व्यवहार-संचालन एवं प्रजोत्पत्ति के लिए आवश्यक अर्थ व वाञ्छित काम का भी महत्व है। सुपरिष्कृत कामसुख की सिद्धि अर्थ के बिना कठिन है, अतः अर्थ विषय सुख का अनिवार्य साधन है और अर्थ धर्म के बिना सुस्थिर नहीं रह पाता। इसलिए शान्तिपर्व में कथन है-

धर्मं समाचरेत्पूर्वं तथार्थं धर्मसंयुतम्।
ततः कामं चरेत्पश्चात् सिद्धार्थस्य हि तत्फलम्।।५

अर्थ और काम को धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से निम्नकोटि का मानते हुये धर्ममूलक अर्थ एवं काम के महत्व को विद्वानों ने स्वीकारा है। अतः शान्ति पर्व में उल्लेख है कि जो मानव इन तीनों को समान रूपेण सेवन करता है वही उत्तम है-

धर्मार्थकामाः सममेव सेव्यास्त्वेकसेवी स नरो जघन्यः।
द्वयोस्तु दक्षं प्रवदन्ति मध्यं स उत्तमो यो निरतस्त्रिवर्गे।।६

परन्तु तीनों को समान महत्व देकर व्यावहारिक जीवन को जीने के संदेश के साथ-साथ महाभारतकार धर्म के पलड़े को अर्थ और काम से भारी ही मानते हैं-

धर्मश्चार्थश्च कामश्च धर्म एवोत्तरो भवेत्।
अस्मिंल्लोके परे चैव धर्मवित्सुखमेधते।।७
धर्माल्लोकास्त्रयस्तात प्रवृत्ताः सचराचराः।।८

---

४. शान्तिपर्व १६१-८ ५. वही १६१.२६
६. शान्तिपर्व १६१.३८ ७. शान्तिपर्व ६२.४८
८. शान्तिपर्व २६७.६

संसार में धर्म से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। जहाँ धन में सुख का अंशमात्र है वहाँ धर्म परमसुखकारक है-

धर्म एव कृतः श्रेयानिह लोके परत्र च।
तस्माद्धि परमं नास्ति यथा प्राहुर्मनीषिणः।९
धने सुखकलाकाचिद् धर्मे तु परमं सुखम्।।१०

तीनों लोकों के जन धर्मपूर्वक आचरण के लिए ही प्रवृत्त हुए हैं-

धर्माल्लोकास्त्रयस्तात प्रवृत्ताः सचराचराः।११

ऋषिजन धर्म का अवलम्बन पाकर ही संसार सागर को तैर जाते हैं। समस्त लोक इसी पर प्रतिष्ठित है। धर्म के द्वारा ही देवताओं ने स्वर्ग को प्राप्त किया है। अर्थ=धन यदा समस्त प्रयोजन भी धर्म में ही स्थित है-

धर्मेणैवर्षयस्तीर्णा धर्मे लोकाः प्रतिष्ठिताः।
धर्मेणदेवा दिविष्ठा धर्मे चार्थः समाहितः।।१२

शान्तिपर्व में धर्म का तात्पर्य कोई मन्तव्य विशेष अथवा संस्थागत कोई कर्मकाण्ड-पूजा पद्धति विशेष यद्वा किसी व्यक्ति विशेष के प्रति अन्धश्रद्धालु होना नहीं है। अपितु जीवन प्रणाली एवं आचार विशेष है, जो समाज के सदस्यों का, उसके व्यवहारों, कार्यों तथा गतिविधियों का नियमन करता है। जो धारण करता है वही धर्म है-

धारणाद् धर्ममित्याहुधर्मेण विधृता प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।१३

अभ्युदय से तात्पर्य सांसारिक लौकिक, भौतिक पदार्थों की उन्नति है तथा निःश्रेयस से अभिप्राय पारलौकिक, आगामी जन्म एवं मोक्ष-प्राप्ति आदि की उन्नति। प्रायः लौकिक व पारलौकिक उन्नति में विरोध प्रतीत होता हैं परन्तु यहाँ दोनों प्रकार की उन्नति में समन्वय का दर्शन होता है। धर्म ही एक मात्र ऐसी सीढ़ी है जिसके द्वारा दोनों प्रकार की उन्नति सुगमता से हो जाती है। भीष्म पितामह के अनुसार मूलमन्त्र है- पारस्परिक सद्व्यवहार। जो व्यवहार हमारे लिए प्रतिकूल है वह व्यवहार हमें अन्यों के साथ नहीं करना चाहिए। जैसा व्यवहार हम अपने प्रति अन्यों से चाहते हैं वैसा ही व्यवहार हमें अन्यों के प्रति भी करना चाहिए। व्यवहार का यह स्वरूप धर्म का सर्वस्व है। इसे समानता का भाव भी कहा जा सकता है। धर्म का यह सामान्य एवं मूलभूत सिद्धान्त समाज के लिए सामंजस्य और

९. शान्तिपर्व २७६.६   १०. शान्तिपर्व २६३.५५
११. शान्तिपर्व २६७.६   १२. शान्तिपर्व १६१.७
१३. शान्तिपर्व ११०.११

सद्भाव का सूत्र बन जाता है। सबके सुख-दुख हमारे हैं इस तथ्य को हृदयंगम कर सबके साथ अनुकूल व्यवहार करना धर्म का सामाजिक तथा व्यक्तिगत स्वरूप है।

यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पुरुषः।
न तत्परेषु कुर्वीत जानन्न प्रियमात्मनः।।१४

प्रायः जीविका अर्जन करते समय ही प्राणी से अधर्म का आचरण हुआ करता है। अधर्म एवं असत्य मार्ग के आश्रय के बिना आजीविका चलाना या भौतिक उन्नति कर पाना असम्भव समझा जाता है। परन्तु महाभारतकार इस मान्यता से असहमत हैं। उनका कथन है- जीवों से द्रोह न करके जीविका का निर्वाह किया जाता है, वही परम धर्म है। विश्व में सब प्राणियों से मित्रता का व्यवहार करते हुये, मन वचन, कर्म से सबके हित का कार्य करना ही धर्म है-

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः।
या वृत्तिः स परो धर्मस्तेन जीवामि जाजले।।
सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः।
कर्मणामनसा वाचा स धर्म वेद जाजले।। १५

धर्म के लक्षण प्रसंग में शान्ति पर्व के कुछ कथन संग्राह्य एवं संप्रेरणीय हैं-

नास्ति सत्यात् परो धर्मः। शा.प. १५७.२४
अंहिसैव हि सर्वेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता। शा.प. २५७.६
दमेन सदृशं धर्म नान्यं लोकेषु शुश्रुम। शा.प. १५४.१०
दमं निःश्रेयसं प्राहुर्वृद्धा निश्चयदर्शिनः। शा.प. १५४.७
दमेन हि समायुक्तो महान्तं धर्ममश्नुते। शा.प. १५४.११
यः स्यादहिंसासम्पृक्तः स धर्म इति निश्चयः। शा.प. ११०.१०
न हर्तव्यं परधनमिति धर्मः सनातनः। शा.प. २५६.१२

अनेकधा सांसारिक व्यवहारों के आचरण के समय धर्म के विषय में निर्णय करना अति कठिन होता है। बहुधा मिथ्या व्यवहार और हिंसा आदि अधर्मात्मक कार्यों को विशेष अवस्थाओं में लोग धर्म-रूप होने पर प्रमाणों की आवश्यकता होती है। अतः महाभारतकार सदाचार, स्मृति, वेद एवं अर्थ-प्रयोजन को धर्म के प्रमाण यद्वा लक्षण स्वीकार करते हैं-

---

१४. शान्तिपर्व २५१.१६
१५. शान्तिपर्व २५४.६, ६
१६. अन्य श्लोक भी द्रष्टव्य हैं। शा.प. १२.१६, २१.११, ३७.७, १३०.१५, १४८.६-७, १६१.५, १५४.६-१६, १५५.१, ४, ५, ६, १३, २६७.१३-१४

सदाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम्।
चतुर्थमर्थमित्याहुः कवयो धर्मलक्षणम्।।१७

धर्म के निर्णय के लिए प्रमुख प्रमाण वेद हैं पुनः स्मृतियां, तत्पश्चात् सत्पुरुषों, सात्त्विक जनों के आचार, अर्थ व कर्म का प्रयोजन-किस प्रयोजन के लिए कर्म का आयोजन किया जा रहा है इसे भी धर्म के निर्णय में प्रमाण माना है। यदि उचित प्रयोजन के लिए कर्म है तो वह भी धर्म है। धर्म के सम्बन्ध में मतभेद होने पर महान् व्यक्तियों के मार्ग को ही उचित माना जाता है-

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्था।१८

शान्तिपर्व में वर्णित है- धर्मनिर्णय के विषय में कोई संशय उत्पन्न होने पर दक्षवेदशास्त्रज्ञाता अथवा धर्मशास्त्रवेत्ता पण्डित जो व्यवस्था देवें उसे ही धर्म स्वीकार करना चाहिए।

दश वा वेदशास्त्रज्ञास्त्रयो वा धर्मपाठकाः।
यद् ब्रूयुः कार्य उत्पन्ने स धर्मो धर्मसंशये।।१६

इस प्रकार महाभारत में धर्म का विशद वर्णन उपलब्ध है जो मानव जाति के समस्त वर्गों, अशिक्षित, अर्धशिक्षित, शिक्षित एवं प्रशिक्षित जनों के लिए मार्ग प्रदर्शक है। आज की वारांगनेय राजनीति की हुल्लड़बाजी के वातावरण में धर्म को राजनीति से बहिष्कृत करने के जो ढिंढौरे पिटे जा रहे हैं वह सर्वथा निन्दनीय एवं स्वार्थ प्रेरित है। राजनीति धर्म के बिना अन्धी होती है। धर्म उसे दृष्टि प्रदान करता है और जब पतनोन्मुख राजनीति मार्गभ्रष्ट होकर समग्र प्रजा को लीलने लगती है तब इसी दृष्टि को पाकर वह राजनीति "राजधर्म" बन जाता है जिसकी छत्रछाया में किसी भी प्रकार की अनिष्ट की आशंका नहीं रहती।

राजनीति :

महाभारतकार इसी राजधर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं यदि राजधर्म को राष्ट्र से तिलांजली दे दी जाती है तो त्रयी विद्या समुद्र में डूबने लगती है, सभी आश्रमों के धर्म विरूद्ध होने लगते हैं-

मज्जेत् त्रयी दण्डनीतौ हतायां सर्वे धर्मा च भवेयुर्विरुद्धाः।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां गताः स्युः क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे।।२०

यदि राजधर्म स्खलित होने लगे तो अन्य प्रजाओं के सभी धर्म शिथिल होकर विचलित होने लगेंगे। जैसे लगाम घोड़े को व अंकुश हाथी को नियन्त्रण में रखने वाला है वैसे ही सम्पूर्ण प्राणियों को यथायोग्य नियमों में निबद्ध रखने वाला यही राजधर्म ही है-

---

१७. शान्तिपर्व २५१.३ १८.
१६. शान्तिपर्व ३७.१५, २०. शान्तिपर्व ६३.२८

यथा हि रश्मयोऽश्वस्य द्विरदस्याङ्कुशो यथा।
नरेन्द्रधर्मो लोकस्य तथा प्रग्रहणं स्मृतम्।।२१

वस्तुस्थिति यह होती है कि राजा अपने राज्य में सुव्यवस्था के दौरान केवल अर्थ अपितु धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति का भी कारण बनता है। धर्महीन, कर्त्तव्यहीन, आलसी, प्रमादी, निराश, उदासीन एवं जो केवल भौतिक चकाचौंध में ही उलझकर रह जाते हैं, उन समस्त प्रजाओं को वह मोक्ष पथ का अनुगामी भी बनाता है। अतः वह पुरुषार्थ चतुष्टय का कारण बनता है और उसकी नीति मात्र राजनीति न रहकर राजधर्म बन जाता है-

त्रिवर्गोऽत्र समासक्तो राजधर्मेषु कौरव।
मोक्षधर्मश्च विस्पृष्टः सकलोऽत्र समाहितः।।२२

राजा ही युगप्रवर्तक होता है। भीष्मपितामह उपदेश करते हुये कहते हैं कि राजा ही सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग एवं कलियुग की सृष्टि का कारण बनता है। वह अपनी सुव्यवस्था से सतयुग एवं दुर्व्यवस्था से कलियुग की स्थापना कर सकता है-

राजा कृतयुगस्त्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च।
युगस्य चतुर्थस्य राजा भवति कारणम्।।२३

राजा को युग का स्त्रष्टा मानने पर ही "यथा राजा तथा प्रजा" की लोकोक्ति सिद्ध होती है। इसका अभिप्राय यही है कि राजा जिस प्रकार की नीति व व्यवहार से युक्त होगा उसकी प्रजा भी उसी आचरण से युक्त होगी। इसलिए वह युग का प्रवर्तक कहा जाता है। राजा के सद्‌गुण से युक्त होने पर उसकी प्रजा भी सद्‌गुण युक्त होगी और ऐसे राजा-प्रजा का काल सतयुग कहलायेगा।

महाभारत के अनुसार राजधर्म के माध्यम से राजा संन्यासी के पद को यद्वा संन्यासी के द्वारा प्राप्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। व्यास का कथन है- जो राजा काम-क्रोध से रहित होकर दण्डनीति के नियमानुसार प्रजा का पालन करता है तथा सब प्राणियों पर समदृष्टि रखता है वह संन्यासियों के द्वारा प्राप्य ब्रह्मपद को प्राप्त करता है-

अकामद्वेषयुक्तस्य दण्डनीत्या युधिष्ठिर।
समेक्षिणश्च भूतेषु भैक्षाश्रमपदं भवेत्।।२४

संन्यासी भोगयोग्य वस्तुओं को त्याग कर जो पुण्य-लाभ प्राप्त करता है उस पुण्य-लाभ को राजा प्रजापालन रूप राजधर्म की श्रेष्ठता के द्वारा ही प्राप्त कर लेता है-

---

२१. शान्तिपर्व ५६.५ २२. शान्तिपर्व ५६.४
२३. शान्तिपर्व ७०.२५ २४. शान्तिपर्व ६६.५

सर्वभूतेष्वनुक्रोशं कुर्वतस्तस्य भारत।
आनृशंस्यप्रवृत्तस्य सर्वावस्थं पदं भवेत्।।२५

राजा के गुण एवं कर्त्तव्य–

राजा के गुण एवं कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में भी महाभारतकार विस्तार से वर्णन करते हैं। उनके मत में राजा का प्रमुख गुण जितेन्द्रयत्व है। जितेन्द्रिय राजा ही प्रजापालन एवं शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है :-

जितेन्द्रियो नरपतिर्बाधितुं शक्नुयादरीन्।२६

तदनन्तर "उद्यम" राजा का द्वितीय गुण है। महाभारत में उद्यमशील राजा की ही प्रशंसा है तथा निरूद्यमी राजा की उपमा गृह में स्थित नारी से की गयी है–

**नित्योद्युक्तेन वै राज्ञा भवितव्यं युधिष्ठिर।
प्रशाम्यते च राजा हि नारीवोद्यमवर्जितः।।२७**

महाभारत के शान्तिपर्व में राजा के गुणों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। अध्याय ७१ में राजा के ३६ गुणों का उल्लेख किया गया है। राजा के कर्त्तव्यों में प्रमुख कर्त्तव्य समस्त प्रजा को धर्माचरण में प्रवृत्त कराना है। यह तथ्य है कि राजा प्रजा को धर्माचरण में तभी प्रवृत्त करवा सकता है जब वह स्वयं धर्माचरण करता हो। इस सम्बन्ध में कुछ श्लोक संग्राह्य हैं–

**चातुर्वर्ण्यस्य धर्माश्च रक्षितव्या महीक्षिता।
धर्मसंकररक्षा हि राज्ञां धर्मः सनातनः।।
एष एव परो धर्मो यद्राजा रक्षयेत् प्रजाः।
भूतानां हि यथा धर्मे रक्षणं च परा दया।।
धर्मे तिष्ठन्ति भूतानि धर्मो राजनि तिष्ठति।
स राजा साधु यः शास्ति स राजा पृथिवीपतिः।।
स्वेषु धर्मेष्ववस्थाप्य प्रजाः सर्वा महीपतिः।
धर्मेण सर्वकृत्यानि समनिष्ठानि कारयेत्।।
अर्थसिद्धेः परं धर्म मन्यते यो महीपतिः।
ऋतां च कुरूते बुद्धिं स धर्मेण विरोचते।।२८**

राजा के एक अन्य आवश्यक कर्त्तव्य की ओर संकेत करते हुए मनु ने कहा है कि राजा को अप्राप्त की प्राप्ति की इच्छा रखनी चाहिये, प्राप्त वस्तुओं की यत्नपूर्वक रक्षा करनी

२५. शान्तिपर्व ६६.१३   २६. शान्तिपर्व ६६.५
२७. शान्तिपर्व ५७.१   २८. शान्तिपर्व ५७.१५, ७२.२६, ९१.५, ९०.१६, ६३.७

चाहिये, रक्षित वस्तुओं की नाना उपायों से वृद्धि तथा बढ़ाये हुये धन को सत्पात्रों में दान करना चाहिए-

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत् प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत्।।२६

इस अभिप्राय को महर्षि व्यास ने अन्य प्रकार से कथन करते हुये लिखा है कि जो राजा कर प्रणाली के माध्यम से धन को बढ़कर उसे प्रजा के कल्याण कार्यों में नहीं लगाता वह प्रशासक तस्कर होता है-

बलिषड्भागमुद्धृत्य बलिं तमुपयोजयेत्।
न रक्षति प्रजाः सम्यग् यः स पार्थिवतस्करः।।३०

प्रजा का सम्यक् परिरक्षण न कर सकने वाले राजा के राष्ट्र में जिस किसी भी प्रकार का कोई भी अमंगल कार्य (हिंसा, चोरी, व्यभिचार, भ्रष्टाचार आदि) होता है उस कार्य के फलस्वरूप पाप का चौथा भाग राजा को भोगना पड़ता है-

यद्राष्ट्रे कुशलं किंचिद् राज्ञोऽरक्षयतः प्रजाः।
चतुर्थं तस्य पापस्य राजा भारत विन्दति।।३१

दण्ड व्यवस्था :

राजनीति में दण्डनीति प्रमुख भूमिका निभाती है। यथायोग्य दण्ड प्रयोग करना जहाँ अति कठिन कार्य है वहाँ यह कर्त्तव्य राजा के लिए अनिवार्य भी है, जिसके यथावत् पालन न हो पाने के कारण प्रशासन मूलतः प्रकम्पित होने लगता है। शान्तिपर्व में दण्डनीति के विषय में भी वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ कथन है- प्रजा दण्ड के भय से पाप कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता है। यदि दण्ड प्रजा की रक्षा न करे तो समस्त प्रजा घनघोर अन्धकारित नारकीय दुरवस्था में डूब जाती है और वह एक-दूसरे को खाने लगती है-

दण्डस्यैव भयादेके न खादन्ति परस्परम्।
अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डो न पालयेत्।३२

इसमें किंचन्मात्र भी सन्देह नहीं कि यथा रीति दण्डनीति का प्रयोग करने से समस्त प्रजा की कार्यसिद्धि होती है। यदि इसका दुरुप्योग किया जाता है तो यह सर्वतोनाशी ही होता है। यदि स्वच्छ दण्डनीति नियमतः नहीं अपनायी जाती तो राष्ट्र में उच्छृंखलता अनाचार और मात्स्य न्याय का ही साम्राज्य प्रस्थापित हो जाता है-

२६. मनु. ७.६६ ३०. शान्तिपर्व १३७.६६
३१. शान्तिपर्व ७६.८ ३२. शान्तिपर्व १५.७

दण्डनीत्यां प्रणीतायां सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः।
कौन्तेय सर्वभूतानां तत्र मे नास्ति संशयः।।३३

शान्तिपर्व में मन्त्री, अध्यक्ष, कोष, दुर्ग, सेना, गुप्तचर, युद्ध, सन्धि आदि राजनीति के अन्य अंगों पर भी प्रकाश डाला गया है तथा राजधर्म से सम्बन्धित अन्य अनेक विषय भी उपलब्ध होते हैं।

अन्ततः "महाभारत में धर्म एवं राजनीति" विषय को उपसंहृत करते हुये महाभारतगत एक श्लोक के माध्यम से हम कह सकते हैं कि प्रशासक राजा इन्द्रतुल्य अपनी सहस्त्र आँखों से देख-परख कर वास्तविक स्थिति का सही मूल्यांकन करते हुये जिस धर्म का भलीभांति निश्चय कर लेता है वही श्रेष्ठ धर्म स्वीकार करने योग्य है-

सहस्त्राक्षेण राजा हि सर्व एवोपमीयते।
स पश्यति हि यं धर्मं स धर्मः पुरुषर्षभ।।३४

---

३३. शान्तिपर्व १५.२६ द्रष्टव्य १५.२, ४, ७, १०, २६-३०
३४. शान्तिपर्व ६२.४१

● ● ●

पूर्वमध्यकाल में राजनीतिक चुनौती और धर्म

डॉ0 ब्रजेश कृष्ण कठिल,
प्राचीन भारतीय इतिहास
संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा) – 136119

भारतीय इतिहास से पूर्वमध्यकाल (लगभग सातवीं सदीं से लेकर बारहवीं सदी ई० तक) व्यापक राजनीतिक परिवर्तनों के कारण विशिष्ट महत्व रखता है। यह काल भारत में केन्द्रीय सत्ता के ह्रास और क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना का काल था। विघटनकारी शक्तियों के उदय और उनके पारस्परिक संघर्ष ने पूर्वकालिक गुप्त साम्राज्य की सार्वभौम सत्ता का अवसान कर दिया। इसके स्थान पर सम्पूर्ण उत्तर भारत में अनेक स्थानीय राजवंशो का उद्‌भव हुआ जो क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना में तो सफल हुए किन्तु सम्पूर्ण उत्तर भारत को एक सबल सूत्र में बाँधने में असफल रहे। शासकों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा, राष्ट्रीय एकता का अभाव, आतंरिक विघटन और समान्तवादी मनोवृत्ति के निरंतर विकास ने इस कालखण्ड में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की युगान्तकारी प्रक्रिया आरम्भ कर दी। भारतीय राजनीति के इस लगभग अराजक दौर में बाह्य आक्रमणों के आघात ने देश के समक्ष एक कठिन राजनीतिक और सामाजिक चुनौती प्रस्तुत की।

वस्तुत: पूर्वमध्यकालीन उत्तर भारत में राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक और धार्मिक परिवर्तनों की जो प्रक्रिया विकसित हुई वह एक तरह के विरोधाभासों को प्रतिबिम्बित करती है। यह काल अतिशय सम्पन्नता का काल है, किन्तु इस काल में कृषिदासों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। कला और साहित्य में विपुलता इस काल की वशिष्टता है, किन्तु इनमें नवीन दार्शनिक वैशिष्ट्य का अभाव है। इसी तरह यह काल राजपूतों के अभ्युदय, उनकी वीरता और शौर्य की गाथाओं का काल है।, किन्तु इसी काल में उत्तर भारत विदेशी आक्रमणों का सामना करने में असफल रहा और उसे बार-बार पराजय स्वीकार करनी पड़ी। प्रश्न यह है कि तत्कालीन भारतीय समाज, जो बल, धन और आवागमन के साधनों से परिपूर्ण और परम्परागत मूल्य, दार्शनिक चिन्तन और धार्मिक आदर्शो की विरासत से सम्पन्न समाज था, बाह्य आक्रमण के दबाव को झेलने में क्यों असफल रहा? अनेक विद्वानों ने इस प्रश्न के उत्तर में सैन्य दुर्बलताओं और राजवंशों की पारस्परिक ईर्ष्या की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इस आलेख का अभीष्ट इस राजनीतिक और सामाजिक चुनौती की धार्मिक प्रतिक्रिया को रेखांकित और विश्लेषित करना है।

यह महत्वपूर्ण है कि पूर्वमध्यकाल से पहले भी उत्तर भारत का क्षेत्र अनेक बार

विदेशी आक्रमणों का सामना कर चुका था। हारवामनी-शासकों के आक्रमण से लेकर यूनानी विजेता सिकन्दर, बाख्त्री यवन, शक, पह्लव, कुषाण एवं हूण आक्रमणों को भारतीय समाज सह गया। इन आक्रमणकारियों ने भारत के भूभाग पर अपने राज्य स्थापित किए। उनके आगमन से अल्पकालिक सांस्कृतिक झंझावात आए लेकिन वे सभी आक्रमणकारी ब्राह्मणीय अथवा हिन्दू समाज-व्यवस्था में विलीन हो गए[२]। इसके विपरीत पूर्वमध्यकाल में अरबों और तुर्कों के आक्रमण को हिन्दू समाज पहले की तरह आत्मसात नहीं कर सका।

यद्यपि सिंध पर अरबों के आक्रमण सातवीं सदी के प्रथमार्द्ध में ही आरम्भ हो गए थे, किन्तु मुहम्मद-बिन-कासिम[३] के द्वारा ७१२ ई० में सिन्ध पर अधिकार के पश्चात लगभग ५०० वर्षो तक मुस्लिम आक्रमण उत्तर भारत के विभिन्न राजवंशों के लिए संकट और चुनौती बने रहे। इसमें सन्देह नहीं कि प्रतिहार राजाओं ने अरबों के भारत-प्रवेश को दीर्घकाल तक रोके रखा। ग्वालियर अभिलेख में इस वंश के संस्थापक नागभट प्रथम को म्लेच्छों अर्थात् अरबों को परास्त करने वाला बताया गया है।[४] बाद में तो अरबों के विरूद्ध प्रतिहार शासक इतने शक्तिशाली हो गए कि अरब यात्री सुलेमान प्रतिहार शासक भोज को अरबों और इस्लाम का सबसे बड़ा शत्रु कहता है[५]। अरबों के आक्रमण की तुलना में गजनी के तुर्कों के आक्रमण भारत के लिए निःसन्देह अधिक घातक सिद्ध हुए। अर्थलिप्सा और इस्लाम के प्रचार और प्रसार से प्रेरित महमूद गजनी ने इन आक्रमणों से विपुल सम्पदा लूटी एवं नगरों और मंदिरों का ध्वंस किया[६]। मुहम्मद गोरी और कुतुबुद्दीन के आक्रमणों का सामना राजस्थान के चाहमान[७] और बुन्देलखण्ड के चंदेलवंश[८] ने दीर्घकाल तक किया और इसी संघर्ष में इन राजवंशों की सत्ता ध्वस्त हुई। मुस्लिम आक्रमण के इस सतत प्रवाह को रोकने में तमाम प्रयासों के बावजूद भारतीय राजवंश अन्ततः असफल रहे। इस प्रक्रिया में धन-जन की प्रभूत हानि हुई और इसके साथ ही भय और निराशा भारतीय जनमानस के अंग बन गए। ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्लिम आक्रान्ताओं के आक्रमण भारतीय राजनीति के लिए तो चुनौती थे ही, इसके साथ-साथ ये आक्रमण भयावह सामाजिक और सांस्कृतिक संकट भी थे।

अरबों के सतत आक्रमणों से हिन्दू समाज की जड़े हिल गई और सामाजिक जीवन के ढांचे में एक विलक्षण परिवर्तन हुआ। सिंध पर अधिकार करने के बाद ही इस्लाम धर्म की प्रसार नीति के अंतर्गत बड़ी संख्या में भारतीयों को मुसलमान और दास बनाया गया। इस्लामीकरण के इस ज्वार ने भारतीय हिन्दू समाज के समक्ष एक विकट संकट खड़ा कर दिया। भारतीय मनीषा को कुछ ऐसे उपायों की आवश्यकता थी जो उन लोगों को पुनः हिन्दू बना सकें जिन्हें बलपूर्वक इस्लाम में दीक्षित कर दिया गया था। यह इस काल की नई समस्या थी। इसके पहले के स्मृतिकारों ने अपने ग्रंथों में इस तरह के धार्मिक पुनरागमन की कोई व्यवस्था नहीं दी थी। तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार पूर्वमध्यकाल में नए धार्मिक नियम समाज को प्रदान किए गए। हिन्दू धर्म में पुनरागमन की यह व्यवस्था आठवीं

शताब्दी ई० में आरम्भ हुई। इसके प्रणेता महर्षि देवल है। देवल स्मृति[९] के अनुसार, महर्षि देवल सिन्धु नदी के किनारे ध्यानावस्थित थे, तभी कुछ ब्राह्मणों ने उनसे बलपूर्वक "म्लेच्छ" बनाए गए हिन्दुओं की रक्षा का मार्ग पूछा। इसके उत्तर में देवल ने बलपूर्वक बनाए गए मुसलमानों को हिन्दू धर्म में लौटने की व्यवस्था दी[१०]। स्मृति के अनुसार, यदि मुसलमान बनने की अवधि बीस वर्ष से कम है तो उन्हें पुन: हिन्दू धर्म में स्वीकार किया जा सकता है। स्मृति का स्पष्ट मत है कि जिन व्यक्तियों ने भय अथवा बल के कारण म्लेच्छ धर्म स्वीकार कर लिया है तथा जिन स्त्रियों का अपहरण कर गर्भवती भी कर दिया गया है, उनका भी प्रायश्चित करने के पश्चात हिन्दू धर्म में पुनरागमन किया जा सकता है। स्मृति का कथन है कि आक्रान्ता द्वारा अपहृत स्त्री तीन दिन का उपवास करने पर रजस्वला होने के पश्चात निर्दोष और शुद्ध मानी जा सकती है। गर्भवती स्त्री संतानोत्पत्ति के पश्चात पुन: हिन्दू समाज में स्वीकार की जा सकती हैं। देवल के अनुसार, स्त्री के गर्भ में यह संतान शल्य के समान है। इस शल्य के शरीर से निष्कासन के पश्चात स्त्री स्वर्ण के समान शुद्ध हो जाती है[११]। यद्यपि ऐसी स्त्रियों से उत्पन्न होने वाली संतान के विषय में स्मृति मौन है, किन्तु स्मृति के विवरण से यह निष्कर्ष निरूपित किया जा सकता है कि ऐसी संतानों को भी हिन्दू समाज-व्यवस्था के सदस्य के रूप में मान्यता दी गई थी। निश्चित-रूप से हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ऐसी संतानें प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न मिश्रित जातियों के अंतर्गत स्वीकार की जाती रही होंगी क्योंकि म्लेच्छ आक्रान्ता को हिन्दू समाज-व्यवस्था के सदस्यों से सदैव ही निम्न स्वीकार किया गया[१२]।

इस सामाजिक परिवर्तन की पुष्टि अरब इतिहासकारों के वृत्तान्तों से होती है। बिलादुरी और अलबीरूनी ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि मुसलमान बनाए गए लोगों को पुन: हिन्दू धर्म में स्वीकार करने का नियम उस काल में था। बिलादुरी[१३] के अनुसार, सिंध के गर्वनर जुनैद ने राजपूताना और गुजरात में आतंक फैलाया तथा अनेक लोगों को मुसलमान बनाया किन्तु उसके उत्तराधिकारी के समय अलहिन्द के से लोग मूर्तिपूजक धर्म में लौट गए। इसी भाँति अलबीरूनी[१४] उल्लेख करता है कि हिन्दू दास अपने धर्म में वापिस लौटते है तो उन्हें उपवास के द्वारा प्रायश्चित करना पड़ता है तथा उन्हें गोबर और गोमूत्र के सेवन से शुद्ध किया जाता है। देवल स्मृति चान्द्रायण तथा पराक व्रतों और गोमूत्र और गोमय (गोबर) के सेवन का उल्लेख करती है। देवल स्मृति में सीमान्त पर स्थित सिन्ध और सौवीर जैसे म्लेच्छ देश से लौटने पर भी "शुद्धि" का विधान है[१५]।

जैसा कि देवल स्मृति और अरब इतिहासकारों के इन वृत्तान्तो से स्पष्ट है, विवेच्य काल के विधिकारों ने विदेशी आक्रान्ताओं के दुर्धर्ष आघातों से समाज की रक्षा का हर सम्भव प्रयास किया। यह पूर्व मध्यकाल में धर्म की नवीनता से और सर्वथा नवीन परिस्थितियों में उसकी उपयोगिता का विलक्षण उदाहरण है।

पूर्वमध्यकाल में उपरिलिखित राजनीतिक संकट से जूझने के लिए धर्म के एक अन्य पक्ष पर भी ध्यान देना आवश्यक है। भारतीय जाति और वर्ण-व्यवस्था अपने नियमों में प्रायः कठोर मानी जाती है किन्तु उस समय की विशिष्ट परिस्थितियों में विधिकारों ने सामाजिक नियमों में तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार अभूर्तपूर्व किए। यद्यपि ये परिवर्तन सामाजिक ढांचे के मूलस्वरूप को बनाए रखते हुए ही किए गए। देश की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इस काल में एक नए वर्ग राजपुत्रों या राजपूतों का उद्भव हुआ और उन्हें भारतीय समाज-व्यवस्था में क्षत्रियों के रूप में सम्मानित स्थान मिला[१६]। युद्ध के वातावरण में क्षात्र धर्म प्रासंगिक हो उठता है। अनेक युद्धकर्मा क्षत्रियेतर जातियों को जिनमें विदेशी तक सम्मिलित थे, क्षत्रिय घोषित किया गया। छत्तीस राजपूत-राजवंशो की सूची में हूणों का उल्लेख है[१७]। यहाँ तक कि ब्राह्मण कुलों द्वारा राजत्व की प्राप्ति के साथ क्षत्रियत्व का स्वीकार इस काल के सामाजिक इतिहास की विशिष्ट घटना है। घटियाला अभिलेख[१८] में प्रतिहारों के मूल पुरूष हरिश्चन्द्र को ब्राह्मण और उसकी क्षत्रिया पत्नी से उत्पन्न पुत्रों को क्षत्रिय कहा गया है। क्षत्रियों पर राष्ट्र एवं समाज की सुरक्षा का भार था। तत्कालीन अभिलेखों में उन्हें गो-द्विज का रक्षक और आर्यावर्त को म्लेच्छों से मुक्त कराने वाला कहा गया है[१९]।

पूर्वमध्यकाल में ही राजस्थान में आबू के समीप यज्ञ से राजपुत्रों के उद्भव की कथा गढ़ी गई, और यह स्वीकार किया गया कि इनका उदय धर्म की रक्षा के लिए हुआ है। तमाम युद्ध करने वाली जातियों को क्षत्रिय वर्ण का स्वीकार करना तत्कालीन विधि निर्माताओं की जागरूकता और देश की चुनौती के लिए समीचीन प्रतिक्रिया थी।

इतना ही नहीं, पूर्वमध्यकाल में स्मृतियों के टीकाकारों ने वर्णधर्म की व्याख्या में ढील दी और समय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ब्राह्मणों, वैश्यों और शूद्रों को सैन्य-सेवाओं की अनुमति दी। वर्ण धर्म के नियमों में परिवर्तनों की पुष्टि तत्कालीन अभिलेखों से होती है। चंदेल शासकों के अभिलेखों में ब्राह्मण सेनापतियों के विवरण मिलते हैं।[२०] मुसलमानों के विरूद्ध संघर्ष करते हुए वीरगति प्राप्त करने वाले ब्राह्मणों का उल्लेख भी कुछ अभिलेखों में प्राप्त है[२१]। अनेक अभिलेखों में ब्राह्मणों की ''राउत'' और ''ठाकुर'' जैसी सामंती उपाधियां मिलती है, जिन्हें प्रायः क्षत्रिय धारण करते थे[२२]। इसी भांति वैश्यो के द्वारा क्षत्रिय कर्म अपनाए जाने की जानकारी इस युग में मिलती है। कलचुरि वंश के सामन्त वैश्य-ज़ातीय वल्लभराज की विजयों का उल्लेख एक अभिलेख में है[२३]। इसके अतिरिक्त भी अनेक वैश्यों के सेनापतियों और राज्याधिकारियों के रूप में दृष्टान्त मिलते है। एक अभिलेख में चौलुक्य कुमारपाल के द्वारा सज्जन नामक कुम्हार का चित्तौड़ के प्रशासक के पद पर नियुक्त किए जाने का उल्लेख है[२४]। यह तत्कालीन सामाजिक संकट की पृष्ठभूमि में वैश्यों और शूद्रों के प्रति यथासम्भव सामाजिक उदारता का परिचायक है।

विशिष्ट परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए सम्भवतः विवेच्यकाल के धार्मिक चिन्तकों ने समायानुकूल प्रतिमानों की स्थापना की। यह ध्यान देने योग्य है कि पूर्वमध्यकाल में पृथ्वी की रक्षा करने वाले वराह अवतार को विशेष मान्यता मिली। प्रतिहार और चंदेल-कला में इस तरह की देव-प्रतिमाओं को विशेष प्रश्रय दिया गया। उल्लेखनीय है कि प्रतिहार वंशीय भोज ने स्वयं आदिवराह का विरूद धारण किया[२५]। शक्ति को प्रदर्शित करने वाला शिव का संहाररूप भी इस काल में बहुत लोकप्रिय हुआ। शिव के इस रूप में गजासुरसंहार, त्रिपुरान्तक, अंधकासुर, कामान्तक, यमान्तक आदि संहारक प्रतिमाओं का बहुविध निर्माण, प्रचार और प्रसार इस काल की अपनी विशेषता है। इसी भांति देवी का महिषासुरमर्दिनी रूप भी पूर्वमध्यकाल की राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल प्रतीत होता है। देवी के इस संहारक रूप की अनेकों प्रतिमाएं सम्पूर्ण देश में लोकप्रिय हुई।[२६]

राजनीति और धर्म के प्रसंग में गोविन्दचन्द्र पाण्डेय का मत उल्लेखनीय है। उनके अनुसार, जब तक धर्म और राजनीति का संकट न हो तब तक धर्म के कारण राजनीतिक संघर्ष सम्भव नहीं। मजहबी व्यवस्था को राजनीति का आधार मानने पर असहिष्णुता, हिंसा और सत्ता-लोलुपता रूपी राजनीतिक विकृतियों से धर्म का सम्बन्ध जुड़ सकता है। किन्तु भारतीय परम्परा में प्रत्येक समुदाय को स्वधर्माचरण में स्वतन्त्र मानने के कारण, धर्म सत्ता के संघर्ष की ओर उदासीन था और सत्ता भी धर्म भेद की ओर सहिष्णु थी[२७]। सम्भवतः यह भारतीय परम्परा का प्रभाव ही था कि पूर्वमध्यकाल की विशिष्ट राजनीतिक परिस्थितयों में भी धार्मिक असहिष्णुता परिलक्षित नहीं होती। प्रतिहार वंश के शासक, जिन्होंने बहुत लम्बे समय तक मुस्लिम धर्म के प्रसार को भारत में रोके रखा, अपने व्यक्तिगत जीवन में धार्मिक रूप से अत्यन्त उदार थे। उनके काल के अभिलेख इस बात का उल्लेख अनेक बार करते हैं कि इस वंश के शासकों में देवशक्ति विष्णुभक्त, वत्सराज तथा महेन्द्रपाल (द्वितीय) महेश्वर भक्त, नागभट (द्वितीय), महेन्द्रपाल (प्रथम) तथा विनायकपाल भगवती भक्त और रामभद्र आदित्यभक्त थे। किसी राजवंश की धार्मिक सहिष्णुता का यह अनुपम उदाहरण धर्म की बाह्य चुनौती के प्रसंग में रेखांकित करने योग्य है।

इस तरह पूर्वमध्यकाल में राजनीतिक और सामाजिक चुनौती के समक्ष भरतीय चिन्तकों ने एक ऐसी व्यापक और प्रभावकारी धार्मिक प्रतिक्रिया का निर्माण किया जिसके दूरगामी परिणाम हुए। सम्भवतः यह उसी प्रतिक्रिया का चमत्कार है कि राजनीतिक पराभव के पश्चात भी हिन्दू समाज की मूल प्रकृति आज भी विद्यमान है।

पादटिप्पणियाँ

१. इतिहास चयनिका (डा० सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रंथ), जर्नल आफ द यू०पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी, पृ०२१ तथा आगे।

२. बी० एन० एस० यादव, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नॉदर्न इण्डिया, पृ०३२ तथा आगे।
३. मकबूल अहमद, इण्डो अरब रिलेशंस, पृ० ६८।
४. एपियाग्राफिया इण्डिका, भाग १८, पृष्ठ ९९ तथा आगे।
५. मकबूल अहमद, उपर्युक्त, पृ० ६९।
६. एम० हबीब,सुलमान महमूद आफ गजनी, पृ० १९।
७. दृष्टव्य, दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डाइनेस्टी।
८. इलियट एण्ड डाइसन, हिस्ट्री आफॅ इण्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग-२ पृ० २३१-२।
९. स्मृतिनाम् समुच्च, आनन्दाश्रम संस्करण, ग्रंथ संस्था, ४८, पृ०८५-८९।
१०. पी०वी०काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, एण्ड-२, भाग-१, पृ० ३८९-९१।
११. वही।
१२. वाई०बी०सिंह, ''चैजिंग डाइमेंशंस आफ सोशियो-पोलिटिकल आइडियल्स इन अर्ली मीडिवल इण्डिया'', ऐसेज आन इण्डोलोजी, पोलिटी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन (सं० एस०डी०त्रिवेदी), पृ० ३२२।
१३. इलियट एण्ड डाउसन, उपर्युक्त, भाग-, पृ०१२६।
१४. ई०सी०एचाउ, अलबिरूनीज इण्डिया, भाग-२, पृ० १६२।
१५. देवल स्मृति, श्लोक ६५।
१६. आर०सी० मजूमदार (सं०) द क्लासिकल एज, पृ० ६४-६५।
१७. बी०एन०एस० यादव, उपर्युक्त, पृ० ३२।
१८. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग-१८, पृ० ९५।
१९. इण्डिका एण्टीबवेरी, भाग-२, पृ०२०१-१२।
२०. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग-१, पृ० २२२।
२१. वही, भाग-५, पृ० २०।
२२. वही, भाग-४, पृ० १५८, भाग-१६, पृ० २१६। भाग-२०, पृ० १३३।
२३. कार्पस इस्क्रिपशनस इण्डिकेरम भाग-४।
२४. दशरथ शर्मा, उपर्युक्त, पृ० २४८।
२५. आर०सी०मजूमदार (सं०) द एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३२।
२६. ब्रजेश कृष्ण, द आर्ट अण्डर द गुर्जर प्रतिहारराज, पृ० १३५,१५३-४,१६४।
२७. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, भारतीय परम्परा के स्वर, पृ० १९।

वेदों में धर्म एवं राजनीति

डॉ0 ज्ञान प्रकाश शास्त्री

मानव एक समाज सापेक्ष प्राणी है। समाज से रहित मानव की कल्पना संभव नहीं है, उसका अस्तित्व समाज की धड़कन पर अवलम्बित हैं। समाज के सम्यक् संचालन के लिए धर्म और राजनीति दोनों की उपयोगिता है। धर्म से रहित राजनीति सूखी हुई लता के समान है, जिस पर फल तो मिलते ही नहीं हैं, लेकिन कूड़ा अवश्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार राजनीति के बिना धर्म लंगड़ा है, वह चाहकर भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समाजरूपी गाड़ी को चलाने के लिए धर्म और राजनीति दोनों अपरिहार्य हैं, न केवल अनिवार्य है, अपितु एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। धर्म आत्मा है और राजनीति उसका शरीर है। शरीर के बिना आत्मा भोग करने में असमर्थ है और आत्मा के बिना शरीर हिल भी नहीं सकता। अत: एक दूसरे के सहयोग में दोनों की पूर्णता है। इसलिए धर्मनिरपेक्ष राजनीति या राजनीति निरपेक्ष धर्म ये दोनों स्थितियाँ मानव के विकास में बाधक हैं।

अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त के प्रथम मन्त्र में धर्म और राजनीति का समन्वय करता हुआ मंत्रदृष्टा ऋषि कहता है कि राज्य के सफल संचालन के लिए बृहत् सत्य, उग्र, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ इन छ: सूत्रों का उचित उपयोग आवश्यक है।[१] ये ही छ: सूत्र पृथिवी को धारण करते हैं।

१. सत्यं बृहत्- उक्त पृथिवी सूक्त के मन्त्र में ऋषि ने सर्वप्रथम "सत्यं बृहत्"[२] पद को अभिव्यक्त किया है। इसका अर्थ है व्यापक सत्य। राजनीति के पथ पर चलने वाले को व्यापक सत्य की पहिचान होनी ही चाहिए।

सत्य के स्वरूप को स्पष्ट करता हुआ ब्राह्मण ग्रन्थ का ऋषि कहता है कि देवता और प्राणों से जो भिन्न है वह "सत्" है तथा देवता और प्राण "त्यं" हैं।[३] अपने उक्त कथनं को स्पष्ट करता हुआ अन्त में ब्राह्मण कहता है कि यह सब कुछ सत्य है।[४]

सत्य से निरपेक्ष होने का अर्थ है कि जीवन के गहनतम ज्ञान से निरपेक्ष होना। कोई भी राजनीति धर्म (सत्य) से निरपेक्ष होगी- अर्थात् वह अपने में सबको समाहित करके नहीं चलेगी तो वह कुण्ठा का कारण बनेगी और कुण्ठा की प्राप्ति राजनीति का लक्ष्य नहीं मानी जा सकती।

---

१. अर्थववेद, १२.१.१, "सत्यं बृहदृंतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।"
२. वही, १२.१.१.
३. शां०आ०, ३, ६ कौ० ३४०१.६ "किं तद्यत्सत्यमिति, यदन्यद्देवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सदथ यद्देवाश्च प्राणाश्च तत् त्यम्।"
४. वहीं ३.६. कौ० ३४० १.६. "सत्य मित्येतावदिदं सर्वम्"।

ऋग्वेद भाष्य भूमिका में वेदोक्त धर्म का प्रतिपादन करते हुए महर्षि दयानन्द ने इसी सत्य का उद्‌घाटन किया है। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त के मन्त्रों को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने संदेश दिया है कि वेदोक्त धर्म वह है कि जिसमें सभी लोग साथ मिलकर चलते हैं एक जैसा बोलते हैं और एक जैसा ज्ञान प्राप्त करते हैं।[५] जहाँ सबके विचार समान हैं, जहाँ सबकी सभा समिति समान हैं, जहाँ मन समान हैं, जहाँ खान-पान समान हैं, वहाँ धर्म है।[६] इसके अतिरिक्त जिनके संकल्प समान हैं, जिनके हृदय समान हैं, उनमें धर्म का निवास है।[७] इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्रों के आधार पर कहा जा सकता है कि समता ही धर्म है और विषमता अधर्म/राजनीति का प्रारम्भ भी इसी उद्देश्य से हुआ है। विषमता को समता में रूपान्तरित करने की प्रक्रिया का नाम राजनीति है।

जहाँ लोगों के मन, वचन और कर्म में साम्य नहीं, वह राष्ट्र बहुत दिनों तक एक नहीं रह सकता। तभी तक कोई देश एक रह सकता है, जब तक उसकी दिशा एक है। तभी तक कोई रथ, रथ (रमणीय वाहन) बना रह सकता, जब तक उसके सभी अश्व एक ही दिशा में अपना पूरा बल लगाते हैं।

उपर्युक्त मन्त्र में "समिति" के एक होने का उल्लेख किया है।[८] यह भी तभी सम्भव है कि जब सभी के मन, वचन और कर्म समान हों अर्थात् आचरण में विषमता न हो। "समिति" शब्द में आया "सम्" स्वयं इस तथ्य की उद्‌घोषणा कर रहा है कि बिना आचरण साम्य के समिति एक नहीं हो सकती और बिना समिति के हम सभासद् अर्थात् सभ्य नहीं बन सकते।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि धर्म का अर्थ सत्य है और सत्य का अर्थ है "समता" तथा उस समता की प्राप्ति का साधन है राजनीति। इसलिए राजनीति को धर्म सापेक्ष होना ही चाहिए। धर्मनिरपेक्ष राजनीति विषमता को जन्म देती है और विषमता कुण्ठा को और कुण्ठा दुःख के रूप में प्रकट होती है।

यदि दुःख मुक्ति मानवता का लक्ष्य है तो राजनीति का आधार समता ही हो सकती है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमने भारतीय गणतन्त्र को धर्म निरपेक्ष घोषित कर दिया। यह तो मात्र एक प्रतिक्रिया है। इससे पूर्व एक हजार वर्ष तक भारतीय धर्म राजनीति निरपेक्ष बना रहा। इसी का परिणाम था कि हमसे कम शक्तिशाली लोग हम पर शासन करते रहे। एक हजार वर्ष की लम्बी गुलामी के इतिहास में कदाचित् किसी सन्त ने

५. ऋग्वेद १०, १९१.२
६. वहीं, १०, १९१.३
७. वही, १०, १९१,४
८. वही, १०, १९१.३

एक बार भी ऐसा नहीं कहा कि इस देश को आजाद होना है। विदेश जाना पाप है, यह तो अनेकशः धर्मग्रन्थों ने कहा, परन्तु दासता पाप है, यह कहने का साहस मध्ययुगीन धर्म नहीं दिखा पाया। इस कारण धर्म भी अक्षुण्य नहीं रह सका और न राजनीति पथभ्रष्ट होने से बच सकी। दोनों कलुषित हो गये। इस कलुष की कालिमा से जन्म लेने वाली स्वतन्त्रता भी हमें खण्डित ही मिली और उसमें निरन्तर पिछले पचास वर्षों में विषमता का जहर घोला जा रहा है। इसका कारण धर्म निरपेक्ष होना है। जीवन में जो कुछ भी अर्थपूर्ण है, वह धर्म है। जिससे मनुष्य ऊँचा उठ सकता है, वह सब धर्म है। धर्म से रहित राजनीति को स्वीकार करने वाले समाज में, उसी प्रकार की दुर्गन्ध उठने लगती है, जैसी कि सड़ी हुई लाश में आती है। अतः धर्म निरपेक्ष राजनीति का अवलम्बन देश हित में उचित नहीं माना जा सकता है।

राजा के बिना राजनीति अर्थहीन है। राजा के प्रमुख गुणों का उल्लेख करता हुआ यजुर्वेद कहता है कि उसका सर्वप्रमुख गुण सत्यवादी और सत्य तथा न्याय को पथ पर चलना है।[९] इसी तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए यजुर्वेद में कहा गया है कि राजा और राजपुरुषों को उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा और वाणी को कभी असत्य न होने दें, जितना कहें उतना ठीक-ठीक करें। जिसकी वाणी सब काल में सत्य होती है। वही पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है।[१०] एक अन्य स्थल पर राजा के चयन योग्य निम्न ग्यारह गुण बताए गए हैं।[११] १-उपयाम गृहीत- जिसने सत्य नियमों को यम के समान धारण कर रखा है। २-ध्रुवसदम्-योग विद्या के मार्ग पर अटल स्थित है। ३-नृषदम्-जो जनता जनार्दन के हृदय में विराजमान है अर्थात् जिसे उसकी योग्यता के कारण सब चाहते हैं। ४-मनःसदम्-जो लौकिक विज्ञान में अग्रणी है। ५-अप्सुसदम्- जो जल विज्ञान द्वारा जल में स्थित सम्पदा का दोहन करने या कराने में समर्थ हैं। ६-घृतसदम्-जो घृत आदि बल व ओज प्रदान करने वाले पदार्थों का भक्षण करने से तेजस्वी है। ७-व्योमसदम्-विमान आदि से आकाश में गमन करने में समर्थ है। ८-पृथिविसदम्-जो पृथ्वी पर भ्रमण करने वाला है। ९-अन्तरिक्षसदम्-आकाश में चलने वाला है। १०-दिविसदम्-जो न्याय और प्रकाश करने में समर्थ है। ११-नाकसदम्-जो दुख से रहित समाधि में स्थिति हो सकता है।

उपर्युक्त मन्त्र में प्रतिपादित राजा के ग्यारह गुणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वही राजा होने के योग्य है जो सत्य और न्याय के प्रति समर्पित है। जिसने अपने जीवन में धर्म के दोनों रूपों[१२] अभ्युदय और निःश्रेयस् का सम्यक् समन्वय किया हुआ है अर्थात् जिसमें

---

९. यजुर्वेद, ९.१०-देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवस इन्द्रस्योतमं नाकमा रुहेयम्।
१०. वही ९, १२ "एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं बाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाचं वनस्पतयो विमुच्यध्वम्।"
११. वही, यजुर्वेद ९.२ ।
१२. वैशे० १.१.२ यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धि स धर्मः।

सम्भूति और विनाश, विद्या और अविद्या, भक्ति और ज्ञान, कर्म और उपासना साथ साथ रहते हैं।[१३] जिसके जीवन का लक्ष्य नरक न होकर अर्थात् मोक्ष है। वह व्यक्ति राजा होने योग्य है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वेद की दृष्टि में धर्म निरपेक्ष राजनीति या राजनीति निरपेक्ष धर्म दोनों में से कोई भी पक्ष स्वीकार्य नहीं हैं। वस्तुतः देखा जाए तो धर्म का अभ्युदय मूलक पक्ष राजनीति है। राजनीति का सीधा सा अर्थ है कि समाज और व्यक्ति के जीवन को व्यवस्थित करना और धर्म का मतलब है कि जीवन के श्रेष्ठतम मूल्य, इसलिए इन दोनों में विरोध नहीं है, प्रत्युत ये एक दूसरे के सहकारी हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो धर्म का साधन राजनीति है क्योंकि राजनीति के माध्यम से वर्णाश्रम धर्म तथा अन्य मर्यादाओं की स्थापना करना सुकर है। जिन्हें धर्म का उपदेश सुपथ नहीं दिखा पाता, राजनीति का दण्ड उनका मार्ग प्रशस्त कर देता है। इस प्रकार हम यह निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि धर्म निरपेक्ष राजनीति या राजनीति निरपेक्ष धर्म न देशहित में है, न समाज हित में और न व्यक्तिहित में।

अर्थववेद के पृथिवी सूक्त में आए "जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथोकसम्"[१४] मन्त्र के आधार पर पं० शिवकुमार शास्त्री तथा डॉ० रामेश्वर दयाल गुप्त[१६] का मन्तव्य है कि उक्त मन्त्र में साम्प्रदायिक झगड़ों को मिटाकर देश को समृद्ध करने का उपाय बताया गया है अर्थात् शासन को धर्म निरपेक्ष रहकर सभी धार्मिक समुदायों में सद्भावना बनाए रखने में सहयोग करना चाहिए। उक्त मन्त्र का अर्थ वे करते हैं कि यह पृथिवी अनेक धर्मों वाले तथा अनेक भाषा भाषी लोगों को एक घर के साधन धारण करती है। उक्त मनीषी द्वय का यह विचार मन्त्र में आए "विवाचसं नानाधर्माणम्"[१७] पदों के आधार पर लिया गया है।

निस्संदेह उक्त अर्थ को ग्रहण किया जा सकता है, लेकिन विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या धर्म अनेक होते हैं ? क्या वेद अनेक धर्मों को स्वीकार करता है ? निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि धर्म केवल एक है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि धर्म ही सत्य है इसलिये सत्य बोलने वाले के लिए कहा जाता है कि वह धर्म कहता है और धर्म बोलने वाले के लिये कहा जाता है कि वह सत्य बोल रहा है।[१८] यदि धर्म अनेक होंगे तो धर्म को सत्य से भिन्न भी मानना होगा, जो कि किसी को भी स्वीकार नहीं होगा, क्योंकि तब फिर धर्म और अधर्म के बीच विभाजक रेखा खींचना नहीं रह जायेगा।

---

१३. यजुर्वेद ४०.११.१४
१४. अथर्व १२.१.४५
१५. शास्त्री, शिवकुमार, श्रुतिसौरभ, पृ० ४२६-३०
१६. गुप्त, डॉ० रामेश्वर दयाल, दयानन्द सरस्वती द्वारा पुनः प्रस्तुत वैदिक राजदर्शन पृ० १७५, लाइट एण्ड लाइफ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १६७६
१७. अथर्व ० १२.१.४५
१८. शत० ब्रा० १४.४.२.२६ यो वैस धर्म सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुर्धर्म वदतीति धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति।

आचार्य मनु ने धर्म का लक्षण करते हुए "दशकं धर्म लक्षणम्"[१९] के सिद्धान्त की उद्घोषणा की है। यहाँ पर मनु स्पष्ट करते हैं कि धर्म तो एक है, लेकिन लक्षण उसके दस हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वेंद में धर्म निरपेक्ष शासन प्रणाली की संकल्पना नहीं की गयी है। मन्त्र में आए "नानाधर्माणम्"[२०] का आशय यह माना जा सकता है कि अनेक गुणों वाले अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले लोग पृथिवी पर रहते हैं, जैसे एक घर में रहने वाले सदस्य भिन्न स्वभाव के होने पर भी सद्भाव से रहते हैं, उसी प्रकार "वसुन्धरैव कुटुम्बकम्" की भावना से प्रत्येक को आपस में सामंजस्य बैठाना चाहिए। यह वेद का सन्देश है।

धर्म के साथ गठबन्धन हो जाने पर राजनीति कुटिलता का परित्याग कर देती है फिर राजनीति सत्य और असत्य को एक मानकर नहीं चल सकती, धोखा देना फिर संभव नहीं रह जाता। निर्णय करते समय अपने और पराये का मोह जाता रहता है, फिर वही होता है, जो होना चाहिए। इसलिए धर्म का आधार भी समता है और राजनीति का भी। समता के पथ से विचलित धर्म अधर्म बन जाता है और राजनीति कूटनीति बन जाती है। तब न्याय और अन्याय, उचित और अनुचित की कसौटी मात्र स्वार्थ रह जाता है। सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझने के सिद्धान्त के विपरीत अपनी उन्नति में सबकी उन्नति है, यह स्वार्थ दर्शन मुखर हो उठता है। तब धर्म और राजनीति का मूल स्तम्भ न्याय ढह जाता है।

अत: यह अपेक्षित ही नहीं आवश्यक भी है कि धर्म के साथ राजनीति का सुखद संयोग बना रहे, तभी धर्म इस धरा पर जीवित रह सकता है और राजनीति मानव मात्र से आगे प्राणिमात्र के कल्याण का साधन बन सकती है।

---

१९. मनुस्मृति ६.९२
२०. अथर्व १२.१.४५

छान्दोग्योपनिषद में धर्म और राजनीति

डॉ0 मनुदेव बन्धु,
अध्यक्ष वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

धर्म का रहस्य- धार्मिक आदर्शों ने भारतीय संस्कृति को विशेष स्वरूप प्रदान किया है। धर्म उस अलौकिक और रहस्यमय शक्ति का प्रतीक है। जिसकी नींव पर व्यष्टि रूप में मानव और समष्टि रूप में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रतिष्ठित है। धर्म केवल आचार संहिता मात्र नहीं है। उसकी धारणा में नैतिकता और आध्यात्मिकता का समावेश है।[१] इसका सम्बन्ध उन महनीय तत्त्वों से है जिसके आश्रय से मानव अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करता है। वस्तुतः उपनिषदों में धर्म का अन्ततोगत्वा उद्देश्य है-आत्मज्ञान की प्राप्ति अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति।

छान्दोग्योपनिषद् में धर्म के महनीय और उदात्त रूप के दर्शन होते हैं। इसमें स्थान-स्थान पर नैतिकता और सदाचार का उपदेश है। जो मानव को स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर करता हुआ उस श्रेष्ठतम और सूक्ष्मतम ब्रह्म की प्राप्ति के योग्य बनाता है। यही कारण है कि धर्म के साथ कर्म की व्याख्या की गयी है।

धर्म के तीन स्कन्ध- यज्ञ, अध्ययन, दान, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, उपासना, तप आदि अनेक धार्मिक तत्त्वों का विस्तृत विवेचन छान्दोग्योपनिषद् में किया गया है। इसमें धर्म के तीन स्कन्धों का कथन किया गया है।[२]

१. यज्ञ, अध्ययन और दान को प्रथम

२. तप को द्वितीय

३. ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए जीवन पर्यन्त आचार्यकुल में वास करने को धर्म का तृतीय स्कन्ध कहा गया है।

जो इसका पालन करता है वह पुण्य लोकों को प्राप्त होता है जो इनका पालन करते हुए ब्रह्म भाव में समीचीन स्थित रहता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

यज्ञ- उपनिषदों में यज्ञ का व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है। यज्ञ का तात्पर्य केवल अग्नि होत्र आदि ही में सीमित नहीं रह गया अपितु "पुरुषो वाव यज्ञः"[३] इत्यादि से एक सुन्दर रूपक प्रस्तुत कर मानव जीवन को यज्ञ की संज्ञा दी है जिसमें सम्पूर्ण जीवन-काल को तीन भागों में विभाजित कर उन्हें प्रातः सवन माध्यन्दिन सवन तथा तृतीय सवन तुल्य कहा है।

तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य को उस जीवन यज्ञ की दक्षिणायें कहा है।[४] अभिप्राय यह है कि जीवन की सम्पूर्णता और सफलता तभी है जबकि इन उपर्युक्त गुणों का जीवन में पालन किया जाय।

इस सवनत्रय के अनुष्ठान के महत्व को और अधिक व्याख्यापित करती हुई उपनिषद् कहती है कि जो सवनत्रय को अच्छी तरह जानता हुआ इनका अनुष्ठान करता है वह रोगमुक्त होकर दीर्घायु को प्राप्त करता है। वह जो खाता है, जो पीता है, जो रमण करता है, वह ऋत्विजों के समान ही है और जो हंसता है, गमन करता है, संयोग करता है, वह स्तोत्र और शस्त्र के समान है।[५] उसका पुनर्जन्म "सोष्यति" और "असोष्ट" क्रिया के समान है और मरण 'अवभृथ' (यज्ञ के पश्चात् स्नान) के तुल्य है।[६]

प्रथम प्रपाठक में "यज्ञं विततम्"[७] पदों का उल्लेख आया है जिसमें विदित होता है कि बड़े-बड़े यज्ञों का भी प्रचलन था, जिन्हें प्रस्तोता[८] उद्गाता,[९] प्रतिहर्त्ता[१०] नामक ऋत्विजों द्वारा सम्पन्न किया जाता था। ऋत्विजों का चयन उनकी योग्यता पर आधारित था। यदि ऋत्विक् अपने-अपने उद्गीथ आदि स्तुतियों से अनुगत देवताओं को न जानते थे तो ऋत्विक् कार्यों में प्रवृत्त होते थे तो उनका सिर गिर जाता था।

वायु को यज्ञ का कारण बताते हुए यज्ञ की मन और वाणी दो वर्त्तनियों का उल्लेख हैं।[११] ब्रह्मा नामक ऋत्विक् उन दोनों में से एक वर्त्तनि को मन से संस्कृत करता है और दूसरी वर्त्तनि को होता, अध्वर्यु और उद्गाता वाणी से संस्कृत करते हैं।[१२] यदि ब्रह्मा नामक ऋत्विक् प्रातरनुवाक के प्रारम्भ हो जाने पर परिधानीया ऋचा के उच्चारण के पूर्व बोल उठता है तो उस यज्ञ की एक वर्त्तनि नष्ट हो जाती है और वह यज्ञ भी उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है। जिस प्रकार की एक चक्र पर चलने वाला रथ। यज्ञ के नष्ट होने पर वह यजमान भी नष्ट हो जाता है।[१३]

यज्ञानुष्ठान में हुए अन्य दोषों के परिहार के लिए कहा है कि जब यज्ञ में ऋग्वेद सम्बन्धी क्षति होती है तो उसके सन्धान के लिए गार्हपत्याग्नि कुण्ड में "भूः स्वाहा" इस प्रकार पढ़कर होम करे क्योंकि "भू" नामक व्याहृति ऋग्वेद का सार है। यदि यज्ञ में यजुर्वेद सम्बन्धी क्षति होती है तो उसके सन्धान के लिए दक्षिणग्नि में "भुवः स्वाहा" पढ़कर होम करे क्योंकि "भुवः" नामक व्याहृति यजुर्वेद का सार है। इसी प्रकार सामवेद सम्बन्धी क्षति होने पर "स्वः स्वाहा" बोलकर आहवनीय अग्नि में होम करे क्योंकि "स्वः" व्याहृति सामवेद का सार है।[१४]

द्वितीय प्रपाठक में प्रातः सवन, मांध्यन्दिन सवन और तृतीय सवन का वर्णन है।[१६] इस सवनत्रय के विधिविधान का वर्णन करते हुए उपनिषद् कहती है कि प्रातः सवन में प्रातरनुवाक के पीछे उत्तराभिमुख बैठकर वसु देवता-सम्बन्धी साम को गाये। तब प्रार्थना

करे। तत्पश्चात् गार्हपत्याग्नि में हवन करे।[१७] माध्यन्दिन सवन से पूर्व दक्षिणाग्नि कुण्ड के पीछे उत्तराभिमुख बैठकर रूद्र देवता सम्बन्धी साम को गाये। तब प्रार्थना करे। तदनन्तर हवन करे। इसी प्रकार तृतीय सवन के पूर्व आहवनीय अग्नि के उत्तराभिमुख बैठकर आदित्य और वैश्वदेव सम्बन्धी साम को अच्छी प्रकार गाये। तत्पश्चात् प्रार्थना करे और आहवनीय कुण्ड में होम करे।[१८]

पञ्चम प्रपाठक में एक प्रकरण है कि यदि पुरुष महत् की प्राप्ति की इच्छा करता हो तो उसे अमावस्या तिथि में दीक्षित होकर पूर्णिमा तिथि की रात्रि में सर्वौषध के मन्थ को दधि और मधु के साथ मिलाकर "ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहा" इस प्रकार बोल कर अग्नि में घी का हवन कर स्रुवा लगा हुआ द्रव्य मन्थ नामक पात्र विशेष में रख दे।[१६] इसी प्रसङ्ग में "वसिष्ठाय स्वाहा", "प्रतिष्ठाय स्वाहा", "सम्पदे स्वाहा", "आयतनाय स्वाहा" नामक मन्त्रों से घृताहुति दे।[२०] यह दैनिक क्रियाकलाप का एक अङ्ग था।

एक स्थान पर राजा अश्वपति कहते हैं कि मेरे राज्य में कोई यज्ञ न करने वाला नहीं है।[२१] वैश्वानर विद्या के प्रकरण में "प्राणाय स्वाहा", "व्यानाय स्वाहा", "अपानाय स्वाहा", "समानाय स्वाहा" और "उदानाय स्वाहा" आदि मन्त्रों से आहुति देने का प्रावधान है।[२२] जो कोई इसको जानता हुआ अग्नि होत्र करता है वह उसी प्रकार है जिस प्रकार अंगारों को हटाकर भस्म में हवन करना।[२३]

अध्ययन- अध्ययन को धर्म को प्रथम स्कन्ध के रूप में कहा गया है। उपनिषद् के अध्ययन से विदित होता है कि अध्ययन-क्रम जीवन पर्यन्त चलता था। जीवन का प्रथम चरण अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम का तो उद्देश्य ही शिक्षा प्राप्ति था किन्तु गृहस्थ के लिए भी स्वाध्याय प्रमुख कर्त्तव्य था। वानप्रस्थी भी अरण्यों में रहते हुए अध्ययन-अध्यापन में रत दिखाई पड़ते थे। संन्यासी तो अपना शेष जीवन ब्रह्म विद्या-आत्मविद्या जैसी आध्यात्मिक गुत्थियों के सुलझाने में ही व्यतीत कर देते थे।

मनुष्य ज्ञान के द्वारा न केवल धर्म और काम की प्राप्ति करता है अपितु मोक्ष की भी प्राप्ति करता है। उपनिषद् के अन्त में कहा है कि "जो व्यक्ति आचार्यकुल से वेदों का अध्ययन करके यथा-विधि गुरु के प्रति अपने कर्त्तव्यों को पूरा करके, समावृत्त होकर कुटुम्ब में स्थित हो, पवित्र स्थान में स्वाध्याय करता हुआ, धार्मिक कर्मों को करता हुआ आयुपर्यन्त रहता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। तथा पुनः लौट कर नहीं आता। अर्थात् फिर जन्म-मरण के चक्र में नहीं आता।[२४] इस प्रकार मानव जीवन की पूर्णता स्वाध्याय में कही गयी है।

दान- छान्दोग्योपनिषद् में विद्या दान को सर्वश्रेष्ठ दान कहा है- "यदि कोई समुद्र से परिवेष्ठित और धन से परिपूर्ण पृथ्वी भी दे तो भी उस दान से यह (विद्या) दान अधिकतर

है।[२५] एक प्रसङ्ग में कहा गया है कि राजा जानश्रुति पौत्रायण श्रद्धादायी, बहुदायी और बहुपाकी राजा था। जिसने स्थान-स्थान पर ऐसे आवास स्थान (धर्मशाला) बनवा रखे थे जहाँ पर यात्रीगण विश्राम करते थे तथा निःशुल्क भोजन भी ग्रहण करते थे।[२६] पञ्चम प्रपाठक में उल्लेख है कि जो उपासक ग्राम में रहते हुए इष्ट (अग्निहोत्र), आपूर्त्त (धर्मशाला, उद्यानादि) तथा दान करते हैं, वे पितृलोक को प्राप्त करते हैं।[२७] प्रस्तुत उद्धरण दानशीलता के सुन्दर और उत्कृष्ट रूप को दर्शाता है।

तप– तप मानव-जीवन का प्रमुख अंग है। तप के आचरण से ही प्रजापति ने लोक-लोकान्तरों को प्रकाशित किया हैं तप के द्वारा ही त्रयीविद्या का आविर्भाव एवं त्रयी विद्या से भूः, भुवः, स्वः तीनों व्याहृतियों के आविर्भाव का कथन है तथा इन व्याहृतियों को अभितप्त करने पर ओंकार रूप ब्रह्म के प्रकाशित करने का वर्णन है।[२८] मधु विद्या के प्रकरण में तप से त्रयी विद्या के ज्ञान का विस्तृत वर्णन है। जो कि यश, तेज, ऐश्वर्य, वीर्यादि की प्राप्ति में हेतु है।[२९]

चतुर्थ प्रपाठक में भी प्रजापति द्वारा लोकों को लक्ष्य बनाकर ध्यान रूप तप के किये जाने का उल्लेख है। उन तप किये गये लोकों से उन्होंने सार रूप रस निकाले। पृथिवी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु और द्युलोक से आदित्य को सार रूप में ग्रहण किया। तत्पश्चात् अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और आदित्य से सामवेद को निकाला।[३०] तप आत्मज्ञान की प्राप्ति में एक महत्त्वपूर्ण साधन है। ब्रह्मचारी के लिए तप को दक्षिणा कहा है।[३१] ब्रह्मचर्य और तप का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हैं सत्यकाम जाबाल, उपकोसल, इन्द्र और विरोचन आदि के द्वारा जो अनेकों वर्षों तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया, वह स्वयमेव उनके तपोमय जीवन की ओर संकेत हैं।

शंकराचार्य ने तप का अर्थ "कृच्छ्रचान्द्रायणादि" किया है तथा इसे वानप्रस्थ और परिव्राजक का धर्म कहा है। इनके अनुसार परिव्राजक के ज्ञान, यम और नियम तप ही है।[३२] किन्तु उन्होंने केनोपनिषद् के भाष्य में "तपः कायेन्द्रियमनसां समाधानम्"[३३] कह कर शरीर, इन्द्रिय और मन के समाधान को तप कहा है।

यज्ञ दान एवं तप का परम प्रयोजन साधन के शरीर एवं मन को शुद्ध करना ही है। जैसा कि गीता में भी कहा है– "यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्"[३४] उपनिषद् दान न देने वाले, श्रद्धा न करने वाले तथा यज्ञ न करने वाले व्यक्ति को असुर स्वभाव वाला कहती है।[३५] तथा श्रद्धा और तप में लीन रहने वालों को ब्रह्मलोक का अधिकारी बताती है।[३६]

ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य आश्रम व्यवस्था का अंग होकर समाज से सम्बद्ध है। परन्तु मन, वचन और कर्म से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना धर्म का अङ्ग है। छान्दोग्योपनिषद् में इसे

धर्म के एक स्कन्ध के रूप में वर्णित किया है जो इसके अनुपम महत्त्व को द्योतित करता है। इसकी महत्ता इन्द्रिय संयम की भावना से है।

अष्टम् प्रपाठक में तो ऋषि ने ब्रह्मचर्य को यज्ञ की संज्ञा से अभिहित किया है। जिसको यज्ञ कहते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है क्योंकि जो ब्रह्मचर्य रूप साधन से ज्ञाता बनता है, वही उसको प्राप्त करता है और जिसको "इष्ट" इस प्रकार कहते हैं। वह भी ब्रह्मचर्य ही है। उस ब्रह्मचर्य रूप साधन के ही द्वारा आत्मतत्त्व को प्राप्त करता है।[३७]

जो इस ब्रह्म को ब्रह्मचर्य से प्राप्त करते हैं; उन्हीं को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है तथा वे स्वेच्छानुसार लोक-लोकान्तरों में विचरण करता है।[३८] इसी प्रकरण में आगे कहा है कि जो "सत्रायण" इस प्रकार कहा जाता है वह ब्रह्मचर्य ही है। उस ब्रह्मचर्य के द्वारा ही "सत्" त्राण को प्राप्त होता है और जो "मौन" इस प्रकार कहा जाता है वह भी ब्रह्मचर्य ही है। क्योंकि ब्रह्मचर्य के द्वारा ही आत्मा को जानकर मनन करते हैं।[३९] जो "अनाशकायन" कहा गया है वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि वह आत्मा नष्ट नहीं होता जिसको ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त किया जाता है। जिसको "अरण्यायन" कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि 'अर' (कर्मकाण्ड) और 'ण्य' (ज्ञानकाण्ड) नामक दो समुद्र हैं जिनके द्वारा ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकते हैं।[४०]

इसी प्रपाठक में आया है कि आत्मज्ञान के प्राप्त्यर्थ विरोचन ने ३२ वर्ष तथा इन्द्र ने १०१ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था।[४१] तात्पर्य यह है कि यद्यपि यज्ञ, इष्ट, तप आदि अनेक साधन ब्रह्मप्राप्ति में कहे गये हैं परन्तु वे सब ब्रह्मचर्य के द्वारा ही साध्य हैं। अतः ब्रह्मप्राप्ति का मूल कारण ब्रह्मचर्य ही है।

अहिंसा- छान्दोग्योपनिषद् में आया है कि "अहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः" अर्थात् विद्यालयों से अन्यत्र भी प्राणियों की हिंसा नहीं करनी चाहिए।[४२] एक अन्य प्रसङ्ग में कहा गया है कि "संवत्सरं मज्जो नाश्नीयात्तद्व्रतम्" वर्ष में कभी मांस न खायें- इस व्रत को धारण करें।[४३]

वस्तुतः प्राणियों की हिंसा की बात दूर रही अपितु वाङ्मात्र से कटुभाषण करने तक को हत्या के सदृश माना गया है। वह यदि पिता, माता, भ्राता, भगिनी, आचार्य अथवा ब्राह्मण आदि किसी को भी कटु वचन कहता है तो उसे लोग कहते हैं कि तुम्हें धिक्कार है। तुम पितृघाती हो और मातृघाती आदि हो।[४४] एक अन्य स्थल पर भी ब्रह्मज्ञानियों के हनन कर्त्ता तथा उसके साथ आचरण करने वाले को पतित कहा है।[४५]

सत्य-सत्य को धर्म की उत्पत्ति में हेतु बताया गया है।[४६] सत्यकाम- जाबाल परिचारिका का पुत्र है। वह हारिद्रुमत गौतम के समीप ज्ञानप्राप्ति के लिए जाता है। ऋषि द्वारा गोत्र पूछे जाने पर वह अपने गोत्र की अज्ञानता का सत्य कथन करता है। गौतम यह कहकर कि

अब्राह्मण सत्यभाषण कहने में समर्थ नहीं हो सकता। तुम सत्य से पृथक नहीं हुए हो, अतः हे सोम्य ! समिधा लाओ। मैं तुम्हारा उपनयन करूंगा।[४७] षष्ठ प्रपाठक में उल्लेख है कि "यदि वह सन्दिग्ध पुरुष चोरी का अकर्त्ता होता है तो सत्य से वह अपनी आत्मा को सत्ययुक्त करता है। वह सत्यवादी पुरुष उस सत्य से अपनी आत्मा को आच्छादित कर तप्त परशु को ग्रहण करता है। वह दग्ध नहीं होता है अतः छोड़ दिया जाता है।[४८] प्रस्तुत प्रसङ्ग से सत्य का आचरण करने वाले के प्रति दिव्यन्याय का कथन सत्यवादी की महिमा को दर्शाता है।

सप्तम प्रपाठक में सनत्कुमार नारद से कहते हैं कि सत्य की जिज्ञासा करनी चाहिए। क्योंकि जब विशेष रूप से जानता है तभी सत्य को कहता है। न जानता हुआ सत्य को नहीं कह सकता।[४९] अष्टम् प्रपाठक में "तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणों नाम सत्यमिति"[५०] अर्थात् उस इस ब्रह्म का निश्चय ही सत्य नाम है। सत्य का निरुक्तिपरक अर्थ है कि 'सत्य' पद में जो 'सत्' है वह अमृत है, जो 'ति' है वह मर्त्य है और जो 'यम्' है वह दोनों का नियमन करता है। जिससे ये दोनों उसके वश में रहते हैं। एवं वित् पुरुष निश्चय ही प्रतिदिन स्वर्गलोक को प्राप्त होता है।[५१] तात्पर्य यही है कि सत्य ब्रह्मस्वरूप है, उसका अच्छी प्रकार जीवन में आचरण करने वाला ब्रह्म को प्राप्त होता है।

अस्तेय- उपनिषद् कहती है कि सोने की चोरी करने वाला, सुरापान करने वाला, ब्रह्मवेत्ताओं का हनन करने वाला, गुरुतल्पगामी तथा जो इन चारों के साथ आचरण करता है वह भी पापी होता है।[५२] ऋग्वेद के एक मन्त्र में भी चोरी, गुरुपत्नी गमन, जुआ, मद्यपान, असत्य भाषण और इनके साथ आचरण कर्त्ता को भी पापी कहा है।[५३] कैकेय नरेश अश्वपति अपने राज्य की स्थिति को बताते हुए कहते हैं कि "मेरे राज्य में न कोई चोर है, न कृपण है, न मद्यपायी है, न अनग्निहोत्री है और स्वैरी पुरुष और तथा स्वैरिणी नारी भी नहीं है।"[५४] इस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् में धर्म के स्कन्ध के रूप में योगदर्शन वर्णित अधिकांश यमों और नियमों का वर्णन किया गया है।

नीतिनिर्देश - नैतिकता धर्म की आधारशिला है। छान्दोग्योपनिषद् में नैतिक आचरणों का उल्लेख मानव के व्रत के रूप में किया गया है।

१- मंगलविधायक धर्म का पालन करना चाहिए।[५५]
२- उदार विचार रखने चाहिए।[५६]
३- अग्नि की ओर मुख करके न तो आचमन करना चाहिए और न थूकना चाहिए।[५७]
४- किसी स्त्री के साथ अशिष्ट व्यवहार नहीं करना चाहिए।[५८]
५- तप करते हुए की निन्दा नहीं करनी चाहिए।[५९]
६- वृष्टि की निन्दा नहीं करनी चाहिए।[६०]

७- ऋतुओं की निन्दा नहीं करनी चाहिए।[६१]

८- लोक कल्याण की निन्दा नहीं करनी चाहिए।[६२]

९- पशुओं के कल्याण की उपेक्षा न करे।[६३]

१०- कभी मांस का भक्षण न करे।[६४]

११- ब्रह्मज्ञानियों की निन्दा न करे।[६५]

१२- सब में आत्मभाव रखकर व्यवहार करे।[६६]

उपर्युक्त सभी कथन धर्म की भावना से अनुप्राणित हैं। उपनिषद् कहती है कि मानव क्रतुमय प्राणी है। इस लोक में जिस क्रतु (कर्म) अथवा संकल्प वाला होगा, मरने के बाद वह वैसा ही होगा।[६७] आठवें प्रपाठक में कर्मजित लोकों और पुण्यजित लोकों का उल्लेख है। ऋषि का कथन है कि जिस प्रकार इस लोक में कर्मों से प्राप्त लोक (भोग-साधन) क्षय को प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार पुण्यजित् लोक भी क्षय को प्राप्त हो जाते हैं और आत्मा को तथा सत्य कर्मों को जानकर यहाँ से जाते हैं। उनका सब लोकों में कामाचार होता है।[६८]

वस्तुतः धर्म आन्तरिक जीवन का सुसंस्कार करता है। वह मनुष्य को सदाचरण की ओर प्रवृत्त कर अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति में प्रबल सहायक होता है। यह मूल रूप से प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत उपलब्धि है। मनुस्मृति का कथन सत्य है कि "मरने के बाद बन्धु-बान्धव विमुख हो जाते हैं। केवल धर्म ही उस मनुष्य का अनुसरण करता है।[६९]

आपद्धर्म-उषस्ति चाक्रायण (चक्र नामक ऋषि का पोता) ओलों की वर्षा से नष्ट कुरु प्रदेश (मेरठ प्रदेश) में निर्धन अवस्था में अपनी पत्नी के साथ किसी दूसरे ग्राम में जा बसे। उषस्ति को भूख लगी। किसी हाथी वाले से जूठे उड़द खाकर अपनी भूख मिटाई। जब जूठा पानी पीने को दिया तब उषस्ति ने मना कर दिया।[७०] ऐसा प्रतीत होता है कि आपत्ति काल में ही अनुचित आचरण करना चाहिए। आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति। जैसे-तैसे भोजन प्राप्त करके प्राणों की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि प्राणयुक्त शरीर से ही सब पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। मनु का भी कथन है-आपत्तिकाल में जीवनधारण हेतु जो मनुष्य यहाँ-वहाँ से अन्न को ग्रहण कर लेता है वह कीचड़ से आकाश की भान्ति पाप से युक्त नहीं होता।[७१]

राजनीतिक व्यवस्था-छान्दोग्योपनिषद् के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि तत्कालीन राजनीतिक स्थिति शान्तिपूर्ण रही होगी; जिसके परिणामस्वरूप राजा अपना अधिकांश समय आध्यात्मिक ज्ञान-जिज्ञासा में लगाते थे। बड़े-बड़े सभा वेश्म[७२] और समिति[७३] होते थे जहाँ विचार विमर्श तथा सभाएँ नियोजित करते थे। श्वेतकेतु पञ्चालों की समिति में आया। यहाँ समिति का अर्थ राजपरिषद् है।[७४]

द्वितीय प्रपाठक में "सवनत्रय" के प्रसङ्ग में उपासक राज्य[७५], वैराज्य[७६] स्वराज्य[७७] तथा साम्राज्य[७८] की प्राप्ति की कामना करता है जो तत्कालीन विभिन्न प्रकार की शासन प्रणाली की ओर संकेत कर रहा है। मैक्डानल और कीथ ने वैराज्य पद की व्याख्या करते हुए उसको राजतन्त्र का एक प्रकार माना है। इनके अनुसार राज्य, वैराज्य, स्वाराज्य, साम्राज्य इत्यादि शब्द अनिवार्यत: अधिकार अथवा शक्ति के विविध रूपों को व्यक्त करते हैं।[७९] एक प्रसङ्ग में कहा गया है- इतने काल तक वह विद्वान् साध्यों के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है।[८०]

उपनिषद् में आये पाञ्चाल[८१] कैकेय[८२] इत्यादि पदों से विदित होता है कि प्रत्येक राज्य की अपनी निश्चित सीमायें होती थीं, जिनमें विभिन्न प्रकार की राज्यप्रणाली थी और उन पर राज्य करने वाले राजा, अधिपति आदि नामों से जाने जाते थे। प्रजा की सुविधा के लिए निःशुल्क भोजन और आवास की व्यवस्था होती थी।[८३] राज्यव्यवस्था कठोर होने से राज्य में चोर, मद्यप, स्वैर और स्वैरिणी का अभाव था।[८४] चोरी करने पर चोर को कठोर दण्ड दिया जाता था।[८५] राजा न्यायप्रिय होते थे। राज्यव्यवस्था समुन्नत थी।

सन्दर्भ–

१- वेद और ऋषिदयानन्द, डॉ० श्री निवास शास्त्री, पृ० १७२ ।

२- त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचर्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्। सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति। ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति। छान्दोग्योपनिषद् २/२३/१

तुलना करो- गीता १८/५
यज्ञदानतपः कर्म न व्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

३- पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति तत्प्रातः सवनम्।
छां० उप० ३/१६/१-४

४- अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः। छां० उप० ३/१७/४

५- छां० उप० ३/१६/६ से ३/१७/४

६- क- तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुनरुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवास्यावमृथः। छां० उप० ३/१७/५
ख- Bathing at the end of a principal sacrifice for purification : -Vaman shiv Ram Apte- "Sanskrit English Dictionary".

७- तान् खादित्वाऽमुं यज्ञं विततमेयाय। छां० उप० १/१०/७

८- क- स प्रस्तोतारमुवाच। प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता। ताञ्चेदविद्वान् प्रस्तोष्यसि मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति। छां० उप० १/१०/८-९
ख- छां० उप० १/११/४

९- एवमेवोद्‌गातारमुवाचोद्‌गातर्या देवतोद्‌गीथमन्वायत्ता। ताञ्चेदविद्वानुद्‌गास्यसि मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति। छां० उप० १/१०/१०

१०- एवमेव प्रतिहर्त्ता रमुवाच। छां० उप० १/१०/११

११- तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाक् च वर्त्तनी। छां० उप० ४/१६/१

१२- तयोरन्यतरां मनसा संस्करोति ब्रह्मा। छां० उप० ४/१६/२

१३- अन्यतरामेव वर्त्तनिं संस्करोति हीयतेऽन्यतरा। छां० उप० ४/१६/३

१४- तद्यद्यृक्तो रिष्येद् भूः स्वाहेति गार्हपत्ये विरिष्टं सन्द्धाति। छां०उप० ४/१७/४-६

१५- यज्ञस्य विरिष्टं सन्दधाति भेषजकृतो हवा एष। छां० उप० ४/१७/८

१६- ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातः सवनम्। छां० उप० २/२४/१

१७- पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघनेन। छां० उप० २/२४/३-६

१८- छां० उप० २/२४/७-१६ तक

१९- छां० उप० ५/२/४

२०- छां० उप० ५/२/५

२१- न में स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्ययोनानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।। छां० उप० ५/११/५

२२- छां० उप० ५/१६/१ से ५/२३/२ तक

२३- छां० उप० ५/२४/१

२४- आचार्यकुलाद् वेदमधीष्य यथाविधानं गुरो कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान् विद्‌धदात्मनि.........एवं वर्त्तयन्यावदायुः षं ब्रह्मलोकभमिसम्पद्यते न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते। छां० उप० ८/१५/१

२५- यद्यप्यस्मा इमाम द्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां पृथिवीं दद्यादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति। छां० उप० ३/११/६

२६- जानश्रुतिर्ह श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस। सह सर्वत आवस्थान् मापयाञ्चक्रे सर्वत एव में ऽत्स्यन्तीति। छां० उप० ४/१/१

२७- अथ य इमें ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते। छां० उप० ५/१०/३

२८- प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रमीविद्याः सम्प्रास्‌वत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षरणि सम्प्रास-वन्त भूर्भुवः स्वरिति। तान्यभ्यतपतेभ्योऽमितप्तेभ्य ओंकारः। छां. उप० २/२३/२-३

२९- छां० उप० ३/१/३ से ३/३/२ तक

३०- छां० उप० ४/१७/१ से ४/१७/३ तक

३१- छां० उप० ३/१७/४

३२- तप एव द्वितीयस्तप इति कृच्छ्रचान्द्रायणादि..... परिव्राजकस्यापि ज्ञानं यमा नियमाश्च तप एवेति..........। छां० उप० २/२३/१ पर शांकर भाष्य

३३- केनोपनिषद् ४/८ पर शांकर भाष्य

३४- गीता १८/५

३५- तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्धानमयजमानमाहुरासुरो...। -छां० उप० ८/८/५

३६- तद्य इत्थं विदुर्ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसम्भवन्ति..........। छां० उप० ५/१०/१

३७- अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव.....। छां० उप० ८/५/१
३८- तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति। छां० ८/४/३
३९- अथ यत्सत्त्रयणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्। छां० ८/५/२
४०- छां० ८/५/३
४१- छां० ८/७/३ से ८/११/३ तक
४२- छां० ८/१५/१
४३- छां० उप० २/१६/२
४४- स यदि पितरं व मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वा। छां० ७/१५/२
४५- स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिवंश्च गुरोस्तल्पमावसन्। ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाऽऽचरंस्तैरिति। छां० ५/१०/९
४६- धर्म की उत्पत्ति सत्य से होती है, दया और दान से बढ़ता है, क्षमा में वह निवास करता है और क्रोध से उसका नाश होता है (सत्याज्जायते दयया दानेन च वर्धते, क्षमायां तिष्ठति, क्रोधान्नश्यति)।
-भारतीय संस्कृति-एक समाजशास्त्रीय समीक्षा, गौरी शंकर भट्ट, पं० १०२
४७- नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति। समिधं सोम्याऽऽहरोप त्वानेष्ये। न सत्यादगा इति।-छां० उप० ४/४/५
४८- छां० उप० ६/१६/१२
४९- छां० उप० ७/१६/१ से ७/१७/१ तक
५०- छां० उप० ८/३/८
५१- तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतियमिति तद्यत् "सत्" तदमृतमयं यत् "ति" तन्मर्त्यमथ यत् "यम्" अहरहर्वा एवं वित् स्वर्गलोकमेति। -छां० उप० ८/३/५
५२- छां० उप० ५/१०/९
५३- सत्प मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदमभ्यंहुरोगात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडेपथो विसर्गे धरुणेषुतस्थौ।। -ऋग्वेद १०/५/६
५४- छां० उप० ५/११/५
५५- साधवोधर्माः च गच्छेपुरुष च नमेयुः। छां० उप० २/१/४
५६- महामनाः स्यात्तद्व्रतम्। छां० उप० २/११/२
५७- न प्रत्यङ्ग्निमाचामेन्न निष्ठीवेत्तद्व्रतम्। -छां० उप० २/१२/२
५८- न काञ्चन परिहरेत्तद् व्रतम्। छां० उप० २/१४/२
५९- तपन्तं न निन्देत् तद् व्रतम्। -छां० उप० २/१४/२
६०- वर्षन्तं न निन्देत्तद्व्रतम्। -छां० उप० २/१५/२
६१- ऋतून् न निन्देत्तद्व्रतम्। -छां० उप० २/१६/२
६२- लोकान् न निन्देत्तद्व्रतम्। -छां० उप० २/१७/२
६३- पशून् न निन्देत्तद्व्रतम्। -छां० उप० २/१८/२
६४- संवत्सरं मज्जो नाश्नीयात्तद्व्रतम्। छां० उप० २/१९/२
६५- ब्राह्मणान्न निन्देत्तद्व्रतम्। -छां० उप० २/२०/२
६६- सर्वमस्मीत्युपासीत तद्व्रतं तद्व्रतम्। -छां उप० २/२१/४
६७- अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत। -छां० उप० १/१४/१

६८- तद्यथेह कर्मजितोलोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यजितोलोक क्षीयते तद्य इहात्मानमननुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान् कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति। -छां० उप० ८/१/६

६६- मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं स्थितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।।
-मनुस्मृति ४/२४१

७०- न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति। न वा अजीविष्यमिमानरवादन्निति होवाच। कामो म उदपानमिति।।
-छां० उप० १/१०/४

७१- जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः।
आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते।। मनुस्मृति १०/१०४

७२- प्रजापतेः सभावेश्म प्रपद्ये। -छां० उप० ८/१४/१

७३- श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानां समितिमेयाय तं ह प्रवाहणो जैबलिरुवाच कुमारानु त्वाशिषत्पितेत्यनु हि भगव इति। - छां० उप० ५/३/१ से ५/१०/१० तक

७४- उत्तरवैदिक समाज एवं संस्कृति, डॉ० विजय बहादुर राव, पृ० १६६

७५- लोकद्वारमपावार्णू पश्येम वयं राज्याय। छां० उप० २/२४/४

७६- लोकद्वारमपावार्णू पश्येम त्वा वयं वैराज्याय। छां० उप० २/२४/८

७७- लोकद्वारमपावार्णू पश्येम त्वा वयं स्वाराज्याय। छां० उप० २/२४/१२

७८- आदित्यमथ वैश्वदेवं लोकद्वारमपावार्णू पश्येम त्वा वयं साम्राज्याय। छां० उप० २/२४/१३

७६- मैक्डानल और कीथ- वैदिक इण्डेक्स, भाग-२, पृ० २४७

८०- एता साध्यानामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता। छां० ३/१०/४

८१- श्वेतकेतुर्हारूणेय पञ्चालानां समितिमेयाय। छां० उप० ५/३/१

८२- तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः सम्प्रति। छां० उप० ५/११/४

८३- जानश्रुति हे पौत्रायणः श्रद्धादेयोबहुदायी। छां० उप० ४/१/१

८४- छां० उप० ५/११/५

८५- अहार्षीत स्तेयमकार्णीत् परशुमस्मै तपतेति। छां० उप० ६/६/१

ऋग्वेदीय धर्म एवं राजनीति

डॉ0 दुर्गाप्रसाद मिश्र
संस्कृत – विभाग
मेरठ कॉलेज, मेरठ

भारतीय संस्कृति में धर्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। धर्म वस्तुत: भारतीय संस्कृति का प्राण है। अति प्राचीन काल से धर्म को एक प्रेरक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। भारत वसुन्धरा अनेक धर्मों तथा सम्प्रदायों की क्रीड़ा-स्थली रही है। धार्मिक सहिष्णुता का जो आदर्श हमें यहाँ देखने को मिलता है वह विश्व की अन्य संस्कृति में दुर्लभ है।

प्राचीन भारतीयों के धर्म के विषय में निश्चित ज्ञान हमें सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है जिसमें वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषद् की गणना की जाती है। वैदिक साहित्य का निर्माण करने वाले ऋषि धार्मिक वृत्ति से ओत प्रोत थे, धार्मिक उद्देश्य से प्रेरित होकर ही उक्त साहित्य का सृजन किया। वेदों के आलोचनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमें जिन देवताओं की स्तुति में बहुत से मन्त्र लिखे गए हैं, वे भौतिक शक्तियों के रूप में एक सर्वोपरि सत्ता का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रकृति-पूजा वेदकालीन धार्मिक जीवन का आदि स्रोत है। मनुष्य अपनी सांस्कृतिक बाल्यावस्था में प्रकृति के विभिन्न रूपों को देख कभी प्रसन्न हुआ, कभी भयभीत हुआ और कभी स्तम्भित। आर्य अनेक देवताओं के अस्तित्व पर विश्वास करते थे। प्रत्येक देवता को संसार के सृस्टा तथा नियत्ता के रूप में दर्शाया गया है। वैदिक ऋषियों ने विभिन्न देवताओं की पृष्ठ भूमि में एक सर्वोपरि व सर्वनियामक सत्ता की कल्पना की और- 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' द्वारा एकेश्वर-वाद का सूत्रपात किया। यही एकेश्वर वाद बाद को सर्वेश्वरवाद का स्वरूप धारण कर लिया। जिसका विकास आगे 'अहं ब्रह्मास्मि' 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' 'तत्त्वमसि' आदि वचनों में हुआ।

वैदिक धर्म की एक विशेषता यह थी कि इसमें जिस देवता की स्तुति की गई उसी को सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि मान लिया गया। कभी वरूण कभी इन्द्र को सर्वोपरि मानकर अन्य देवताओं की उत्पत्ति इनसे मानी गई है। देवताओं की बहुलता से घबड़ाकर ही शायद वैदिक ऋषि ने 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' का विधान किया। देवताओं की संख्या सीमित करते हुए द्यावापृथिवी, मित्रावरुण, उषारात्रि आदि सूक्तों का प्रणयन किया। चिन्तन के अन्तिम चरण में यह महत्त्वपूर्ण तथ्य खोज निकाला कि परम तत्त्व (सत्) एक ही है। जिसे ज्ञानी लोग अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि नामों से जानते हैं।

वैदिक युग में धार्मिक जीवन में प्रारम्भ से ही दो धाराएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(१)भक्ति की धारा (२) यज्ञीय कर्मकाण्ड की धारा। देवताओं की स्तुति भक्ति भाव से ओतप्रोत है। उससे ऐहिक सुख, समृद्धि आदि के लिए प्रार्थना की गई है वरूण, इन्द्र, विष्णु आदि देवताओं से सम्बन्धित वेदमन्त्र इसी प्रकार की भक्ति के प्रतीक हैं। यहीं से वैदिक युग के वाद की भक्ति-धारा प्रवाहित हुई।

वेदों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन धार्मिक जीवन में यज्ञ का क्रिया कलाप कितना व्यापत हो गया था। ऋग्वेद का प्रारम्भ ही यज्ञ की भाषा में होता है। मधुच्छंदा ऋषि कहते हैं- 'मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ, जो पुरोहित हैं, यज्ञ के देव हैं, ऋत्विक् हैं, होता है तथा रत्नों के भण्डार हैं', यज्ञ का प्रभाव राजशक्ति पर भी पड़ा और राजाओं को भी राज्याभिषेक द्वारा मूर्धाभिषिक्त होना पड़ता था तथा अश्वमेघ यज्ञ द्वारा चक्रवर्ती की पदवी प्राप्त करनी पड़ती थी।

मानव व्यतिरिक्त अन्य प्राणि-वर्ग अपनी जिस स्वाभाविक गति से चलता है उसमें न धर्म का ध्यान है न अधर्म का। धर्म और अधर्म की चर्चा मानव समाज में ही की जाती है। मानव की ऊर्ध्व चेतना ही शुभ और अशुभ में भेद कर सकती है। नीतिशास्त्र, सदाचार के नियम इसी हेतु मानव ही के लिए हैं।

वेदकालीन राजनीति पर विचार करने के पूर्व एक भ्रान्त धारणा को समझना अत्यावश्यक है। वैदिक विद्वानों का मन्तव्य है कि वेद कालीन आर्य विभिन्न जातियों तथा कबीलों में बंटे हुए थे।[२] ऋग्वेद[३] में यत्र तत्र अनेकों नाम उल्लिखित हैं जिनको जाति-सूचक माना गया है। ऋग्वेदीय पञ्चजना:[४], पञ्चकृष्टय:[५], पञ्चचर्षणय:[६], पञ्चक्षितय:[७] आदि शब्द बार बार उल्लिखित हैं। इतिहास के विद्वान् इन शब्दों का अर्थ पाँच जातियाँ या कबीले करते हैं तथा यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु व पुरु को उनसे सम्बन्धित करते हैं। किन्तु इसका अर्थ साधारणतया पृथ्वी का समस्त जनसमुदाय किया गया है। यदु आदि जातिसूचक न होकर राजाओं के नाम हैं जैसा कि पुराण वाङ्मय में वर्णित है। प्रो० रामदेव जी के अनुसार आर्यों के कई प्रकार के राज्य थे जिनमें सार्वभौम राज्य सर्वोपरि था।[८]

वैदिक साहित्य का सिंहावलोकन करने पर हमें दो प्रकार की नीतियाँ दिखाई पड़ती हैं। प्रथम सरल एवं निष्कपट व्यवहार जो शत्रु से भी वैसा ही किया जाता है जैसे मित्रों से। वैदिक वाङ्मय में सामान्यत: इसी नीति के पालन एवं प्रेरणा की प्रार्थनाएँ प्राप्त होती हैं। दूसरी छल छद्म युक्त नीति जो सदैव शत्रुओं से ही व्यवहार की जाती है, विशेषकर छली शत्रुओं के साथ। इन्द्र सम्बन्धी सूक्तों में अनेकत्र इसके वर्णन प्राप्त होते हैं। आचार्य सायण ने इन्हें शर्धनीति एवं वर्णनीति कहा है। वेद में इन्द्र शब्द से राजा के गुणों को स्पष्ट किया गया है। ऋषि दयानन्द भी यजुर्वेद[९] में इन्द्र का अर्थ सभापति करते हैं।

वैदिक साहित्य के सिंहावलोकन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन राजनैतिक

व्यवस्था की इकाई ग्राम था जिसका अधिकारी ग्रामणी था, गोत्र या गोष्ठी इसके अंग थे। ग्रामीण जनता की रक्षा करना, उनको संगठित रखना, ग्राम में शान्ति व्यवस्था रखना इसका मुख्य कार्य था। अनेक ग्रामों को मिला कर विश बनता था जो अनेक ग्रामों का समूह था, इसका अधिकारी विश्पति कहलाता था। विभिन्न विशों के समुदाय को जन कहते थे जिसका सत्ताधीश राजा था। जो वंशक्रमागत था या जिसका चुनाव होता था। वरुण को बहुधा राजा शब्द से सम्बोधित किया गया है। वरुण नैतिक नियमों का नियामक था उसके गुप्तचर सर्वत्र वर्तमान थे जिनकी दृष्टि से कोई बच नहीं सकता था उसके बन्धन पापी अत्याचारियों के लिए शक्तिशाली थे।[11] ऋग्वेद में अनेक राजाओं का उल्लेख आता है जिससे विभिन्न राज्यों या राष्ट्रों का ज्ञान होता है। इस समय के राज्यों में अनु, द्रुह्यु, यदु, तुर्वश, पुरु, तृत्सु, भरत आदि हैं। अन्य राज्यों में क्रिवि (सिन्धु के तट पर) कीकट (मगध) चेदि (यमुना) मत्स्य का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

शासन पद्धति : शासन सम्बन्धी विभिन्न संविधान प्रचलित थे। राजपद निरंकुश नहीं था। सभा[12] समिति[13] आदि संस्थाओं द्वारा राजपद को संचालित व नियंत्रित किया जाता था। सभा समिति ने एक प्रकार से जनतांत्रिक वातावरण निर्मित कर दिया था अतः जनतंत्रात्मक शासन प्रणाली का उदय हुआ। यजुर्वेदीय स्वराट्[14] व विराट्[15] शब्द प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली के द्योतक हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में तो आठ[16] प्रकार के संविधानों का उल्लेख मिलता है।

वैदिक काल के राजा के कर्त्तव्यों व उत्तरदायित्वों को साधारणतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

१. राज्य की आन्तरिक व्यवस्था प्रजाहित, पालन आदि से सम्बन्धित कर्तव्य

२. राज्य की वैदेशिक नीति से सम्बन्धित कर्त्तव्य। दोनों प्रकार के कर्त्तव्यों का सुन्दर विवेचन ऋग्वेद के वरुण तथा इन्द्र से सम्बन्धित सूक्तों में किया गया है। वरुण देवता की कल्पना के समय ऋषि के मन में तत्कालीन आदर्श राजा की घरेलू नीति का चित्र था तथा इन्द्र की कल्पना के समय उसकी वैदेशिक नीति का चित। ऋग्वेद में वरूण को नैतिकता का देवता माना गया है। उसके नैतिक नियमों को ऋत् कहा गया है। ऋत् का अर्थ है सत्य तथा अविनाशी सत्ता। इसके द्वारा विश्व में सुव्यवस्था एवं प्रतिष्ठा स्थापित होती है। ऋत् विश्व व्यवस्था का नियामक है। देवता ऋत् के स्वरूप हैं अथवा ऋत् से उत्पन्न हुए हैं तथा वे अपनी दैवी शक्तियों के द्वारा ऋत् की रक्षा करते हैं। ऋत् एक विश्व व्यापी भौतिक एवं नैतिक व्यवस्था है। जो लोकहितकारी सुदृढ़ है जिसमें गुप्तचर, दूत आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इन्द्र का वृत्र या अहि पर आक्रमण, अग्नि, सोम, विष्णु द्वारा सहायता करना, तत्कालीन राजाओं द्वारा दस्युओं से

किये गये युद्धों का भास कराते है। वस्तुत: यह आर्य एव दस्यु युद्ध की प्रतिच्छाया कहा जा सकता है। इन्द्र का यह स्वरूप हमारी वैदेशिक नीति का द्योतक है।

धर्म का आधार नीति है। नीतिशास्त्र धर्म और अधर्म, सदाचार और कदाचार, शुभ और अशुभ, भद्र और अभद्र के विवेचन से सम्बद्ध है और अधर्म के स्थान पर धर्म की प्रतिष्ठा करने वाला है। उसने शुभ को उसकी पराकाष्ठा तक पहुँचाया है और इस रूप में मानव के सामने एक आदर्श की स्थापना की है जो समस्त सद्गुणों का आश्रय है। धार्मिक प्राणी इसी को ईश्वर के नाम से पुकारते हैं। महर्षि कणाद ने धर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है- 'यतो अभ्युदयनि: श्रेयस् सिद्धि: स धर्म: जो मानव को अभ्युदय और नि:श्रेयस् की सिद्धि करा दे वही धर्म है। अभ्युदय मानव सभ्यता की प्रगति का द्योतक है जिसमें ऐश्वर्य, काम और यश की प्रधानता है। वेद मानव को दीन नहीं अदीन बनाना चाहते हैं- अदीना: स्याम शरद: शतम्। राष्ट्र सत्य एवं धर्म पर आधारित तथा लोक कल्याणकारी होना चाहिए।[१७] राजा को राष्ट्र की रक्षा, धन का श्रेष्ठ वितरण, कृषि वाणिज्य आदि पर नियंत्रण, श्रेष्ठ आचरण की वृद्धि, दुष्टों का दमन तथा सज्जनों की रक्षा के लिए तत्पर रहना चाहिए।

राजनीति को सामान्यत: कुटिल नीति माना जाता है परन्तु वेदों के अनुसार राजनीति कूटनीति न होकर ऋजुनीति होनी चाहिए। वेद ऋजुनीति का विवेचन इस प्रकार करते हैं-

ऋजुनीति नो वरुणो मित्रोनयतु विद्वान्। अर्यमा देवै: सजोषा: त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम् तव प्रणीती पितरौ न इन्द्रो देवेषु रत्नमभजन्त धीरा:। (ऋ० १.९०.१, १.९१.१) राजा प्रजा में जिन श्रेष्ठ गुणों की कामना करे उन गुणों को पहले स्वयं धारण करे। राजा जनता के लिए परमेश्वर का प्रतिनिधि तुल्य है जैसे परमेश्वर में अनेक दैवी गुणों और शक्तियों का निवास है वैसे ही राजा भी विभिन्न दिव्य शक्तियों को धारण करके देदीप्यमान, प्रतापी और प्रजा के लिए पितृवत् पालन और रक्षा करने वाला हो। राजनैतिक जीवन में सभा व समिति का महत्त्वपूर्ण स्थान था।[१८]

वैदिक युग में कदाचित् विशुद्ध रूप में गणतंत्र का अस्तित्व न रहा हो किन्तु राजतन्त्र के रहते हुए भी राजनैतिक वातावरण पूर्णत: जनतांत्रिक था। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में धर्म एवं राजनीति शासन (सत्ता) का एक विश्लेषक पक्ष है जिसमें धर्म मानव मात्र का कल्याण है तथा राजनीति प्रजा हित में राजा द्वारा सम्पादित कार्य हैं। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि होते हुए भी प्रजा का रक्षक, पालक है। वह निरंकुश न हो जाए इसीलिए उसे समस्त कार्यों का सम्पादन धर्म पूर्वक करने का विधान किया गया है।

सन्दर्भ

१. अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्। ऋग्वेद १/१/१.

२. (क) वैदिक एज-(भारतीय विद्या भवन) पृ० २४५-२५०
(ख) ऋग्वैदिक कल्चर-ए०सी०दास-पृ० ४५, ३५२-३६७.

३. ऋ० ७/१८/६-२०

४. ऋ० ३/५६/८, ८/३२/७२, ६/६५/२३, १०/४५/६.

५. ऋ० २/२/१०, ४/३८/१०, १०/६०/६, १०/१६६/६.

६. ऋ० ५/८६/२, ७/१५/२, ६/१०१/६.

७. ऋ० १/७/६, १/१७६/३, ५/३५/२, ६/४६/७, ७/७५/४, ७/७६/१.

८. भारतवर्ष का इतिहास खण्ड २ पृ० ३३७.

९. यजु० ३/१५.

१०. अबुहने राजा वरूणो वनस्योर्ध्वं। ऋ.१/२४/७
उरूं हि राजा वरूणश्चकार। ऋ.१/२४/८
अवैनं राजा वरूणः ससृज्य। ऋ. १/२४/१३.

११. ऋ. १/२५/१/२१

१२. ऋ. ८/४/६, १०/७१/१०, ७.१.४.

१३. १/६५/८, ६/६२/६, १०/६७/६.

१४. यजु० १५/१३.

१५. यजु० १५/११.

१६. ऐ० ब्रा० ८/३/१४.

१७. अथर्व० १२.१.१.

१८. ऋ० ६/६२/६

वेद-वर्णित राष्ट्र-धर्म

डा0 वीनेश अग्रवाल
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' कहकर मनुजी महाराज ने वेद को धर्म का मूल उद्घोषित किया है। किसी भी वस्तु, व्यक्ति, परिवार समाज, अथवा राष्ट्र को धारण करने वाला तत्त्व धर्म है। 'धारणाद् धर्म इत्याहु:' 'धर्मो धारयते प्रजा:' 'धर्मो रक्षति रक्षित:' इत्यादि वचनों से धर्म का महत्त्व सुस्पष्ट हो जाता है। धर्म के बिना कोई व्यक्ति, समाज या राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता ।धर्म शब्द बहुत व्यापक है। जैसे पिता और पुत्र का, गुरु और शिष्य का, पति और पत्नी का भाई और बहिन का धर्म अर्थात् कर्त्तव्य। वैसे ही जिस राष्ट्र में हम रहते हैं, उस राष्ट्र का भी कोई धर्म है। राष्ट्र धर्म का अभिप्राय है- राष्ट्र में निवास करने वाले नागरिकों का धर्म। वेद में इस राष्ट्र धर्म का निरूपण अत्यन्त प्रभावोत्पादक रूप में हुआ है। यजुर्वेद का निम्नमन्त्र राष्ट्र धर्म का साङ्गोपाङ्ग और स्पष्ट वर्णन करता है-

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् । आ राष्ट्रे राजन्य: शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढानडवानाशु: सप्ति: पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठा, सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे न: पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधय: पच्यन्ताम् । योगक्षेमो न: कल्पताम्।। यजु० २२।२२

अर्थात् विश्वभावन ब्राह्मण ब्रह्म तेज से सम्पन्न हों। राष्ट्र में क्षत्रियगण शूरवीर, धनुर्धर, रोगमुक्त और महारथी हों। गायें दुधारू, बैल भारवाहन में सक्षम, अश्व शीघ्रगामी, नारियां शोभामयी रथी विजयशील हों और इस यजमान का युवा पुत्र निर्भय वीर हो। आवश्यकतानुसार वर्षा हो, वनस्पतियां फलवती हों और हमारा योग क्षेम हो।

अथर्ववेद का भूमि सूक्त इस दृष्टि से प्रत्येक राष्ट्रवासी के लिए पठनीय है। राष्ट्र-धर्म का जैसा हृदयस्पर्शी वर्णन इस सूक्त में हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं है। एक-एक मन्त्र देश प्रेम से भरा हुआ है। 'माता भूमि: पुत्रो ऽहं पृथिव्या:' यह भूमि मेरी माता है और मैं इस पृथिवी माता का पुत्र हूँ। यही है वह भावना, जिससे भावित होकर देशभक्त अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता और अस्मिता की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं।

भूमि सूक्त में राष्ट्रोन्नति के उपाय निरूपित करते हुए कहा गया है-

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु (अथर्व० १२।१।१)

अर्थात बृहत् सत्य, उग्र ऋत, (सत्यकर्म, सत्य ज्ञान) दीक्षा, तप, ब्रह्म एवं यज्ञ पृथ्वी को धारण करते हैं।

राष्ट्र भावना के मूलाधार हैं- एक देश (भौगोलिक एकता) एक केन्द्रीय शासन (संगठनात्मक एकता) एक संस्कृति (भावना की एकता) एक सभ्यता (ऐतिहासिक एकता) और एक भाषा (अभिव्यक्ति प्रणाली की एकता) वेदों में इन सबका विस्तृत वर्णन किया गया है।[१]

राष्ट्र

उपर्युक्त पांचों आधारों का, अथवा और भी संक्षेप में कहें तो, देश और राज्य के संगठनात्मक ऐक्य का नाम 'राष्ट्र' है।[२] राष्ट्र देश की समग्रता, भावात्मक संगठन और राजनीतिक एकता का द्योतक है- यह इस तथ्य से प्रकट होता है कि ऋग्वेद में सामाजिक संगठन की पांच क्रमिक विकास भूमियां बतायी गयी हैं। इनकी प्रथम इकाई 'कुल' कहलाती है, यह कुलप के संरक्षण में परिवार के सदस्यों के अनुशासन बद्ध संगठन का नाम है।[३] कुलों का समूह 'ग्राम' कहलाता है।[४] जो ग्रामणी के नेतृत्व में काम करता है। ग्राम से बढ़कर 'विश्' नामक समूह होता है, जिसका मुखिया 'विश्पति' कहा जाता है।[५] जैसे आजकल अनेक ग्रामों की एक बड़ी पंचायत होती है, वैसे ही पहले विश् रहे होंगे। विश् के नागरिक विट् कहलाते थे ये एक विश् से दूसरे विश में आते-जाते रहते थे। विश् से बृहत्तर समूह 'जन' कहलाता है।[६] 'जन' राजा के शासन-तन्त्र से सीधा सम्बन्ध रखता होगा, क्योंकि राजा को 'जनरक्षक' कहा गया है।[७]

राष्ट्र से भी बृहत्तर 'साम्राज्य' होता है। इसके शासकों को क्रमिक उच्चता के अनुसार अधिराज, राजाधिराज, एकराट्, सम्राट, स्वराट, विराट् और सर्वराट् कहा जाता है। ये अपना पद-गौरव-प्रदर्शन करने के लिए राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध, पुरूषमेध सर्वमेघ आदि यज्ञ करते थे।[८]

ऐतरेय ब्राह्मण में तत्कालीन शासन-पद्धतियों का भी उल्लेख है।[९] 'भौज्य' एक विशेष प्रकार का गणराज्य था। 'स्वाराज्य' राष्ट्रपति की प्रधानतावाला गणराज्य था।[१०] स्वाराज्य से विपरीत 'वैराज्य' गणतन्त्र राष्ट्रपति रहित होता था।[८] जहां किसी व्यक्ति विशेष में ही शासन की प्रभुसत्ता रहती थी उसे 'राज्य' कहते थे। अनेक राज्यों को अधीन रखने वाले शासन का नाम 'साम्राज्य' था।

राष्ट्र की इस प्रकार की संरचना में भौगोलिक एकता का विचार प्रमुख हैं। राजा

भूमि की रक्षा करने की शपथ लेते हुए कहता था-- 'हे पृथ्वीमाता ! तुम मेरी हिंसा न करो और मैं तुम्हारी हिंसा न करूं।' भाव यह कि देश और राजा इस प्रकार परस्पर हितैषी हों जैसे माता और पुत्र।[११] देश एक भावात्मक सत्ता भी है और इस शब्द से जितना भौगोलिक सीमा का बोध होता है, उतना ही या प्रसङ्गानुसार उससे भी अधिक 'प्रजा' का कथन होता है। इसीलिए कहा है कि 'प्रजा' ही राष्ट्र है'।[१२] राष्ट्र के विचार में प्रजा का विचार ही सब कुछ है। प्रजा के हित और संरक्षण में ही राष्ट्र की सुरक्षा है। प्रजा की समृद्धि, धन धान्य, सम्पन्नता, नीरोगता, संक्षेप में शोभा और दीप्ति ही राष्ट्र का वास्तविक राष्ट्रत्व है।[१३] इनसे विहीन राष्ट्र राष्ट्र कहलाने का अधिकारी नहीं। जब प्रजा-हित ही राष्ट्र का सर्वस्व है, तब प्रजा को ही अपना हित देखने का वास्तविक अधिकार है। अत: वेदों ने राष्ट्र की प्रभुसत्ता प्रजा में रखी हैं। धर्म, यज्ञ और राज दण्ड प्रजा के भावात्मक प्रतीक माने जाते हैं। अभिषेक के समय सविता, अग्नि, सोम, बृहस्पति, इन्द्र, रूद्र, मित्र और वरूणकों आहूतियां दी जाती हैं। इनमें सविता धर्म-पालन, सोम कृषि और वनस्पति की समृद्धि, रूद्र-पशुरक्षण और वरूण धर्म-रक्षण की शक्ति प्रदान करते हैं। ये शक्तियां राजा और प्रजा का हित-साधन करने के लिये हैं। वैदिक विचार धारा में राजा की विशेषता उसके धर्म संस्थापक रूप में है। प्रजाओं का सच्चा अधिपति धर्म है, राजा तो दण्ड (शासन) का वह रूप है जो धर्म की संस्थापना और रक्षा करता है। राजा को राज्य एक धरोहर की भांति सौंपा जाता है। अपने उपभोग के लिये नहीं, अपितु कृषि वृद्धि के लिए और सर्वविध पोषण द्वारा प्रजा के कल्याण के लिये।[१४] राजा एक ट्रस्टी के समान है, राजा का अभिषेक संस्कार भी यह प्रकट करता है। सत्रह स्थानों से सम्भृत जलों से राजा का अभिषेक कराया जाता है। यह भी प्रतीकात्मक संस्कार है। समुद्र जल प्रजाओं के प्रति भक्ति का संकेत करता है, परिवाही जल भूमा या समृद्धि की प्रेरणा देता है और स्थावर हृद का जल राजा के प्रति प्रजा की दृढ़ भक्ति का विश्वास दिलाता है।

वैदिक वाङ्मय में वर्णित राज्याभिषेक की विधि से यही सिद्ध होता है कि राजा को सदैव प्रजा के कल्याण में ही तत्पर रहना चाहिये। राजा को सब प्रकार की सुविधाएं, अधिकार प्राप्त होने पर भी उससे संयमी, ब्रह्मचारी और तपस्वी होने की अपेक्षा की जाती है।[१५]

राज्य संचालन के लिए सभा, समिति और मन्त्रिपरिषद् का गठन किया जाता था। **चर्तुवण** राज्याभिषेक के समय चारों वर्णों के मनुष्य उपस्थित रहते थे। सबके मध्य पुरोहित यह घोषित करता है कि 'सब प्रजाओं का राजा यह व्यक्ति है, किन्तु ब्राह्मणों का राजा सोम हैं।[१६] धर्म का प्रतिनिधि ब्राह्मण है, अत: ब्राह्मण क्षत्र से ऊपर है इसीलिए ब्राह्मणों की गणना प्रथम होती है।[१७] वेद का अध्ययन-अध्यापन करने से

ब्राह्मण और भी ऊँचे है, देवतुल्य है।[१८] अतः कहा गया है कि ब्राह्मण के अपमान से राष्ट्र का नाश हो जाता है।[१९] क्षत्रिय प्रजा को धर्म पथ पर लाता है और ब्राह्मण उसे धर्ममय बनाता है। क्षत्र-ब्रह्म दोनों ही प्रजाओं में धर्म को धारण कराते हैं, अतः दोनों में पूर्ण सौमनस्य होना चाहिए। दोनों की परस्पर प्रतिष्ठा होती है।[२०] बुद्धि और क्रिया का सामन्जस्य हुए बिना कोई कार्य ठीक नहीं हो सकता, राष्ट्र उन्नति पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। अतः ब्राह्मण और क्षत्रिय को मिलकर देशहित में लगे रहना चाहिये।[२१]

ब्राह्मण और क्षत्रिय ही नहीं, वैश्य और शूद्र भी राष्ट्र के साथ सौमनस्य रखें, चारों वर्णों में परस्पर सौहार्द हो, वे एक मन से तथा मिल जुलकर कार्य करें। वेद में अनेक स्थानों पर यह शिक्षा दी गई है। अतः अपने धर्म वा कर्त्तव्य में लगे रहकर सभी को सब के प्रति मित्रभाव रखना चाहिए।[२२]

परिवार-यजुर्वेद का 'योषा' शब्द पारिवारिक सौमनस्य की अनिवार्यता प्रकट करता है। राष्ट्र में सहृदयता के विस्तार का प्रथम सोपान परिवार ही है। व्यक्ति सर्वप्रथम परिवार में ही आत्मविस्तार करता है। यही वह अपने क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठने का अभ्यास करता है और परहित साधन में लगना सीखता है।

व्यष्टि धर्म-वेदों में जहां राष्ट्र धर्म के सम्बन्ध में समष्टि गत चिन्तन हुआ है वहां व्यष्टिगत राष्ट्र धर्म का भी सम्यक् निरूपण हुआ है। अथर्ववेद के सौमनस्य सूक्त में 'नः' शब्द का तीन बार प्रयोग प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तिगत योगक्षेम, आरोग्य, पुष्टि, तेजस्विता, परिश्रमशीलता आदि की कामना करता है। एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि मनुष्य का शरीर चट्टान जैसा सुदृढ़ हो।[२३] और वह तेज, वीर्य, बल, ओज, मन्यु तथा सह से परिपूर्ण हो।[२४] अनुचित कार्य को देखकर उत्पन्न होने वाला क्रोध 'मन्यु' है तथा विरोधी पर विजय पाने में समर्थ शक्ति का नाम 'सह' है। यह भी उपदेश है कि परिश्रम किये बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, देव भी सहायता नहीं करते।[२५] अतः उन्नतिशील जीवन की प्राप्ति के लिए उद्यमी होना चाहिए।[२६]

इस प्रकार वेद में विशद रूप में व्यष्टिगत, समष्टिगत राष्ट्र धर्म का सुन्दर निरूपण किया है।

सन्दर्भ–

(१) द्रष्टव्य- श्री राधा कुमुद मुकर्जीकृत 'हिन्दू-सभ्यता' अध्याय ३-४
(२) ऋग्वेद- ४।४२।१
(३) ऋग्वेद-१०।१७६।६
(४) ऋग्वेद-१।४४।१०, ३।३३।११, १०।६२।११
(५) वही १।३७।८

(६) वही २।२६।३, १०।८४।२, १०।६१।२
(७) ऋग्वेद-३।४३।५ 'गोप्ता जनस्य'
(८) अथर्व० ३।१।४, ऐत० ब्रा० ८।१५
(६) ऐत० ब्रा० ८/३
(१०) तैत्तिरीय ब्रा० १।३।२२
(११) शतपथ ब्रा० ५।४।३।२० और टीका
(१२) 'राष्ट्राराणि वै विशः।'- ऐत० ब्रा० ८।२६
(१३) 'श्री वैं राष्ट्रम्'। शत ब्रा० ६।७।३।७
(१४) इयं ते राट्....................यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि वरूण।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।। शत० ब्रा० ५।२।१।२०
(१५) ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। अथर्व० ११।५।१७
(१६) शत ब्रा० ५।३।३।१२
(१७) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। पुरुष सूक्त
(१८) शत० ब्रा० २।२।२।६
(१६) उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते।। अथर्व० ५।१६।६
(२०) ब्रह्मणि खलु वै क्षत्रं प्रतिष्ठितम्। क्षत्रें ब्रह्म। ऐत० ब्रा० ८/२
(२१) यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं देशं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ।। यजु० २०।२५
(२२) मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। यजु० ३६।१८
(२३) अश्मा भवतु नस्तनूः यजु० २६।४६
(२४) तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽसि ओजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि।। यजु० १६/६
(२५) 'न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः'। ऋग ४।३३।११
(२६) 'कृधी न उर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे'। ऐत० ब्रा० २/२

❑ ❑ ❑

तुलसी के काव्य में धर्म और राजनीति

डॉ0 मृदुल जोशी
प्रवक्ता (हिन्दी विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऋषिकेश

'हिन्दू धर्मकोश' में 'धर्म' को किसी वस्तु की विधायक आन्तरिक वृत्ति के रूप में परिभाषित किया गया है। प्रत्येक पदार्थ का व्यक्तित्व जिस वृत्ति पर निर्भर है, वही उस पदार्थ का 'धर्म' है।[१] वैशेषिक दर्शन ने धर्म की अत्यन्त वैज्ञानिक परिभाषा दी है- 'यंतोऽभ्युदयनि:श्रेयस सिद्धिः स धर्मः।' अर्थात् धर्म वह है जिससे इस जीवन का अभ्युदय और भावी जीवन में नि:श्रेयस की सिद्धि हो। 'धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः' के अनुसार जो धारण किया जाये, वही धर्म है। धारण वही वस्तु, व्यवहार या चिनतन-पद्धति की जा सकती है, जिससे जीवन में उन्नति हो, उत्कर्ष हो। स्थूल रूप से 'धर्म' के दो रूप माने जा सकते हैं- (१) जीवन-शैली, (२) उपासना-पद्धति। मनुष्य को कैसी जीवन-शैली अपनानी चाहिए, इस विषय में प्राचीन मनीषी, चिन्तकों ने विस्तार से चर्चा की है इसके अन्तर्गत व्यवहार, विचार, कर्त्तव्य-सबका समावेश हो जाता है। समाज में, पारस्परिक सौहार्द, सौमनस्य, शान्ति और सुव्यवस्था हेतु धैर्य, क्षमा, दमन, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध-शून्यता को धर्म के सर्वमान्य लक्षणों के रूप में स्वीकार किया गया है।[२] मनु ने श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा के सन्तोष को धर्म की कसौटी माना है।[३]

अग्रेता ऋषि, मनीषियों के चिन्तन के अनुकूल ही तुलसी ने अपने काव्य में 'धर्म' को-जीवन शैली और उपासना-पद्धति (religion) दोनों रूपों में ग्रहण करते हुए व्यापक अभिव्यक्ति दी है। तुलसी का चिन्तन आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना कि उनके लेखन-काल में रहा होगा। धर्म की जितनी अनुपम व विशद् अवधारणा तुलसी काव्य में मिलती है, अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने स्मृतिकार के अनुरूप ही मनुष्य के वे सभी गुणों और व्यवहार को धर्म की संज्ञा दी है जो उसकी आत्मिक उन्नति में सहायक तथा समाज के लिये उपादेय हैं। इसीलिये वे सत्य,[४] परोपकार,[५] दया[६], अहिंसा[७], तप, दान[८], इत्यादि को 'धर्म' की संज्ञा देते चले हैं। इन सभी जीवन मूल्यों के अनुपालन में 'श्रद्धा'[९] की भूमिका असंदिग्ध है।

धर्म व्यक्ति की तरह समाज का भी विधायक है,[१०] अतः एक सभ्य, सुसंस्कृत, उन्नत समाज में व्यक्ति का समाज के प्रति, परिवार के प्रति, गुरुजनों के प्रति, मित्र के प्रति, आत्मा के प्रति क्या कर्त्तव्य (धर्म) होना चाहिए-तुलसी ने इसका सम्यक् निरुपण किया है। सन्तान का धर्म है कि वह माता-पिता अथवा सास-ससुर के प्रति श्रद्धा, सेवा और सम्मान की

भावना रखे। तुलसी के नायक राम का समूचा जीवन ही इस 'धर्म' की सिद्धि हेतु प्रयासरत है। राम स्वयं तो 'पुत्र-धर्म' का निर्वाह कर ही रहे हैं, अन्य के लिये प्रेरक भी बने हैं। वन-गमन के समय सीता व लक्ष्मण को दिया गया उनको उपदेश-इसी कर्त्तव्य के अनुपालन की कथा कह रहा है।[११, १२ तथा १३] चित्रकूट में, भारत को भी राम यही शिक्षा देते हैं कि पिता का आज्ञा-पालन करना ही पुत्र का परम धर्म है।[१४] परस्पर प्रेम, त्याग, सौहार्द और समर्पण की भावना बनाये रखना ही 'भ्राता-धर्म' है। तुलसी का काव्य इस दृष्टि से अमूल्य है। राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न चारों ही इसकी जीवन्त प्रतिमूर्ति हैं। भरत का चरित्रांकन करते समय सम्भवतः इसी भावना को तुलसी ने 'भायप भगति'[१५] की अभिधा दी है।

शिष्य को गुरु के प्रति श्रद्धा, प्रेम, विनय, सेवा, संकोच के साथ एक निश्चित दूरी बनाये रखते हुए भयमिश्रित सम्मान का भाव रखना चाहिए, यही 'शिष्य-धर्म' भी है। राम-लक्ष्मण सर्वत्र इस भाव को बनाये रखे हैं।[१६,१७] यही नहीं तुलसी भी उसी भाव को बल देने हेतु प्रत्यक्ष वक्ता बन गये हैं।[१८] गुरु का भी कर्त्तव्य (धर्म) शिष्य की ज्ञान-दृष्टि में विस्तार करना तथा दृष्टि-दोष (अज्ञान) का नाश करना है।[१६,२०]

परस्पर प्रेम, समर्पण और निष्ठा-भाव ही पति-पत्नी का धर्म है। 'रामचरितमानस' में राम-सीता, शिव-पार्वती, शंकर-सती, अत्रि-अनुसुइया, रावण-मन्दोदरी इसके अन्यतम उद्धरण हैं। पति एवं पत्नी दोनों का ही परम् धर्म है कि दुःख-सुख, हानि-लाभ में एक दूसरे के सहभागी बनकर रहें। अयोध्याकाण्ड में सीता इसी धर्म की अधिवक्ता बनी हैं।[२१,२२] अरण्य काण्ड में अनुसुइया ने जो 'पातिव्रत्य धर्म'[२३] का खाका खींचा है, उससे अनुशासित समाज एक विकृति-मुक्त, उत्शृंखलता-रहित सुन्दर रूप को धारण कर सकता है।

किष्किन्धाकाण्ड में 'मित्र' के जो लक्षण बताये गये हैं तुलसी-निरूपित 'मित्र-धर्म' का ही पर्याय हैं।[२४]

धर्म का एक रूप उपासना-पद्धति भी है। परम् सत्ता को मानकर उसकी अर्चना करना। वैदिक धर्म के अनुसार ईश्वर एक है। वह विश्व की सर्वोच्च सत्ता है, उसे अनेक नामों से याद किया जा सकता है।[२५] उपनिषदों का भी यही मत है।[२६] वेदों का मानना है उसका कोई आकार नहीं होता अतः उसकी मूर्ति भी नहीं बनायी जा सकती है।[२७] वह सर्वव्यापी, तेजस्वी, शरीर रहित, स्नायुरहित, शुद्ध, पापमुक्त, कवि, मनीषी, स्वयम्भू, समस्त पदार्थों का निर्माता है।[२८] तुलसी ने भी ईश्वर के मूल रूप को ऐसा ही स्वीकार किया है।[२६,३०,३१] उन्होंने स्पष्ट स्वीकारा है कि राम वस्तुतः अपरिमित बल वाले अनादि, अजन्मा, अव्यक्त, एक, अगोचर, गोविन्द (अर्थात् वेद वाक्यों द्वारा जानने योग्य), इन्द्रियों से अतीत द्वन्द्व को हरने वाले, विज्ञान की घनमूर्ति तथा पृथ्वी के आधार हैं।[३२] वे तो केवल भक्तों के कारण मनुष्य चरित्र में सगुण लीला कर रहे हैं।[३३,३४] वेदों में प्रकृति, जीव, ब्रह्म तीनों शाश्वत व अनादि माने गये हैं। जीव सृष्टि-फल का स्वाद लेता है। जबकि ब्रह्म 'द्रष्टा'

मात्र है।[३५] तुलसी ने भी जीव को अजर अनादि माना है लेकिन उसके बन्धन का कारण 'माया' है।[३६] अन्यथा वह तो ईश-अंश है।[३७] मैं-मेरापन ही माया है।, जिसने समस्त जीवों को वशीभूत कर रखा है। माया का प्रभाव सर्वव्यापी है।[३८] तुलसी के अनुसार जो माया को, ईश्वर को, अपने स्वरूप को नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिये। जो (कर्मानुसार) बन्धन मोक्ष देने वाला सबसे परे और माया का प्रेरक है, वह ईश्वर है।[३९] जीव को माया के बन्धन से मुक्त करने के लिये तुलसी ने जिस उपासना-पद्धति पर बल दिया है, वह भक्ति है। तुलसी ने राम के श्री-मुख से कहलाया है कि 'धर्म' के आचरण से वैराग्य और योग से ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्ष को देने वाला है। जिससे मैं शीघ्र प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है।[४०] अनवरत संत-सेवा, भजन, इष्ट-निर्भरता, गुण-कीर्तन, पूजन इत्यादि भक्ति के अंग मानते हुए भक्त को काम, क्रोध दंभ, लोभ मोह के विमुक्त माना गया है।[४१] तुलसी ने भी भक्त द्वारा अनन्य चिन्तन से गीता की भाँति[४२] ईश प्राप्ति की बात दोहरायी है।[४३] तुलसी ने राम द्वारा शबरी को 'भागवत धर्म' समझाया है। नवधा भक्ति की चर्चा करते हुए उन्होंने क्रमश: सन्त-संगति, राम-कथा-प्रेम, गुरु-सेवा, अमानी रहना, ईश-गुण-कीर्तन, मंत्र-जप, दृढ़विश्वास, भजन, सन्त धर्म का अनुपालन करते हुए शील, दम, विरक्ति का अभ्यास, समस्त विश्व में ईश्वर रूप-दर्शन, हानि-लाभ में समदृष्टि रखते हुए सन्तोष, स्वप्न में भी पर-दोष अदर्शन, सबसे सरल और छलहीन व्यवहार, ईश्वर-निर्भरता-ये नौ भेद बताये हैं।[४४] वस्तुत: उपासक व उपासना के समस्त पहलू इसमें समाहित हो गये हैं।

निर्मल वर्मा ने अपने एक निबन्ध धर्म, 'धर्मतन्त्र और राजनीति' में राजनीति के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए माना है कि राजनीति का तन्त्र एक विशिष्ट समाज में मनुष्यों के पारस्परिक संबन्धों को निर्धारित करता है। इस प्रक्रिया में उन नियमों, विधियों और कानूनों का विधान बनता है, जो उन आदर्शों को रेखांकित करते हैं, जिनसे कोई राज्य-सत्ता अपनी वैधता प्राप्त करती है।[४५]

आज की राजनीति 'राजा' से 'जन' में हस्तान्तरित होती हुयी 'जनेच्छा' से 'दल', 'दल' से 'व्यक्ति' की निरंकुश इच्छा में सिकुड़ती चली गयी है। साम्प्रतिक दलगत, विकृत, मूल्यहीन राजनीति प्रजातंत्र का खुला मज़ाक है। यद्यपि तुलसी-काव्य में 'प्रजातंत्र' की बात न होकर 'राजतंत्र' का वर्णन है, लेकिन वह राजशाही आज की राजनीति की तुलना में कहीं अधिक उज्जवल, कहीं अधिक पारदर्शी और कहीं अधिक उच्चतर मूल्यों की वाहक रही है।

तुलसी के काव्य में कहीं भी सत्ता-मोह दृष्टिगोचर नहीं होता। राजनीति धर्म-प्रेरित है, जहाँ त्याग की भावना बलीभूत है। धर्म से यहाँ तात्पर्य किसी सम्प्रदाय विशेष से न होकर मानवीय-मूल्यों से है। वंश परम्परानुगत मिलने वाला राज्य भी राम को आकर्षित नहीं कर पता।[४६,४७,४८] भरत भी अनायास मिले राज्य का परिचालन त्याग-वृत्ति से करते हैं। यहाँ भी स्व-सुख भोग के स्थान पर कर्त्तव्य-बोध और अनासक्त भाव ही अधिक है।[४६]

जिस भाँति भरत 'राज' कर रहे हैं, आज के सत्तालोलुप, स्वार्थी, कुटिल राजनीतिज्ञों के लिये शिक्षाप्रद है।[५०] तुलसी द्वारा वर्णित व्यवस्था एक आदर्श व्यवस्था है। साम्प्रतिक विकृत राजनीतिक परिवेश में चुना हुआ नेता जोड़-तोड़ के चलते सत्ता पाता भी है या नहीं, समस्त प्रजा एक स्तर से उसका वर्चस्व मानती भी है या नहीं, बेहद विवादास्पद है। लेकिन राम के राज्याभिषेक के तो समाचार-मात्र से समस्त प्रजा हर्षोत्फुल्ल हो उठती है।[५१] एकमत से पाये राज्य को भी राम विवाद उठने पर व्यापक भलाई को देखते हुए त्यागने में एक क्षण भी नहीं लगाते। सत्ता का मोह तो उन्हें छू भी नहीं गया है।[५२]

तुलसी ने यत्र-तत्र राजा-प्रजा के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का भी संकेत दिया है।[५३] अयोध्याकाण्ड में राम कहते हैं कि मुखिया मुख के समान होना चाहिये, जो खान-पान में तो अकेला है परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।[५४] इसी प्रकार सत्ताधीश के मंत्रियों को निर्भीक, स्पष्टवादी व राजा को यथास्थिति का सही मूल्यांकन देने वाला होना चाहिये। भय या चाटुकारितावश दी गयी मन्त्रणा सत्ताधीश के लिये घातक हो सकती है।[५५] रामचरितमानस में तुलसी ने मन्दोदरी[५६] और प्रहस्त[५७] द्वारा लंकेश के लिये जो कहलवाया है वह राजनीति के क्षेत्र में दूरदर्शिता, नीति और विवेक का उद्धरण है। प्रहस्त और विभीषण ने सदैव 'नीति' को सामने रख कर बात की है।[५८,५९] तुलसी का स्पष्ट मानना है- 'राजु कि रहइ नीति बिनु जानें',[६०] अर्थात् नीति जाने बिना क्या राज्य रह सकता है? वस्तुतः वही राजा धन्य है जो न्याय कर सकता है।[६१]

साम, दान, दण्ड और भेद-राजनीति के ये चार प्रमुख अंग हैं। तुलसी काव्य में न्यूनाधिक सबके दर्शन होते हैं। कुशल राजनीतिज्ञ राम समयानुसार दण्डित करते हुए तो दृष्टिगोचर होते ही हैं,[६२] उचित अवसर पर भेद-नीति का प्रयोग करने से भी नहीं चूकते। वे तो इतने चौकस हैं कि विभीषण से अपनी सेना के समक्ष भी मुखर रूप से मन्त्रणा प्राप्त नहीं करते। इसके लिए भी नितान्त गुप्त मन्त्रणा करते हैं।[६३] अंगद की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि 'साम दान अरू दण्ड विभेदा, नृप-उर बसहिं नाथ कह बेदा।'[६४] राजनीति में शत्रु-पक्ष के सबल होने की समस्त संभावनाओं को भेद-नीति द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया जाता है। राम ने भी सर्वत्र इसका सहारा लिया है। चाहे मेघनाथ के बल को क्षीण करने की बात हो,[६५] चाहे रावण-यज्ञ विध्वंसकी,[६६] अथवा रावण-मृत्यु-भेद की,[६७] विभीषण द्वारा सूचना पाकर ही पूरी की जा सकी है।

तुलसी की राजनीति धर्ममय है। यहाँ धर्म का तात्पर्य किसी सम्प्रदाय-विशेष का संरक्षक होना नहीं अपितु मानवीय और उदार नीति से सम्पृक्त होना है। विभीषण के शंकाकुल होने पर राम ने जिस 'धर्म-रथ' की चर्चा की है, स्पृहणीय है। राम ने कहा कि 'विजय-रथ' के शौर्य और धैर्य दो पहिये हैं। सत्य और शील (सदाचार) उसकी दृढ़ ध्वजा बल, विवेक, दम (इन्द्रियों का वश में होना) और परोपकार ये चार घोड़े हैं, जो क्षमा, दया,

समता रूपी डोरी से रथ में जुड़े हुए हैं। ईश-भजन ही रथ चलाने वाला सारथि है। वैराग्य ढाल है, संतोष तलवार है, दान परशु है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, श्रेष्ठ ज्ञान कठिन धनुष है, निर्मल और स्थिर मन तरकश है। शम (मन का वश में होना), अहिंसादि यम और शौचादि नियम से बहुत से बाण हैं। ब्राह्मण और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा कोई उपाय नहीं है। जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर तो संसार (जन्म-मृत्यु) रूपी महान् दुर्जेय शत्रु को भी जीत सकता है। रावण की तो बात ही क्या है ? वस्तुत: जिस शासक में ये गुण होंगे, प्रथमत: तो वह सबका प्यारा होगा, उसका कोई शत्रु ही नहीं होगा। यदि दुर्भाग्य से शत्रु हो भी तो उक्त व्यक्ति में इन गुणों से इतना दृढ़ आत्म विश्वास और साहस उत्पन्न होगा कि वह सफलता ही प्राप्त करेगा।

तुलसी के नायक के शासनारुढ़ होते ही सर्वत्र आनन्द और मंगल का साम्राज्य प्रसरित होता है।[६९] वस्तुत: शासक की सुव्यवस्था द्वारा ही सभी सुखी, साधन-सम्पन्न, निर्भय और शोक रहित हो गये हैं।[७०] चतुर्दिक् अगाध सन्तोष परिव्याप्त है, इसलिये परस्पर बैर-भाव भी नहीं-

'दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज,
जीतहु मनहि सुनिअ अस राम चन्द्र के राज।[७१]

यही तुलसी-निरूपित आदर्श व्यवस्था है और आज के परिप्रेक्ष्य में भी यही काम्य है।

पाद टिप्पणी

१. हिन्दू धर्मकोश, डॉ० राजबली पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान समिति प्रयाग, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, पृ० ३३९

२. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।
मनुस्मृति, २.

३. वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः सद्धर्मस्य लक्षणम्।
-मनुस्मृति, २,१२.

४. धरमु न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना।
-श्री राम चरित मानस अयोध्याकाण्ड (मोटा टाईप, भाषानुवादसहित) गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण सं. २०१६, पृ० ३८०

५. परहित सरिस धरम नहिं भाई, परपीडा सम नहिं अधमाई।
-वही उत्तरकाण्ड, पृ० ८७५

६. धर्म कि दया सरिस हरि जाना

-वही, पृ० ६४१

७. 'परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा',

-वही, पृ० ६५५

८. 'प्रगट चारि पद धर्म के'

-वही, पृ० ६२६

(धर्म के चार चरण सत्य, दया, दान, तप-प्रतिष्ठित हैं)

६. 'श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई, बिनु महि गंध कि पावई कोई।'
-वही पृ० ६१६

१०. हिन्दू धर्म कोश, पृ० ३३६

११. 'ऐहिते अधिक धरम नहिं दूजा, सादर सास-ससुर पद पूजा'

-अयोध्याकाण्ड, पृ० ३५४

१२. 'मातु-पिता', गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभायँ,
लहेउ लाभु तिन्ह जानकर, नतरु जनमु जग जायँ।

-अयोध्याकाण्ड, दोहा सं०-७०, पृ० सं० ३६१

१३. 'अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई, करहु मातु पितु पद सेवकाई'

-वही, पृ० ३६१

१४. मोर तुम्हार परम पुरुषारथु, स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई, लोक वेद भल भूप भलाई

-अयोध्याकाण्ड, पृ० ५५१

१५. वही, अयोध्याकाण्ड पृ० ४७८

१६. 'सभय सप्रेम विनीत अति संकुच सहित दोउ भाई।
गुरु-पद पंकज नाई सिर बैठे आयसु पाई'

-वही, बालकाण्ड, दोहा सं. २२५, पृ० १६२

१७. बार-बार मुनि अग्या दीन्हीं, रघुवर जाइ सयन तब कीन्हीं

-वही पृष्ठ० १६३

१८. 'बन्दऊँ गुरु-पद पदुम परागा', वही पृ० ३.

१६. 'श्री गुरु पद-नख मनि गन जोती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।'

-वही, पृ० ३

२०. गुरु पद-रज मृदु मंजुल अंजन, नयन अमिअ दृग दोष विभंजन',

-वही, पृ० ४

२१. 'प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं, मो कहुँ-सुखद कतहुँ कछु नाहीं,

-वही, पृ० ३५७

२२. 'मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू, तुम्हहिं उचित तप मो कहुँ भोगू ?

-वही पृ० ३५६

२३. "जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं, वेद पुरान संत सब कहहीं।
उत्तम के अस बस मन माहीं, सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम परपति देखई कैसें, भ्राता, पिता, पुत्र निज जैसे।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई, सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।
बिनु अवसर भय तें रह जोई, जानेहु अधम नारि जग सोई।
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।"

-वही, पृ० ५६६

२४. जे न मित्र दुःख होहिं दुःखारी, तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।
निजः दुःख गिरि सम रज करिजाना, मित्रक दुःख रज मेरु समाना।
जिन्हकें असि मति सहज न आई, ते सठ कत हठि करत मिताई।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा, गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरा।
देत लेत मन संक न धरई, बल अनुमान सदा हित करई।
विपति काल कर सतगुन नेहा, श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।

-किष्किन्धाकाण्ड, पृ० ६२७

२५. "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णे गुरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्तयग्निं यमं मातरिश्वानर्माहुः।

-ऋग्वेद, १-१६४-४६

२६. "स ब्रह्म स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सो क्षरस्स परमः स्वराद
स इन्द्रस्स स कालाग्निस्स चन्द्रमा।"

-कैवल्य उपनिषद् ८

२७. 'न तस्य प्रतिमा अस्ति'
-यजुर्वेद, अं. ३२, मं. ३

२८. "स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभू, स्वयम्भूर्याथातथ्यतो ऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।"
-यजुर्वेद अं. ४, मं. ८

२९. "अमलमखिलमनवद्यमपारम्"- राम चरित मानस, अरण्य काण्ड, पृ० ५७७

३०. "जदपि बिरज व्यापक अविनासी"-वही, पृ० ५७७

३१. "जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावहीं।"

-वही, पृ० ६०४

३२. "बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं,
गोबिन्द गोपर द्वन्द्वहर विग्यानघन धरनीधरं।"

-वही, अरण्यकाण्ड, पृ० ६०४

३३. "पूरन काम राम सुख रासी, मनुज चरित कर अज अविनासी'

-वही पृ० ६०३.

३४. 'ब्रह्म अनामय, अज भगवंता, ब्यापक अजित अनादि अनंता।
गो, द्विज, धेनु, देव हितकारी, कृपा सिंधु मानुष तनुधारी।

-वही, सुन्दरकाण्ड, पृ० ६८६-६८७

३५. "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्यो अभिचाकशीति।"

-ऋग्वेद मण्डल-१, सूक्त १६४, मं. २०

३६. जो सबके रह ग्यान एक रस, ईश्वर जी वहिं भेद कहहु कस।
माया बस्य जीव अभिमानी, ईस बस्य माया गुनखानी।
परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता।

-रामचरितामनस, उत्तराकाण्ड, पृ० ६०६

३७. ईस्वर अंस जीव अविनासी, चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो मायाबस भयउ गोसाईं, बंधे कीर मरकट की नाई। -वही पृ० ६४७

३८- "मैं अरु मोर तोर तैं साया, जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।
गो गोचर जहँ लागि मन जाई, सो सब माया जानेहु भाई।"

-वही, अरण्यकाण्ड पृ० ५८२

३६. माया, ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव।

-वही, अरण्यकाण्ड, दोहा सं. १५, पृ० ५८२

४०. "धर्म ते विरति जोग तें ग्याना, ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।
जातें बेगि द्रवऊँ मैं भाई, सो मम भगति भगत सुखदाई"

-रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, पृ० ५८२

४१. "संत चरन पंकज अति प्रेमा, मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा।
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा, सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा।
मम गुन गावत पुलक सरीरा, गदगद गिरा नयन बह नीरा।
काम आदि मद दंभ न जाके, तात निरन्तर बस मैं ताकें।

-रा.च.मा., अ.का., पृ० ५८३

४२. "अनन्य चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याऽहं सुलभः पार्थ नित्यमुक्तस्य योगिनः।
-श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ८, श्लोक सं. १४,
सं. २०११ (एकादश संस्करण) पृ. सं. २०६

४३. "वचन कर्म मन मोरि गति, भजनु करहिं निःकाम
तिनह के ह्रदय कमल चहुँ करऊँ सदा विश्राम।

-रा.म.मा., अरण्यकाण्ड, दोहा सं. १६, पृ० ५८३

४४. प्रथम भगति संतन्ह कर संगा, दूसरि रति मम कथा-प्रसंग।
गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन, करई कपट तजि गान।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा, पंचम भजन सो बेद प्रकासा।
छठ दम सील विरति बहु करमा, निरत निरंतर सज्जन धरमा।
सातँव सम मोहि मय जग देखा, मो तें संत अधिक कर लेखा।
आठवँ जथा लाभ सन्तोषा, सपनेहुँ नहि देखई परदोषा।
नवम सरल सब सन छलहीना, मम भरोस हियँ हरष न दीना।
नव महुँ एकउ जिन्ह के होई, नारि पुरुष सचराचर कोई।
-रा.च.मा., अरण्य काण्ड, पृ० ६०७-६०८

४५. 'शताब्दी के ढलते वर्षों में, पृ० १६६

४६. "प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः।"
-रा.च.मा., अयोध्याकाण्ड, श्लोक सं. २, पृ० ३०७

४७. "भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू, विधि सब विधि मोहि सन्मुख आजू।"
-वही पृ० ३३६

४८. "नाहिन रामु राज के भूखे, धरम धुरीन विषय रस रुखे।"
-वही पृष्ठ ३४५.

४९. "सुनि सिख पाई असीस बड़ि गनक बोलि दिन साधि।
सिंहासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि"
-रा.च.मा., अयोध्याकाण्ड, दो. सं. ३२३, पृ० ५५८

५०. भूषन बसन भोग सुख भूरी, मन तन बचन तजे तिन तूरी।
अवधु राजु सुर राजु सिहाई, दशरथ धनु सुनि धनदु लजाई।
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा,- चंचरीक जिमि चंपक बागा
-रा.च.मा. अयोध्याकाण्ड, पृ० ५५८

५१. राम राज अभिषेक सुनि, हियँ हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि।
-रा.च.मा., अयोध्याकाण्ड, दोहा सं. ८, पृ० ३१३

५२. लोभु न रामहि राजु कर।
वही, अयोध्याकाण्ड, दोहा सं. ३१

५३. "सेवक करपद नयन से, मुख सो साहिब होई।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकवि सरारहिं सोई।"
-रा.च.मा., अयोध्या काण्ड, पृ० ५४५

५४. "मुखिया मुख सो चाहिए, खानपान कहुँ एक।
पालई पोषई सकल अँग, तुलसी सहित विवेक।"
-रा.च.मा. अयोध्याकाण्ड, दोहा सं. ३१५, पृ० ५५१

५५. "सचिव बैद गुरु तीन जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर होइ बेगहिं नास।"

-रा.च.मा., सुन्दर काण्ड, पृ० ६८६

५६ "नाथ बयरु कीजे ताही सों, बुधि बल सकिअ जीति जाही सों।"
-रा.च.मा., लंका काण्ड, पृ० ६१३

५७. "कहहिं सचिव सब ठकुर सोहाती, नाथ न पूर आव एहि भाँति"
तथा
"सुनत नीक आगें दुःख पावा, सचिवन अस मत प्रभुहिं सुनावा"
तथा
"वचन परम हित सुनत कठोर, सुनहिं जो कहहिं ते नर प्रभु थोरेः।"
-रा.च.मा., लंकाकाण्ड, पृ० ७१५

५८. "नीति विरोध न करिअ प्रभु, मन्त्रिन्ह मति अति थोरि"
-रा.च.मा., लंकाकाण्ड, दोहा सं. ८, पृ० ७१५

५६. "नीति विरोध न मारिअ दूता"
-सुन्दरकाण्ड, पृ० ६७४

६०. रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, पृ० ६४१

६१. "धन सो भूपु नीति जो करई"
-रा.च.मा., उत्तरकाण्ड, पृ० ६६३

६२. "भय बिनु होइना प्रीति"
रा.च.मा., सुन्दर काण्ड, पृ० ७०३
तथा
विनय न मान खगेस सुनु, डाँटेहिं पइ नव नीच।
वही, दोहा सं. ५८, पृ० ७०३

६३. "कह लंकेस मंत्र लगि काना"

रा.च.मा., लंका काण्ड, पृ० ७१७

६४. वही, लंकाकाण्ड, पृ० ७४३

६५. लंकाकाण्ड पृ० ७७५

६६. वही, पृ० ७८६

६७. "नाभिकुण्ड पीयूष बस याकें, नाथ जिअ रावनु बल ताके"
-रा.च.मा., लंकाकाण्ड, पृ० ८०७

६८. 'सुनहु सखा कह कृपानिधाना, जेहिं जय होई सो स्यन्दन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विबेक दम परहित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना, बिरति चर्म संतोष कृपाना।

दान परसु बुध सक्ति प्रचंडा, बर बिग्यान कठिन कोदण्डा।
अमल अचल मन त्रोन समाना, सम जम नियम सिली मुख नाना।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा, एहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके, जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।
महा अजय संसार रिपु, जीति सकई सो वीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनंहु सखा मति धीर।
-वही लंकाकाण्ड, पृ० ७८१

६६. राम राज बैठे त्रैलोका, हरषित भए गए सब सोका।
बरनाश्रम निज-निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय सोक न रोग"
-रा.च.मा., उत्तरकाण्ड, दोहा सं. २०, पृ० ८५७

७०. दैहिक, दैविक, भौतिक तापा, राम राज नहिं काहुहिं व्यापा।
-वही, पृ० ८५७

७१. -उत्तरकाण्ड, पृ० ८५६

वैदकालीन मन्त्रिमण्डल

डॉ0 बलवीर आचार्य
रीडर संस्कृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक हरयाणा

वैदिक साहित्य में राज्य संस्था के पूर्ण विकास की सूचना उपलब्ध है। राजनीति के आचार्यों ने राजा के सात अङ्ग स्वीकार किये हैं:- १.राजा, २.अमात्य, ३.कोश, ४. दण्ड (सेना), ५. जनपद, ६. पुर (दुर्ग) और ७.प्रजा।[१]

इन सात अङ्गों में अमात्य (मन्त्रि या मन्त्रिमण्डल) का स्थान दूसरा है। ऋग्वैदिक काल में राजनीतिक संस्थाओं के रूप में सभा और समिति का विकास हो चुका था। इन संस्थाओं के माध्यम से राज्य सञ्चालन के लिए जनप्रतिनिधि राजा के साथ मिलकर विचार विमर्श करते थे। ये जनप्रतिनिधि मन्त्रिपरिषद् के सदस्य होते थे। अथर्ववेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्हें "रत्निन्" कहा गया है। इन्हीं को 'राजानः' और 'राजकृतः' भी कहा जाता था। ये राजशक्ति के रूप में राजा को एक मणि (पर्णमणि) प्रदान करते थे।[२] अथर्ववेद के अनुसार इनकी संख्या पाँच थी[३]- सूत, रथकार, कर्मार, ग्रामणी और राजानः। राजानः का तात्पर्य भावी राजा के, जिसके अभिषेक का प्रस्ताव है, कुटुम्बीगण तथा अन्य राजगण से था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में यह संख्या बढ़कर बारह हो गयी। यह इस प्रकार है- ब्राह्मण (पुरोहित) राजन्य, महिषी, वावाता, परिवृत्ति, सूत, सेनानी, ग्रामणी, क्षत्रिय, संगृहीता, भागदुक और अक्षवाप।[४] राजन्य के विषय में कुछ विद्वानों का यह मानना है कि राजन्य वह व्यक्ति है जिसका अभिषेक होने जा रहा है। इस मत के अनुसार उक्त सूची से राजन्य को पृथक् कर केवल ग्यारह राजकर्त्ता माने जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में इस सूची में दो राजकर्त्ता और बढ़ाये गये हैं। वे हैं गोविकर्त्तन और पालागल।[५] मैत्रायणि संहिता में दो राजकर्त्ताओं की और वृद्धि की गई है जो तक्षण और रथकार हैं।[६] पंचविश ब्राह्मण में यह संख्या कम कर दी गई है। इस के अनुसार जिस क्षत्रिय का राज्याभिषेक हो रहा है, उसका भ्राता, पुत्र, पुरोहित, महिषी, सूत, ग्रामीण, क्षत्रिय और संगृहीता है।[७]

मन्त्रिमण्डल के सदस्य :

शतपथ ब्राह्मण में इन राजकर्त्ताओं को दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया है। एक वर्ग को राजवंशीय राजकर्त्ता और दूसरे को अराजवंशीय राजकर्त्ता नाम से सम्बोधित किया गया है।[८] प्रथम श्रेणी राजकर्त्ता राजन्य, महिषी, वावाता, परिवृत्ती,

भावी-राजा का भ्राता, भावी राजा का पुत्र और क्षत्रिय हैं। इन राजवंशीय राजकर्त्ताओं को अनुकूल बनाये रखना बहुत आवश्यक था। क्योंकि ये लोग राजघराने के होते थे। इसलिए कभी भी राजा के विरोध में षड्यन्त्र रच सकते थे। इनके षड्यन्त्र रचने से राज्याभिषेक में विघ्न पड़ने की पूरी-२ संभावना बनी रहती थी, इसलिए प्रयत्न पूर्वक राजा इन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करता था। उत्तर वैदिक काल में राज्याभिषेक के समय किये जाने वाले "रत्नहवींषि" संस्कार से मन्त्रिमण्डल और राजकर्त्ताओं के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त होती है। यह संस्कार "राजसूय यज्ञ" का अभिन्न अंग था। इस संस्कार पर वेबर, जायसवाल और घोषाल प्रभृति विद्वानों ने विस्तृत प्रकाश डाला है।

रत्नहवींषि संस्कार के अनुसार राजा प्रत्येक रत्निन् के घर जाता और वहाँ समुचित देवता को बलि अर्पित करता था। पाँच ग्रन्थों में इन रत्नियों के नाम आये हैं, इनके आधार पर निम्नलिखित एक सारिणी तैयार की है।

रत्नहवींषि में रत्नियों की सूची

क्रम	तैत्तिरीय संहिता 1.8.9	मैत्रायणी संहिता 11.6.5 IV.3	काठक संहिता XV.4	तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.7.3. और आगे	शतपथ ब्राह्मण 5.2.5.1
1.	ब्रह्मन्	ब्रह्मन्	बृहस्पति के लिए पुरोहित	ब्रह्मन्	सेनानी
2.	राजन्य	राजन्य	इन्द्र के लिए राजा	राजन्य	पुरोहित
3.	महिषी	महिषी	अदिति के लिए महिषी	महिषी	याजक
4.	परिवृत्ती	परिवृत्ती	नैर्ऋत के लिए परिवृत्ती	वावाता	महिषी
5.	सेनानी	सेनानी	अग्नि के लिए सेनानी	परिवृत्ति	सूत
6.	सूत	संगृहीतृ	अश्विनों के लिए संगृहीतृ	सेनानी	ग्रामणी
7.	ग्रामणी	क्षतृ	सवितर के लिए क्षतृ	सूत	क्षतृ
8.	क्षतृ	सूत	वरुण के लिए सूत	ग्रामणी	संगृहीतृ
9.	संगृहीतृ	वैश्यग्रामणी	मरुत् के लिए वैश्यग्रामणी	क्षतृ	भागदुक्
10.	भागदुक्	भागदुक्	पूषन् के लिए भागदुक्	संग्रहीतृ	अक्षावाप
11.	अक्षावाप्	तक्षन्	अक्षावाप	भागदुक्	गोविकर्त्तन
12.		रथकार	रुद्र के लिए गोव्यच्छा	अक्षावाप	पालागल
13.		अक्षावाप			परिवृत्ती
14.		गोवित्कर्त्त			

रत्नहवींषि संस्कार में राजा जिन लोगों के द्वार पर जाता था, उनका राजनीतिक महत्त्व अनेक अवतरणों में भली-भाँति प्रकट होता है। वहाँ बलपूर्वक यह कहा गया है कि राजा इन रत्नियों को अपने राज्य का आधारस्तम्भ मानता है। रत्नियों को राज्य देने और लेने वाले "राष्ट्रस्य प्रदातारः एते परदातारः" कहा गया है।[८] इन्हें राजशक्ति का अंग "क्षत्रस्य वा एतान्यगांनि"[९] कहा गया है। यह वर्णन मनु और अन्य विचारकों द्वारा वर्णित राज्य के सात अंगों का स्मरण कराता है। वहाँ यह भी कहा गया है कि यदि रत्निन् ओजस्वी और तेजस्वी हो तो वह राष्ट्र भी ओजस्वी और तेजस्वी होगा।[१०] मैत्रायणी संहिता में रत्नियों को राजशक्ति का अनिवार्य अंग कहा गया है, जिनकी तेजस्विता से सम्पूर्ण राष्ट्र तेजस्वी होता है।[११] तैत्तिरीय ब्राह्मण में रत्नियों को राष्ट्र को प्रदान करने वाला और धारण करने वाला कहा गया है।[१२] राजसूय के अवसर पर राजा प्रत्येक रत्नी से कहता है कि वह निश्चित रूप से राजा का एक रत्न है तथा उसी के लिए राजा का अभिषेक होता है।[१३] राजसूय के इस कृत्य का लक्ष्य राजा के लिए जनता के इन महत्त्पूर्ण व्यक्तियों की स्वामिभक्ति प्राप्त करना होता था।

अधिकांश रत्नियों के घर राजा जिस मन्त्र का उच्चारण करता है उसमें वह कहता है कि मैं रत्नियों के लिए ही अभिषिक्त हुआ हूँ और मैं इन्हें अपना निष्ठावान् अनुगामी बनाता हूँ।[१४] अन्य अनेक स्रोतों से भी यह पुष्ट हो जाता है कि पुरोहित, राजन्य, महिषी, सूत, ग्रामणी, क्षतृ और संग्रहीतृ आदि विशिष्ट व्यक्ति थे। इन्हें ऐसा व्यक्ति कहा गया है जो राजा का अभिषेक करते हैं और साथ मिलकर राजपद को शक्ति प्रदान करते हैं।[१५] इस संस्कार में जिन अधिकारियों को रत्निन् कहा गया है वे राजसूय यज्ञ के ही एक अन्य संस्कार यज्ञ खड्ग के हस्तान्तरण में भी, जो द्यूत क्रीड़ा का एक अंग था, महत्त्वपूर्ण व्यक्ति माने गए हैं।

शुक्लयजुर्वेदीय शाखा के अनुसार यह यज्ञखड्ग सूत और ग्रामणी को भी हस्तान्तरित किया जाता है, ताकि वे राजा के अधीनस्थ बने रहें।[१६] इसी सन्दर्भ में कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के अवतरण में यह खड्ग पुरोहित को दिया जाता है, जो इसे रत्नियों को हस्तान्तरित कर देता है। अंत में यह अक्षावाप के हाथ में जाता है जो इससे क्रीड़ाक्षेत्र तैयार करता है।[१७] राजा तथा उसके कर्मचारियों और आश्रितों के पारस्परिक संबन्धों को रत्नहवींषि संस्कार द्वारा पुनीत बनाया जाता था और इन्हें धर्म संस्कारों का रूप प्रदान किया जाता था। जिन रत्नियों के पास राजा इस अनुष्ठान के क्रम में जाता था वे निश्चय ही उसके घरेलू परिचर और प्रशासन तंत्र के अंग थे। ब्राह्मण कालीन राज्य व्यवस्था में इन दोनों वर्गों के कर्मचारियों के मध्य कोई स्पष्ट रेखा खींचपाना कठिन है। इन रत्नियों की सांविधानिक स्थिति क्या थी, यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता। बहुत से विद्वान् इन रत्नियों को उच्चाधिकारी मानते हैं। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ये रत्निन् एक राजपरिषद् के अंग थे। यह तो हो सकता है कि

विभिन्न राज्यों में उनकी संख्या में कुछ अन्तर रहा हो, क्योंकि राजसूय यज्ञ, भरतों, कुरुओं और पंचालों, तीनों के राज्यों में होता था। शतपथ ब्राह्मण से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि यह यज्ञ विदेह में भी प्रचलित रहा होगा, जिसमें रत्नियों की संख्या बारह रही होगी।

इन रत्नियों अथवा राज्याधिकारियों का स्वरूप निम्न प्रकार रहा होगा।

१. **ब्राह्मण अथवा पुरोहितः**

राजा के धार्मिक कृत्य करने वाला ब्राह्मण पुरोहित कहलाता था।[१८] वह राजगुरु होता था और समय-समय पर आवश्यकतानुसार परामर्श एवं मंत्रणा देता था, पुरोहित राजा के साथ युद्ध के समय में भी रहता था। वह राजा की विजय के लिए प्रार्थना करता था। राजा का सबसे बड़ा हितचिन्तक अथवा निकटस्थ पुरोहित माना जाता था। पुरोहित शब्द का निर्वचन निरुक्तकार यास्क ने इस प्रकार किया है- "पुर एनं दधति"[१९] ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सर्वप्रथम मन्त्र में अग्नि को पुरोहित कहकर पुकारा गया है।[२०] महर्षि दयानन्द ने अग्नि का अर्थ परमात्मा भी किया है। इस मन्त्र में परमात्मा को पुरोहित कहकर पुकारा गया है।

शतपथ ब्राह्मण को छोड़कर अन्य सभी ब्राह्मण ग्रन्थों में रत्नियों में पुरोहित का स्थान सर्वप्रथम माना गया है। इससे शासन तन्त्र में उसकी प्रमुखता का स्पष्ट परिचय प्राप्त होता है। पुरोहित जहाँ राजा का परामर्श दाता होता था, वहाँ यज्ञों और अनुष्ठानों के द्वारा राजा को दैवी कृपा का पात्र भी बनाता था। ऐतरेय ब्राह्मण में उसे राष्ट्र गोप कहा गया है।[२१] इससे उसके राजनैतिक महत्त्व का बोध होता है। इस रत्नी-सूची में ब्राह्मण अथवा पुरोहित को ब्राह्मण वर्ग का प्रतिनिधि मानना केवल पूर्वाग्रह ही कहा जायेगा। वस्तुतः राजनैतिक क्षेत्र में पुरोहित का महत्त्व प्रशासन कार्य में धार्मिक एवं बौद्धिक सहयोग के कारण ही था न कि किसी सामाजिक वर्ग का प्रतिनिधि होने के कारण।

रत्नी-सूची के पुरोहित के सम्बन्धों में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शतपथ ब्राह्मण में पुरोहित का स्थान सेनानी के पश्चात् है[२२] तथा पंचविंश् ब्राह्मण के वीरों की सूची में उसका नाम राजभ्राता और राजपुत्र के अनन्तर है।[२३] इससे यह भी संकेत मिलता है कि उस काल में धीरे-धीरे पुरोहितों का महत्त्व भी घटता जा रहा था।

ऐतरेय ब्राह्मण में पुरोहित के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है वहाँ कहा गया है कि देवता पुरोहित विहीन राजा के अन्न को स्वीकार नहीं करते, इसलिए यज्ञ की इच्छा वाले राजा को एक पुरोहित रखना चाहिए कि "देवता मेरे अन्न को ग्रहण कर लें।" राजा पुरोहित का संपादन करता है वह स्वर्ग को ले जाने वाली अग्नियों को

स्थापित करता है। पुरोहित ही राजा का आहवनीय अग्नि है, स्त्री गार्हपत्य है पुत्र दक्षिणाग्नि है। राजा पुरोहित के लिए जो कुछ करता है वह आहवनीय अग्नि में होम करने के समान है। पुरोहित के द्वारा वे अग्नियाँ अपने उग्ररूप को छोड़कर अभीष्ट होम से प्रसन्न होकर इस राजा को स्वर्ग पहुँचाती हैं। पुरोहित की प्रसन्नता से मन के उत्साह रूप शौर्य को, शारीरिक बल को, राष्ट्र को और प्रजा को प्राप्त कराने वाली होती है। अभीष्ट होम के अभाव में यदि ये उग्र रूप धारण कर लें तो अप्रसन्न होकर वे ही इस राजा को स्वर्ग लोक से गिरा देती हैं, उसे शौर्य से, शारीरिक बल से, राष्ट्र से और प्रजा से च्युत कर देती हैं।

आलंकारिक रूप से इस विषय का विस्तार करते हुए ब्राह्मण कार कहते हैं- यह पुरोहित उपद्रव कारिणी क्रुद्ध पाँच शक्तियों वाला वैश्वानर अग्नि है। उसकी वाणी में एक शक्ति होती है, दोनों पैरों में एक, त्वचा में एक, हृदय में एक और उपस्थ में एक शक्ति होती है। उन जलती हुई पाँच शक्तियों के साथ पुरोहित राजा के पास आता है। जब राजा कहता है- हे भगवन्। अबतक आप कहाँ रहे? और सेवकों से कहता है-हे परिचारकों ! तृण निर्मित आसन पुरोहित के लिए लाओ। राजा के इन प्रिय वचनों से पुरोहित की वाणी में जो बाधिका शक्ति होती है, उसका शमन हो जाता है। इसके बाद जब पुरोहित के चरण प्रक्षालन के लिए जल आता है तो जो उसके पैर की क्रुद्ध शक्ति होती है, उसे वह शान्त करता है। इसके बाद जब उसे वस्त्रादि से अलंकृत किया जाता है। तब उसकी त्वचा में जो क्रुद्ध शक्ति होती है उसका शमन हो जाता है। तत्पश्चात् जब धन आदि के द्वारा उसे तृप्त करते हैं तो उसके हृदय में जो क्रुद्ध शक्ति होती है वह शान्त हो जाती है। जब वह पुरोहित राज प्रसाद में बिना किसी बाधा के उन्मुक्त रूप से विचरण करता है तो उसके उपस्थ की अग्नि शान्त होती है।

इस प्रकार होम के द्वारा प्रसन्न एवं शान्त शरीर वाला वह पुरोहित राजा को स्वर्गलोक पहुँचाता है और उसे शौर्य, शारीरिक बल, राष्ट्र एवं प्रजा से समृद्ध करता है। वही पुरोहित यज्ञ के अभाव में अशान्त शरीर एवं अप्रसन्न होकर राजा को स्वर्ग लोक से वञ्चित कर देता है और उसे शौर्य, बल, राष्ट्र एवं प्रजा से भी च्युत कर देता है।[२४]

पुरोहित वरण :

पुरोहित का वरण करते समय राजा निम्न मन्त्र का उच्चारण करता है-

"भूर्भुवः स्वरोममोऽहमस्मि, स त्वं; स त्वमस्योऽहं, द्यौरहं पृथिवी त्वं, सामाहमृक्त्वं, तावेव संवहावहै।"

पुरोहित का वरण कर लेने मर राजा द्वारा प्रदान किये गये आसन का पुरोहित

अभिमन्त्रण करता है। तत्पश्चात् अभिमन्त्रित आसन पर वह बैठता है। उसके बाद राजा पाद प्रक्षालन के लिए जल देता है। पुरोहित उस जल को देखता हुआ, मन्त्र पाठ करता है-

"अस्मिन् राष्ट्रे श्रियमावेशयाम्यतो देवीः प्रतिपश्याम्यापः।[२५]

अर्थात हे जल! मैं पुरोहित इस राष्ट्र में धन-सम्पदा का सम्पादन करता हूँ। अतः मैं द्योतनात्मक तुम दिव्य जलों की ओर देखता हूँ।

पाद प्रक्षालन के पश्चात् अवशिष्ट जल का अभिमन्त्रण करते हुए कहता है- "पैरों को धोने से बचा हुआ यह जल मेरे शत्रु को भस्म करे।"

इस प्रकार पुरोहित की वरण विधि में भी राष्ट्र की रक्षा का दिव्यभाव विद्यमान है।

पुरोहित की योग्यता

राजा का पुरोहित कैसा होना चाहिए इस विषय में ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया है कि जो ब्राह्मण तीन पुरोहितों और उसके तीन पुरोधाताओं का पूर्ण ज्ञाता हो, वह राजा का पुरोहित होना चाहिए। ये तीन पुरोहित अग्नि, वायु और आदित्य और उनके क्रमशः तीन पुरोधाता पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ हैं। राजा के लिए पुरोहित की आवश्यकता व्यक्त करते हुए ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि जिस राजा का ऐसा ब्राह्मण राष्ट्र का रक्षक पुरोहित होता है, दूसरे राजागण उस राजा के मित्र बन जाते हैं और वह अपने शत्रुओं को जीत लेता है। वह क्षत्र से क्षत्र को और बल से बल को जीत लेता है। जिस राजा का ऐसा राष्ट्ररक्षक ब्राह्मण पुरोहित होता है उसकी प्रजाः (विशः) उसको निरन्तर एवं एकमत होकर नमन करती हैं।[२६]

पुरोहित का पद वैदिक काल से ही बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। यह राजा का गुरु होता था और राजा को सन्मार्ग पर चलाने का प्रयास करता था। राजा के कार्यों के औचित्य और अनौचित्य का वह निर्णायक था। शासन की नीति के संचालन में भी उसका बहुत महत्त्व था। पुरोहित को यह अनिवार्य था कि वह राजनीति और धर्म दोनों प्रकार के शास्त्रों में निपुण होना चाहिए। राजा की अनुपस्थिति में वह शासन का संचालन भी कर सकता था।

पुरोहित का उपयोग अन्यत्र भी किया जा सकता था। प्राचीन ग्रन्थों और काव्यों में वर्णन है कि राजा लोग अपने विशेष महत्त्वपूर्ण सन्देशों को दूसरे राज्य में पुरोहित द्वारा भी भेजा करते थे।

पुरोहित के घर जाकर राजा जो याग करके हवि प्रदान करता था उसका देवता इन्द्र, हवि-कपाल पुरोडाश तथा दक्षिणा ऋषभ होती थी।

विधि का रक्षक :

पुरोहित पर गुरुतर कार्य विधि की रक्षा का होता था। न्याय का निर्णय राजा स्वयं नहीं कर सकता था। उसको पुरोहित से विधि की व्याख्या कराकर निर्णय देना होता था। वैदिक काल में विधि के लिए पारिभाषिक शब्द धर्म था।[२७] इस शब्द की उचित जानकारी के अभाव में आधुनिक विचारक पुरोहित को मात्र धर्म का अधिष्ठाता मानते हैं, जबकि उसकी स्थिति प्रमुख न्यायधीश के रूप में परामर्श दाता की थी। विधि (धर्म) के नियमों को 'व्रत' कहा जाता था। विधि की रक्षा का भार मुख्य रूप से राजा और पुरोहित दोनों का होता था। इसी कारण इन दोनों को शतपथ ब्राह्मण में 'धृतव्रतौ' (अर्थात् संविधान के नियमों का रक्षक) कहा गया है।

सेनानी :

राज्यशक्ति को सुदृढ़ करने तथा उसे बाह्य एवं आन्तरिक भयों से सुरक्षित रखने के लिए सेना की अपरिहार्यता मानी गई है। राज्य के विरूद्ध बाह्य आक्रमणों एवं आन्तरिक उपद्रवों से राजा और प्रजा की रक्षा करने के लिए सेना का संगठन किया जाता है। राज्य के सात अंगों में सेना का बहुत महत्त्व है। अतः व्यवस्थित प्रकार की सेनाओं को संगठित करने के विस्तृत निर्देश वैदिक संहिताओं और प्राचीन शास्त्रों में दिये गये हैं। विविध प्रकार के आयुधों से सुसज्जित, सुसंगठित, मनुष्य आदि के समूह को सेना कहते हैं।[२८] राज्य के सात अंगों में सेना का वही स्थान है, जो शरीर में मन का है।[२९] राज्यरूपी वृक्ष के ये पुष्प पल्लव हैं।[३०] इससे स्पष्ट है कि जिस प्रकार मन के द्वारा आत्मा इन्द्रियों का संचालन करता है, उसी प्रकार राजा सेना के द्वारा राज्य का संचालन करता है। जिस प्रकार पुष्प पल्लवों से समृद्ध वृक्ष उन्नति का स्वरूप है, इसी प्रकार समृद्ध राज्य में ही सेनायें सशक्त हो सकती हैं।

प्राचीन आचार्यों का यह कथन है कि सेना के आश्रय से ही धर्म की स्थिति होती है। अतः धर्म की अपेक्षा भी यह श्रेष्ठ है। जिस प्रकार पृथिवी पर जीव निवास करते हैं, उसी प्रकार, बल पर धर्म का निवास है।[३१] सेना के बिना न तो राज्य सुरक्षित रहता है, न कोष का अधिक संग्रह होता है और न ही शक्ति का विकास होता है। कोष और शक्ति की वृद्धि तथा शत्रुओं का विनाश व्यवस्थित सेना ही कर सकती है।[३२] अतः प्रशासन के लिए व्यवस्थित, सुसंगठित और अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सेना की परम आवश्यकता है।

वैदिक आर्य राज्यों में सेना का संगठन किया जाता था और उसे एक सर्वोच्च पदाधिकारी की देखरेख में रखा जाता था। सेना का यह सर्वोच्च अधिकारी सेनानी कहलाता था। ब्राह्मण ग्रन्थों में राजा के रत्नों में सेनानी सर्वोच्च रत्न था। भावी राजा के राज्याभिषेक यज्ञ के अवसर पर राजा सेनानी के निमित्त सर्वप्रथम आहुति देता

था। प्रस्तावित राजा की नियुक्ति में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान था। ऋग्वेद् के नवम् मण्डल के एक सूक्त में सोम को राजपद पर प्रतिष्ठित किया गया है। सोमराजा शत्रु-जय हेतु अपनी सेना के साथ शत्रु से गौएँ प्राप्त करने के लिए युद्धभूमि की ओर प्रस्थान करता है। इस अवसर पर उसकी सेना के आगे-आगे सेनानी इस सेना का संचालन करता हुआ उत्साह के साथ गमन करता हुआ दिखलाया गया है। उसकी सेना भी अपने सेनानी के अधीन हर्षोल्लास पूर्वक पीछे-पीछे गमन करती हुई वर्णित है।[33]

यजुर्वेद में एक स्थान पर सेनानी वेश में रुद्र की स्तुति की गयी है। रुद्र की स्तुति में कहा गया है- "ज्योति के समान तीव्र तेजयुक्त अथवा चमचमाते हुए बाहुरक्षक धारी सेनानी वेशधारी रुद्र को नमस्कार है।[34] इसी प्रकार यजुर्वेद में कई प्रसंगों में सेनानी का उल्लेख है। यजुर्वेद में एक प्रसंग में सूर्यदेव का वर्णन राजा के रूप में है। इस प्रसंग में उसका सेनानी उनके रथ के अग्रभाग में आसीन वर्णित है।[35]

अथर्ववेद में सेनापति की नियुक्ति के विषय में निम्न प्रकार से वर्णन पाया जाता है- "हे राजन् ! तुझसे अधिक शक्तिशाली इस सेनापति को मैं तेरी सहायता के लिए नियुक्त करता हूँ, जिस से प्रेरित हुए सैनिक सदा विजय प्राप्त करते हैं, कभी पराजित नहीं होते। सेनापति राजा को सम्पूर्ण राजमण्डल और मनुष्यों में एकमात्र सर्वश्रेष्ठ बनाता है।[36]

सेनानी के गुण एवं योग्यता :

वेद के अनेक मन्त्रों में सेनापति की योग्यता, गुणों तथा कर्त्तव्यों के विषय में सुन्दर प्रकाश डाला गया है। सेनापति से प्रार्थना करते हुए प्रजाजन कहते हैं- "हे इन्द्र! तु संग्राम में विजय प्राप्त कर। सेना से आक्रमण करने वाले शत्रुगण को नीचा दिखा, जो हमें नष्ट करना चाहते हों, उन्हें अधोगति रूपी अंधकार में ले जा।"[37]

सम्पूर्ण सेनाओं में शीघ्रकारी वर्षभ के समान भयंकर शत्रुरोदक, रिपुप्रकम्पक, निरन्तर प्रयत्नशील, विजयशील आत्मवशी, बाहुबल से पूर्ण, युद्धशील, उग्रधन्वा आदि विविध रूपों में सेनापति का वर्णन करते हुए योद्धाओं का सेनापति के साथ मिलकर विविध शस्त्रास्त्रों से शत्रु सेना का विनाश कर वीरता प्रदर्शन करने का अति तेजस्वी वर्णन वेदों में किया गया है।

सेनानी के घर जाकर राजा द्वारा किये जाने वाले रत्नहवींषि याग में देवता अनीकवान् अग्नि, हवि, कपाल पुरोडाश तथा दक्षिणा हिरण्य की होती थी।[38]

तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता और काठक संहिता के अनुसार सेनानी का स्थान रत्नियों में पाँचवां है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इसे छठा और शतपथ ब्राह्मण में प्रथम स्थान दिया गया है।[39] ऐसा प्रतीत होता है कि राजाओं की साम्राज्यवादी

मनोवृत्ति के विकास के कारण ब्राह्मण युग के अन्त तक सेनानी का पद काफी महत्त्वपूर्ण हो गया था। अधिकांश ग्रन्थों में इसके पाँचवें स्थान के कारण तथा पंचविंश ब्राह्मण के वीरों की सूची में इसके अनुल्लेख के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि शासन विभाग की तुलना में सेना विभाग का महत्त्व कुछ कम था।[४०]

सेनानी के घर पर पवित्र वैदिक देवता अग्नि को हवि प्रदान किया जाता था। सेनानी अग्नि देवता का पार्थिव प्रतिनिधि प्रतीत होता है। वैदिक साहित्य में अग्नि का उल्लेख सेना के अग्रणी नेता के रूप में भी हुआ है।[४१] सेनानी का कार्य भी युद्धों में सेना का नेतृत्व करना ही था।

ग्रामणी

वैदिक काल में राज्य के उच्च कार्यकत्ताओं में ग्रामणी का स्थान भी सेनानी के समान ही महत्त्वपूर्ण होता था। ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक सूक्त में दक्षिणा के महत्त्व का वर्णन है। इस सूक्त में, दक्षिणा देने से दाता पुण्यभागी बनता है, उसे यश प्राप्त होता है, उत्सव एवं समारोहों में वह प्रथम आमंत्रित किया जाता है, वह राजपद पाने का अधिकारी बन जाता है, आदि शब्दों से दक्षिणा दाता की प्रशंसा की गई है। इसी प्रसंग में यह भी कहा गया है कि दक्षिणा दाता ग्रामणी पद पाता है।

ऋग्वेद के इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में ग्रामणी पद विशेष महत्त्वपूर्ण एवं सम्मानित बतलाया गया है। उसमें कई ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें सेनानी और ग्रमणी का उल्लेख साथ-साथ है।[४१] इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि ग्रामणी पद भी सेनानी के समान ही वैदिक आर्य राज्यों में महत्त्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित होता था। यजुर्वेद के तीसवें अध्याय में वैदिक राज्यों के विविध व्यवसायियों, शिल्पियों, कार्यकर्त्ताओं आदि का संकेत रूप में उल्लेख है। इसी प्रसंग में ग्रामणी की ओर भी संकेत मिलता है। इस वर्णन में ग्रामणी को सम्मान का पात्र बतलाया गया है।[४२] अथर्ववेद के इस प्रसंग में, प्रस्तावित राजा अपने राज्याभिषेक के अवसर पर पर्णमणि को सम्बोधित करता है- हे पर्ण। ग्रामणी को मेरा सहायक बना।[४३] अथर्ववेद में ग्रामणी वैदिक राजा के रत्नों में से एक महत्त्वपूर्ण रत्न बतलाया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ग्रामणी राज्य के उच्च कार्यकर्त्ता के रूप में वर्णित है।

संहिताओं में ग्रामणी का उल्लेख वैश्यग्रामणी के रूप में हुआ है। इससे यह पता चलता है कि वह गाँव में रहने वाले लोगों का प्रधान होता था। एक अनुमान यह है कि वह राजधानी में रहने वाला वंशानुगत क्षेत्रस्वामी था। लेकिन ऐसा कोई आधार भी नहीं मिलता, जिससे सिद्ध होता हो कि वह सदा राजधानी में ही रहता हो। भरतों, कुरुओं और पंचालों के राज्य इतने बड़े नहीं हुए थे कि राजा अपने अपने राज्य के सभी भागों में सरलता पूर्वक आवागमन न कर सकता हो। यह निश्चय करना कुछ कठिन

सा ही है कि ग्रामणी का वास्तविक कार्य क्या था। इस बात की पूरी संभावना लगती है कि वह युद्धक्षेत्र में जनता के छोटे-छोटे समूहों का नेतृत्व करता हो, और यह भी संभव है कि वह ग्रामीण जनता की सामान्य देख-रेख का काम भी करने लगा हो। इससे यह ज्ञात होता है कि ग्रामणी सैनिक, असैनिक दोनों प्रकार का संयुक्त पदाधिकारी था, जिसके सैनिक असैनिक दोनों प्रकार के कर्त्तव्य होते थे।

ग्रामणी पद का वास्तविक अर्थ ग्रामनेता अथवा जनसमूह का नेता था, यह स्पष्ट नहीं है। अनेक विद्वान् ग्रामणी को ग्रामनेता मानते हैं, परन्तु कतिपय अन्य विद्वान् उसे जननेता स्वीकार करते हैं। बाल्मीकीय रामायण में भी ग्रामणी का उल्लेख प्रतिष्ठित पदाधिकारियों में है।[४४] महाभारत में ग्रामणी जननेता के रूप में वर्णित है।[४५]

रत्नहवींषि याग में ग्रामणी का देवता मरुत् तथा हवि कपाल पुरोडाश प्रतिपादित किया गया है। इसकी दक्षिणा चितकबरी गौ मानी गयी है।

सूत :

राजा के मन्त्रिमण्डल अर्थात् रत्नियों में सूत का भी उल्लेख किया गया है। वैदिक वाङ्मय में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। यजुर्वेद में एक स्थान पर सूत-वेशध ारी रुद्र की स्तुति की गई है और सूत के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया गया है।[४६] वेदभाष्यकारों ने इस प्रसंग में सूत को सारथि माना है। उनका यह मानना है कि इस प्रसंग में सूत का विशेष लक्षण दूसरे को न मारने वाला (अहत्य) है। सूत युद्ध में रथ संचालन करता था। वह योद्धा के रूप में कार्य नहीं करता था, अर्थात् दूसरे (शत्रु) को मारता नहीं था। परन्तु कुछ विद्वान् 'अहत्यै' पद का अर्थ अवध्य करते हैं। उनके मतानुसार सूत राजा का प्रशस्तिकार अथवा विशेष ऐतिहासिक घटनाओं का संकलनकर्त्ता होता था। इसी कारण उसे अवध्यता का अधिकार दिया गया था। सूत के इस विशेष स्वरूप की ओर ही यजुर्वेद के इस मन्त्र में संकेत किया गया है। यजुर्वेद के तीसवें अध याय के एक मन्त्र में इस विषय की अप्रत्यक्ष रूप से पुष्टि की गयी है। इस मन्त्र में सूत का सम्बन्ध नृत्त से जोड़ा गया है और स्पष्ट बतलाया गया है कि सूत की उत्पत्ति नृत्त के लिए (नृत्ताय सूतम्) हुई है।[४७] नृत्त एक अत्यन्त उपयोगी कला है। इस कला द्वारा मनुष्य अपने इंगित, आकार, चेष्टा तथा शरीर के विविध अंगों द्वारा भाव व्यक्त करता है। इस संकेत से ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक सूत का स्वरूप भी इससे मिलता जुलता रहा होगा। यह वर्णन मध्यकालीन राजा, महाराजाओं की स्तुति करने वाले भाटों अथवा चरणों से मिलता हुआ सा दिखाई देता है। लेकिन ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है कि राजा सूत के घर जाकर वरुण को हवि अर्पित करता है, जिसके लिए दक्षिणा के रूप में घोड़ा देने का विधान किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि यह विशिष्ट व्यक्ति सारथी था।[४८] एक अन्य स्थान पर इसका जो उल्लेख मिलता है उसमें इस

अधिकारी को और स्थपति को एक ही माना गया है।[४६] स्थपति शब्द के शासक वास्तुकार, प्रधान, प्रधाननिर्माता, बढ़ई और चक्रनिर्माता आदि अनेक अर्थ संभव हैं।[५०] इनमें से शासक और प्रधान न्याय कर्त्ता ये दो अर्थ अधिक ग्राह्य माने गये हैं। लेकिन रथ के साथ सूत के सम्बन्ध को देखते हुए, चक्रनिर्माता अर्थ सन्दर्भ के अधिक निकट बैठता है। सूत संभवत: सारथि और रथकार दोनों के कार्य करता था। चूँकि उसके कार्यों का सम्बन्ध शारीरिक श्रम से था, शायद इसीलिए परवर्ती काल में उसका सम्मान कम हो गया। किन्तु पूर्ववर्ती काल में उसका महत्त्व पर्याप्त था।

अथर्ववेद में सूत को राजा के रत्नों अथवा राजकर्त्ताओं में परिगणित किया गया है। वैदिक राजा के राज्याभिषेक के अवसर पर उसे राजपद देने में सूत की अनुमति भी वांछनीय होती थी। अथर्ववेद के इसी प्रसंग में अपने राज्याभिषेक के अवसर पर प्रस्तावित राजा पर्णमणि को सम्बोधित करता हुआ कहता था- "हे पर्ण ! सूत को मेरा सहायक बना।"[५१]

शतपथ ब्राह्मण में इन दोनों को "अराजवंशीय राजकर्त्ताओं (यथा वै राज्ञोऽराजानो राजकृत:) की श्रेणी में परिगणित किया गया है।"[५२] रामायण महाभारत में भी सूत का उल्लेख है। महाभारत के शान्तिपर्व में सूत राजा की मंत्रिपरिषद् का एक सदस्य बतलाया गया है। सूत का प्रधान कर्त्तव्य अपने समय की, विशेष रूप में अपने स्वामी राजा से सम्बन्धित, ऐतिहासिक घटनाओं का संकलन करना था। मंत्रिपरिषद् की सदस्यता हेतु सूत की योग्यता एवं उसके गुणों का वर्णन करते हुए भीष्म ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है-"आठ गुणों (सेवा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊघ्न, अपोहन विज्ञान और तत्त्वज्ञान) से युक्त प्रगल्भ, अनसूयक, पचास वर्षीय, श्रुति और स्मृति का ज्ञाता, विनीत, समदर्शी, कार्य में विवदमान पुरुषों में समर्थ, सात प्रकार के घोर व्यसन रहित और पौराणिक सूत होना चाहिए।[५३] महाभारत के इस उद्धरण के आधार पर ज्ञात होता है कि वैदिक सूत भी राजा के समीप रहता हुआ, इसी श्रेणी का कार्य करता होगा।

क्षत्रिय :

राजा के छत्र को धारण करने वाले अथवा उसकी रक्षा का भार ग्रहण करने वाले को क्षत्रिय का पद दिया गया था।

क्षतृ के दो अर्थ बताए गए हैं- तक्षक और क्षत्रधर। किन्तु इनमें से प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त नहीं है। क्योंकि वह तक्षन् नामक रत्नि पर अधिक लागू होता है, और इसीलिए क्षतृ का यह अर्थ अनुचित सिद्ध हो जाता है। संभवत: यह राजा का परिपार्श्वक भी रहा हो।

सूत की तरह परवर्ती काल में उसका स्थान भी नीचे आ गया और वह वर्णसंकर

जाति के सदस्य के रूप में तिरस्कृत कर दिया गया। क्षतृ का थोड़ा सा सम्बन्ध सविता से भी दिखलाया गया है, जो देवताओं का प्रेरक था। रत्नहवींषि याग में क्षतृ के देवता, सविता को कपाल, पुरोडाश की हवि प्रदान की जाती थी। दक्षिणा के रूप में श्वेत बैल अथवा दो जुड़वा गायें दी जाती थी।

संग्रहीता :

यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय के एक मन्त्र में संग्रहीता नाम के एक अधिकारी की ओर संकेत किया गया है।[५४]

विद्वानों ने संग्रहीता को अर्थ विभाग का विशेष पदाधिकारी माना है। वह भी राजकर्त्ताओं में था। टीकाकारों के मत को दृष्टिगत करते हुए तथा अर्थशास्त्र के सन्निधाता नामक अधिकारी से इसकी समानता स्थापित करते हुए यह कहा जा सकता है कि वह कोषाध्यक्ष था।[५५] अधिकांश ग्रन्थों में भागदुक् के साथ इसके उल्लेख से भी इसकी पुष्टि होती है। अनेक विद्वानों ने संग्रहीतृ का अर्थ वल्गा धारण करने वाला **(Holder of the reins)** या रथचालक स्वीकार किया है।[५६] तथा इस आधार पर उसे प्रमुख योद्धा का सारथी माना है।

संगृहीता का उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद में नहीं मिलता। इनका उल्लेख यजुर्वेद की संहिताओं और ब्राह्मणों में है, इससे प्रतीत होता है कि नियमित रूप से राजकर वसूलने की परम्परा तथा राजकोष की व्यवस्था उत्तर वैदिक युग में भली-भांति पुष्ट हो चुकी थी।

इसका शाब्दिक अर्थ लगाम पकड़ने वाला या चालक है।[५७] अतः यह रत्निन् कोई निम्न श्रेणी का सारथि था, जो मुख्य योद्धा के सारथि के रूप में कार्य करने वाले सूत से भिन्न था। गोहरण अनुष्ठान में रथ की भूमिका इतनी महत्त्वपूर्ण थी कि इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि रथ का निर्माण या संचालन करने वाले नाना प्रकार के लोगों को ऐसी प्रतिष्ठा प्रदान कि जाए। संग्रहीतृ के सारथि होने का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उसके घर पर राजा रत्नहवींषि याग में अश्विनों को हवि अर्पित करता था।

कुछ विद्वान् संग्रहीता को युद्धभूमि में युद्ध काल में इधर-उधर बिखरी हुई युद्ध सम्बन्धी सामग्री को संग्रह करने वाला कर्मचारी मानते हैं। इस दृष्टि से तो उसका सम्बन्ध राजकोष से जोड़ना उचित प्रतीत नहीं होता। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसे रथयोजिता भी माना गया है।

भागदुक् :

यजुर्वेद के तीसवें अध्याय में विविध प्रकार के व्यवसायियों, कर्मचारियों, विशेष

अधिकारियों आदि की ओर संकेत किये गये हैं। इसी प्रसंग में भागदुक् नाम के एक कर्मचारी की ओर संकेत है।[५८] भागदुक् को अर्थविभाग का कर्मचारी बतलाया गया है। उसका मुख्य कर्त्तव्य राज्य की जनता से कर संचय करके उसे राजकोश में संग्रहीत करना माना गया है। यद्यपि रत्नियों की सूचियों में भागदुक् का स्थान कुछ नीचे है, फिर भी वह महत्त्वपूर्ण रत्निन है। एक स्थान पर इस शब्द का अर्थ भागों का वितरक किया गया है।[५९] अर्थात् भागदुक् वही काम करता था जो पूषन् की विशेषता बताई गई है। चूँकि भागदुक् के घर पशु देवता पूषन् को हवि अर्पित की जाती है।[६०] जिसका काम भागों को बाँटना था, इसलिए इसकी पूरी संभावना है कि अन्न के रूप में या पशुओं के रूप में जो भाग राजा के पास आता था वह राजपदाधिकारियों के बीच बाँटा जाता था। संभवतः उत्तर वैदिक काल में पशुपालकों और किसानों से अतिरिक्त खाद्य साामग्री प्राप्त की जाती हो और भागदुक् उस राज़ा के सेवकों के बीच बाँटने का काम करता रहा हो।

भागदुक् यौगिक शब्द है जिसका अर्थ है भाग दुहने वाला अथवा भाग संचय करने वाला। गाय दुहने वाला जैसे गाय को शनैः शनैः दूध दुहकर पात्र में संचित करता है, इसी प्रकार भागदुक् राज्य की प्रजा से भाग-संचय (कर-संचय) करने वाला कर्मचारी था। उसका पद राज्य के विकास की उस स्थिति का संकेत करता है जब राज-कर ऐच्छिक न रहकर अनिवार्य हो चुका था। ऋग्वेद में राजा को प्राप्त होने वाले ऐच्छिक उपहारों को बलि कहा गया है। किन्तु उत्तर वैदिक युग तक राजा प्रजा की आय के एक निश्चित भाग का अधिकारी समझा जाने लगा था। संभव है इस भाग का अभिप्राय यहाँ धर्मसूत्रों में उल्लिखित षष्ठांश से ही हो।

अक्षावापः

भाष्यकारों ने अक्षावाप को द्यूताध्यक्ष माना है और चूँकि ऋग्वेद के अक्षनिन्दा कृषि प्रशंसा सूक्त में द्यूत की विशेष निन्दा की गई है, इससे यह संकेत मिलता है कि ऋग्वेदीय आर्य राजाओं ने द्यूत पर नियन्त्रण रखने के लिए इस पदाधिकारी की आवश्यकता अनुभव करते हुए इसकी नियुक्ति की होगी। इसलिए अक्षावाप को राज्य के उच्च कार्यकर्त्ताओं में स्थान दिया गया है। हिन्दू पालिटी के विद्वान् लेखक जायसवाल ने इस मत से अपनी असहमति प्रदर्शित की है। उनके अनुसार अक्षवाप अर्थ विभाग का एक विशेष अधिकारी था जो कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित अक्षपटल नाम के पदाधिकारी के समकक्ष था।[६१] यजुर्वेद के तीसवें अध्याय में अक्षराज का उल्लेख है।[६२] परन्तु यह अक्षवाप से भिन्न है। क्योंकि अक्षराज तो अत्यन्त कुशल जुआरी अर्थात् जुआरियों का सरदार होता था।

शतपथ ब्राह्मण में अक्षावाप के साथ अक्ष (पाँसा) और जुआ खेलने वाली पटरी

का भी उल्लेख है, जिससे द्यूत क्रीड़ा के साथ इसका कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य रहा होगा, यह संकेत मिला है। सम्भव है कि वह द्यूतक्रीड़ा तथा अन्य सामाजिक आनन्दोत्सवों का प्रबन्धक रहा हो।

गोविकर्त्ता :

इस रत्नी का उल्लेख तीन सूचियों में मिलता है किन्तु तीनों सूचियों में इसके नाम में कुछ अन्तर है। मैत्रायणी संहिता में इसे गोविकर्त्ता, काठक संहिता में गौव्यच्च और शतपथ ब्राह्मण में 'गोविकर्त्तन्' कहा गया है। जायसवाल महोदय ने इसे जंगलों का प्रधान अधिकारी माना है।[६३] तथा घोषाल ने इसे शिकारियों का प्रधान माना है।[६४]

गो शब्द वैदिक भाषा में सामान्य पशुओं के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वैदिक राज्यों में वन अपेक्षाकृत अधिक थे। इन वनों को स्वच्छ कर आर्य-बस्तियाँ स्थापित की जाती थीं और अरण्यभूमि, कृषि भूमि में यथा सम्भव परिवर्तित कर दी जाया करती थी। उस समय में वनों में अरण्य पशुओं की संख्या अधिक होती थी। इसलिए वनों की शुद्धि करना आवश्यक था। इसलिए उनके इस कार्य की सिद्धि के लिए एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। इस विशेष पदाधिकारी को गोवित्कर्त्ता के नाम से सम्बोधित किया जाता था। यजुर्वेद के तीसवें अध्याय में एक मन्त्र में "गां विकृन्तन" नामक एक अधिकारी का संकेत प्राप्त होता है। संभवत: यह गोवित्कर्त्ता ही होगा।[६५] इस अधिकारी को वर्तमान समय के पदाधिकारी वन अधिकारी (अरण्यपाल) के समकक्ष माना जा सकता है। यजुर्वेद के एक अन्य प्रसंग में शूद्र को वनों का पालन करने वाला (अरण्यपति) कहा गया है।[६६] इससे भी यह सिद्ध होता है कि वैदिक युग में वनों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था।

पालागल :

यह राजा के आदेशों को निर्दिष्ट व्यक्तियों अथवा स्थान तक पहुँचाने वाला कर्मचारी था। पालागल एक स्थान से दूसरे स्थान तक संदेश ले जाने वाले दूत का कार्य करता था। इसे वर्तमान युग का संदेश वाहक (हरकारा) कहा जा सकता है। अल्तेकर महोदय उसे परवर्ती युगों के विदूषक की भांति राजा का अन्तरंग मित्र मानते हैं किन्तु शतपथ ब्राह्मण से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि वह संदेशवाहक का काम अथवा दौत्य कर्म करता था।[६७] यह शूद्र वर्ण का होता था।[६८] शूद्र होते हुए भी उसका राजनैतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान था। राज्य की आन्तरिक एवं बाह्य घटनाओं, कुचक्रों एवं विचारधाराओं की सूचना वह राजा को देता था। साथ ही राजकीय सन्देश दूसरे राज्यों में पहुँचाने का कार्य करता था। इस प्रकार राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध युद्ध और विग्रह की स्थिति में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान था।

महिषी :

शतपथ ब्राह्मण को छोड़कर अन्य सभी ग्रन्थों की सूचियों में तीसरा स्थान महिषी को प्राप्त है। इसका शाब्दिक अर्थ पटरानी (प्रधान रानी) है, जिससे संकेत मिलता है कि राजा अनेक रानियों से विवाह करता था, इससे बहुपत्निप्रथा की पुष्टि होती है। कुछ विद्वानों का कहना है कि रानी मनोनीत राजा की अर्धांगिनी का स्थान पूर्ण करती है। किन्तु शतपथ ब्राह्मण में जो व्याख्या दी गई है, उससे इस अनुमान का समर्थन नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि महिषी, जिसके घर अदिति को हवि अर्पित की जाती थी, पृथ्वी की द्योतिका है, जो दुधारु गाय और माता की तरह लोगों का भरण-पोषण करती है और उसकी मनोकामनाएँ पूर्ण करती है। इससे यह भी सन्देश मिलता है कि उत्तर वैदिक काल की राज्यव्यवस्था में मातृत्व को महत्त्व प्राप्त हो गया था। इससे यह भी प्रकट होता है कि वैदिक काल में रानी की हैसियत राजा की पत्नी की ही नहीं थी बल्कि शासन व्यवस्था में भी उसका महत्त्वपूर्ण स्थान था। धार्मिक अनुष्ठानों में भी पत्नी का सहयोग अनिवार्य था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अपत्नीक व्यक्ति यज्ञ कर्म का अधिकारी नहीं होता था।[६६] ऐसी स्थिति में राजसूय के अवसर पर पत्नी की उपस्थिति निश्चय ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही होगी। किन्तु रत्नी-सूची में महिषी की महत्त्वपूर्ण स्थिति उसके शासन सम्बन्धी उत्तरदायित्वों की ओर भी स्पष्ट संकेत करती है, क्योंकि रत्नी सूची के सभी सदस्य प्रायः राजनैतिक एवं प्रशासकीय महत्त्व के व्यक्ति हैं। महिषी की स्थिति सर्वसाधारण के लिए राजमाता की थी, जो न केवल पारिवारिक जीवन में राजा की पत्नी होती थी बल्कि राष्ट्रीय जीवन में राजा के साथ प्रजा पालन के गुरुत्तर उत्तरदायित्व का वहन करती थी। कानून की दृष्टि से महिषी का स्थान सर्वोच्च था।

रत्निन् के रूप में अन्य दो रानियों के उल्लेख से भी इस तथ्य का समर्थन होता है।

परिवृत्ती :

तीन संहिताओं में चौथा और एक ब्राह्मण में पाँचवां नाम परिवृत्ति का माना गया है। शतपथ ब्राह्मण में परिगणित रत्नियों की सूची में उसे विधिवत् सम्मिलित नहीं किया गया है। रत्नियों का परिगणन करने के पश्चात् परित्यक्ता पत्नी के रूप में उसका उल्लेख किया गया है। उसका कोई पुत्र नहीं है। राजा उसके पास इसलिए आता है कि उसका कोई अनिष्ट न हो।[७१] यद्यपि यहाँ जिस प्रकार का उल्लेख किया गया है उससे यह पता नहीं चलता कि राजा कैसी पत्नी का समर्थन प्राप्त करना चाहता है, किन्तु यह भी सत्य है कि वह राजा का अनिष्ट करने का सामर्थ्य अवश्य रखती थी। अन्य रीतियों की तरह वह राजा की सहायता का स्रोत नहीं, अपितु ऐसे विरोध का स्रोत समझी जाती थी, जिसे शमित रखना आवश्यक था।

वावाता :

रत्निन् के रूप में राजा की प्रिय पत्नी अर्थात् वावाता का उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण में है, जिसमें इसका स्थान चौथा माना गया है। वावाता का स्थान उसके प्रति राजा के प्रेम और विशेष कृपा पर निर्भर था।

राजा की परिवृत्ति और वावाता नामक इन दोनों पत्नियों के राजनैतिक महत्त्व का कारण प्रायः अज्ञात है। संभव है कि इन राजपत्नियों को सम्मानित करने के लिए तथा इन्हें विरोध का अवसर न प्रदान करने के लिए ही रत्नी वर्ग का सदस्य माना गया है।

इन तीनों का रत्नी वर्ग का सदस्य होना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि उत्तर वैदिक समाज में स्त्रियों की दशा इतनी उच्च थी कि राजनैतिक कार्यों में भी सहयोग करती थी। सम्भव है कि सामान्य स्त्रियाँ राजनैतिक जीवन से अलग रही हों जैसा कि मैत्रायणी संहिता में स्त्रियों के सभा-गमन के विरोध से प्रकट होता है।[71] किन्तु इसके विपरीत पंचविश ब्राह्मण में वीरों की सूची में महिषी की गणना तथा राजपत्नियों की रत्नी मण्डल की सदस्यता इस बात को प्रमाणित करती है कि स्त्रियाँ नियमतः राजनैतिक जीवन से पृथक् नहीं थीं।

सन्दर्भ

१- स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा।
सप्तप्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्ग राज्यमुच्यते।।मनु० ६.२६४
स्वाम्यमात्यजनदुर्गकोशदण्ड मित्राणिप्रकृतयः।।कौटिल्य० ६.१
याज्ञ० १.३५३, विष्णु धर्म सूत्र ३.३३ आदि

२. अथर्ववेद १:२६.१-६

३. ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः। उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितोजनान्।।
अथर्व० ३-५.६
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये। उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितोजनान्।।
अथर्व ३.५.७

४. तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७.१

५. शत०ब्रा० १.१.३.५

६. मैत्रायणि संहिता ५.६.२

७. ता० ब्रा० १६.१.४

८. राजानो राजकृतः, अराजानो राजकृतः। शत० ब्रा० १८.२.२.१३

६. तैत्ति०ब्रा० १.७.३.१

१०. मैत्रा० सं० ४.६.८

११. यस्य वा एतान्योजस्विनी भवन्ति तद्राष्ट्रमोजस्वि भवति यस्य वा तानि तेजस्वीनि भवन्ति तद्राष्ट्रं तेजस्वी भवति। मैत्रा सं० ८.३

१२. मैत्रा० सं० ८.३.४

१३. तैत्ति०ब्रा० १.७.३.१

१४. शत० ब्रा० ५.३.१.१-१२

१५. शत०ब्रा० ४.३.१.१२

१६. ता० ब्रा० १६.१.४

१७. शत०ब्रा० ५.४.४. १५-१६

१८. आप०श्रौ०सू० XVIII १८,१४-१६१

१६. शत० ब्रा० ४.६.२.१३

२०. निरुक्त १२.२

२१. अग्निमीड़े पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्होतारं रत्नधातमम्। ऋग् १.१.१

२२. ऐत० ब्रा० ८.२४-२८

२३. शत० ब्रा० ५.३.१

२४. ता० ब्रा० १६.१.४

२५. ऐत० ब्रा० ४०.१

२६. ऐत० ब्रा० ४०-२

२७. म० ब्रा० २.८,५,६ । गो० गृह्य० ४.१०.७,८

२८- क्षत्रेण क्षत्रं जयति बलेन बलमश्नुते यस्यैवं विद्वान ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितस्तस्मै विशः संजानते सम्मुखा एकमनसो यस्येवं विद्वान ब्राह्मणो राष्ट्रगोपः पुरोहितः। ऐत० ब्रा० ४०.४

२६- तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्म-तस्माद् धर्मात्परं नास्ति...। शत ब्रा० १४

३०- सेना शस्त्रास्त्र संयुक्ता मनुष्यादिगणात्मिका। शुक्रनीतिसार ४.७.१

३१- बलं मनः। वही १.६.२

३२- सेनाः पल्लवाः कुसुमानि च। वही

३३- यू०एन० घोषालः ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पोलिटिकल आइडियाज पृ० २३१

३४- शुक्रनीतिसार ४.७.४-६

३५- ऐत० ब्रा० ३६.१, शत०ब्रा० १४.१

३६- ऋग्वेद-१.६.६

३७- यजुर्वेद १७.१६

३८- यजुर्वद १५.१५

३६- युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम्।। अथर्व ४.२२.५

४०- वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छा पृतन्यतः। यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः।।
यजु० १८.७०

४१- शत० ब्रा० ५.२.५.१

४२. शत० ब्रा० ५.२.५.१, तैत्ति० ब्रा० १.७.३. तैत्ति० सं० १.८.६

४३. घोषाल-स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर; पृ० ३०७

४४- अथर्ववेद-३.१.१

४५- यजुर्वेद १५ । १५-१६

४६- नर्माय पुश्चलूं हसाय कारि यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणा-वादं पाणिघ्न तूणवध्मं.....। यजु० ३०/२०

४७- .....अथर्व० ७.५.३

४८- वा० रा० युद्धकाण्ड- १६.११७

४६- महा० शान्तिपर्व १०, ११/१३५

५०- नभो बभ्लशाय व्याधिनेन्नानाम्पतये नमो नमो भुवस्य हे त्यै जगताम् पतये नमो, नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः, सूताया हन्त्यै.....। यजु० १६.१८

५१- नृत्याय सूतंगीताए शैलूषं धर्माय सभाचरन्वरिष्ठायै भी मलन्नम्मयि रेभं हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषरवं प्रमदे कुमारीपुत्रं.....यजु० ३०.६

५२- शत० ब्रा० ५.३.१.५

५३- शत०ब्रा० ५.४.४.१७-१८

५४- मोनियर-विलियम्स, संस्कृत-इंगृलिश डिक्शनरी

५५- अथर्व ७.५.३.

५६- शत० ब्रा० १८.२.२.१३

५७- महाभारत शान्तिपर्व ६ से ११/८५

५८- यजु० १६-२०

५६- जायसवाल-हिन्दू पॉलिटी, पृ० २०२

६०- शत०ब्रा० ५.३.१.८ पर इंगृलिश की टीका

६१- जायवाल-हिन्दू पालिटी : पृ० २०२

६२- शत० ब्रा० ५.३.१.८

६३- ऋतये स्तेन हृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्यायानुक्षत्तारम्बलायानुचरम्भूम्ने परिष्कन्दम्प्रियाय प्रिय वादिन मरिष्ट्या अश्वसादं स्वर्गाय भागदुधं.....।

यजु० ३०.१३

६४- शत०ब्रा० १.१.२.१७

६५- शत०ब्रा० ५.३.१.६

६६- डा० जायसवाल कृत हिन्दू पालिटी पृ० २०२, २०३

६७- यजु० १८-३०

६८- जायसवाल कृत हिन्दू पालिटी पृ० २०३

६९- हिस्टीरियोग्रैफी एण्ड अदर एजेज पृ० २४६

७०- यजु० ३०/१८

७१- यजु० १६/१८

७२- शत०ब्रा० ५.३.१.११

७३- शत०ब्रा० १३.५.५.८

७४- शत०ब्रा० ५.१.६.१०

७५- मै० सं० ४.७.४

कौटिल्यअर्थशास्त्र में वर्णित धर्म और राजनीति

डॉ0 देवेन्द्र कुमार गुप्ता
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्राचीन भारत में हमें राज्य व्यवस्था के विकास में धर्म का महत्वपूर्ण योगदान दिखलाई पड़ता है। धर्म और राजनीति के घनिष्ठ सम्बन्धों की जानकारी हमें सबसे पहले वैदिक साहित्य से मिलती हैं। जहाँ राजा की सत्ता को सुदृढ़ करने के लिए पुरोहित अनेक अनुष्ठानों का आयोजन करता था। लेकिन वैदिकोत्तर काल में जब राजतन्त्र का आधार सुदृढ़ हो गया तो इस सम्बन्ध का रूप भी बदल गया। अब वैदिक कर्मकाण्ड जहाँ राजा की सत्ता को सुदृढ़ करते थे वहीं उस पर अंकुश भी लगाते थे। लेकिन कौटिल्य अर्थशास्त्र से हमें जिन धार्मिक विधानों और कार्यों की जानकारी मिलती है उनका उद्देश्य राजा की सत्ता को सीमित करने के बजाय उसे सुदृढ़ करना है। यद्यपि अर्थशास्त्र में धर्म और राजनीति पर कोई स्वतन्त्र प्रकरण नहीं है। लेकिन फिर भी अनेक स्थानों पर ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रकट करते हैं। इनसे प्रकट होता है कि राज्य की आन्तरिक नीति के निर्धारण में और बाहरी शत्रुओं से निपटने में धर्म का प्रभावकारी ढंग से उपयोग किया जाता था।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित राज्यव्यवस्था का मूल आधार वैदिक धर्म को माना जा सकता है। वैदिकोत्तर काल में सामाजिक ढाँचे की आधारशिला वर्णाश्रम व्यवस्था की व्याख्या कौटिल्य उन्हीं शब्दों में करते हैं जिनके दर्शन हमें धर्मसूत्रों में होते हैं। वह इस बात पर जोर देते हैं कि प्रत्येक वर्ण स्वधर्म पर चले और जो व्यक्ति अपने धर्म का पालन करता है वह आनन्द की प्राप्ति करता है। पर जो अपने धर्म का उल्लंघन करता है उसका नाश हो जाता है। इसीलिए कौटिल्य राजा को निर्देश देता है कि वह लोगों को धर्म से विमुख न होने दें और स्वयं भी धर्म का पालन करे। क्योंकि राजा जैसा आचरण करता है प्रजा भी उसी तरह का व्यवहार करती हैं। इसीलिए एक स्थल पर राजा को धर्मप्रवर्तक कहा गया है। लेकिन यहाँ धर्मप्रवर्तक से तात्पर्य किसी नये धर्म के प्रवर्तक से नहीं है बल्कि उस अवस्था में राजा को धर्मप्रवर्तक बताया गया है, जहाँ वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो गया हो।

चतुर्वर्णाश्रयस्ययम् लोकस्याचाररक्षणात्। नश्यतां सर्वधर्माणम् राजा धर्मप्रवर्तकः। **III.I**

इससे स्पष्ट है कि राजा को मनोनुकूल समाज व्यवस्था स्थापित करने की स्वतन्त्रता नहीं दी गयी है बल्कि उसे विनष्ट व्यवस्था को पुनरुत्थापित करने को कहा गया है।

कौटिल्य राज्य की विदेश नीति के निर्धारण में भी धर्म का महत्वपूर्ण स्थान मानता है। उसके अनुसार राजा को विजित लोगों के धार्मिक विश्वासों और मान्यताओं का आदर करना चाहिए तथा विजितों के क्षेत्रीय और धार्मिक त्यौहारों, स्थानीय देवी-देवताओं और विद्वानों के प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित करना चाहिए।XIII.5। इसी कारण राजा को विजितों के प्रति धार्मिक सहिष्णुता की नीति का पालन करने को कहा गया है। साथ ही उसके लिए यह भी आवश्यक बताया गया है कि वह स्वयं उनके धार्मिक रीति रिवाजों का पालन तो करे लेकिन साथ ही उनके बीच ब्राह्मण समाज व्यवस्था के मुख्य सिद्धान्तों को भी लागू करें।

कौटिल्य का ब्राह्मणों के प्रति विशेष दृष्टिकोण उस समय की विशेष परिस्थितियों को उजागर करता है क्योंकि वे प्रचलित समाज व्यवस्था के वैचारिक संरक्षक थे और धार्मिक कार्यों से उनका विशेष सम्बन्ध था। इसी कारण अर्थशास्त्र में उन्हें सबसे अधिक सम्मान प्रदान किया गया है। इसमें कहा गया है कि मानवों में उन्हें वही स्थान प्राप्त है जो स्वर्ग में देवताओं को-

ये देवा देवलोकेषु च ब्राह्मण: । XIV.3

कौटिल्य यज्ञ में ब्राह्मणों को पौरोहित्य करने और बदले में दान-दक्षिणा पाने के अधिकार को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करता है। राज्य न केवल उनके इन अधिकारों को कायम रखता है वरन् कानूनों द्वारा उन पर अमल भी कराता है। उदाहरणार्थ यदि पुरोहित की मृत्यु हो जाती है तो यज्ञ के छोटे-बड़े स्वरूप और महत्व के अनुसार निर्धारित दक्षिणा उसके उत्तराधिकारी को दी जानी चाहिए।III.14

यदि यजमान यज्ञ पूरा होने के पहले ही पुरोहित को पदमुक्त कर देता है तो वह दण्ड का भागी बनता है।III.14 इससे प्रकट होता है कि दक्षिणा देना यजमान की इच्छा पर निर्भर नहीं बल्कि यह उसकी जिम्मेदारी थी जिसका पालन राज्य करवाता था।

राज्य का धर्म से गहरा सम्बन्ध उन प्रमाणों से भी स्पष्ट होता है जिसमें अनेक देवताओं को राज्य संरक्षण प्रदान करने को कहा गया है। दुर्गनिवेश के सम्बन्ध में कौटिल्य का कहना है कि नगर का उत्तरी भाग नगर देवता और ब्राह्मणों के लिए सुरक्षित रखा जाए।II.4 नगर के मध्य में देवी-देवताओं को प्रतिष्ठित किया जाए।II.4 नगर के मुख्य द्वारों के नाम चार प्रमुख देवताओं के नामों पर ब्रह्मा, ऐन्द्र, याम्य और

सेनापत्य रखे जाए और राजधानी के अन्दर पूजापाठ और तीर्थ के स्थान बनवाए जाऐं। इसी तरह सीताध्यक्ष (कृषि-अधीक्षक) के कार्यों का विवेचन करते हुए कौटिल्य कहता है कि बुवाई के समय भगवान प्रजापति कश्यप को नमस्कार करने और सीता का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए एक मन्त्र का उच्चारण किया जाना चाहिए।II.24

अर्थशास्त्र में आग, बाढ़ और ऐसी ही अन्य दैवी विपत्तियों के निवारण हेतु अनेक धार्मिक अनुष्ठान बताये गये हैं। यद्यपि यह नहीं बताया गया है कि ये अनुष्ठान राज्य को करने थे अथवा नहीं, किन्तु राजपुरोहित के लिए जो योग्यताएं रखी गयी है, उनसे ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि इस तरह के अनुष्ठान राज्य की ओर से भी किये जाते होंगे। कौटिल्य के अनुसार राजा अपने राज्य में ऐसे व्यक्तियों को बसाए जिन्हें तंत्र-मंत्र की सिद्धि प्राप्त हो और जो इस प्रकार दैवी-विपत्तियों का निवारण कर सके।IV.3 प्राकृतिक संकटों से प्रजा की रक्षा के निमित कौटिल्य ने राजा के दायित्वों का जो संकेत दिया है, वह राजा के दायित्वों के सम्बन्ध में आदिम दृष्टिकोण से मेल खाता है। पर इन दायित्वों का निर्वाह राजा स्वयं पुरोहित बनकर नहीं करता है बल्कि वह इसके लिए अलग पुरोहित नियुक्त करता है।

कौटिल्य ने धर्म और धार्मिक संस्थाओं से जुड़े स्थानों की सुरक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया है। उसके अनुसार ब्राह्मणारण्य (ब्राह्मण के रहने के वन) सोमारण्य (सोमवन) देवस्थान, यज्ञस्थान और पुण्यस्थान में आने वाली समस्त बाधाओं को राजा को दूर करना चाहिए।III.9 तथा इन स्थानों से छेड़छाड़ करने वाले व्यक्ति के लिए भी दण्ड का विधान किया गया है। साथ ही यज्ञादिकर्म, पूजापाठ और धार्मिक संस्कारों में प्रयोग की जाने वाली सभी वस्तुओं में शुल्क में छूट दी गयी है।II.2 इस प्रकार इन उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्य राज्य की धार्मिक नीति से काफी प्रभावित था। अर्थशास्त्र में एक स्थल पर राजा को दैवी शक्ति के प्रति उत्तरदायी बताया गया है। उसके अनुसार यदि राजा किसी निर्दोष को दण्ड दे तो उसे चाहिए कि उसने उस दण्ड के कारण जितना अन्याय किया है उसका तीस गुना जुर्माना वरूण को अर्पित करते हुए जल में डाले और बाद में यह रकम ब्राह्मणों के बीच बांटे। ऐसा करने से राजा अन्यायपूर्ण दण्ड के पाप से मुक्त हो जाएगा। क्योंकि वरुण पापी मनुष्यों का शासक है- अदण्डयदण्डनेराज्ञो दण्डस्त्रिंशदगुणे अंभसि। वरुणाय प्रदातव्यो ब्राह्मणेभ्यस्ततः परम् II,IV.13 लेकिन कौटिल्य राजा के दैवी अधिकार को किस हद तक मानते थे यह कहना तो कठिन है। लेकिन एक स्थान पर यह कहा गया है कि गुप्तचर लोगों को यह बताएं कि राजा इन्द्र के रूप में पुरस्कार देता है और यम के रूप में दण्ड। अतः उसकी अवहेलना करने वाले लोग दण्ड के भागी बनते हैं। इससे कौटिल्य देवताओं के साथ राजा की तुलना करता है तो उससे पुरोहितों की नहीं बल्कि राजा की शक्ति बढ़ती है।

राजा के प्रति अधिकारियों की असंदिग्ध निष्ठा पर कौटिल्य का कथन है कि उच्चाधिकारियों की मुख्य निष्ठा धार्मिक रीतिरिवाजों के प्रति नहीं बल्कि राजा के प्रति होनी चाहिए। उसका कथन है कि न्यायाधीश के पद पर केवल वही व्यक्ति नियुक्त किये जा सकते हैं जो धार्मिक प्रलोभनों से परे हो। उदाहरणार्थ यदि एक पुरोहित जो राजा के कहने पर भी यज्ञाधिकार विहीन व्यक्ति को वेद की शिक्षा देने से इन्कार कर देता है तो ऐसे व्यक्ति को बर्खास्त कर देना चाहिए। राजा के गुप्तचर अमात्य को राजा के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिए भड़काते हैं। ऐसे अमात्य जो इन परिस्थितियों में उत्तेजित न हो उन्हीं को न्यायाधीश नियुक्त करने योग्य माना गया है।I-10 कौटिल्य के इस कथन से सूचित होता है कि न्यायाधीश आदि उच्चाधिकारियों की मुख्य निष्ठा राजा के प्रति होनी चाहिए और यदि उसके निर्वाह में धार्मिक मान्यताओं का उल्लंघन होता है तो उनका उल्लंघन करने में भी संकोच नहीं होना चाहिए।

कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि ब्राह्मणीय संस्थाओं पर भी राज्य का नियन्त्रण था। कौटिल्य ने देवताध्यक्ष नामक एक अधिकारी की व्यवस्था की है जिसका काम नगरीय और ग्रामीण क्षेत्र की विभिन्न प्रकार की देवोत्तर सम्पत्तियों को एक स्थान पर इकट्ठा करके राजकोष में जमा करना है।V.2 यहाँ इसका तात्पर्य मन्दिरों का राज्य को दिये जाने वाले किसी नियमित संग्रह से है या मन्दिरों की जब्त की गयी सम्पत्ति के संग्रह से है। यह स्पष्ट नहीं है। लेकिन चूंकि देवताध्यक्ष के कर्त्तव्यों का उल्लेख कोषपूर्ति प्रकरण में दिया गया है इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि राज्य के प्रयोजन के लिए देवोत्तर सम्पत्ति का भी उपयोग किया जा सकता था।

राज्य की नीतियों पर धर्म के प्रभाव का ऊपर जो विश्लेषण किया गया है उससे इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि बहुत सी बातों में धार्मिक मान्यताओं को अलग रखकर कौटिल्य राज्य की नीति की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती। लेकिन कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिससे दोनों का आपसी सम्बन्ध दो परस्पर विरोधी रूपों में व्यक्त हुआ है। ब्राह्मणीय जीवन पद्धति जिस अंश तक कौटिल्य के राज्य के मुख्य उद्देश्य के अर्थात् वर्णाश्रम धर्म की रक्षा के अनुकूल है उस अंश तक वह उसका पक्षधर है, लेकिन जो धार्मिक रीतिरिवाज राज्यशक्ति के विस्तार में बाधक है उनका वह त्याग कर देता है। शान्तिपर्व में भी यही विचारधारा दृष्टिगत होती है जिसके अनुसार जो गुरु या मित्र राज्य के सातों अंगों के हितों के विरूद्ध आचरण करे उसे मार देना चाहिए। 57.5 अथवा उसका परित्याग कर देना चाहिए। 57.6-7

कौटिल्य राज्य निस्सन्देह देवताओं और मन्दिरों का विशेष ख्याल रखता है और पुरोहितों के विशेषाधिकारों के दावों को भी मान्यता प्रदान करता है और साथ ही अपधर्मी सम्प्रदायों के प्रति भेदभाव-पूर्ण नीति बरतता है। परन्तु फिर भी उसकी

भेदभाव की नीति उस आत्यंतिक सीमा तक नहीं पहुँचती जिसके दर्शन हमें 'लॉज' में प्लेटो द्वारा प्रतिपादित राज्यधर्म के सिद्धान्त में होते हैं। इसके अनुसार राज्य की एकता और अखण्डता बनाये रखने के लिए कुछ धार्मिक विश्वासों और प्रयासों को सभी वर्गों के लोगों द्वारा मनवाना चाहिए और ऐसा न करने वालों के लिए कारावास या मृत्युदण्ड तक का भी विधान किया गया है। लेकिन ऐसी उत्पीड़न की योजना कौटिल्य अर्थशास्त्र में नहीं मिलती। यद्यपि कौटिल्य इस बात पर जोर देते हैं कि तीनों वेदों पर आधारित धर्म का पालन किया जाना चाहिए लेकिन वैदिक धर्म को न मानने वालों के सन्दर्भ में वह इतना ही कहता है कि इन लोगों के निवास स्थानों पर नजर रखनी चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर इनकी सम्पत्ति जब्त कर लेनी चाहिए। उन्हें दंडित तभी करना चाहिए जब वे चोरी, मारपीट, मानहानि या स्त्री-हरण जैसे अपराध करें। अतः इन व्यवस्थाओं की तुलना 'लॉज' में वर्णित साम्प्रदायिक असहिष्णुता की नीति से नहीं की जा सकती।

इस प्रकार कौटिल्य वर्णित राज्य अपेक्षाकृत सहिष्णु तो है किन्तु यह सही नहीं है कि वह धर्म निरपेक्ष है क्योंकि धर्मनिरपेक्षता का अर्थ राज्य की नीतियों से धार्मिक प्रभाव का पूर्ण बहिष्कार है, जो कौटिल्य के राज्य में देखने को नहीं मिलता। इस प्रकार कौटिल्य अर्थशास्त्र से राज्य की नीतियों पर धार्मिक प्रभाव देखने को मिलता है।

वैदिक परिप्रेक्ष्य में धर्म शब्द का अर्थ और अभिप्राय

डा0 दिनेशचन्द्र शास्त्री
वेद विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

धर्म शब्द संस्कृत का एक ऐसा शब्द है जिसके अर्थ बड़े व्यापक होते हैं।[१] इस शब्द का अनुवाद संसार की किसी भी भाषा के एक शब्द में नहीं किया जा सकता।[२] धर्म का शब्दार्थ होता है, "जो धारण करे"- धारणाद्धर्म[३] : (म्)। किसी वस्तु के जो गुण ऐसे हैं जिनसे वह अपने रूप में धारित रहती है, बनी रहती है, उन गुणों को उस वस्तु का धर्म कहा जाता है। इस यौगिक अर्थ के आधार पर प्रयोग में धर्म शब्द के बड़े विस्तृत अर्थ हो जाते हैं। किसी वस्तु के भौतिक व रासायनिक गुण **(Physical and Chemical properties)** उसके धर्म है। किसी वर्ण और आश्रम के नियम और कर्त्तव्य उसके धर्म हैं। राज्य नियम **(Laws and Statutes)** धर्म हैं। इसीलिए कानून की पुस्तकों **(Statutes books)** को संस्कृत में धर्मशास्त्र कहा जाता है। राज्य नियमों के अनुसार न्याय करने को धर्म कहा जाता है। न्यायाधीश को धर्मपति, धर्माध्यक्ष और धर्माधिकारी कहा जाता है[४] तथा न्यायालय को धर्माधिकरण कहा जाता है। इसी भाँति किसी सभा-समाज के नियमोपनियम उसके धर्म हैं। आत्मा, परमात्मा, परलोक और कर्मफल में विश्वास और इस विश्वास के आधार पर परमात्मा की उपासना और तदनुकूल आचरण को भी धर्म कहते हैं क्योंकि, शास्त्र की दृष्टि में आत्मा और परमात्मा की सत्ता में तथा परलोक और कर्मफल के सिद्धान्त में विश्वास के बिना तथा परमात्मा की उपासना-जो कि मनुष्य के लिए पुण्य का काम है[५], धर्म में बैठे बिना मनुष्य का वास्तविक धारण नहीं हो सकता- उसका जीवन वास्तविक जीवन नहीं बन सकता। इसके बिना वह जीवन में वास्तविक उन्नति और सच्ची सुख-समृद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। यदि हम धर्म के इस महाविस्तृत अर्थ को ध्यान में रख लें तो किसी को यह कहने का साहस नहीं हो सकता कि धर्म किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता और उन्नति में बाधक है।

धर्म का वास्तविक अभिप्राय

वैदिक धर्म में केवल परमात्मा में विश्वास रखने और उसी की उपासना करने को ही धर्म नहीं माना जाता। यह पूर्ण धर्म नहीं है, यह तो धर्म का केवल

एक अंग है। शास्त्रकारों ने धर्म का लक्षण यह किया है कि "जिस आचरण से सांसारिक ऐश्वर्य और अभ्युदय की प्राप्ति भी होती हो तथा मोक्ष की प्राप्ति भी होती हो उस आचरण को धर्म कहते हैं।"[६] हमारे शास्त्रों के अनुसार धार्मिक जीवन व्यतीत करने का यह फल होना चाहिए कि हमें इस दुनिया में किसी प्रकार का कष्ट नहीं रहना चाहिए। हमें उसके द्वारा सब प्रकार की सांसारिक उन्नति कर सकनी चाहिए और सब प्रकार की सांसारिक सुख-समृद्धि प्राप्त कर सकनी चाहिए। और यह सांसारिक ऐश्वर्य और अभ्युदय इस प्रकार प्राप्त हो कि उसे प्राप्त करते हुए हम पाप में लिप्त न हों, पवित्र बने रहें, जिससे जब हम इस संसार से विदा हों तो उस पवित्रता के परिणाम स्वरूप हम सीधा मोक्ष की अवस्था में पहुँचें और उस अवस्था में पहुँचकर ब्रह्म-साक्षात्कार से मिलने वाले अलौकिक आनन्द का उपभोग करने के अधिकारी बन सकें। इस प्रकार के आचरण को वेदों के अनुसार धर्म के नाम से कहा जाता है।

पाद टिप्पणी :

1. **The word Dharma is used in various contexts in the Vedas, the Upanishads etc. such as virtue, merit, attributes, nature, quality duty, Law, right, righteousness, property etc. All included in Dharma according to Manu, Patanjali and others. The truth, non-violence, non-stealing, celibacy and non-possession are the main headings or principles of Dharma. Adharma is just contradictory to Dharma.**

   (परोपकारी, सितम्बर 1995, पृष्ठ 333)
2. **महाभारतम्, कर्णपर्व 69, 59**
3. **आचार्य प्रियवत वेदवाचस्पति, मेरा धर्म, पृष्ठ 132**
4. **देखो, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ 412**
5. **पाणिनि के अनुसार धर्म शब्द के दो अर्थों में एक अर्थ पुण्य का काम भी है। जैसे कि– धर्म चरति धार्मिकः (4.4.41)**
6. **वैशेषिक दर्शन (1.1.2)**

राजनीति में धर्म का स्थान : वैदिक दृष्टिकोण

डॉ0 सत्यदेव निगमालंकार
वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार

मनुस्मृति में राजनीति के साथ धर्मों के समन्वय को बहुत महत्त्व दिया गया है। वहाँ लिखा है कि जहाँ सभासदों के देखते-देखते धर्म-अधर्म के द्वारा और सत्य अनृत के द्वारा कुचला जाता है, वहाँ सभासदों का ही दोष होता है।[१] धर्म नष्ट होने पर विनाश उपस्थित कर देता है और रक्षित होने पर रक्षा करता है। इसलिये राष्ट्र में धर्म का कभी हनन नहीं करना चाहिये।[२] यदि राष्ट्र में धर्म पर अधर्म हावी हो जाता है तो चौथाई दोष अधर्म के कर्ता का होता है, चौथाई साक्षी देने वाले का, चौथाई सब सभासदों का और चौथाई राजा का होता है।[३] इसलिए राजा को चाहिए कि वह धर्मासन पर बैठकर, समाहित होकर राज्यकार्यों को देखें।[४] धर्म संशय के निर्णय के लिए राजा त्र्यवरा परिषद् का निर्माण करता है जिसमें एक विद्वान् ऋग्वेद का ज्ञाता, दूसरा यजुर्वेद का ज्ञाता और तीसरा सामवेद का ज्ञात होता है।[५] इस प्रकार वेदों की ही व्याख्या करने वाले मनु की दृष्टि में राजा धर्माध्यक्ष होता है। वेद में भी राजा को धर्माध्यक्ष, धर्मकृत् और धर्मणस्पति विशेषणों से स्मरण किया गया है-

राजा का प्रतिनिधि कह रहा है कि मैं प्रजाओं के राजा, अद्‌भुत गुणकर्मों वाले, धर्माध्यक्ष, अग्रणी नृपति से जो निवेदन कर रहा हूँ उसे वह सुनें।[६] शान्ति का अग्रदूत राजा धर्माधिपति है, प्रजा को पवित्र करने वाला है, बहुत धन सम्पन्न है। उसके चलाये हुए नियमों में सारे प्रजाजन चलते हैं।[७] उस इन्द्र राजा के गीत गाओ, जो ज्ञानी है, धर्मकृत् है, विपश्चित् है और स्तुति के योग्य है।[८]

ये मन्त्र राजा के धर्मानुकूल कार्य करने पर प्रकाश डालते हैं।

राजा को वेद में अग्रनायक और तेजस्वी होने के कारण 'अग्नि' तथा कान्ति का उपासक होने के कारण 'सोम' नाम से स्मरण किया गया है। इन नामों से स्मरण करता हुआ वेद राजा को कहता है- "तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम राज्य में धर्म कर्मों का पोषण करते रहो। हे अग्निस्वरूप राजन् ! तुम अग्नि की तरह चमको, सहस्रजित् बनो, देवदूत और प्रशंसनीय बनो और धर्मों का पोषण करते रहो।[९] "हे शान्ति के अग्रदूत सोम नामक राजन् ! आप पर्जन्य की तरह वर्षा करने वाले हो, सूर्य के समान देदीप्यमान हो, प्रजा में धर्म-कर्म ज्ञान-विज्ञान आदि की वर्षा करना आपका कर्त्तव्य है। आप वर्षक

बनकर प्रजा में धर्मों का धारण-पोषण करते रहो"।[10]

वेदों में अदिति राष्ट्रभूमि का नाम है। उसमें नियुक्त राज्याधिकारियों को आदित्य कहा गया है। उन्हें सम्बोधन करके वेद कहता है- "हे राज्याधिकारियों, जिसे तुम उत्कृष्ट नीतियों से ले चलते हो, और धर्म मार्ग पर चलाते हो वह मनुष्य दुरितों से पार होकर, अक्षत होकर उन्नति को प्राप्त करता है और पुत्रपौत्रादि प्रजाओं से बढ़ता है"।[11]

राजा का एक नाम 'वायु' भी है, क्योंकि वह वायु के समान प्रगति करता है और दूसरों को प्रगति कराता है। वायु नाम से सम्बोधन करके उसे कहा गया है- "हे राजन् आप धर्म मर्यादा पर चलते हुए प्रजा की समस्त सम्भाव्य विपदाओं से रक्षा करते हो। हे राजन्, धर्मानुकूल आचरण करते हुए और प्रजा से करवाते हुए आप असुरों द्वारा किए जाने वाले उपद्रवों से प्रजा की रक्षा करते हो"।[12]

कभी-कभी धर्म के नाम से राज्य में प्रदूषण भी चल पड़ता है। अनेक कुपन्थ चल पड़ते हैं, जो सच्चाई पर नहीं होते। भोले-भाले लोगों को प्रलोभनों द्वारा आकृष्ट करके उन्हें फंसाया जाता है। वेद के अनुसार राजा को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि राज्य में धर्म-प्रदूषण न होने दें। "अग्नि नामक अग्रनायक राजा को चाहिए कि वह अमर अर्थात्-सजीव (जागरूक) होकर राष्ट्र में विद्वानों की पूजा करे और धर्म-प्रदूषण से राष्ट्र को बचाता रहे"।[13]

जिस राज्य में धर्म का पालन नहीं होता वहाँ उच्छृंखलता बढ़ जाती है, प्रजाएँ अपने कर्त्तव्य की मर्यादा में रहना छोड़ देती है, अधार्मिक लोग अधर्म के कुचक्र चलाने लगते हैं, राज्य दूषित, कलंकित और अपवित्र हो जाता है। अतः वेद की दृष्टि में राजा का कर्त्तव्य है कि धर्मप्रचार द्वारा राष्ट्र की पवित्रता को स्थिर रखे।[14] "हे सोम राजन्, आप से निकलने वाली धर्म की किरणें राज्य के सभी स्थानों में पहुँच जाती हैं एवं धर्म के द्वारा आप राष्ट्र को पवित्र करते हो और सम्पूर्ण राष्ट्र के अधिपति होकर शोभा पाते हो।"[15]

राष्ट्र में मित्र और वरुण नाम के दो राज्याधिकारी होते हैं। उन्हें सम्बोधन करके कहा गया है कि "हे मित्र और वरूण नामक विद्वान् राज्याधिकारियों, आप दोनों धर्म का पालन करवा कर ही अपने व्रतों की रक्षा करते हो।"[16]

'इन्द्र' नाम से राजा को आमन्त्रित करते हुए कहा गया है "कि तुम धर्म से भी तीक्ष्ण हो, धर्म के द्वारा बलवान् होते हो।"[17] 'ग्रावा' नाम से विद्वानों को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि "प्रेरक सविता देव अर्थात्-परमेश्वर या राजा तुम्हारे अन्दर धर्म की प्रेरणा करे। तदनुसार तुम विद्यादानादि धर्मों के प्रचार में लग जाओ"।[18]

'इन्द्र' नाम से प्रजाजनों को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि "आप धर्म के मार्ग से चलो और धर्म की योजना कराना जानो, तभी तुम्हारी उत्तम कीर्ति होगी"।[१९]

इस प्रकार वेद के अनुसार राजा, राज्याधिकारीगण, प्रजाएं सबको धर्म-मार्ग पर चलना उचित है। जिस राष्ट्र में धर्म का पालन होता है, उस राष्ट्र के लोग राष्ट्र की उन्नति को देख कर सहसा पुकार उठते हैं- "देखो, राष्ट्र की उन्नति का सूर्योदय हुआ है, जो धर्म पर आश्रित है। राज्य में धर्मानुकूल शासन होने से सब अमित्रे, वृत्र, दस्यु, असुर और सपत्न नष्ट हो गये हैं। हम चाहते हैं कि यह धर्मोदय सदा ही बना रहे और राष्ट्र उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँच जाये"।[२०]

पाद टिप्पणियाँ

१. यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः।।८.१४

२. धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।८,१५

३. पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति।।८.१८

४. धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः।
प्रणम्यलोकपालेभ्यः कार्यदर्शन मारभेत्।।८.३

५. ऋग्वेदविद् यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्म संशयनिर्णये।।१२.११२

६. विशां राजानमभ्दुतमध्यक्षं धर्मणामिम्। अग्निमीक्ते स उ श्रवत्।।ऋ० ८,४३,२४

७. विश्वो यस्यव्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः। पुनानस्य प्रभूवसोः।।ऋ० ६,३५,६

८. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे।।ऋ० ८,६७,१

९. समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि। देवानां दूत उक्थ्यः।।ऋ० ५, २६,६

१०. वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः। वृषा धर्माणिदधिषे।।ऋ० ६,६४,१

११. अरिष्टः समर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये।।ऋ०१०,६३,१३

१२. त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणा सूर्यात्पासि धर्मणा।।ऋ० १,१३४,५

१३- अग्निर्हि। देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथो धर्माणि सनता न दूदुषत्।। ऋ० ३,३१

१४- विश्वा धामानि विश्व चक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परियन्ति केतवः।

व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि।।ऋ० ६,८६,५

१५- स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोमः धर्मभिः।

त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभं हिन्वन्ति धीतिभिः।।ऋ० ६,१०७,२४

१६. धर्मणा मित्रावरूणा विपश्चिता व्रता रक्षेये असुरस्य मायया।।ऋ० ५,६३,७

१७. आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतजानस्तुविष्मान्।।ऋ० १०,४४,१

१८. प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा। धूर्षु युज्यध्वं सुनुत।।ऋ० १०,१७५,१

१६. असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नतस्य सुश्रियः। विदाना अस्य योजनम्।।ऋ० ६,७,१

२०. विभ्राड्बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम्।

अमित्रहा वृत्रहा दस्युहंतमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा।। ऋ० १०,१७०,२

• • •

गीत गाते रहो

–महावीर 'नीर'
गुरुकुल कांगड़ी

गीत गाते रहो, गुन-गुनाते रहो।
जिन्दगी की खुशी को, बढ़ाते रहो।।
साधना भी यही,
कामना भी यही,
भाव अपने बदल, मुस्कराते रहो...........
दर्द मिलते रहे,
कष्ट आते रहे,
कारवाँ ना रुके, ध्येय पाते रहो...........
नाश का खेल तो,
रुकने वाला नहीं,
सोच कर क्यों थके, पग बढ़ाते रहो........
मातमी धुन बजी,
अर्थियाँ भी उठी,
आँख नम ना करो, अश्रु गाते रहो.........
फूल बनकर जियो,
धूल में ना मिलो,
जन्म अनमोल है, खिलखिलाते रहो........
दिल मचलने लगे,
पग थिरकने लगे,
रात किसकी सगी, गुद-गुदाते रहो.........
गम तो बिखरा पड़ा,
दर्द बनकर खड़ा,
प्यार के मेघ बन, रस लुटाते रहो...........
बागवाँ से कहो,
ले सुधि बाग की,
आँधियों से लड़ो, चम-चमाते रहो.........
उग्र मौसम बना,
मौत बनकर खड़ा,
सूर्य बनकर जियो, तम भगाते रहो.........
मौत तो मौत है,
आएगी एक दिन,
कर्म अपना करो, भोग पाते रहो...........
जहर जो घोलते,
राष्ट्र की गंध में,
उनके नामोंनिशां, सब मिटाते रहो........

महक बनकर जियो,
शूल बिखरे पड़े,
गंध ऐसी बनो, मन लुभाते रहो...........
पात झर ना सके,
फूल बिखरें नहीं,
आशियाने को, अपने सजाते रहो...........
तेज के पुञ्ज हो,
तप के कुन्दन बनो,
ऊँचे-ऊँचे बढ़ो, यश कमाते रहो...........
देख करके चलो,
ठोकरे ना लगे,
पथ के रोड़ों को, अपने हटाते रहो........
शूर बनकर जियो,
क्रूर बनना नहीं,
जग नमन में झुका, सिर नवाते रहो.......
देश की आन बन,
शान से तुम जियो,
दिल में ऐसे बसो, याद आते रहो..........
आग बनकर जियो,
राख बनना नहीं,
दीप से तुम जलो, जगमगाते रहो...........
हिमशिखर से गलो,
गंग-धारा बनो,
प्यास जन्मों की, अपने मिटाते रहो........
गहरे सागर बनो,
ऊँचे पर्वत बनो,
आसमां की तरह, सब पे छाते रहो........
रूप देखा करो,
सपने बुन-बुन जियो,
भावना की नदी में, डुब-डुबाते रहो.......
सबको जीवन मिले,
सबकी आशा फले,
सबके सपनों का, भारत बनाते रहो........
सत्य बनकर जियो,
झूठ मर जाएगा,
'नीर' ऐसे बनो, सबको भाते रहो.........